प्रकाशक :
अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ
जोधपुर

शाखा कार्यालय
नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)
©: (01462) 251216, 257699, 250328

स्थानांग सूत्र

भाग-१

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य
विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का ६६ वाँ रत्न

श्री स्थानांग सूत्र

भाग - १ (स्थान १-४)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

अनुवादक

पं. श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र"
न्याय व्याकरणतीर्थ, जैन सिद्धांत शास्त्री
(स्वर्गीय पंडित श्री वीरपुत्र जी महाराज)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरु गेट बाहर, ब्यावर-305901
☎ (01462) 251216, 257699 Fax No. 250328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ 2626145
२. शाखा - अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ 251216
३. महाराष्ट्र शाखा - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**
४. कर्नाटक शाखा - श्री सुधर्म जैन पौषध शाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़
चामरांजपेट, **बैंगलोर-१८** ☎ 25928439
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
६. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ 252097
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ 23233521
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ 5461234
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलढाणा**
१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंड़ी, **भीलवाड़ा** ☎ 327788
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
१२. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ 25357775
१४. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शांपिग सेन्टर, **कोटा** ☎ 2360950

मूल्य : ३०-००

चतुर्थ आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६५
अप्रेल २००८

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ 2620776

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन धर्म दर्शन व संस्कृति का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ की वाणी है। तीर्थंकर प्रभु अपन उत्तम साधना के द्वारा जब घाती कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर लेते है तब चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। चतुर्विध संघ की स्थापना के पश्चात् वे जगत् के समस्त जीवों के हित के लिए, कल्याण के लिए अर्थ रूप में वाणी की वागरणा करते हैं, जिसे उन्हीं के शिष्य श्रुतकेवली गणधर सूत्र रूप में आबद्ध करते हैं। वही सूत्र रूप वाणी परम्परा से आज तक चली आ रही है। जिस समय इन सूत्रों के लेखन की परम्परा नहीं थी, उस समय इस सूत्र ज्ञान को कंठस्थ कर स्मृति के आधार पर सुरक्षित रखा गया। किन्तु जब स्मृति की दुर्बलता आदि कारणों से धीरे-धीरे आगम ज्ञान विस्मृत/लुप्त होने लगा तो वीर निर्वाण के लगभग ९८० वर्ष पश्चात् आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण के नेतृत्व में इन्हें लिपिबद्ध किया गया। आज जिन्हें हम आगम कहते हैं, प्राचीन समय में वे गणिपिटिक कहलाते थे। गणिपिटक में तमाम द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। बाद में इन्हें, अंग प्रविष्ट, अंग बाह्य एवं अंग उपाङ्ग मूल, छेद आदि के रूप से वर्गीकृत किया गया। वर्तमान में उपलब्ध आगम वर्गीकृत रूप में हैं।

वर्तमान में हमारे ग्यारह अंग शास्त्र है उसमें स्थानांग सूत्र का तृतीय स्थान है। इसमें एक स्थान से लेकर दस स्थान तक जीव और पुद्गल के विविध भाव वर्णित है। इस आगम में वर्णित विषय सूची का अधिकार नंदी सूत्र एवं समवायाङ्ग सूत्र दोनों में है। समवायाङ्ग सूत्र में इसके लिए निम्न पाठ है -

से किं तं ठाणे ? ठाणेणं ससमया ठाविज्जंति, परसमया ठाविज्जंति, ससमयपरसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोगालोगा ठाविज्जंति। ठाणेणं दव्व गुण खेत्त काल पज्जव पयत्थाणं-

"सेला सलिला य समुद्दा, सुरभवण विमाण आगर णईओ।
णिहिओ पुरिसजाया, सरा य गोत्ता य जोइसंचाला॥ १॥"

एक्कविह वत्तव्वयं दुविह वत्तव्वयं जाव दसविह वत्तव्वयं जीवाण, पोग्गलाण य लोगट्ठाई च णं परूवणया आघविज्जंति। ठाणस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ संगहणीओ। से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया, कडा, णिबद्धा, णिकाइया, जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से तं ठाणे॥ ३॥

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! स्थानाङ्ग किसे कहते हैं अर्थात् स्थानाङ्ग सूत्र में क्या वर्णन किया गया है? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि स्थानाङ्ग सूत्र में स्वसमय-स्वसिद्धान्त, पर सिद्धान्त, स्वसमयपरसमय की स्थापना की जाती है। जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक की स्थापना की जाती है। जीवादि पदार्थों की स्थापना से द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों की स्थापना की जाती है।

पर्वत, महा नदियाँ, समुद्र, देव, असुरकुमार आदि के भवन विमान, आकर-खान, सामान्य नदियाँ, निधियाँ, पुरुषों के भेद, स्वर, गोत्र, ज्योतिषी देवों का चलना इत्यादि का एक से लेकर दस भेदों तक का वर्णन किया गया है। लोक में स्थित जीव और पुद्गलों की प्ररूपणा की गई है। स्थानाङ्ग सूत्र की परित्ता वाचना हैं, संख्याता अनुयोगद्वार, संख्याता प्रतिपत्तियाँ, संख्याता वेढ नामक छन्द विशेष, संख्याता श्लोक और संख्याता संग्रहणियाँ हैं। अंगों की अपेक्षा यह स्थानाङ्ग सूत्र तीसरा अंग सूत्र है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन २१ उद्देशे, ७२ हजार पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर, अनन्ता गम, अनन्ता पर्याय, परित्ता त्रस, अनन्ता स्थावर हैं।

तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, सूत्र रूप में गूंथे हुए होने से निबद्ध हैं, निर्युक्ति, हेतु उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये हैं। स्थानाङ्ग सूत्र के ये भाव तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे गये हैं, नामादि के द्वारा कथन किये गये हैं स्वरूप बतलाया गया है, उपमा आदि के द्वारा दिखलाये गये हैं, हेतु और दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये गये हैं। उपनय और निगमन के द्वारा एवं सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये गये हैं। इस प्रकार स्थानाङ्ग सूत्र को पढ़ने से आत्मा ज्ञाता और विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरणसत्तरि करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से स्थानाङ्ग सूत्र के भाव कहे गये हैं, विशेष रूप से कहे गये हैं एवं दिखलाये गये हैं। स्थानाङ्ग सूत्र का संक्षिप्त विषय बतलाया गया है॥ ३॥

इस आगम पर गहनता से चिंतन करने पर एक बात परिलक्षित होती है कि इसमें किसी भी विषय को प्रधानता न देकर संख्या को प्रधानता दी है। संख्या के आधार पर ही इस आगम का निर्यूहण हुआ है। इसमें एक-एक की संख्या से सम्बन्धित तमाम विषयों के बोलों को प्रथम स्थान में निरूपित किया है। वह चाहे जीव, अजीव, इतिहास, गणित, खगोल, भूगोल, दर्शन, आचार आदि किसी से भी सम्बन्धित क्यों न हो, इसी शैली का अनुसरण शेष दूसरे तीसरे यावत् दशवे स्थान वाले बोलों के लिए किया गया है। यद्यपि प्रस्तुत आगम में किसी भी एक विषय की विस्तृत व्याख्या नहीं है। फिर भी संख्या की दृष्टि से शताधिक विषयों का जिस प्रकार से इसमें संकलन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है उसे देखते हुए यदि इसे जैन दर्शन का कोष कह दे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि संख्या से सम्बन्धित किसी भी विषय को तुरन्त उस स्थान पर देखा जा सकता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि प्रस्तुत आगम में संख्या के आधार पर अनेक विषयों का इसमें निरूपण है। साथ ही चारों अनुयोगों का समावेश भी इसमें है। फलतः इसका अध्ययन करने वाले साधक को सामान्य रूप से शताधिक विषयों की जानकारी हो जाती है। यही कारण है कि जैन आगम साहित्य में जो तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं। उनमें श्रुत स्थविर के लिए **"ठाण-समवायधरे"** विशेषण आया है। यानी जो साधु आयु और दीक्षा से तो स्थविर नहीं है। पर श्रुत स्थविर (स्थानाङ्ग समवायाङ्ग सूत्र का ज्ञाता) है तो वह कारण उपस्थित होने पर कल्प काल से अधिक समय तक एक स्थान पर रुक सकता है। इस विशेषण से स्पष्ट है कि **ठाणं** सूत्र का कितना अधिक महत्व है। इतना ही नहीं व्यवहार सूत्र के अनुसार स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग सूत्रों के ज्ञाता को ही आचार्य, उपाध्याय एवं गणावच्छेदक पद देने का विधान है। इस प्रकार प्रस्तुत आगम सामान्य जैन दर्शन की जानकारी के लिए बहुत ही उपयोगी है।

स्थानाङ्ग सूत्र का प्रकाशन पूर्व में कई संस्थाओं से हो चुका है। जिनमें व्याख्या की शैली अलग अलग है। हमारे संघ का यह नूतन प्रकाशन है। इसकी शैली (Pattern) में संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र की शैली का अनुसरण किया गया है। मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और आवश्यकतानुसार विषय को सरल एवं स्पष्ट करने के लिए विवेचन दिया गया है।

सैलाना से जब कार्यालय ब्यावर स्थानान्तरित हुआ उस समय हमें लगभग ४३ वर्ष पुराने समवायाङ्ग सूत्र, सूत्रकृताङ्ग सूत्र, स्थानाङ्ग सूत्र, विपाक सूत्र के अनुवाद की हस्तलिखित कापियों के बंडल मिले, जो समाज के जाने माने विद्वान् पण्डित श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र" न्याय-व्याकरण तीर्थ, जैन सिद्धान्त शास्त्री द्वारा बीकानेर में अन्वयार्थ सहित अनुवादित किए हुए थे। उन कापियों को देखकर मेरे मन में भावना बनी कि क्यों नहीं इन को व्यवस्थित कर इन का प्रकाशन संघ की ओर से किया जाय? इसके लिए मैंने संघ के अध्यक्ष समाजरत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवन्तलालजी एस. शाह से चर्चा की तो उन्होंने इसके लिए सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। फलस्वरूप संघ द्वारा समवायाङ्ग सूत्र एवं सूत्रकृताङ्ग सूत्र का प्रकाशन हो चुका है।

प्रस्तुत स्थानाङ्ग सूत्र का भी मूल आधार ये हस्त लिखित कापियाँ हैं। साथ ही सुत्तागमे तथा अन्य संस्थाओं से प्रकाशित स्थानाङ्ग सूत्र का भी इसमें सहकार लिया गया है। सर्व प्रथम इसकी प्रेस काफी तैयार कर उसे पूज्य वीरपुत्रजी म. सा. को सेवाभावी सुश्रावक श्री हीराचन्दजी सा. पींचा ने सुनाई। पूज्य श्री ने जहाँ उचित समझा संशोधन बताया। तदनुरूप इसमें संशोधन किया गया। इसके बाद पुनः श्रीमान् पारसमलजी सा. चण्डालिया तथा मेरे द्वारा इसका अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत आगम के प्रकाशन में पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरती गई है। फिर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम सम्पादन में हमारा विशेष अनुभव न होने से भूलों का रहना स्वाभाविक है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में कोई भी त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित कर अनुग्रहित करावें।

संघ का आगम प्रकाशन का काम प्रगति पर है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हो वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हो एवं शासन की प्रभावना करते रहे।

प्रस्तुत स्थानाङ्ग सूत्र दो भागों में प्रकाशित हुआ है। प्रथम भाग में पहले से चौथे स्थान तक के बोलों की विषय सामग्री ली गई है। दूसरे भाग में शेष पाँचवें बोल से दसवें बोल तक की सामग्री का संकलन किया गया है। स्थानांग सूत्र के दोनों भागों की प्रथम आवृत्ति मार्च २०००, द्वितीय आवृत्ति अगस्त २००१ एवं तृतीय आवृत्ति २००६ में प्रकाशित हुई। अब यह चतुर्थ संशोधित आवृत्ति भी **श्रीमान् जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी के अर्थ सहयोग से ही पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है।

कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में वृद्धि के साथ इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया है वह काफी अच्छी किस्म का है। इसके बावजूद भी इसके मूल्य में वृद्धि नहीं की गई है। फिर भी पुस्तक के ४६८ पेज की सामग्री को देखते हुए लागत से इसका **मूल्य अर्द्ध** ही रखा गया है। पाठक बंधु इसका अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.) — **संघ सेवक**

दिनांक: २५-४-२००८ — **नेमीचन्द बांठिया**

अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, ब्यावर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

प्रथम स्थान : प्रथम उद्देशक

विषय	पृष्ठ
उत्थानिका	१-४
आत्म, दण्ड, क्रिया, लोक	७-८
अलोक, धर्म, अधर्म, बन्ध	७-८
मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव	९
संवर, वेदना, निर्जरा	९
प्रत्येक शरीर में एक जीव	१०
भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय	१२
मन, काय-व्यायाम	१२
विगतार्चा-त्यज्यमान शरीर	१२
गति-आगति, तर्क	१२
ज्ञान, दर्शन, चारित्र	१३
समय, प्रदेश, परमाणु	१४
सिद्धि, सिद्ध, परिनिर्वाण, परिनिर्वृत	१५
शब्द-रूपादि का एकत्व	१५
प्राणातिपातादि का एकत्व	१६-१८
विरमण-विवेक	१८
काल-चक्र, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी	१९
संसारी जीवों की वर्गणा	२१
दण्डक, नैरयिक	२२-२३
भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक	२३
सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि	२४
कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक	२६
सिद्धों के भेद	३०

विषय	पृष्ठ
पुद्गल, परमाणु	३३
जम्बूद्वीप-परिचय	३४-३५
एक मुक्त श्री भगवान् महावीर	३४-३५
अनुत्तरौपपातिक देव-अवगाहना	३४-३५
एक तारा परिवार, नक्षत्र	३४-३५
पुद्गलों की अनन्तता	३४-३५

द्वितीय स्थान : प्रथम उद्देशक

विषय	पृष्ठ
जीव की द्विविधता	३७
त्रस-स्थावर	३८
अरूपी अजीवकाय-वर्णन	३८-४०
बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर	३८-४०
वेदना, निर्जरा	३८-४०
जीव क्रिया, अजीव-क्रिया	३८-४०
ईर्यापथिकी-सांपरायिकी	३८-४०
कायिकी और आधिकरणिकी क्रिया	३८-४०
प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी क्रिया	३८-४०
प्राणातिपातिकी और अप्रत्याख्यानिकी	३८-४१
आरम्भिकी, पारिग्रहिकी क्रिया	४१-४४
माया-प्रत्ययिकी, मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी	४१-४४
दृष्टिजा और स्पृष्टिजा क्रिया	४१-४४
प्रातीत्यिकी सामन्तोपनिपातिकी क्रिया	४१-४४
स्वहस्तिकी एवं नैसृष्टिकी क्रिया	४४-४६
आज्ञापनिकी और वैदारणिकी क्रिया	४४-४६
अनाभोग प्रत्यया, अनवकांक्षा-प्रत्यया	४४-४६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
प्रेम-प्रत्यया, द्वेष-प्रत्यया क्रिया	४४-४६
गर्हा-विवेचन	४६-४७
प्रत्याख्यान-विवेचन	४६-४७
विद्या और चरण	४८
साधना के बाधक आरम्भ और परिग्रह	४९-५०
आरम्भ और परिग्रह के त्याग से लाभ	४९-५०
धर्म श्रवण और श्रद्धा	५०
दो प्रकार का समा-काल	५०-५१
द्विविध उन्माद	५०-५१
दण्ड-विवेचन	५०-५१
दर्शन-विवेचन	५१-५२
सम्यग्-ज्ञान-विवेचन	५३-५७
धर्म-विवेचन	५७-६१
सराग-संयम, वीतराग-संयम	६१-६२
स्थावर वर्णन	६२
सूक्ष्म-बादर, पर्याप्तक-अपर्याप्तक	६३
परिणत-अपरिणत	६४
गति समापन्नक-अगति समापन्नक	६४
अन्तरावगाढ-परम्परावगाढ	६४
काल-अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी	६५
लोकाकाश-अलोकाकाश	६५
द्विविध शरीर-वर्णन	६५
दो शुभ दिशाएँ	६६-६८

द्वितीय स्थान : द्वितीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
कल्पोपपन्न-कल्पातीत	६९-७०
चार स्थितिक-गतिरतिक	६९-७०
नैरयिक आदि की गति आगति	७०-७१
चौबीस दण्डकों में द्विविध जीव	७१-७४
जीव की द्विविध अनुभूतियाँ	७५-७८

द्वितीय स्थान : तृतीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
शब्द-विवेचन	७९
पुद्गल-विश्लेषण	८०-८३
आचार और प्रतिमा के दो-दो भेद	८३-८५
सामायिक के दो भेद	८६
उपपात, उद्वर्त्तन	८८
कायस्थिति, भवस्थिति	८९
जम्बूद्वीप की भौगोलिक स्थिति	९१-९२
जम्बूद्वीप में पर्वतों की समानता	९३-९७
जम्बूद्वीप में सरोवर-सरिताओं की समानता	१०२
जम्बूद्वीप की काल-व्यवस्था, जीव-अवस्था	१०३
जम्बूद्वीप के ग्रह-नक्षत्र	१०५-१०६
जम्बूद्वीपीय वेदिका	१०७
धातकीखण्डद्वीप की अवस्थिति	१०८-१११
पुष्करवर द्वीप की अवस्थिति	११२-११३
चौंसठ इन्द्रों के नाम	११३-११५

द्वितीय स्थान : चतुर्थ उद्देशक

विषय	पृष्ठ
समय, आवलिका आदि का स्वरूप	११६
दो राशि	१२१
बंध के दो भेद	१२२
दो प्रकार की उदीरणा	१२२
आत्मा द्वारा शरीर का त्याग	१२३
केवली-धर्म-श्रवण का साधन	१२३

विषय	पृष्ठ
पल्योपम और सागरोपम काल	१२४
क्रोध आदि पापों के दो रूप	१२५
सिद्ध एवं असिद्ध जीव	१२६
बाल-मरण, पण्डित-मरण	१२६-१२९
लोक एवं लौकिक पदार्थ	१३०
बोधि और बोध, मोह एवं मूढ़	१३०
आठ कर्मों की द्विविधता	१३०-१३१
मूर्च्छा और उसके रूप	१३३
दो प्रकार की आराधना	१३३
तीर्थङ्करों के अनुपम रूप का वर्णन	१३४
सत्यप्रवाद पूर्व की दो वस्तु	१३४
दो तारों वाले नक्षत्र	१३४
लवण और कालोद समुद्र	१३५
सुभूम और ब्रह्मदत्त का नरकावास	१३५
देवों की स्थिति	१३६
कल्प-स्त्रियाँ	१३६-३७
कल्पों में तेजोलेश्या वाले देव	१३६-१३७
देव-परिचारणा	१३६-१३७
अशुभ कर्म-पुद्गल	१३६-१३७
पुद्गल-स्कन्धों की अनन्तता।	१३७

तृतीय स्थान : प्रथम उद्देशक

विषय	पृष्ठ
तीन इन्द्र	१३९-१४०
विकुर्वणा के तीन भेद	१४१
तीन प्रकार के नैरयिक	१४१
देव-परिचारणा	१४३
तीन प्रकार का मैथुन	१४३
योग-करण-भेद	१४४
अल्पायु दीर्घायु के तीन कारण	१४६-४७
अशुभायु और शुभायु बन्ध के कारण	१४६-४७
गुप्ति और दण्ड भेद	१४७
गर्हा-विश्लेषण	१४९
अनेक दृष्टियों से पुरुष-भेद	१५०-१५१
मत्स्यों और पक्षियों के रूप	१५१-१५२
स्त्री-पुरुष और नपुंसक भेद	१५२-१५३
तिर्यंच जीवों के रूप	१५३
लेश्या-दृष्टि से जीव-भेद	१५४
तारा-चलन और देवों के शब्दादि	१५५
प्रकाश, अन्धकार एवं देव आगमन आदि के कारण	१५६-१५७
तीन का प्रत्युपकार दुःशक्य	१५९-१६०
उत्तम मध्यम और जघन्य काल	१६१
पुद्गल-क्रिया, उपधि और परिग्रह	१६१
सुप्रणिधान और दुष्प्रणिधान	१६२-१६३
योनि-भेद	१६४
वनस्पति जीव	१६५
कालस्थिति तथा उत्तम पुरुष	१६६-१६७
तैजस्कायिक, वायुकायिक जीवों का आयु	१६८
धान्यबीजों का स्थिति-काल	१६८-६९
नारकियों का स्थिति-काल	१६९
नरकों में उष्ण-वेदना	१६९
लोक में तीन स्थान समान	१६९
स्वाभाविक रसवाले तीन समुद्र	१६९
सातवीं नरक, सर्वार्थसिद्ध के अधिकारी	१७१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
त्रिवर्ण विमान	१७१
तीन प्रज्ञप्तियाँ	१७२

तृतीय स्थान : द्वितीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
तीन प्रकार के लोक	१७२
देवलोक की परिषदाएँ	१७३
तीन याम, तीन वय	१७४
बोधि और बुद्ध	१७४
प्रव्रज्या भेद	१७५
संज्ञोपयुक्त और नो संज्ञोपयुक्त निर्ग्रन्थ	१७६
शैक्ष-भूमि और स्थविर-भूमि	१७६-७७
मनोवृत्ति अनुरूप मानव	१७८-७९
गर्हित और प्रशस्त तीन स्थान	१८०
जीवों की त्रिविधता	१८०-८१
लोक-स्थिति	१८१
तीन दिशाएँ	१८१
त्रस और स्थावर जीव	१८२
समय, प्रदेश और परमाणु	१८३
प्राणियों को किससे भय है ?	१८३
दुःख कृत कर्म का फल है	१८४-८५

तृतीय स्थान : तृतीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
आलोचना न करने और करने के कारण	१८६-८७
पुरुष-भेद	१८८
तीन प्रकार के वस्त्र और पात्र	१८९
संयमी वस्त्र क्यों रखें ?	१८९
आत्म-रक्षक दत्तियाँ	१८९
साम्भोगिक विसाम्भोगिक कब ? क्यों ?	१९०
अनुज्ञा, उपसम्पदा, विजहना	१९०
वचन और मन के तीन-तीन रूप	१९१
अल्प वृष्टि और महा वृष्टि	१९१
मनुष्य लोक में देव के आगमन और अनागमन के कारण	१९३-१९४
देवों की इच्छा एवं पश्चाताप	१९६-१९७
देवों का च्यवन-ज्ञान और उद्वेग	१९८
देवों के विमान	१९८
तीन प्रकार के नैरयिक	१९९
दुर्गतियाँ, सुगतियाँ	१९९
ग्रहणीय प्रासुक जल और ऊनोदरी तप	२००-२०२
तीन कर्म भूमियाँ	२०५
दर्शन, रुचि, प्रयोग, व्यवसाय भेद	२०५
पुद्गल और नरक	२०७
मिथ्यात्व के विविध रूप	२०८
धर्म और उपक्रम	२०९
कथा और विनिश्चय	२०९
धर्म-श्रवण से सिद्धि	२१०

तृतीय स्थान : चतुर्थ उद्देशक

विषय	पृष्ठ
साधु के लिये उपाश्रय और संस्तारक	२१२
काल, समय, पुद्गल-परावर्तन-भेद	२१२
वचन-भेद	२१३
प्रज्ञापना, सम्यक् और उपघात	२१४
आराधना, संक्लेश और प्रायश्चित्त आदि	२१५
उद्गम उत्पादना आदि के दोष	२१६-१९
जम्बूद्वीप में क्षेत्र पर्वत और नदियाँ आदि	२२०-२२१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
पृथ्वी चलित होने के कारण	२२२
किल्विषिक देवों की स्थिति	२२३
परिषद् के देवों की स्थिति	२२४
प्रायश्चित्त और अनुद्घातिम	२२४
पारांचिक और अनवस्थाप्य	२२५
दीक्षा के अयोग्य व्यक्ति	२२५
श्रुत-ज्ञान के अधिकारी, अनधिकारी	२२५-२६
माण्डलिक पर्वत	२२७
तीन अति महान्	२२७
कल्प-स्थिति	२२८
तीन शरीर वाले प्राणी	२२८-२९
प्रत्यनीक वर्णन	२२९
मातृ-पितृ-अंग	२२९-३०
महानिर्जरा महापर्यवसान	२३०-३१
पुद्गल-प्रतिघात	२३१-३२
चक्षु और चाक्षुष	२३२
तीन प्रकार का अभिसमागम	२३२-३३
ऋद्धि-भेद	२३३-३४
तीन गारव	२३४
करण भेद	२३४
तीन प्रकार का धर्म	२३४
व्यावृत्ति भेद	२३५
तीन प्रकार का अन्त	२३६
जिन, केवली और अरिहन्त	२३६
दुरभिगन्ध सुरभिगन्ध लेश्याएँ	२३७
लेश्या-युक्त त्रिविध मरण	२३७
अव्यवसित व्यवसित साधु के तीन स्थान	२३८-३९

विषय	पृष्ठ
तीन-वलय	२४०
नैरयिक आदि की तीन समय की विग्रह गति	२४०
प्रकृतित्रय का युगपत् क्षय	२४३
त्रितारक नक्षत्र	२४३
पन्द्रहवें एवं सोलहवें तीर्थङ्कर का अन्तर	२४३
भगवान् महावीर के पुरुष युग और युगान्तकर भूमि	२४३
भगवान् महावीर के चौदह पूर्वधर मुनिवर	२४३
चक्रवर्ती तीर्थङ्कर	२४३
ग्रैवेयक विमानों के प्रस्तट	२४४
जीवों द्वारा उपार्जित कर्म पुद्गल	२४५
तीन प्रदेशी स्कंध	२४६

चतुर्थ स्थान : प्रथम उद्देशक

विषय	पृष्ठ
चार अन्त-क्रियाएँ	२४७-५०
वृक्ष और मनुष्य	२५१
भिक्षु-भाषा	२५२
वस्त्र और मनुष्य	२५२-५३
पुत्र-भेद	२५४
सत्य और मनुष्य	२५४
कोरक और मनुष्य	२५४-५५
घुण और भिक्षु	२५६
तृण-वनस्पति-भेद	२५८
नैरयिक की मनुष्य लोक में आगमनेच्छा	२५८
भिक्षुणी और संघाटिका	२५८
ध्यान-विश्लेषण	२६०-२७३
देव-स्थिति और संवास	२७३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
कषाय-भेद	२७४-२७८
कर्म प्रकृतियों का उपचय आदि	२७९
चार प्रकार की प्रतिमाएँ	२७९
अस्तिकाय और अजीवकाय	२८०
फल और मनुष्य	२८०
सत्य-मृषा एवं प्रणिधान विश्लेषण	२८०-८१
पुरुष-विश्लेषण	२८२-२८४
इन्द्रों के लोकपाल	२८४
देव-प्रकार	२८४
प्रमाण	२८६
दिक्-कुमारियाँ, विद्युतकुमारियाँ	२८६
मध्यम-परिषद के देवों की स्थिति	२८६
संसार के भेद	२८६
चतुर्विध दृष्टिवाद	२८७
चतुर्विध प्रायश्चित्त	२८७-८८
चतुर्विध काल	२८९
पुद्गल-परिणाम	२८९
चतुर्विध महाव्रत निरूपण	२९०
दुर्गति एवं सुगति	२९१
कर्मांश-क्षीणता	२९१
हास्योत्पत्ति-स्थान	२९३
चतुर्विध अन्तर	२९३
भृतक-भेद	२९३
पुरुष-भेद	२९३
लोकपालों की अग्रमहिषियाँ	२९४-२९६
गोरस-विगय, स्नेह-विगय, महाविगय	२९७-९८
कूटागार, कूटागार-शालाएँ	२९७-९८
चतुर्विध अवगाहना	२९७-९८
अंग-बाह्य प्रज्ञप्तियाँ	२९७-९८
चतुर्थ स्थान : द्वितीय उद्देशक	
प्रतिसंलीन और अप्रतिसंलीन	२९९
दीन और अदीन	३००-३०१
आर्य और अनार्य	३०२
वृषभ और पुरुष	३०३-३०४
हाथी और पुरुष	३०५-३०७
विकथा के भेद	३०८-११
धर्म-कथा के भेद	३०८-११
चार प्रकार के पुरुष	३१२
केवल ज्ञान दर्शन के बाधक-साधक कारण	३१२-१४
स्वाध्याय-अस्वाध्याय	३१४
लोक-स्थिति	३१४
पुरुष के भेद	३१४-१५
चतुर्विध गर्हा	३१५-१६
पुरुष और स्त्रियों के भेद	३१७-२०
आपवादिक विधान	३२१
तमस्काय	३२१-२२
चार प्रकार के पुरुष	३२२
सेना और साधक	३२३
चार प्रकार के कषाय और उनकी उपमाएँ	३२४-३२५
संसार, आयु, भव और आहार के भेद	३२७
बन्ध, उपक्रम, अल्प बहुत्व के भेद	३२८
संक्रम निद्यत निकाचित के भेद	३२८
एकत्व भेद, कति-भेद	३३२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
सर्व भेद	३३२
मानुषोत्तर के चार कूट	३३३
सुषम-सुषमा समय का काल-मान	३३४
जम्बूद्वीपवर्ती चार अकर्म-भूमियाँ	३३५
चारवृत्त वैताढ्य, चार महाविदेह	३३५
वक्षस्कार पर्वत चार वन, चार	
अभिषेक शिलाएँ जम्बूद्वीप के चार द्वार	३३६
अन्तरद्वीप-वर्णन	३३७-४०
पाताल-कलश, आवास पर्वत	३४०-४१
धातकीखण्ड-परिमाण	३४३
नन्दीश्वर अधिकार	३४३-३४९
अंजनक पर्वत का वर्णन	३५०
चतुर्विध सत्य	३५१
आजीवक-मतानुसार तप-विधान	३५१
संयम, त्याग और अकिंचनता के भेद	३५२

चतुर्थ स्थान : तृतीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
उदक और भाव	३५३
पक्षी और मनुष्य	३५३-५४
वृक्षोपम व्यक्ति	३३५
श्रमणोपासक के विश्राम स्थान	३५५
उदय अस्त चौभंगी	३५७
युग्म भेद	३५७
चार प्रकार के शूर	३५७
कुल और मानव	३५८
असुर कुमारों की लेश्याएँ	३५९
यान, वाहन, सारथि एवं पुरुष	३६०-६२
पुष्प और मानव व्यक्तित्व	३६३-६४
फलोपम आचार्य और साधक	३६७
धर्म और व्यक्ति	३७०
अनाराधक और आराधक के रूप	३७१-३७२
चतुर्विध श्रमणोपासक	३७३-३७४
श्रमणोपासकों की अरुणाभ विमान में स्थिति	३७४
देव-अनागमन-आगमन के कारण	३७५-७८
लोकान्धकार और लोक प्रकाश के कारण	३७९
चतुर्विध दुःख-शय्या	३८०
चतुर्विध सुख-शय्या	३८२
चतुर्विध अवाचनीय एवं वाचनीय	३८५
अनेक दृष्टियों से पुरुष-भेद	३८६
घोडे की उपमा और पुरुष	३८९
सिंह-सियार संयम पालन	३९२
चार लक्खा, द्विशरीर जीव	३९३
सत्त्वदृष्टि से पुरुष-भेद	३९५
चतुर्विध प्रतिमा	३९५
जीव-स्पृष्ट एवं कार्मण मिश्रित शरीर	३९५
अस्तिकाय स्पृष्ट लोक	३९५
प्रदेश-समानता	३९६
दुर्दृश्य चार शरीर	३९६
स्पर्श द्वारा अनुभूत पदार्थ	३९६
अलोक में प्रवेश न हो सकने के कारण	३९७
चतुर्विध ज्ञात एवं न्याय	३९७
संख्यान, अन्धकार एवं प्रकाश के कारण	३९९

चतुर्थ स्थान : चतुर्थ उद्देशक

विषय	पृष्ठ
चार प्रसर्पक	४००-४०३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
नैरयिक आदि के आहार	४००-४०३
जाति-आशीविष	४००-४०३
व्याधि और चिकित्सा	४०३-४०७
चिकित्सक, पुरुष और व्रण-भेद	४०३-४०७
श्रेय और पाप की दृष्टि से पुरुष-भेद	४०७
वादियों के समोसरण	४०७-४१०
मेघ और पुरुष, माता-पिता, राजा	४१०
चार प्रकार के मेघ	४१३
करण्डक और आचार्य	४१४-१६
शाल-तरु और आचार्य	४१४-१६
मत्स्य-वृत्ति समान भिक्षुवृत्ति	४१६
गोले के समान साधक	४१७
पत्र-तुल्य-पुरुष, चटाई तुल्य पुरुष	४१७-१९
चतुर्विध पशु, पक्षी और क्षुद्र प्राणी	४१९
पक्षियों जैसे भिक्षुक	४२०-२१
सबलता दुर्बलता	४२०-४२१
संवास-भेद	४२३
चार प्रकार का अपध्वंस	४२४
प्रव्रज्या-भेद	४२६-२८
संज्ञा विवेचन	४२८-३०
उत्तान और गम्भीर	४३०-४३०
तैराक-भेद	४३२
कुम्भ और पुरुष	४३२-३६
चतुर्विध उपसर्ग	४३७
चतुर्विध कर्म	४३९-४४
चतुर्विध संघ	४३९-४४
चार प्रकार की बुद्धि	४३९-४४
चार प्रकार के संसारी जीव, सर्व जीव	४४४
मित्र एवं मुक्त की चौभंगी	४४५
पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की गति और आगति	४४६
द्वीन्द्रिय जीवों सम्बन्धी संयम-असंयम	४४६
सम्यग्-दृष्टि पंचेंन्द्रिय जीवों की क्रियाएँ	४४७
गुणों के विनाश और विकास के कारण	४४७
शरीरोत्पत्ति के मूल कारण	४४७
धर्म-द्वार	४४९
नरकादि आयुष्य बांधने के कारण	४४९
चतुर्विध वाद्य-नाटक आदि	४४९
सानत्कुमार, माहेन्द्र कल्पदेव विमान-वर्णन	४५०
चतुर्विध उदक-गर्भ	४५२
चतुर्विध मानुषी-गर्भ	४५२-५३
उत्पात पूर्व की चार चूलावस्तुएँ	४५३
चार समुद्र, आवर्त और कषाय	४५४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह ✻	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	**ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।**
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

✻ आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण- खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण- खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर, जब तक नया राजा घोषित न हो

१९. युद्ध स्थान के निकट जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो, जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,
कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा- दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-
इन चार सन्धिकालों में- १-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

श्री स्थानाङ्ग सूत्रम्

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

उत्थानिका - भूतकाल में अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं। भविष्य में फिर अनन्त तीर्थंकर होवेंगे और वर्तमान में संख्यात तीर्थंकर विद्यमान हैं। अतएव जैन धर्म अनादिकाल से है, इसीलिए इसे सनातन (सदातन-अनादिकालीन) धर्म कहते हैं।

केवलज्ञान हो जाने के बाद सभी तीर्थंकर भगवन्त अर्थ रूप से प्रवचन फरमाते हैं, वह प्रवचन द्वादशांग वाणी रूप होता है। तीर्थंकर भगवन्तों की उस द्वादशांग वाणी को गणधर सूत्र रूप से गूंथन करते हैं। द्वादशाङ्ग (बारह अङ्गों) के नाम इस प्रकार हैं -

१. आचाराङ्ग २. सूयगडाङ्ग ३. ठाणांग (स्थानांग) ४. समवायाङ्ग ५. विवाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवती) ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अंतगडदशाङ्ग ९. अनुत्तरौपपातिक दशा १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक और १२. दृष्टिवाद।

जिस प्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय-ये पांच अस्तिकाय कभी नहीं थे, कभी नहीं है और कभी नहीं रहेंगे ऐसी बात नहीं किन्तु ये पांच अस्तिकाय भूतकाल में थे, वर्तमान में है और भविष्यत् काल में भी रहेंगे। इसी प्रकार यह द्वादशांग वाणी कभी नहीं थी, कभी नहीं है और कभी नहीं रहेगी, ऐसी बात नहीं किन्तु भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत्काल में रहेगी। अतएव यह मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना आदि देते रहने पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण अक्षय है। गंगा सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है, जम्बूद्वीप लवण समुद्र आदि द्वीप समुद्रों के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है।

यह द्वादशांग वाणी गणि-पिटक के समान है अर्थात् गुणों के गण एवं साधुओं के गण को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धारण करने से आचार्य को गणी कहते हैं। पिटक का अर्थ है - पेटी या पिटारी अथवा मंजूषा। आचार्य एवं उपाध्याय आदि सब साधु साध्वियों के सर्वस्व रूप श्रुत रत्नों की पेटी (मंजूषा) को गणि-पिटक कहते हैं।

जिस प्रकार पुरुष के बारह अंग होते हैं यथा - दो पैर, दो जंघा, दो ऊरू (साथल), दो पसवाडे, दो हाथ, एक गर्दन और एक मस्तक। इसी प्रकार श्रुत रूपी परम पुरुष के भी आचाराङ्ग आदि बारह अंग होते हैं।

आगमों का अर्थ बड़ा गहन और गूढ़ है उसका रहस्य उद्घाटन करने के लिए इन पर व्याख्याओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीनतम जैन व्याख्यात्मक साहित्य में आगमिक व्याख्याओं का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन व्याख्याओं को सामान्य रूप से पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है। यथा -

१. निर्युक्ति - प्राकृत में पद्यबद्ध है। मूल के सब शब्दों का अर्थ न देकर केवल कठिन **पारिभाषिक शब्दों** का संक्षिप्त अर्थ दिया है। उपलब्ध निर्युक्तियों के कर्ता श्रुत केवली भद्रबाहु हैं।

२. भाष्य - प्राकृत में पद्यबद्ध है मूल तथा निर्युक्ति पर अति विस्तृत अर्थ दिया है। भाष्यकार के रूप में दो आचार्य प्रसिद्ध हैं यथा - जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण और संघदासगणी।

३. चूर्णी - जैन आगमों की प्राकृत और संस्कृत दोनों में सम्मिमिश्रित चूर्ण की तरह अति विस्तृत व्याख्या है। चूर्णीकार के रूप में जिनदासगणी महत्तर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सर्वाधिक विस्तृत निशीथ चूर्णी है।

४. टीका - संस्कृत भाषा में है। टीका संक्षेप में भी है और विस्तार से भी है। टीकाकारों में विशेष उल्लेखनीय नाम ये हैं यथा - हरिभद्रसूरि, श्री शीलांकाचार्य (शीलांगाचार्य), अभयदेवसूरि, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र आदि।

५. टब्बा - लोक भाषा में लिखा गया है। केवल शब्दार्थ मात्र है। कहीं कहीं पर संस्कृत टीकाओं से भिन्न अर्थ भी किया है जो कि, गूढार्थ है और वास्तविक है। पूज्य धर्मसिंहजी म. सा. ने सत्ताईस आगमों पर टब्बार्थ लिखा था।

विक्रम की नवमी या दसमी शताब्दी में शीलांक नाम के आचार्य हुए थे। उन्होंने आगमों पर टीका लिखना प्रारम्भ किया था। उने सामने आचार्य गंध हस्ती कृत टीका उपस्थित थी। ऐसा संकेत आचारांग सूत्र की टीका करते हुए इस श्लोक स्पष्ट होता है -

शस्त्रपरिज्ञा-विवरण-मतिबहुगहनं च गन्धहस्तिकृतम्।
तस्मात् सुखबोधार्थं गृह्णाम्यहमञ्जसा सारम्॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन का नाम शस्त्रपरिज्ञा है। उस पर आचार्य गंध हस्ति ने टीका लिखी है। वह बहुत गहन और गूढार्थ है इसलिए मैं तो (शीलांक) सुखपूर्वक ज्ञान कराने के लिए इसका सार रूप ग्रहण करता हूँ।

आचार्य शीलांक ने आगमों पर टीका लिखना बड़े उत्साह पूर्वक प्रारम्भ किया। आचारांग और सूयगडांग दो सूत्रों की टीका पूर्ण की। भावी को ऐसा ही मंजूर था अतः उनका आयुष्य पूर्ण हो गया और वे स्वर्गवासी हो गये। आगमों का काम अधूरा रह गया। तब चतुर्विध संघ ने अभयदेव सूरि से निवेदन किया कि आगमों पर टीका लिखने का काम अधूरा रह गया है। इसे आप पूरा कीजिए। तब अभयदेव सूरि ने अपनी असमर्थता प्रकट की। यद्यपि उस समय के विद्यमान आचार्यों में वे आगमों के धुरन्धर विद्वान थे। संस्कृत के महान् पण्डित थे। फिर भी आगमों का काम अत्यन्त गहन और गूढार्थ होने के कारण उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। फिर चतुर्विध संघ ने बहुत आग्रह पूर्वक विनति की कि, चतुर्विध संघ की दृष्टि में आप सर्वोच्च विद्वान और आगमों पर टीका लिखने के सर्वथा योग्य विद्वान है, इसलिए संघ की आग्रह पूर्वक की हुई इस विनति को आप स्वीकार कीजिए। तब चतुर्विध संघ के अत्याग्रह को स्वीकार कर टीका लिखना प्रारम्भ किया। आचारांग और सूयगडांग की टीका आचार्य शीलांक द्वारा लिखी जा चुकी थी। इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम स्थानांग सूत्र की टीका लिखना प्रारम्भ किया। वे उत्सूत्र प्ररूपणा से अत्यन्त भीरू (डरपोक) थे। इसलिए स्थानांग सूत्र की टीका की समाप्ति पर उन्होंने लिखा है -

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगतः। सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे।। १॥
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः। सूत्राणामतिगाम्भीर्यान्मतभेदाच्च कुत्रचित्॥ २॥
क्षूणानि सम्भवन्तीह, केवलं सुविवेकिभिः। सिद्धान्तानुगतोयोऽर्थः, सोऽस्माद् ग्राह्यो न चेतरः॥ ३॥
शोध्यं चैतज्जिने भक्तैर्मामवद्भिर्दयापरैः। संसारकारणाद् घोरादपसिद्धान्तदेशनात्॥ ४॥
कार्या न चाक्षमाऽस्मासु, यतोऽस्माभिरनाग्रहैः। एतद् गमनिकामात्रमुपकारीति चर्चितम्॥ ५॥

टीकाकार अभयदेवसूरि स्थानांग सूत्र की टीका पूर्ण करके लिखते हैं कि, मेरे टीका करने में अशुद्धियाँ रह सकती हैं इसमें ये कारण हैं - १. श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण हो जाने के बाद उनके पाट पर सुधर्मास्वामी आये और उनके पाट पर जम्बूस्वामी आये। ये तीन पाट केवली हुए। इसके बाद केवलज्ञान विच्छेद हो गया। उसके बाद छद्मस्थ आचार्यों की पाट परम्परा चली किन्तु बीच-बीच में दुष्काल पड़ जाने के कारण पाट परम्परा अविच्छिन्न नहीं रह सकी। दुष्काल के समय कई विशिष्ट श्रुतधर आचार्य एवं मुनि काल कवलित हो गये। इससे पाट परम्परा विच्छिन्न हो गई २. अतएव सम्यक् तत्त्व विचारणा का भी विच्छेद हो गया। ३. मैंने (अभयदेव ने) सभी स्व-सिद्धान्त और पर-सिद्धान्त देखे नहीं। और ४ जो देखे थे वे भी सब याद रहे नहीं। ५. आगमों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेक वाचनाएँ हुई। ६. वाचक मुख्य श्री देवर्द्धिगणी (जो कि एक पूर्व ज्ञान के धारी थे) क्षमा क्षमण की अध्यक्षता में वीर निर्वाण के ९८० वर्षों के बाद वलभीपुरी (सौराष्ट्र) में अन्तिम वाचना हुई और उस वाचना को पुस्तक रूप में लिपिबद्ध किया गया। फिर उनसे जो नकलें उतारी गई। उन पुस्तकों में कई जगह अशुद्धि रह गई ७. सूत्रों का अर्थ अति गम्भीर है तथा ८. कहीं-कहीं आचार्यों में मतभेद भी रहा है इत्यादि अनेक कारणों से टीका लिखने में अशुद्धियाँ रह सकती हैं। इसलिए जो अर्थ मैंने (अभयदेव ने) लिखा वही ठीक है ऐसा मेरा आग्रह नहीं है, किन्तु जो अर्थ वीतराग भगवन्त के सिद्धान्त के अनुसार और अनुकूल हो वहीं अर्थ ग्रहण करना चाहिए। और मेरे पर कृपा करके विद्वान पुरुषों को संशोधन कर लेना चाहिए इस विषय में मुझे किसी प्रकार से भी क्षमा नहीं करना चाहिए। क्योंकि मैंने जो लिखा वही सही है, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है। उत्सूत्र प्ररूपणा महाभयंकर पाप है। महा मिथ्यात्व है, इस विषय में अपने समय के महान योगी अध्यात्म पुरुष श्री आनंदघनजी ने आनंदघन चौवीसी में चौदहवें तीर्थंकर श्री अनन्तनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए लिखा है यथा -

पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जीसां, धर्म नहीं कोई जग सूत्र सरिखो;
सूत्र अनुसार जे भविक किरिया करे, तेहनुं शुद्ध चारित्र परिखो धार।
धार तरवारनी सोहली दोहली, चौदमा जिनतणी चरणसेवा;
धार पर नाचता देख बाजीगरां, सेवनाधार पर रहे न देवा धार॥

उत्सूत्र प्ररूपणा महाभयंकर पाप है इसलिए मुमुक्षु आत्माओं को उत्सूत्र प्ररूपणा से सदा डरते रहना चाहिए और जिनेश्वर के वचनों को सदा अपने सामने रखना चाहिए। जहाँ अपनी समझ काम न कर सके वहाँ इस आगमिक वाक्य को सामने रखना चाहिए।

"तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं"

अर्थ - जो वीतराग जिनेश्वर ने फरमाया है वह सत्य है शंका रहित है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर हुए थे। उनकी नौ वाचनाएं हुई। अभी वर्तमान में उपलब्ध आगम पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना के हैं। सम्पूर्ण दृष्टिवाद तो दो पाट तक ही चलता है। इसलिए दृष्टिवाद का तो विच्छेद हो गया है। वर्तमान में ग्यारह अंग ही उपलब्ध होते हैं। उसमें ठाणांग (स्थानांग) सूत्र का तीसरा नम्बर है। इसमें जीव, अजीव, जीवाजीव, स्व सिद्धान्त, पर सिद्धान्त, स्व पर सिद्धान्त, लोक, अलोक, लोकालोक तथा पर्वत, द्वीप ह्रद आदि भौगोलिक वस्तुओं का वर्णन है। अतः ठाणांग सूत्र का बहुत महत्त्व है। ठाणांग सूत्र में एक श्रुत स्कंध, दस अध्ययन, इक्कीस उद्देशक तथा इक्कीस समुद्देशक हैं। ठाणांग सूत्र में विषयों की व्यवस्था उनके भेदों के अनुसार की गयी है अर्थात् समान संख्याक भेदों वाले विषयों को एक ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ रखा गया है। एक भेद वाले पदार्थ पहले अध्ययन में हैं। दो भेदों वाले दूसरे अध्ययन में इस प्रकार दस भेदों तक के दस अध्ययन हैं। पदार्थों को ठांण या स्थान शब्द से कहा गया है। अब ठाणांग सूत्र का प्रारम्भ होता है उसका प्रथम सूत्र यह है -

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं ।। १ ।।

कठिन शब्दार्थ - **आउसं** - हे आयुष्मन् !, **अक्खायं** - फरमाया है ।

भावार्थ - श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् ! जम्बू ! जैसा मैंने ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ। उन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार फरमाया है ।

विवेचन - श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी को 'आयुष्मन्' शब्द से संबोधित करते हैं। इस सुकोमल एवं मृदु सम्बोधन में स्नेह एवं सम्मान के साथ-साथ शिष्य के दीर्घायुष्य की मंगल कामना है। संसार में जितने भी प्राणी हैं उन्हें आयु प्रिय है। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो जीना नहीं चाहता हो। प्रभु ने आचारांग सूत्र में फरमाया है -

"सव्वे पाणा पियाउया, अप्पियवहा, सुहसाया दुक्खपडिकूला सव्वे जीविउकामा, सव्वेसिं जीवियं पियं।"

- सभी प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, वध अप्रिय है, सुख अनुकूल और दुःख प्रतिकूल होता है सभी जीव जीने की इच्छा वाले होते हैं और सभी को जीवन प्रिय होता है।

प्राणियों को आयुष्य अतीव प्रिय होने से 'आयुष्यमन्' शब्द अत्यंत हर्ष जनक है। इस सूत्र में 'आयुष्मन्' संबोधन इसी गंभीर आशय को लेकर प्रयुक्त हुआ है।

"**आउसं**" और '**तेणं**' ये दो भिन्न भिन्न पद नहीं मान कर "**आउसंतेणं**" यह एक पद ही माना जाता है तब इसका अर्थ - 'आयुष्य वाले' किया जाता है तब उपरोक्त मूल पाठ का भावार्थ होता है - 'मैंने सुना है आयुष्य वाले केवलज्ञानी भगवान् ने इस तरह फरमाया है' क्योंकि जब तक आयु होती है तब तक ही भगवान् धर्मोपदेश फरमाते हैं। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष को प्राप्त हो जाने के पश्चात् वे अशरीरी होने के कारण धर्मोपदेश नहीं फरमाते हैं।

'**आउसंतेणं**' के स्थान पर '**आवसंतेणं**' पाठान्तर भी मिलता है, इसकी संस्कृत छाया होती है - 'आवसता' अर्थात् गुरु महाराज की बतलाई हुई मर्यादा के अन्दर रहते हुए अथवा गुरु महाराज के शिष्य परिवार रूप गुरुकुल में रहते हुए मैंने सुना है कि उन ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार फरमाया है। यहाँ पर 'आवसंतेणं' यह सुधर्मा स्वामी का विशेषण हो जाता है। जिसका अर्थ है मैंने भगवान् के समीप रहते हुए सुना है इधर-उधर रहते हुए नहीं इससे शिष्यों को यह शिक्षा मिलती है कि -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वसे गुरुकुले णिच्चं, जोगवं उवहाणवं।

पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धु मरिहइ॥

अर्थ - अपने मन वचन और काया के योगों को स्थिर करके शिष्यों को चाहिए कि, वे सदा गुरुकुल वास में अर्थात् गुरु के समीप रहे। गुरु की आज्ञा का पालन करता हुआ प्रियवचन बोलने वाला होवे। इससे वह शिक्षा के योग्य पात्र बनता है।

यहाँ पर '**आमुसंतेणं**' ऐसा पाठान्तर भी मिलता है जिसकी संस्कृत छाया 'आमृशता' होती है। अर्थात् '**आमृशता भगवत् पादारविन्दं भक्तितः करतलयुगलादिना स्पृशता**'

अर्थ - भक्ति और बहुमान के साथ भगवान् के चरण कमलों का स्पर्श करते हुए अर्थात् भगवान् की सेवा करते हुए मैंने सुना है। यह '**आमुसंतेणं**' सुधर्मा स्वामी का विशेषण हो जाता है।

'**आउसंतेणं**' की संस्कृत छाया '**आजुषमाणेन**' भी हो सकती है। जिसका अर्थ है सुनने की इच्छा से गुरु महाराज के चरणों की सेवा करते हुए मैंने सुना है। यह विशेषण भी सुधर्मा स्वामी का होता है।

यहाँ **भगवया** शब्द आया है। जिसकी संस्कृत छाया भगवता होती है। 'भग' शब्द से 'वतु' प्रत्यय लग कर 'भगवत्' शब्द बना है जिसका अर्थ होता है - ऐश्वर्यादि सम्पन्न। शास्त्रों में 'भग' शब्द के छह अर्थ दिये हैं -

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः ।

धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतींगना ॥

अर्थात् - सम्पूर्ण ऐश्वर्य, रूप, यश, संयम, श्री, धर्म और धर्म में पुरुषार्थ, ये छह भग शब्द के अर्थ हैं। इन छह बातों का स्वामी भगवान् कहलाता है। तीर्थंकर देव चौतीस अतिशय रूप बाहरी ऐश्वर्य से और केवलज्ञान केवलदर्शन रूपी आन्तरिक अतिशय रूपी ऐश्वर्य से, इस प्रकार समग्र ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण 'भगवान्' कहे जाते हैं। यहाँ अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के लिए 'भगवया' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

❀ ❀ ❀ ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमं ठाणं-प्रथम स्थान

प्रथम उद्देशक

प्रथम स्थान में एक से सम्बन्धित विषय प्रतिपाादित है। इस अध्ययन में वस्तु तत्त्व का विचार 'संग्रह नय' की दृष्टि से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य तत्त्ववाद (द्रव्यानुयोग) है। इसमें विषय संक्षेप होने से यह अध्ययन छोटा है। इसके अनेक विषयों का विस्तार आगे के अध्ययनों में मिलता है।

एगे आया। एगे दंडे। एगा किरिया। एगे लोए। एगे अलोए। एगे धम्मे। एगे अधम्मे। एगे बंधे। एगे मोक्खे। एगे पुण्णे। एगे पावे। एगे आसवे। एगे संवरे। एगा वेयणा। एगा णिज्जरा ।। २ ॥

कठिन शब्दार्थ - एगे - एक, **आया** - आत्मा, **दंडे** - दण्ड, **किरिया** - क्रिया, **लोए** - लोक, **अलोए** - अलोक, **धम्मे** - धर्मास्तिकाय, **अधम्मे** - अधर्मास्तिकाय, **बंधे** - बंध, **मोक्खे** - मोक्ष, **पुण्णे** - पुण्य, **पावे** - पाप, **आसवे** - आस्रव, **संवरे** - संवर, **वेयणा** - वेदना, **णिज्जरा** - निर्जरा।

भावार्थ - आत्मा एक है। दण्ड एक है। क्रिया एक है। लोक एक है। अलोक एक है। धर्मास्तिकाय एक है। बन्ध एक है। मोक्ष एक है। पुण्य एक है। पाप एक है। आस्रव एक हैं। संवर एक है। वेदना एक है। निर्जरा एक है ।। २ ॥

विवेचन - यह पहला स्थान है इसमें संग्रहनय की अपेक्षा एक संख्या की विवक्षा की गई है। इसलिए सब पदार्थों को एक एक बतलाया गया है। इसी प्रकार इस पहले स्थान में सब एक-एक संख्या वाले पदार्थों का कथन किया गया है। यथा - **एगे आया** - आत्मा एक है।

आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है-संस्कृत में '**अत सातत्यगमने**' धातु है जिसका अर्थ है- निरन्तर गमन करना। '**अतति, गच्छति सततं तान्-तान् पर्यायान् इति आत्मा**' अर्थात् जिसमें निरन्तर पर्यायें पलटती रहती हैं उसे आत्मा कहते हैं। संस्कृत का नियम है कि ''**सर्वे गत्यर्थाः ज्ञानार्थाः**'' अर्थात् गति अर्थक जितनी धातुएं हैं वे सब ज्ञानार्थक हो जाती हैं। इस अपेक्षा से ''**सततं निरन्तरं अतति अवगच्छति जानोति इति आत्मा**'' अर्थात् जो निरन्तर ज्ञान करती रहती है उसे आत्मा कहते हैं। अथवा जो निरन्तर अपने ज्ञानादि पर्यायों को प्राप्त करता है वह आत्मा है। '**जीवो उवओग लक्खणो**'- उपयोग लक्षण की दृष्टि से सभी आत्माएं समान हैं। एक लक्षण रूप होने से आत्मा एक है। अथवा जन्म, मरण, सुख दुःख आदि भोगने में कोई दूसरा सहायक नहीं होने से आत्मा एक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह नय के अनुसार आत्मा एक है, व्यवहार नय के अनुसार आत्मा अनंत है। अथवा प्रत्येक आत्मा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा तुल्य होने से एक है। प्रदेशों की अपेक्षा अनन्त अनन्त आत्माओं के प्रदेश समान हैं। इस अपेक्षा से भी आत्मा एक है।

एगे दंडे - 'दण्ड' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है -

'दण्ड्यते ज्ञानाद्यैश्वर्यापहारतोऽसारी क्रियते आत्माऽनेनेति दण्डः' - जिसके द्वारा आत्मा ज्ञानादि ऐश्वर्य से रहित कर दी जाती है वह दण्ड कहलाता है। दण्ड दो प्रकार का होता है - १. द्रव्य दण्ड और २. भाव दण्ड। द्रव्य दण्ड - लाठी आदि और भाव दण्ड के तीन भेद हैं मन दण्ड, वचन दण्ड, काया दण्ड। इन तीनों योगों की दुष्प्रवृत्ति को भाव दण्ड कहते हैं। यहां जो दण्ड का उल्लेख किया गया है वह संग्रह नय की दृष्टि से ही है। दण्ड अपने सामान्य दण्डत्व स्वरूप की दृष्टि से एक है।

किरिया - **'करणं क्रिया'** - करना क्रिया है। यहाँ क्रिया का सामान्य अर्थ प्रवृत्ति है। क्रिया के कई भेद हैं। जिनका वर्णन आगे के स्थानों में किया जायेगा।

लोए - **लोक्यते** - जो केवलज्ञान से सम्पूर्ण रूप से देखा जा सके वह लोक है अथवा जहाँ धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों की प्रवृत्ति होती है उसे लोक कहते हैं।

अलोए - **'न लोकः अलोकः'** - जो लोक से विपरीत है वह अलोक है। लोक में छह द्रव्य हैं। अलोक में सिर्फ एक आकाश द्रव्य ही है।

धम्मे - **'गइ लक्खणो धम्मो'** - धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलों की गति में सहायक होता है। यहाँ प्रदेशों को 'अस्ति' कहा है अर्थात् अस्ति का अर्थ प्रदेश है और "काय" का अर्थ है समूह। ये तीनों शब्द मिलकर धर्मास्तिकाय शब्द बनता है। प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात प्रदेशी होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा एक होने के कारण धर्मास्तिकाय एक है।

अधम्मे - **'अहम्मो ठाण लक्खणो'** - जीव और पुद्गलों की स्थिति में अधर्मास्तिकाय सहायक होता है। लोक और अलोक की सीमा रेखा धर्म (धर्मास्तिकाय) और अधर्म (अधर्मास्तिकाय) के द्वारा होती है।

बंधे - **'बध्यते आत्मा अनेन इति बन्धः।** अथवा **सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलान् आदत्ते यत् स बन्धः।'**

अर्थ - जिससे आत्मा बन्धा जाय अथवा कषाय के वश जीव कर्म के योग्य जिन पुद्गलों को बांधता है। उसे बन्ध कहते हैं। इसके दो भेद हैं - १. द्रव्य बन्ध और २. भाव बन्ध।

द्रव्य बंध (रस्सी बेड़ी आदि का बंध) और भाव बंध (कर्म बंधन) के भेद से दो प्रकार का है एवं प्रकृति आदि चार प्रकार का बन्ध होने पर भी सामान्य रूप से (बंधत्व की दृष्टि से) बंध एक ही कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोक्खे - **'कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः'** - सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना मोक्ष है। वह मोक्ष एक है।

पुण्णे - **'पुणति-शुभीकरोति पुनाति वा-पवित्रीकरोति आत्मानं इति पुण्यं'** पुण् धातु शुभ अर्थ में है। जो आत्मा को शुभ एवं पवित्र बनाता है वह पुण्य है। पुण्य के द्वारा जीव को सुख की प्राप्ति होती है।

पावे - **'पांशयति गुण्डयत्यात्मानं पातयति चात्मन आनन्दरसं शोषयति क्षपयतीति पामम्। मलिनयति आत्मानं मलिनी करोति इति पापम् ।'**

अर्थ - जो आत्मा को मलिन करे उसको पाप कहते हैं। आत्मा के आनन्द रस को सूखावें तथा दुर्गति में गिरावे उसको पाप कहते हैं। पाप से जीव को दुःख की अनुभूति होती है।

आसवे - **'आस्रवन्ति - प्रविशन्ति येन कर्माणि आत्मनि इति आस्रवः।'**

अर्थ - जिसके द्वारा कर्म आत्मा में प्रवेश करें उसे आस्रव कहते हैं।

आस्रव इन्द्रिय, कषाय, अव्रत, क्रिया और योग रूप है जो क्रमशः पांच, चार, पांच, पच्चीस और तीन भेद वाला है। आस्रव ४२ प्रकार का कहा है अथवा द्रव्य और भाव से दो प्रकार का कहा है। छिद्रों के द्वारा नाव में जल प्रवेश द्रव्यास्रव है और जीव रूप नाव में इन्द्रिय आदि छिद्रों से कर्मरूपी जल का संचय आस्रव कहलाता है। भाव आस्रव के अनेक भेद होते हुए भी सामान्य रूप से उसे एक ही माना है।

संवरे - **'संवियते-कर्म कारणं प्राणातिपातादि निरूध्यते येन परिणामेन स संवरः, आश्रवनिरोध इत्यर्थः।**

अर्थ - कर्म बन्ध के कारण प्राणातिपात आदि पापों का आगमन जिससे रुक जाय, उसे संवर कहते हैं।

आस्रव का निरोध करना संवर कहलाता है। संवर समिति गुप्ति, यतिधर्म, भावना, परीषहजय और चारित्र रूप है वह क्रमशः पांच, तीन, दस, बारह, बाईस और पांच भेद वाला है। संवर के कुल ५७ भेद होते हैं।

वेयणा - **वेदनं** - वेदना-कर्मों के स्वाभाविक उदय से अथवा उदीरणाकरण किये बिना उदयावलिका में प्रवेश प्राप्त कर्म का अनुभव करना। यह वेदना ज्ञानावरणीय कर्म आदि की अपेक्षा आठ प्रकार की है अथवा विपाकोदय और प्रदेशोदय की अपेक्षा दो प्रकार की है अथवा आभ्युपगमिकी वेदना (कर्म क्षय के लिए कायक्लेश, केशलुंचन आदि) और औपक्रमिकी वेदना (स्वतः रोग आदि) से दो प्रकार की है किन्तु सामान्य रूप से अनुभूति रूप वेदना एक ही है।

णिज्जरा - **'निर्जरणं निर्जरा विशरणं परिशटनमित्यर्थः।'**

अर्थ - कर्मों का आत्मा से पृथक् होना निर्जरा कहलाता है। यह निर्जरा आठ कर्मों की अपेक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठ प्रकार की हैं और १२ प्रकार के तप की अपेक्षा बारह प्रकार की और सकाम निर्जरा और अकाम निर्जरा के भेद से दो प्रकार की है।

शंका - निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है ?

समाधान - आंशिक - देश से कर्मों का क्षय होना निर्जरा है और आत्यंतिक सर्वथा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है।

एगे जीवे पाडिक्कएणं सरीरएणं। एगा जीवाणं अपरियाइत्ता विगुव्वणा। एगे मणे। एगा वई। एगे काय वायामे। एगा उप्पा। एगा वियई। एगा वियच्चा। एगा गई। एगा आगई। एगे चयणे। एगे उववाए। एगा तक्का। एगा सण्णा। एगा मण्णा। एगा विण्णू। एगा वेयणा। एगा छेयणा। एगा भेयणा। एगे मरणे अंतिमसारीरियाणं। एगे संसुद्धे अहाभूए पत्ते। एगे दुक्खे जीवाणं एगभूए। एगा अहम्मपडिमा जं से आया परिकिलेसइ। एगा धम्मपडिमा जं से आया पज्जवजाए। एगे मणे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। एगा वई देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। एगे कायवायामे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। एगे उट्ठाणकम्मबलवीरिय पुरिसकारपरक्कमे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। एगे णाणे, एगे दंसणे, एगे चरित्ते ।। ३ ।।

कठिन शब्दार्थ - **पाडिक्कएणं** - प्रत्येक, **सरीरएणं** - शरीर में, **विगुव्वणा** - विकुर्वणा, **कायवायामे** - कायव्यायाम-शरीर का व्यापार, **उप्पा** - उत्पाद, **वियई** - विगति-विनाश, **वियच्चा** - विगतार्चा-मृतक शरीर, **मण्णा** - मति-बुद्धि, **विण्णू** - विज्ञ-विद्वान्, **छेयणा** - छेदन, **भेयणा** - भेदन, **अंतिम सारीरियाणं** - अंतिम शरीरी, **संसुद्धे** - संशुद्ध-कषायों से रहित, **अहाभूए** - यथाभूत-तात्त्विक, **परिकिलेसइ** - क्लेश पाता है **अहम्मपडिमा** - अधर्म प्रतिमा, **पज्जवजाए** - पर्यवजात-शुद्ध, **देवासुरमणुयाणं** - देवों, असुरों एवं मनुष्यों को, **तंसि** - उस, **समयंसि** - समय में, **उट्ठाणकम्मबलवीरिय** - उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, **पुरिसकारपरक्कमे** - पुरुषकार पराक्रम।

भावार्थ - प्रत्येक शरीर नामकर्म के उदय से प्रत्येक शरीर में एक जीव होता है। बाहरी पुद्गलों को न लेकर अपने अपने उत्पत्तिस्थान में जीवों की अर्थात् देवों की भवधारणीय वैक्रिय शरीर की रचना रूप विकुर्वणा एक है अर्थात् सब जीवों की अपने अपने शरीर की भवधारणीय विकुर्वणा एक है और बाहरी पुद्गलों को ग्रहण करके की जाने वाली उत्तर विक्रिया तो अनेक प्रकार की है। मन योग एक है। वचन योग एक है। शरीर का व्यापार एक है। एक समय में एक

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

पर्याय की अपेक्षा उत्पाद एक है। एक समय में एक पर्याय की अपेक्षा विनाश एक है। मृत्यु को प्राप्त हुए जीव का शरीर एक है। मृत्यु के पश्चात् जीव की गति एक है अर्थात् जीव नरकादि किसी एक गति में ही जाता है। गति के समान आगति भी एक है अर्थात् जीव नरकादि किसी एक गति से ही आता है। एक जीव की अपेक्षा वैमानिक और ज्योतिषी देवताओं का च्यवन यानी मरण एक है। उपपात यानी देव और नैरयिकों का जन्म एक है। तर्क यानी ईहा ज्ञान से बाद में और अवाय ज्ञान से पहले होने वाला तर्क ज्ञान एक है। संज्ञा यानी व्यञ्जनावग्रह से बाद में होने वाला मतिज्ञान अथवा आहार संज्ञा आदि संज्ञा एक है। मनन यानी पदार्थ का ज्ञान हो जाने पर उसके सूक्ष्म धर्मों का विचार करने रूप बुद्धि एक है। विज्ञ यानी विद्वान् अथवा विद्वत्ता एक है। पीड़ा रूप वेदना एक है। तलवार आदि से शरीर का या अन्य पदार्थों का छेदन अथवा कर्मों की स्थितिघात रूप छेदन एक है। कुल्हाड़ी आदि से काटने रूप भेदन अथवा कर्मों का रसघात रूप भेदन एक है। अन्तिम शरीरी यानी चरम शरीरी जीवों का मरण एक है अर्थात् वे उसी भव में मोक्ष चले जाते हैं फिर उनका जन्म मरण नहीं होता है। कषायों से रहित निर्मल चारित्र वाले यथाभूत - तात्त्विक ज्ञानादि गुण रत्नों के पात्र एक तीर्थङ्कर भगवान् होते हैं। चरम शरीरी जीवों की अपेक्षा अथवा एक जीव की अपेक्षा दुःख एक है। जिससे आत्मा क्लेश को प्राप्त होता है वह अधर्मप्रतिमा या अधर्म करने वाला शरीर एक है। जिससे आत्मा ज्ञानादि गुण सम्पन्न होता है एवं शुद्ध होता है वह धर्मप्रतिमा या धर्म करने वाला शरीर एक है। वैमानिक और ज्योतिषी देवों को तथा भवनपति और वाणव्यन्तर असुरों को और मनुष्यों को उस उस समय में यानी एक समय में मनोयोग एक ही होता है। वैमानिक यावत् वाणव्यन्तर देवों को और मनुष्यों को उस उस समय में यानी एक समय में वचन योग एक ही होता है। विमानवासी यावत् वाणव्यन्तर देवों को और मनुष्यों को उस उस समय में काययोग का व्यापार एक ही होता है। विमानवासी यावत् वाणव्यन्तर देवों को और मनुष्यों को उस उस समय में यानी एक समय में कार्य के लिए उठना रूप उत्थान, कर्म यानी कार्य को ग्रहण करना, बल-शारीरिक सामर्थ्य, जीव की शक्ति रूप वीर्य, पुरुषकार यानी कार्य को पूर्ण करने रूप गर्व, पराक्रम यानी प्रारम्भ किये हुए कार्य को पार पहुँचा देना, ये सब उस उस समय में यानी एक समय में एक ही होते हैं। जानने रूप ज्ञान एक है। दर्शन यानी श्रद्धान एक है। चारित्र यानी मोहनीय कर्म के क्षय से होने वाला विरति रूप परिणाम एक है।

विवेचन - ऊपर कहे गये पदार्थों के उस उस अपेक्षा से अनेक भेद हैं किन्तु यहां सामान्य मात्र की विवक्षा होने से उनका एक एक भेद ही बतलाया गया है।

जीव और आत्मा पर्यायवाची शब्द है। भगवतीसूत्र शतक २० उद्देशक १७ में जीव के तेईस नाम बतलाए गए हैं। उनमें पहला नाम जीव है और दसवां नाम आत्मा है। शरीर और आयुष्य को धारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने वाला चेतन तत्त्व जीव है और ज्ञानादि पर्यायों में सतत परिणमन करने वाला चेतन तत्त्व आत्मा है। जो जीर्ण शीर्ण स्वभाव वाला है वह शरीर है। प्रस्तुत सूत्र में जीव के एकत्व का हेतु प्रत्येक शरीर बतलाया गया है अर्थात् प्रत्येक शरीर नाम कर्म के उदय से प्रत्येक शरीर में एक जीव होता है।

भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय - अपने अपने उत्पत्ति स्थान में जीवों द्वारा जो भवधारणीय वैक्रिय शरीर की रचना की जाती है वह एक ही प्रकार की होती है। इसीलिये सूत्रकार ने **अपरियाइत्ता** पद ग्रहण किया है। जिससे स्पष्ट होता है कि भवधारणीय वैक्रिय शरीर बनाते समय बाहर के पुद्गलों की आवश्यकता नहीं रहती है जबकि उत्तरवैक्रिय शरीर बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना नहीं बनता है।

शंका - बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करने से ही उत्तरवैक्रिय होता है यह कैसे माना जाय ?

समाधान - भगवती सूत्र में उत्तरवैक्रिय का वर्णन करते हुए इस प्रकार कथन किया गया है -

"देवे णं भंते ! महिड्डिए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गलए अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । देवे णं भंते ! बाहिरए पोग्गलए परियाइत्ता पभू ? हंता पभू ।"

- हे भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महानुभाव देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण न करके एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे भगवन् ! देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करने में समर्थ है ? हां गौतम! समर्थ है। इससे स्पष्ट होता है कि बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करने से ही उत्तरवैक्रिय होता है।

मन - 'मन्यते अननेति मनः' - जिससे मनन किया जाता है वह मन है। मनन रूप लक्षण सामान्य रूप से मन मात्र का है अतः मन एक है।

काय व्यायाम - शरीर का जो व्यापार है वह काय व्यायाम कहलाता है। वह औदारिक आदि शरीर से जुडे आत्मा के वीर्य की परिणति विशेष है।

विगतार्चा - 'वि' का अर्थ विगत - नाश प्राप्त और 'अर्चा' का अर्थ शरीर - विगतार्चा अर्थात् मृतक का शरीर। **वियच्चा** की संस्कृत छाया 'विवर्चा' भी बनती है जिसका अर्थ है - विशिष्ट उत्पत्ति की रीति अथवा विशिष्ट शोभा, जो सामान्य से एक है।

गति आगति - गति का अर्थ है - गमन। जीव का वर्तमान भव से आगामी भव में जाना गति कहलाता है। आगति का अर्थ है - आगमन। जीव का पूर्वभव से वर्तमान भव में आना आगति कहलाता है।

तर्क - ईहा से उत्तरवर्ती और अवाय से पूर्ववर्ती विमर्श को तर्क कहा जाता है। जैसे कि -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंगल में जाते हुए किसी पुरुष ने दूर से किसी खड़े पदार्थ को देखा तो मन में यह शंका हुई कि - **"कि मयं स्थाणु र्वा पुरुषो वा"** - क्या यह सूखे हुए वृक्ष का ठूंठ है या पुरुष है। फिर देखा कि - यह तो सिर को खुजला रहा है। इसलिये यह पुरुष होना चाहिये। यह तर्क की आगमिक व्याख्या है।

परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं यथा-स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। इन पांच भेदों में से तीसरा भेद तर्क है जिसका अर्थ होता है - उपलब्धि और अनुपलब्धि से उत्पन्न होने वाला व्याप्ति ज्ञान।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र - **'जं सामण्णग्गहणं दंसणमेयं विसेसियं णाणं'** - सामान्य स्वरूप का ग्रहण दर्शन है और उसमें विशेष स्वरूप का ग्रहण ज्ञान है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम या क्षय से ज्ञान तथा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम या क्षय से दर्शन होता है। यहां ज्ञान जानने के अर्थ में और दर्शन श्रद्धा के अर्थ में है। चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से प्रकट हुआ आत्मा का विरति परिणाम चारित्र है। जो जाना हुआ नहीं वह श्रद्धा रूप नहीं है और जो श्रद्धा रूप नहीं उसका सम्यग् आचरण नहीं किया जा सकता है। इसीलिये ज्ञान, दर्शन और चारित्र - ये तीनों मोक्ष मार्ग है। तत्त्वार्थ सूत्र १/१ में भी कहा है - **"सम्यग्-दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः"**। उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २८ गाथा २-३ में इस प्रकार कहा है -

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥ २॥
णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सोग्गइं॥ ३॥

अर्थ - राग द्वेष के विजेता तीर्थंकर भगवन्तों ने फरमाया है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप यह मोक्ष का मार्ग हैं। इस मार्ग पर चलने वाला जीव सद्‌गति को प्राप्त होता है। इस गाथा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष मार्ग बताया है। यहां तप का उल्लेख नहीं है। वास्तव में तप चारित्र का ही एक भेद है। अतः उसकी यहां विवक्षा नहीं की गयी है।

उपरोक्त सूत्रों में सूत्रकार ने जो कथन किया है वह सब जीवात्मा को ही लक्ष्य में रख कर किया है।

एगे समए। एगे पएसे। एगे परमाणू। एगा सिद्धी। एगे सिद्धे । एगे परिणिव्वाणे। एगे परिणिव्वुए ॥४॥

कठिन शब्दार्थ - समए - समय, **पएस** - प्रदेश, **सिद्धी** - सिद्धि, **सिद्धे** - सिद्ध, **परिणिव्वाणे**- परिनिवार्ण-मोक्ष, **परिणिव्वुए** - परिनिर्वृत्त-सिद्ध अवस्था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - समय एक है। प्रदेश एक है। परमाणु एक है। सिद्धि यानी सिद्धशिला - ईषत्प्राग्भारा एक ही है। सिद्ध स्वरूप की अपेक्षा से एक है। परिनिर्वाण यानी सब दुःखों से मुक्त होना रूप निर्वाण एक है। सब दुःखों से छुटकारा पाकर सिद्ध हो जाने रूप सिद्ध अवस्था एक है ॥ ४ ॥

विवेचन - समय - काल के अविभाज्य अति सूक्ष्म अंश को समय कहते हैं। यह काल का अंतिम खण्ड होता है। समय का विभाजन नहीं हो सकता है। सब से छोटा काल वर्तमान समय है।

प्रदेश - **'प्रकृष्टो निरंशो धर्माधर्माकाशजीवानां देशः - अवयव विशेषः प्रदेशः'** - प्रकृष्ट अंशरहित धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवों का देश प्रदेश कहलाते हैं।

परमाणु-परम-अत्यंत अणु-सूक्ष्म वह परमाणु। पुद्गल द्रव्य के चरम सूक्ष्म भाग को परमाणु कहते हैं। टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने परमाणु के विषय में निम्न प्राचीन श्लोक दिया है -

कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।

एक रस वर्ण गन्धो द्वि स्पर्शः कार्यलिंङ्गश्च ॥

द्व्यणुकादि स्कन्धों का कारणभूत परमाणु है अर्थात् पदार्थ का अंतिम से अंतिम कारण सूक्ष्म और नित्य परमाणु है। जो एक वर्ण, एक रस, एक गंध और दो अविरोधी स्पर्श वाला होता है जिसे कार्य से ही जाना जाता है।

सिद्ध - जिन जीवों ने सिद्धि प्राप्त कर ली है अर्थात् जो आठ कर्मों को क्षय कर मुक्त हो चुके हैं, जो पुनः नहीं आने रूप लोकाग्र को प्राप्त हुए हैं जो कृतकृत्य हो चुके हैं, वे सिद्ध हैं।

परिनिर्वाण - परि अर्थात् सर्वथा, निर्वाण अर्थात् सकल कर्मों के विकार रहित होने से स्वस्थ होना परिनिर्वाण कहलाता है अर्थात् जब आत्मा कर्म कलंक से सर्वथा रहित होकर आत्मलीन हो जाता है उस दशा को परिनिर्वाण कहते हैं।

परिनिर्वृत- जब आत्मा शारीरिक और मानसिक दुःखों से सर्वथा छूट जाता है अथवा स्व स्वरूप में तल्लीन होने से जो आत्मा परम शांति का अनुभव करता है उसे परिनिर्वृत कहा जाता है।

सिद्धात्मा का वर्णन करने के पश्चात् अब सूत्रकार पुद्गलास्तिकाय के गुणों को बतलाते हैं -

एगे सद्दे। एगे रूवे। एगे गंधे। एगे रसे। एगे फासे। एगे सुब्भिसद्दे। एगे दुब्भिसद्दे। एगे सुरूवे। एगे दुरूवे। एगे दीहे। एगे हस्से। एगे वट्टे। एगे तंसे। एगे चउरंसे। एगे पिहुले। एगे परिमंडले। एगे किण्हे। एगे णीले। एगे लोहिए। एगे हलिद्दे। एगे सुक्किल्ले। एगे सुब्भिगंधे। एगे दुब्भिगंधे। एगे तित्ते। एगे कडुए। एगे कसाए। एगे अंबिले। एगे महुरे। एगे कक्खडे जाव एगे लुक्खे ॥ ५ ॥

कठिन शब्दार्थ - सद्दे - शब्द, रूवे - रूप, दीहे - दीर्घ, हस्से - ह्रस्व, वट्टे - वृत्त, तंसे -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्र्यस्र, **चउरंसे** - चतुरस्र, **पिहुले** - पृथुल-विस्तीर्ण, **परिमंडले** - परिमंडल, **किण्हे** - कृष्ण, **लोहिए**-लोहित, **हलिद्दे** - हरिद्र-पीला, **सुक्किल्ले** - शुक्ल, **सुब्भिगंधे** - सुरभिगंध, **दुरभिगंधे** - दुरभिगंध, **तित्ते** - तिक्त, **कडुए** - कटुक, **कसाए** - कषायैला, **अंबिले** - अम्ल-खट्टा, **महुरे** - मधुर (मीठा), **कक्खडे** - कर्कश, **लुक्खे** - रूक्ष।

भावार्थ - शब्द एक है। रूप एक है। रस एक है। स्पर्श एक है। शुभ शब्द एक है। अशुभ शब्द एक है। सुन्दर रूप एक है। खराब रूप एक है। दीर्घ अर्थात् लम्बा एक है। ह्रस्व अर्थात् छोटा एक है। वृत्त - रूपये की तरह गोल संस्थान एक है। त्र्यस्र यानी त्रिकोण संस्थान एक है। चतुरस्र यानी चार कोनों वाला- चतुष्कोण संस्थान एक है। पृथुल - विस्तीर्ण संस्थान एक है। परिमण्डल यानी चूड़ी के आकार वाला वलयाकार संस्थान एक है। काला रूप एक है। नीला रूप एक है। लोहित यानी लाल रूप एक है। हरिद्र यानी पीला रूप एक है। शुक्ल यानी सफेद रूप एक है। सुरभिगन्ध - सुगन्ध एक है। दुरभिगन्ध - दुर्गन्ध एक है। तिक्त - तीखा रस एक है। कटुक - कड़वा रस एक है। कषायला रस एक है। अम्ल - खट्टा रस एक है। मधुर - मीठा रस एक है। कर्कश - कठोर स्पर्श एक है। यावत् कोमल, लघु, गुरु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, ये स्पर्श एक एक हैं ॥५॥

विवेचन - वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पुद्गल के लक्षण हैं। उपरोक्त सूत्र से पुद्गल का स्पष्ट वर्णन मिलता है। परमाणु के अतिरिक्त द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों में पांच संस्थान में से कोई संस्थान अवश्य पाता है।

जिसके द्वारा कहा जाता है वह शब्द (आवाज) है। जो दिखाई देता है वह रूप है। जो सूंघा जाता है वह गंध है। जो आस्वादन किया जाता है वह रस है। जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है। जो श्रोत्रेन्द्रिय के लिए सुख रूप होता है मन को अच्छा लगता है वह शुभ शब्द है। इससे विपरीत जो श्रोत्रेन्द्रिय को दुःख रूप प्रतीत होता है और मन को अच्छा नहीं लगता है वह अशुभ शब्द है।

रस के पांच भेद बतलाये गये हैं उनमें तिक्त रस कफ नाशक है, कटुक रस वात नाशक है, अन्न रुचि रोकने वाला कषाय रस है। जिसका नाम मात्र सुनने से मुंह में पानी आ जाता है वह खट्टा रस है। चित्त को आनंदित करने वाला और पुष्टिकारक मधुर रस है। लवण रस पांच रसों के संसर्ग से बनता है अतः सूत्रकार ने उसे स्वतंत्र रस नहीं माना है।

वर्ण में वर्णत्व धर्म, शब्द में शब्दत्व धर्म, गंध में गंधत्व धर्म, रस में रसत्व धर्म, स्पर्श में स्पर्शत्व धर्म एक होने से उन्हें एक-एक कहा गया है।

एगे पाणाइवाए जाव एगे परिग्गहे। एगे कोहे जाव लोहे। एगे पेज्जे एगे दोसे जाव एगे परपरिवाए। एगा अरइरई। एगे मायामोसे। एगे मिच्छादंसणसल्ले। एगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाणाइवाय वेरमणे। जाव परिग्गह वेरमणे। एगे कोह विवेगे जाव मिच्छादंसणसल्ल विवेगे ।। ६ ।।

कठिन शब्दार्थ - पाणाइवाए - प्राणातिपात, **परिग्गहे -** परिग्रह, **पेज्जे -** राग, **दोसे -** द्वेष, **अरइरई-** अरति रति, **मायामोसे -** माया मृषावाद, **मिच्छादंसणसल्ले -** मिथ्यादर्शन शल्य, **वेरमणे -** विरमण, **विवेगे -** विवेक-त्याग ।

भावार्थ - उच्छ्वास आदि दस प्राणों को प्राणी से पृथक् करने रूप प्राणातिपात - हिंसा एक है यावत् मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह, ये सब एक एक हैं। क्रोध यावत् मान, माया और लोभ एक एक है। राग एक है। द्वेष एक है यावत् कलह अभ्याख्यान, पैशुन्य और परपरिवाद एक एक है। अरति रति एक है। मायामृषावाद एक है। मिथ्यादर्शन शल्य एक है। प्राणातिपात से विरमण यानी निवर्तना यावत् मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण यावत् परिग्रह विरमण एक एक हैं। क्रोध का त्याग यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का त्याग एक है ।। ६ ।।

विवेचन - प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक ये अठारह पापस्थान सामान्यतः एक एक हैं। इसी प्रकार इनका त्याग भी एक एक हैं। अठारह पापों का स्वरूप इस प्रकार है -

१. प्राणातिपात - प्राणों का अतिपात करना प्राणों को आत्मा से पृथक् करना प्राणातिपात कहलाता है। प्राण दस हैं - १. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण २. रसनेन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण ५. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण ६. मन बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. काय बल प्राण ९. श्वासोच्छ्वास बलप्राण १०. आयुष्य बल प्राण। इनसे से किसी एक, दो या दसों के विनाश को प्राणातिपात कहते हैं। कहा भी है -

पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास निःश्वास मथान्यदायुः।
"प्राणाः दशैते भगवद्भिरुक्ताः, तेषां वियोजीकरण तु हिंसा"

- प्राणों का वियोजीकरण ही हिंसा है। मन, वचन और काया से हिंसा करना, करवाना और अनुमोदन के भेद से नौ प्रकार की हिंसा कही है। क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर हिंसा करना इस तरह ९×४=३६ भेद प्राणातिपात के हो जाते हैं।

शंका - प्राणातिपात के स्थान पर जीवातिपात क्यों नहीं कहा है ?

समाधान - सूत्रकार ने प्राणातिपात के स्थान पर जीवातिपात शब्द का प्रयोग नहीं किया है क्योंकि जीवातिपात कभी नहीं होता है अतः प्राणों के वियोग को ही प्राणातिपात कहा गया है।

२. मृषावाद - झूठ बोलना मृषावाद है। मृषावाद चार प्रकार का होता है -

१. अभूतोद्भावन - अविद्यमान वस्तु का अस्तित्व बताना, जो जिस वस्तु का स्वरूप नहीं है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसे मानना अभूतोद्भावन नामक मृषावाद है। जैसे यह कहना कि - "आत्मा सर्व व्यापी है, ईश्वर जगत् का कर्त्ता है आदि।

२. **भूत निह्नव** - सद्भाव प्रतिबंध-विद्यमान वस्तु का निषेध करना भूत निह्नव मृषावाद है। जैसे कि - यह कहना कि "आत्मा नहीं है - पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, आदि नहीं हैं।"

३. **वस्त्वन्तरन्यास** - एक पदार्थ को दूसरा पदार्थ बताना - गो, बैल होते हुए भी यह घोड़ा है ऐसा कहना।

४. **निन्दावचन** - निन्दा युक्त वचन बोलना। जैसे - तू कोढिया (कुष्ठी) है, काना है, अन्धा है इस प्रकार कहना।

३. **अदत्तादान** - अदत्त यानी बिना आज्ञा के आदान यानी ग्रहण करना अदत्तादान है अर्थात् स्वामी (मालिक) जीव, तीर्थंकर और गुरु आदि की बिना आज्ञा के सचित्त, अचित्त और मिश्र भेद वाली वस्तुओं को ग्रहण करना अदत्तादान है

४. **मैथुन** - स्त्री, पुरुष युगल का कार्य मैथुन - अब्रह्मचर्य है जो मन, वचन काया संबंधी करना कराना और अनुमोदन रूप नौ भेदों से औदारिक और वैक्रिय शरीर की अपेक्षा १८ प्रकार का कहा है। फिर भी सामान्य से मैथुन एक है।

५. **परिग्रह - परिगृह्यते** - जो स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह है। अथवा **परिग्रहणं** - सर्वथा ग्रहण करना परिग्रह है। मूर्च्छा को भी परिग्रह कहा गया है। परिग्रह के बाह्य और आभ्यन्तर दो भेद हैं। बाह्य परिग्रह के ९ भेद होते हैं - १. खेत्त - खुली जमीन २. वत्थु (वास्तु) - ढकी जमीन मकान घर आदि ३. हिरण्य - चांदी ४. सुवर्ण - सोना ५. धन - रूपया पैसा आदि ६. धान्य - गेहूँ, जौ आदि २४ प्रकार का धान ७. द्विपद - दौ पेर वाले - दास, नौकर आदि ८. चतुष्पद - चार पैर वाले - गाय, बैल भैंस घोड़ा आदि ९. कुविय (कुप्य) - घर बिखरी का सामान-कुर्सी, पलंग सिरक पथरना आदि ।

आभ्यन्तर परिग्रह के १४ भेद हैं यथा - १. क्रोध २. मान ३. माया ४. लोभ ५. मिथ्यात्व ६. हास्य ७. रति ८. अरति ९. भय १०. शोक ११. जुगुप्सा १२. स्त्रीवेद ३. पुरुष वेद १४. नपुंसक वेद।

६. **क्रोध** - मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला कृत्य (कार्य) अकृत्य (अकार्य) के विवेक को हटाने वाला प्रज्वलन रूप आत्मा के परिणाम को क्रोध कहते हैं।

७. **मान** - मोहनीय कर्म के उदय से जाति आदि गुणों में अहंकार-बुद्धि रूप आत्मा के परिणाम को मान कहते हैं।

८. **माया** - मोहनीय कर्म के उदय से मन, वचन, काया की कुटिलता द्वारा परवञ्चना अर्थात् दूसरे के साथ ठगाई, कपटाई दगा रूप आत्मा के परिणाम विशेष को माया कहते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. लोभ - मोहनीय कर्म के उदय से द्रव्यादि विषयक इच्छा, मूर्च्छा ममत्व भाव एवं तृष्णा अर्थात् असंतोष रूप आत्मा के परिणाम विशेष को लोभ कहते हैं।

१०. राग - माया और लोभ जिसमें अप्रकट रूप से विद्यमान हो ऐसा आसक्ति रूप जीव का परिणाम राग कहलाता है।

११. द्वेष - क्रोध और मान जिसमें अप्रकट रूप से विद्यमान हो ऐसा अप्रीति रूप जीव का परिणाम द्वेष है।

१२. कलह - लड़ाई, झगड़ा करना कलह है।

१३. अभ्याख्यान - प्रकट रूप से अविद्यमान दोषों का आरोप लगाना (झूठा आल देना) अभ्याख्यान है।

१४. पैशुन्य - पीठ पीछे किसी के दोष प्रकट करना (चाहे उसमें हों या न हों) पैशुन्य है।

१५. परपरिवाद - दूसरे की बुराई करना, निन्दा करना परपरिवाद है।

१६. रति अरति - अनुकूल विषयों के प्राप्त होने पर मोहनीय कर्म के उदय से चित्त में जो आनन्द रूप परिणाम उत्पन्न होता है वह रति है अथवा आरंभादि असंयम व प्रमाद में प्रीति को रति कहते हैं।

प्रतिकूल विषयों के प्राप्त होने पर मोहनीय कर्म के उदय से चित्त में जो उद्वेग पैदा होता है उसे अरति कहते हैं। तप संयम आदि में अप्रीति को अरति कहते हैं।

शंका - रति अरति को एक पाप स्थान क्यों माना है ?

समाधान - जीव को जब एक विषय में रति होती है तब दूसरे विषय में स्वतः अरति हो जाती है। यही कारण है कि एक वस्तु विषयक रति को ही दूसरे विषय की अपेक्षा से अरति कहते हैं इसीलिए दोनों को एक पाप स्थान गिना है।

१७. माया मृषावाद - माया (कपट) पूर्वक झूठ बोलना माया मृषावाद है। दो दोषों के संयोग से यह पाप स्थान माना है। वेश बदल कर लोगों को ठगना ऐसा अर्थ भी किया जाता है।

१८. मिथ्यादर्शन शल्य - श्रद्धा का विपरीत होना मिथ्या दर्शन है जैसे शरीर में चुभा हुआ शल्य (काँटा) सदा कष्ट देता है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शन भी आत्मा को सदैव दुःखी बनाये रखता है इसीलिये इसे शल्य कहा है।

उपरोक्त अठारह स्थानों से बांधा हुआ पाप बयासी प्रकार से भोगा जाता है।

अठारह पापों के त्याग के लिए वेरमण और विवेक शब्द का प्रयोग हुआ है। वेरमण का अर्थ है - विरति (निवृत्ति) और विवेक का अर्थ त्याग है।

एगा ओसप्पिणी। एगा सुसमसुसमा जाव एगा दुस्समदुस्समा। एगा उस्सप्पिणी। एगा दुस्समदुस्समा। जाव एगा सुसमसुसमा ॥ ७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **ओसप्पिणी** - अवसर्पिणी, **सुसमसुसमा** - सुषमसुषमा, **दुस्समदुस्समा** - दुष्षमदुष्षमा, **उस्सप्पिणी** - उत्सर्पिणी।

भावार्थ - जिसमें प्राणियों की आयु शरीरादि की क्रमशः हीनता होती जाय वह अवसर्पिणी काल एक है। उसमें सुषमसुषमा यावत् सुषमा, सुषमदुष्षमा, दुष्षमसुषमा, दुष्षमा और दुष्षमदुष्षमा ये छह आरे एक एक हैं। जिसमें आयु शरीरादि की क्रमशः वृद्धि होती जाय वह उत्सर्पिणी काल एक है। दुष्षमदुष्षमा यावत् दुष्षमा, दुष्षमसुषमा,सुषमसुषमा, सुषमा और सुषमसुषमा, ये छह आरे एक एक हैं ।। ७ ।।

विवेचन - कालचक्र के दो भेद हैं - अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी । अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का भेद करते हुए टीकाकार ने इस प्रकार अर्थ किया है -

'ओसप्पिणी' ति अवसर्प्पति हीयमानारकतया अवसर्प्पयति वा आयुष्क शरीरादि भावान् हापयतीत्यवसर्पिणी, सागरोपम कोटीकोटी दशक प्रमाणः काल विशेषः। तथा उत्सर्प्पति - वर्द्धते आरकापेक्षया उत्सर्प्पयति वा भावान् आयुष्कादीन वर्द्धयति इति उत्सर्पिणी।'

अर्थात् जिस काल में प्राणियों की आयु शरीर आदि क्रमशः घटते जाएं, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिस काल में आयु शरीर आदि वृद्धि को प्राप्त हो उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। दस कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण एक अवसर्पिणी काल होता है और दस कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण एक उत्सर्पिणी काल होता है। इस तरह बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता है अवसर्पिणी काल और उत्सपिणी काल के रथचक्र के आरों की तरह छह-छह आरे होते हैं। अवसर्पिणी काल के छह आरे ये हैं -

१. **सुषम सुषमा** - एकान्त सुखमय चार कोटाकोटि सागरोपम परिमाण ।

२. **सुषमा** - सुखमय, तीन कोटाकोटि सागरोपम परिमाण।

३. **सुषमदुष्षमा** - सुख-दुःखमय दो कोटाकोटि सागरोपम परिमाण।

४. **दुष्षम सुषमा** - दुःख सुखमय-एक कोटाकोटि सागरोपम में ४२ हजार वर्ष कम परिमाण।

५. **दुष्षमा** - दुःखमय २१ हजार वर्ष परिमाण।

६. **दुष्षम दुष्षमा** - एकान्त दुःखमय - २१ हजार वर्ष परिमाण।

उत्सर्पिणी काल के छह आरे अवसर्पिणी काल से उल्टे क्रम में होते हैं जो इस प्रकार है -

१. **दुष्षमा दुःषमा** - एकान्त दुःखमय - २१ हजार वर्ष परिमाण ।

२. **दुष्षमा** - दुःखमय - २१ हजार वर्ष परिमाण।

३. **दुष्षम सुषमा** - दुःख सुखमय - एक कोटाकोटि सागरोपम ४२ हजार वर्ष कम।

४. **सुषम - दुष्षमा** - सुख दुःखमय-दो कोटाकोटि सागरोपम परिमाण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. सुषमा - सुखमय - तीन कोटाकोटि सागरोपम परिमाण।

६. सुषम-सुषमा - एकान्त सुखमय - चार कोटाकोटि सागरोपम परिमाण।

प्रत्येक अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल के इन छह-छह आरों का स्वभाव समान होने से एक एक कहा है।

कालचक्र अनादि अनन्त है, किन्तु उसके उतार-चढ़ाव की अपेक्षा से दो प्रधान भेद किये गये हैं। अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल। अवसर्पिणी काल में मनुष्य और तिर्यंचों की बल, बुद्धि, देहमान, आयु परिमाण आदि की तथा पुद्गलों में उत्तम वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि की क्रमशः हानि होती जाती है और उत्सर्पिणी काल में उनकी क्रमशः वृद्धि होती जाती है। इनमें प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं। जो छह आरों के नाम से प्रसिद्ध है और जिनका नाम्मोल्लेख मूल सूत्रों में कर दिया गया है।

अवसर्पिणी काल का पहला आरा अति सुखमय होता है। दूसरा आरा सुखमय, तीसरा आरा ज्यादा सुखमय और थोड़ा दुःख मय होता है, चौथा आरा दुःखमय और सुखमय होता है, पांचवां आरा दुःखमय और छठा आरा अति दुःखमय होता है। उत्सर्पिणी काल का क्रम इससे उल्टा होता है यथा - पहला आरा अति दुःखमय, दूसरा दुःखमय, तीसरा दुःख सुखमय, चौथा आरा सुख दुःखमय, पांच सुखमय और छठा अति सुखमय होता है।

कर्म भूमि के पन्द्रह क्षेत्र होते हैं यथा - ५ भरत, ५ ऐरवत, ५ महाविदेह। इन में से ५ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्र में ही यह उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल होता है। महाविदेह क्षेत्र में कालचक्र नहीं होता है किन्तु अवसर्पिणी काल के चौथे आरे सरीखे भाव सदा रहते हैं (चौथा आरा नहीं)।

तीस अकर्म भूमि और छप्पन अन्तरद्वीप में भी काल चक्र नहीं होता है किन्तु देवकुरू, उत्तरकुरू में अवसर्पिणी के पहले आरे जैसे भाव होते हैं। इसी प्रकार हरिवास और रम्यक्वास में दूसरे आरे जैसे भाव रहते हैं। हेमवय और हिरण्यवय तथा छप्पन अन्तरद्वीपों में तीसरे आरे जैसे भाव रहते हैं। वहाँ आरा तो होता ही नहीं है।

एगा णेरइयाणं वग्गणा, एगा असुरकुमाराणं वग्गणा चउवीसदंडओ जाव वेमाणियाणं वग्गणा। एगा भव सिद्धियाणं वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाणं वग्गणा, एगा भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा एवं जाव एगा भवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा। एगा सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा, एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा एगासम्ममिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। एगा सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

मिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा सम्ममिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एवं जाव थणियकुमाराणं वग्गणा। एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं पुढविकाइयाणं वग्गणा एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। एगा सम्मद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा, एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा, एवं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं वि, सेसा जहा णेरइया जाव एगा सम्ममिच्छद्दिट्ठियाणं वेमाणियाणं वग्गणा ॥ ८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णेरइयाणं** - नैरयिकों की, **वग्गणा** - वर्गणा, **असुरकुमाराणं** - असुरकुमारों की, **वेमाणियाणं** - वैमानिकों की, **चउवीसदंडओ** - चौबीस दण्डक के जीवों की, **भवसिद्धियाणं**- भवसिद्धिक (भव्य) जीवों की, **अभवसिद्धियाणं** - अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवों की, **सम्मद्दिट्ठियाणं**- सम्यग् दृष्टि जीवों की, **मिच्छद्दिट्ठियाणं** - मिथ्यादृष्टि जीवों की, **सम्ममिच्छदिट्ठियाणं**- सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि जीवों की, **थणियकुमाराणं** - स्तनितकुमारों की।

भावार्थ - नैरयिकों की वर्गणा यानी समुदाय एक है। असुरकुमारों की वर्गणा एक है यावत् वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में रहे हुए जीवों की वर्गणा एक एक है। भवसिद्धिक यानी भव्य जीवों की वर्गणा एक है। अभवसिद्धिक यानी अभव्य जीवों की वर्गणा एक है। भवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है। अभवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार यावत् भवसिद्धिक वैमानिक देवों की वर्गणा एक है और अभवसिद्धिक वैमानिकों की वर्गणा एक है। सम्यग्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है। मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि यानी मिश्रदृष्टि जीवों की वर्गणा एक है। सम्यग्दृष्टि नैरयिकों की वर्गणा एक है। मिथ्यादृष्टि नैरयिकों की वर्गणा एक है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि यानी मिश्रदृष्टि नैरयिकों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों की वर्गणा एक है। मिथ्यादृष्टि पृथ्वीकायिक जीवों की वर्गणा एक है। इस प्रकार यावत् अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की वर्गणा एक है। ये पांच स्थावर काय के जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। सम्यग्दृष्टि बेइन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है। मिथ्यादृष्टि बेइन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों की भी एक एक वर्गणा है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय इन तीन विकलेन्द्रिय जीवों में मिश्रदृष्टि नहीं होती है। शेष तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय से लेकर यावत् सम्यग्मिथ्यादृष्टि वैमानिक देवों तक सब जीवों की एक एक वर्गणा है। जैसा नैरयिकों का कथन किया गया है, वैसा ही इन सब जीवों का कथन करना चाहिए ॥ ८ ॥

विवेचन - **दण्डक** - समान जाति वाले जीवों का वर्गीकरण अथवा स्वकृत कर्म भोगने के स्थान को दण्डक कहते हैं। सभी संसारी जीवों को चौबीस दण्डकों में विभक्त किया गया है वे चौबीस दण्डक इस प्रकार हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सात नारकी का एक दण्डक अर्थात् पहला दण्डक, दस भवनपति के दस दण्डक अर्थात् दूसरे से लेकर ग्यारहवें तक, बारहवां पृथ्वीकाय का दण्डक, तेरहवां अप्‌काय का, चौदहवां तेउकाय का, पन्द्रहवां वायुकाय का, सोलहवां वनस्पतिकाय का, सतरहवां बेइन्द्रिय का, अठारहवां तेइन्द्रिय का, उन्नीसवां चउरिन्द्रिय का, बीसवां तिर्यंच पंचेन्द्रिय का, इक्कीसवां मनुष्य का, बाईसवां वानव्यंतर का, तेईसवां ज्योतिषी का और चौवीसवां वैमानिक देवों का।

इस प्रकार सब जीवों को मिलाकर चौवीस दण्डक होते हैं।

प्रश्न - भवनपति दस प्रकार के हैं। उनके दस दण्डक कहे गये हैं, तो फिर नरक सात हैं। उनका एक ही दण्डक क्यों कहा गया है?

उत्तर - प्रश्न बहुत उचित है। इसका समाधान इस प्रकार है - पहली नरक का नाम रत्नप्रभा है। उसका पृथ्वीपिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का मोटा (जाड़ा) हैं। उसमें तेरह प्रस्तट (पाथडा) और बारह अन्तराल (आंतरा) हैं। प्रत्येक प्रस्तट की मोटाई तीन हजार योजन की है और प्रस्तट के बाद दूसरे प्रस्तट के बीच में जो आकाश प्रदेश है उसे अन्तराल कहते हैं। उस एक-एक अन्तराल की मोटाई ११५८३ योजन से कुछ अधिक है।

इस हिसाब से तीसरे अन्तराल में असुरकुमार जाति के देवों के आवास हैं। उसके आगे एक-एक प्रस्तट को छोड़ते हुए बीच के अन्तरालों में भवनपति देवों के आवास हैं अर्थात् तीसरे अन्तराल में असुरकुमार, चौथे अन्तराल में नागकुमार, पांचवें अन्तराल में सुवर्णकुमार। इसी क्रम से बारहवें अन्तराल में दसवें भवनपति जाति के स्तनितकुमार देवों के आवास हैं। इस प्रकार तीसरे अन्तराल से बारहवें अन्तराल तक दस जाति के भवनपति देवों के आवास हैं। इस प्रकार अन्तरालों के बीच-बीच में नारकी जीवों के प्रस्तट आ गये हैं। बीच-बीच में प्रस्तट आ जाने के कारण एवं व्यवधान पड़ जाने के कारण दस भवनपति देवों के दस दण्डक कहे गये हैं। पहली नरक और दूसरी के बीच में तथा दूसरी और तीसरी आदि नरकों के बीच में किन्हीं जीवों का व्यवधान न पड़ने के कारण सातों नरकों का एक दण्डक लिया गया है।

प्रश्न - पुराने थोकड़ों की पुस्तकों में लिखा है कि- पहले अन्तराल में असुरकुमार भवनपतियों के भवन हैं इस तरह दस अन्तरालों में दस भवनपति देवों के भवन हैं। ग्यारहवां और बारहवां अन्तराल खाली है सो क्या यह कथन ठीक है?

उत्तर - उपरोक्त कथन ठीक नहीं है। क्योंकि भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक ८ में इस प्रकार बतलाया गया है - **'अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचा णामं रायहाणी पण्णत्ता।'**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमि भाग से चालीस हजार योजन नीचे जाने पर असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा चमरेन्द्र की चमरचंचा नामक राजधानी है।

इस पाठ से यह स्पष्ट होता है कि - भवनपति देव समतल भूमि भाग से चालीस हजार योजन नीचे हैं इसलिए चालीस हजार योजन नीचे जाने पर उपरोक्त प्रस्तट और अन्तराल के हिसाब से तीसरा अन्तराल आता है। अतः यह कहना आगमानुकूल है कि ऊपर के दो अन्तराल खाली हैं। तीसरे अन्तराल से बारहवें अन्तराल तक इन दस अन्तरालों में दस जाति के भवनपति देवों के आवास हैं।

प्रश्न - भवनपति देवों के नाम के आगे 'कुमार' शब्द क्यों लगता है यथा-असुरकुमार नागकुमार आदि।

उत्तर - 'असुराश्च ते नवयौवनतया कुमारा इव कुमारा इति असुरकुमाराः।'

अर्थ - भवनपति देवों को कुमार की तरह सदा नव यौवन अवस्था बनी रहती है। इसलिए भवनपति देवों को कुमार कहते हैं।

प्रश्न - नैरयिक शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर - नैरयिक शब्द का शास्त्रीय भाषा में शब्द है "**णिरय**" जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है- '**निर+अय। निर-निर्गतम्-अविद्यमानम, अयं-इष्टफलं कर्म येभ्यस्ते निरयास्तेषु भवा नैरयिका क्लिष्टसत्वविशेषा।'**

अर्थ - यहाँ पर 'अय' शब्द का अर्थ पुण्य किया है। जिन जीवों का इष्ट फल देने वाला पुण्य अभी विद्यमान नहीं है उनको नैरयिक कहते हैं।

नैरयिक जीव अत्यन्त दुःखों का अनुभव निरन्तर करते रहते हैं वे सदा क्लिष्ट परिणामी होते हैं। यद्यपि नैरयिकों के अनेक भेद हैं फिर भी नारकत्व की दृष्टि से नैरयिकों की एक वर्गणा है। यहाँ वर्गणा का अर्थ है राशि या समुदाय।

प्रश्न - भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक किसे कहते हैं ?

उत्तर - 'भविष्यतीति भवा-भाविनी सा सिद्धिः-निर्वृतिर्येषां ते भवसिद्धिका-भव्याः, तद्विपरीतास्त्वभवसिद्धिका अभव्या इत्यर्थः।'

अर्थ - जिन जीवों में मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता है उन्हें भव सिद्धिक (भवी-भव्य) कहते हैं। जिन जीवों में मोक्ष प्राप्ति की योग्यता नहीं है वे अभवसिद्धिक (अभवी-अभव्य) कहलाते हैं। भवसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक जीवों की समान रूप से एक एक वर्गणा है।

प्रश्न - हे भगवन् ! भवसिद्धिक जीव किस कारण से होता है और किस कारण से जीव अभवसिद्धिक होता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - यह प्रश्न जयंती श्राविका ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा था। उसका उत्तर भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशक २ में इस प्रकार दिया गया है।

प्रश्न - भवसिद्धियत्तणं भंते ! जीवाणं किं सभावओ परिणामओ ?

उत्तर - जयंती ! सभावओ, णो परिणामओ।

अर्थ - हे भगवन् ! जीवों का भवसिद्धिक पन-स्वाभाविक है या पारिणामिक ? हे जयन्ती स्वाभाविक है, पारिणामिक नहीं। तात्पर्य यह है कि - स्वभाव यह कोई हेतु या कारण नहीं होता है जैसे कल्पना कीजिये कि किसी व्यक्ति के एक लड़का और एक लड़की साथ जन्मे हैं। उनका रहन सहन और खान पान एक जैसा है। फिर करीब अठारह बीस वर्ष की उम्र हो जाने पर लड़के के तो दाढ़ी मूंछ आ जाती है और लड़की के नहीं आती। इसका क्या कारण है तो यही उत्तर होगा कि इसमें कोई कारण नहीं किन्तु ऐसा ही स्वभाव है क्योंकि लडकों के दाढ़ी मूंछ आती है, लडकियों के नहीं।

प्रश्न - सम्यग् दृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर - **"सम्यग्-अविपरीता दृष्टिः-दर्शनं रुचिस्तत्त्वानि प्रति येषां ते सम्यग्दृष्टिकाः।"**

अर्थ - जो जीव आदि पदार्थों को सम्यग् प्रकार से जानता है और उन पर श्रद्धा करता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव है।

प्रश्न - मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं ?

उत्तर - **मिथ्यादृष्टिकाः-मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयादरुचितजिनवचना।**

अर्थ - वीतराग भगवन्तों के द्वारा कथित जीवादि तत्वों के ऊपर जिसकी श्रद्धा विपरीत हो उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्रश्न - मिश्रदृष्टि (सम्यग् मिथ्यादृष्टि) किसे कहते हैं ?

उत्तर-सम्यक् मिथ्या च दृष्टिर्येषां ते सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाः-जिनोक्त भावान् प्रति उदासीनाः

अर्थ - जिसकी दृष्टि न सम्यग् है न मिथ्या है और जो किसी प्रकार का निर्णय नहीं कर सकता है और जिनेन्द्र भगवान् के वचनों के प्रति उदासीन है। उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं। सन्नी जीवों में ही मिश्र दृष्टि पाई जाती है। इसकी स्थिति अन्तरर्मुहूर्त है। अन्तरर्मुहूर्त के बाद वह जीव या तो सम्यग्दृष्टि बन जाता है अथवा मिथ्यादृष्टि बन जाता है।

नारकी, देवता, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य कुल १६ दण्डकों के जीवों में तीनों दृष्टियाँ पाई जाती हैं। पांच स्थावर (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय) के जीव एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। तीन विकलेन्द्रियों (बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय) में अपर्याप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवस्था में दो दृष्टियाँ हो सकती हैं - मिथ्यादृष्टि और सम्यग् दृष्टि। जबकि पर्याप्त अवस्था में केवल एक मिथ्यादृष्टि ही होती है। जिस दण्डक में जितनी दृष्टियाँ पाई जाती हैं उसमें वर्गणाएं भी उतनी हो सकती हैं।

इस प्रकार सूत्रकार ने नैरयिक आदि की वर्गणाएं बताते हुए उनमें सामान्यत: पाये जाने वाले एकत्व का दिग्दर्शन कराया है।

एगा कण्हपक्खियाणं वग्गणा, एगा सुक्कपक्खियाणं वग्गणा, एगा कण्हपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा सुक्कपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एवं चउवीस दंडओ भाणियव्वो। एगा कण्हलेस्साणं वग्गणा, एगा णीललेस्साणं वग्गणा, एवं जाव सुक्कलेस्साणं वग्गणा। एगा कण्हलेस्साणं णेरइयाणं वग्गणा जाव काउलेस्साणं णेरइयाणं वग्गणा, एवं जस्स जइ लेस्साओ, भवणवइ वाणमंतर पुढवि आउ वणस्सइकाइयाणं य चत्तारि लेस्साओ, तेऊ वाऊ बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियाणं तिण्णि लेस्साओ, पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं, मणुस्साणं छल्लेस्साओ, जोइसियाणं एगा तेउलेस्सा, वेमाणियाणं तिण्णि उवरिम लेस्साओ। एगा कण्हलेस्साणं भवसिद्धियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं अभवसिद्धियाणं वग्गणा, एवं छस्सु वि लेस्सासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि। एगा कण्हलेस्साणं भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एवं जस्स जइ लेस्साओ तस्स तइ भाणियव्वाओ जाव वेमाणियाणं। एगा कण्हलेस्साणं सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं सम्म-मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा, एवं छस्सु वि लेस्सासु जाव वेमाणियाणं जेसिं जइ दिट्ठीओ। एगा कण्हलेस्साणं कण्हपक्खियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं सुक्कपक्खियाणं वग्गणा, जाव वेमाणियाणं जस्स जइ लेस्साओ, एए अट्ठ चउवीसदंडया ।। ९ ।।

कठिन शब्दार्थ - **कण्हपक्खियाणं** - कृष्ण पाक्षिक, **सुक्कपक्खियाणं** - शुक्ल पाक्षिक।

भावार्थ - कृष्ण पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है। शुक्ल पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है। कृष्ण पाक्षिक नैरयिकों की वर्गणा एक है। शुक्ल पाक्षिक नैरयिकों की वर्गणा एक है। इस प्रकार चौबीस ही दण्डकों में कथन करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण लेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक ही है। नील लेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार यावत् शुक्ल लेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है। कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक जीवों की वर्गणा एक है। यावत् कापोत लेश्या वाले नैरयिक जीवों की वर्गणा एक है इस प्रकार जिस दण्डक में जितनी लेश्याएं पाई जाती हैं उनका कथन करना चाहिए। भवनपति, वाणव्यन्तर, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में पहले की चार लेश्याएं पाई जाती हैं। तेउकाय - अग्निकाय, वायुकाय, बेइंद्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय जीवों में पहले की तीन लेश्याएं पाई जाती हैं। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों में और मनुष्यों में छह लेश्याएं पाई जाती हैं। ज्योतिषी देवों में एक तेजो लेश्या पाई जाती है और वैमानिक देवों में तीन ऊपर वाली लेश्याएं यानी तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या ये तीन लेश्याएं पाई जाती हैं। कृष्ण लेश्या वाले भवसिद्धिक यानी भव्य जीवों की वर्गणा एक है। कृष्ण लेश्या वाले अभवसिद्धिक यानी अभव्य जीवों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार छहों ही लेश्याओं में भव्य और अभव्य जीवों की अपेक्षा दो-दो पद कहने चाहिए। कृष्ण लेश्या वाले भवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है। कृष्ण लेश्या वाले अभवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार जिस दण्डक में जितनी लेश्याएं पाई जाती हों उस दण्डक में उतनी लेश्याओं का कथन करके यावत् वैमानिक देवों तक कथन करना चाहिए। कृष्ण लेश्या वाले सम्यग्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है। कृष्ण लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है। कृष्ण लेश्या वाले सम्यग् मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है। इस प्रकार छहों ही लेश्याओं में इन तीन दृष्टियों की अपेक्षा जिस दण्डक में जितनी दृष्टियाँ पाई जाती हों उतनी का कथन करते हुए यावत् वैमानिक देवों तक कथन करना चाहिए। कृष्ण लेश्या वाले कृष्ण पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है। कृष्ण लेश्या वाले शुक्ल पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है। इस प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक जिस दण्डक में जितनी लेश्याएं पाई जाती हों उनमें इन दो पक्षों की अपेक्षा कथन करना चाहिए। इस प्रकार इन आठ बातों की अपेक्षा यानी १. औधिक - समुच्चय, २. भव्याभव्यत्व, ३. दृष्टि, ४. पक्ष, ५. लेश्या, ६. विशिष्ट लेश्याओं के साथ भव्याभव्यत्व, ७. विशिष्ट लेश्याओं के साथ दृष्टि और ८. विशिष्ट लेश्याओं के साथ पक्ष, इन आठ की अपेक्षा चौबीस ही दण्डकों का कथन समझ लेना चाहिए।

विवेचन - जिन जीवों का संसार परिभ्रमण अर्द्धपुद्गल परावर्तन जितना बाकी रहा है वें शुक्ल पाक्षिक कहलाते हैं और जिन जीवों का संसार परिभ्रमण अर्द्धपुद्गल परावर्तन से अधिक है वे कृष्ण पाक्षिक कहलाते हैं। जैसा कि कहा है -

जेसिमवड्ढपोग्गल परियट्टो, सेसओ उ संसारो ।
ते सुक्क पक्खिया खलु, अहिए पुण किण्ह पक्खिया ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण पाक्षिक और शुक्ल पाक्षिक जीव चाहे किसी भी दण्डक में हो उनकी वर्गणा एक-एक होती है।

प्रश्न - किस कारण से जीव कृष्ण पाक्षिक और शुक्ल पाक्षिक बनते हैं ?

उत्तर - कृष्ण पाक्षिक और शुक्ल पाक्षिक बनने में कोई कर्म कारण नहीं है। सिर्फ कालमर्यादा कारण है। जीव अनादि काल से कृष्ण पाक्षिक है। परन्तु जब उसका संसार परिभ्रमण अर्द्धपुद्गल परावर्तन से कुछ कम रह जाता है, तब वह शुक्ल पाक्षिक कहलाता है। इसमें शुभ या अशुभ किसी प्रकार का कर्म कारण नहीं है। जो जीव एक बार शुक्ल पाक्षिक बन गया वह वापिस कृष्ण पाक्षिक नहीं बनता है। शुक्ल पाक्षिक बना हुआ जीव अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में अवश्य मोक्ष चला जाता है।

लेश्या - **"लिश्यते श्लिश्यते आत्मा कर्मणा सह अनया सा लेश्या"** अर्थात् जिससे आत्मा कर्मों से लिप्त होती है उसको लेश्या कहते हैं। लेश्या शब्द का अर्थ इस प्रकार कहा है -

कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात् परिणामो य आत्मनः।

स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्या शब्दः प्रवर्त्तते।।

अर्थात् - स्फटिक मणि सफेद होती है, उसमें जिस रंग का डोरा पिरोया जाय वह उसी रंग की दिखाई देती है। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा के साथ जिससे कर्मों का संबंध हो उसे लेश्या कहते हैं।

द्रव्य और भाव की अपेक्षा लेश्या दो प्रकार की है। द्रव्य लेश्या कर्म वर्गणा रूप तथा कर्मनिष्यन्द रूप एवं योग परिणाम रूप है। तत्त्वार्थ सूत्र में बतलाया गया है कि - **"कषायानुरञ्जित योग परिणामो लेश्या"** - आत्मा में रहे हुए क्रोधादि कषाय को लेश्या बढ़ाती है। योगान्तर्गत पुद्गलों में कषाय को बढ़ाने की शक्ति रहती है। जैसे पित्त के प्रकोप से क्रोध की वृद्धि होती है। द्रव्य लेश्या के छह भेद हैं। इन लेश्याओं के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के ३४ वें अध्ययन एवं पण्णवणा सूत्र के १७ वें पद में दिया गया है। मनुष्य और तिर्यञ्च में द्रव्य लेश्या का परिवर्तन होता रहता है। देवता और नैरयिक में द्रव्य लेश्या अवस्थित रहती है।

योगान्तर्गत कृष्णादि द्रव्य लेश्या के संयोग से होने वाला आत्मा का परिणाम विशेष भाव लेश्या कहलाती है। इसके दो भेद हैं - १. विशुद्ध भाव लेश्या और २. अविशुद्ध भाव लेश्या। अकलुषित द्रव्य लेश्या के सम्बन्ध होने पर कषाय के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाला आत्मा का शुभ परिणाम अविशुद्ध भाव लेश्या है। इसके छह भेद हैं। इनमें से कृष्ण, नील और कापोत अविशुद्ध भाव लेश्या है और तेजो, पद्म और शुक्ल यह विशुद्ध भाव लेश्या है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - कृष्ण आदि छहों लेश्याओं का स्वरूप तथा जम्बू फल खादक (खाने वाला) और ग्राम घातक इन दृष्टांतों का विवेचन आगे छठे स्थान में किया जाएगा।

एगा तित्थसिद्धाणं वग्गणा, एगा अतित्थसिद्धाणं वग्गणा, एवं जाव एगा एक्कसिद्धाणं वग्गणा, एगा अणिक्कसिद्धाणं वग्गणा, एगा पढमसमय सिद्धाणं वग्गणा, एवं जाव अणंतसमय सिद्धाणं वग्गणा। एगा परमाणुपोग्गलाणं वग्गणा, एवं जाव एगा अणंतपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। एगा एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा। एगा एगसमयठिइयाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव असंखेज्जसमयठिइयाणं पोग्गलाणं वग्गणा। एगा एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा, एगा अणंतगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा। एवं वण्णा, गंधा, रसा, फासा भाणियव्वा जाव एगा अणंतगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा। एगा जहण्ण-पएसियाणं खंधाणं वग्गणा, एगा उक्कोस पएसियाणं खंधाणं वग्गणा, एगा अजहण्णुक्कोस पएसियाणं खंधाणं वग्गणा, एवं जहण्णोगाहणगाणं उक्कोसोगाहणगाणं अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं जहण्णठिइयाणं उक्कोसठिइयाणं अजहण्णुक्कोसठिइयाणं, जहण्णगुणकालगाणं उक्कोसगुणकालगाणं अजहण्णुक्कोसगुणकालगाणं एवं वण्णगंधरसफासाणं वग्गणा भाणियव्वा, जाव एगा अजहण्णुक्कोसगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा॥ १०॥

कठिन शब्दार्थ - **तित्थसिद्धाणं** - तीर्थ सिद्धों की, **अतित्थसिद्धाणं** - अतीर्थ सिद्धों की, **अणिक्कसिद्धाणं** - अनेक सिद्धों की, **पढमसमयसिद्धाणं** - प्रथम समय सिद्धों की, **अणंतसमय सिद्धाणं** - अनंत समय सिद्ध जीवों की, **परमाणु पोग्गलाणं** - परमाणु पुद्‌गलों की, **अणंतपएसियाणं**- अनंत प्रादेशिक, **खंधाणं** - स्कन्धों की, **एगपएसोगाढाणं** - एक प्रदेशावगाढ-आकाश के एक प्रदेश का ही अवगाहन करके रहे हुए, **एगसमयठिइयाणं** - एक समय की स्थिति वाले, **असंखेज्जसमय-ठिइयाणं** - असंख्यात समय की स्थिति वाले, **एगगुणकालगाणं** - एक गुण काले, **अणंतगुणकालगाणं**- अनन्त गुण काले, **भाणियव्वा** - कथन करना चाहिये, **अणंतगुणलुक्खाणं** - अनन्त गुण रूक्ष, **जहण्णपएसियाणं** - जघन्य प्रदेश वाले, **उक्कोसपएसियाणं**-उत्कृष्ट प्रदेश वाले, **अजहण्णुक्कोस-पएसियाणं** - अजघन्योत्कृष्ट प्रदेश वाले, **जहण्णोगाहणगाणं**-जघन्य अवगाहना वाले, **उक्कोसोगाहणगाणं** - उत्कृष्ट अवगाहना वाले, **अजहण्णुक्कोसोगा-**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हणगाणं- अजघन्योत्कृष्ट अवगाहना वाले, **अजहण्णुक्कोसठिइयाणं** - अजघन्योत्कृष्ट स्थिति वाले, **वण्णगंधरसफासाणं** - वर्ण, गंध, रस स्पर्श वाले पुद्गल स्कंधों की, **अजहण्णुक्कोसगुणलुक्खाणं**- अजघन्योत्कृष्ट गुण रूक्ष।

भावार्थ - सिद्धों के दो भेद हैं, १. अनन्तरसिद्ध और २. परम्परसिद्ध। इनमें अनन्तरसिद्धों के तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि १५ भेद हैं। अब इनकी अपेक्षा वर्गणा का कथन किया जाता है - तीर्थसिद्धों की एक वर्गणा है। अतीर्थसिद्धों की एक वर्गणा है, इस प्रकार यावत् एकसिद्धों की एक वर्गणा है। अनेकसिद्धों की एक वर्गणा है। प्रथमसमयसिद्धों की एक वर्गणा है। इसी प्रकार द्वितीय समयसिद्ध तृतीय समयसिद्ध यावत् अनन्त समयसिद्ध जीवों की एक एक वर्गणा है। ✪ परमाणु पुद्गलों की एक वर्गणा है। इसी प्रकार द्विप्रादेशिक स्कन्ध, त्रिप्रादेशिक, चतुःप्रादेशिक, पंचप्रादेशिक, षट्प्रादेशिक, सप्तप्रादेशिक, अष्टप्रादेशिक, नवप्रादेशिक, दसप्रादेशिक, संख्यातप्रादेशिक, असंख्यात प्रादेशिक स्कन्ध यावत् अनन्तप्रादेशिक स्कन्धों की एक वर्गणा है। आकाश के एक प्रदेश का ही अवगाहन करके रहे हुए पुद्गलों की वर्गणा एक है यावत् ❖ असंख्यात प्रदेशों का अवगाहन करके रहे हुए पुद्गलों की वर्गणा एक है। एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है। एक गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है यावत् असंख्यात गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है और अनन्तगुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श इन बीस बोलों के पुद्गलों के विषय में कथन करना चाहिए यावत् अनन्त गुण रूक्ष पुद्गलों की वर्गणा एक है। दो अणु के स्कन्ध रूप जघन्य प्रदेश वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है। उत्कृष्ट यानी अनन्त परमाणु प्रदेश वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है। अजघन्योत्कृष्ट यानी मध्यम परमाणु प्रदेश वाले स्कन्धों की वर्गणा एक-एक है। इसी प्रकार जघन्य अवगाहना वाले, उत्कृष्ट अवगाहना वाले और अजघन्योत्कृष्ट यानी मध्यम अवगाहना वाले स्कन्धों की एक-एक वर्गणा है। इसी प्रकार जघन्य स्थिति वाले, उत्कृष्ट स्थिति वाले और अजघन्योत्कृष्ट यानी मध्यम स्थिति वाले पुद्गल स्कन्धों की एक वर्गणा है। इसी प्रकार जघन्य गुण काले वर्ण वाले, उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले और अजघन्योत्कृष्ट यानी मध्यमगुण काले वर्ण वाले पुद्गल स्कन्धों की वर्गणा एक-एक है। इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श वाले पुद्गल स्कन्धों की वर्गणा के विषय में भी कहना चाहिए यावत् अजघन्योत्कृष्ट गुण रूक्ष पुद्गलों की वर्गणा एक है।

✪ पुद्गल का इतना सूक्ष्म अंश जिसके फिर दो विभाग न किये जा सकें वह परमाणु कहलाता है और पूरण गलन धर्म वाले पुद्गल कहलाते हैं ।

❖ लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात ही हैं, अनन्त नहीं, इसलिए यहां असंख्यात का बोल ही ग्रहण किया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - अनन्तर सिद्धों के पन्द्रह भेद इस प्रकार हैं -

१. तीर्थ सिद्ध - जिससे संसार समुद्र तिरा जाय वह तीर्थ कहलाता है। अर्थात् जीव अजीव आदि पदार्थों की प्ररूपणा करने वाले तीर्थंकर भगवान् के वचन और उन वचनों को धारण करने वाला चतुर्विध संघ (साधु साध्वी श्रावक श्राविका) तथा प्रथम गणधर तीर्थ कहलाते हैं। इस प्रकार तीर्थ की मौजूदगी में जो सिद्ध होते हैं वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं। जैसे गौतम स्वामी आदि।

२. अतीर्थ सिद्ध - तीर्थ की स्थापना होने से पहले अथवा बीच में तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध होते हैं वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं। जैसे मरुदेवी माता आदि। मरुदेवी माता तीर्थ की स्थापना होने से पहले ही मोक्ष चली गई थी। भगवान् सुविधिनाथ से लेकर भगवान् शान्तिनाथ तक आठ तीर्थंकरों के बीच सात अन्तरों में तीर्थ का विच्छेद हो गया था। इस विच्छेद काल में जो जीव मोक्ष गये वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं।

३. तीर्थंकर सिद्ध - तीर्थंकर पद को प्राप्त करके मोक्ष जाने वाले जीव तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं। जैसे भगवान् ऋषभदेव आदि।

४. अतीर्थंकर सिद्ध - सामान्य केवली हो कर मोक्ष जाने वाले जीव अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं। जैसे गौतमस्वामी जम्बूस्वामी आदि।

५. स्वयंबुद्ध सिद्ध - दूसरे के उपदेश के बिना स्वयमेव बोध प्राप्त करके मोक्ष जाने वाले स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं। जैसे कपिल आदि।

६. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध - जो किसी के उपदेश के बिना ही किसी एक पदार्थ को देख कर वैराग्य को प्राप्त होते हैं और दीक्षा लेकर मोक्ष जाते हैं वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं। जैसे - करकण्डू, नमिराज ऋषि आदि।

शंका - स्वयंबुद्ध और प्रत्येक बुद्ध में क्या अन्तर है ?

समाधान - स्वयंबुद्ध और प्रत्येक बुद्ध में परस्पर बोधि, उपधि, श्रुत और लिंग के विषय में इस प्रकार अन्तर होता है - **१. बोधिकृत विशेषता** - स्वयंबुद्ध को बाहरी निमित्त के बिना ही जातिस्मरण आदि ज्ञान से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। स्वयंबुद्ध दो प्रकार के होते हैं। तीर्थंकर और तीर्थंकर व्यतिरिक्त। यहाँ पर तीर्थंकर व्यतिरिक्त लिये जाते हैं क्योंकि तीर्थंकर स्वयंबुद्ध तो तीर्थंकर सिद्ध में गिन लिये जाते हैं। प्रत्येक बुद्ध को बैल, चुड़ी आदि बाहरी कारणों को देखने से वैराग्य उत्पन्न होता है और दीक्षा लेकर वे अकेले ही विचरते हैं। **२. उपधिकृत विशेषता** - स्वयंबुद्ध वस्त्र पात्र आदि बारह प्रकार की उपधि (उपकरण) रखने वाले होते हैं। और प्रत्येक बुद्ध जघन्य दो प्रकार की और उत्कृष्ट ९ प्रकार की उपधि रखने वाले होते हैं। वे वस्त्र नहीं रखते किन्तु रजोहरण व मुखवस्त्रिका तो रखते ही हैं क्योंकि रजोहरण व मुखवस्त्रिका ये मुनि के मुख्य चिह्न और मुख्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मोपकरण है, इनके बिना कोई जैन मुनि नहीं होता इनके बिना मुनिपणा नहीं टिकता है। प्रज्ञाप सूत्र की टीका में तो रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका भी आवश्यक नहीं बताई गई है। **३-४. श्रुत और लिंग (बाह्य वेश) की विशेषता** - स्वयंबुद्ध दो तरह के होते हैं-एक तो वे जिनको पूर्वजन्म का ज्ञान इस जन्म में भी उपस्थित हो जाता है और दूसरे वे जिनको पूर्वजन्म का ज्ञान इस जन्म में उपस्थित नहीं होता है। पूर्वजन्म के ज्ञान वाले स्वयंबुद्ध गुरु के पास जाकर लिंग (वेश) धारण करते हैं और नियमित रूप से गच्छ में रहते हैं। दूसरे प्रकार के स्वयंबुद्ध गुरु के पास जाकर वेश स्वीकार करते हैं अथवा उनको देवता वेश दे देता है। यदि वे अकेले विचरने में समर्थ हों और अकेले विचरने की इच्छा हो तो अकेले विचर सकते हैं अन्यथा गच्छ में रहते हैं। प्रत्येक बुद्ध को पूर्व जन्म का ज्ञान इस जन्म अवश्य उपस्थित हो जाता है। वह ज्ञान जघन्य ग्यारह अंग का और उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्व का होता है। दीक्षा लेते समय देवता उन्हें वेश देते हैं अथवा वे लिंग रहित भी होते हैं किन्तु रजोहरण और मुखवस्त्रिका तो रखते ही हैं।

७. बुद्धबोधित सिद्ध - आचार्य आदि के उपदेश से बोध प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं । जैसे जम्बूस्वामी आदि।

८. स्त्रीलिंग सिद्ध - स्त्रीलिंग से अर्थात् स्त्री की आकृति रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाते हैं। यहाँ स्त्रीलिंग स्त्रीत्व का सूचक है। स्त्रीत्व (स्त्रीपणा) तीन प्रकार का बतलाया गया है यथा - १. वेद २. शरीराकृति ३. वेश। यहाँ पर शरीराकृति रूप स्त्रीत्व लिया गया है क्योंकि वेद के उदय में तो कोई जीव सिद्ध हो ही नहीं सकता है क्योंकि वेद का सर्वथा क्षय होने पर (अवेदी होने पर) ही जीव मोक्ष में जाता है। वेश तो अप्रामाणिक है अतः यहाँ शरीर की आकृति अर्थात् स्त्री का शरीर रूप स्त्रीत्व की ही विवक्षा की गई है यथा - चन्दनबाला आदि।

दिगम्बर सम्प्रदाय में भी सिद्धों के पन्द्रह भेद किये गये हैं उनमें स्त्रीलिंग सिद्ध भी है। यथा -

नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक चक्रवर्ती द्वारा विरचित 'गोम्मटसार' (जीवकाण्ड) परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा प्रकाशित छठी आवृत्ति पृष्ठ २८१ गाथा -

होंति खवा इगिसमये, बोहिय बुद्धा य पुरिसवेदा य।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा, सग्गदो य चुदा॥ ६३०॥
पत्तेयबुद्ध तित्थयरत्थिणंउसयमणोहिणाणजुदा।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो॥ ६३१॥
जेट्ठावर बहुमज्झिम, ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव।
जुगवं हवंति खवगा, उवसमगा अद्धमेदेसिं॥ ६३२॥

९. पुरुषलिंग सिद्ध - पुरुष की आकृति रहते हुए मोक्ष में जाने वाले पुरुष लिंग सिद्ध कहलाते हैं । जैसे गौतमस्वामी आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. नपुंसकलिंग सिद्ध - नपुंसक की आकृति रहते हुए मोक्ष में जाने वाले नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - गांगेय अनगार आदि।

११. स्वलिङ्ग सिद्ध - साधुवेश (रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि) में रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्वलिङ्ग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - जैन साधु।

१२. अन्यलिङ्ग सिद्ध - परिव्राजक आदि के वल्कल, गेरुएं वस्त्र आदि द्रव्य लिंग में रह कर मोक्ष जाने वाले अन्यलिङ्ग सिद्ध कहलाते हैं। परिव्राजक आदि का वेश रहते हुए जैन मुनि आदि को देखने से वीतराग वचनों पर श्रद्धा आ जाए और उसी वेश में केवलज्ञान हो जाए तो यदि आयुष्य लम्बा हो तो अवश्य ही वेश परिवर्तन कर जैन साधु का वेश धारण कर लेते हैं किन्तु यदि आयुष्य अल्प रह गया हो और वेश परिवर्तन करें उतना समय न हो तो उसी वेश में सिद्ध हो जाते हैं। भावों में तो साधुपणा आ ही जाता है। जैसे - वल्कलचीरी आदि।

१३. गृहस्थलिङ्ग सिद्ध - गृहस्थ के वेश में मोक्ष जाने वाले गृहस्थ लिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - मरुदेवी माता आदि। भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी भगवान् के दर्शनार्थ हाथी पर बैठकर जा रही थी। उसी समय भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ था। देवता केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिये आ रहे थे। उनको देखकर मरुदेवी की विचार धारा आध्यात्मिकता की ओर बढ़ी परिणामों की धारा उत्तरोत्तर बढ़ने से क्षपक श्रेणी पर चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। आयुष्य अल्प रहने के कारण हाथी पर से भी उतर न सकी और गृहस्थ के कपड़े भी बदल नहीं सकी और उसी अवस्था में मोक्ष चली गई। इसलिए उनको गृहस्थ लिंग सिद्ध कहा है। भावों में तो मुनिपणा आ ही गया था।

१४. एक सिद्ध - एक समय में एक मोक्ष जाने वाले जीव एक सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - भगवान् महावीर स्वामी आदि।

१५. अनेक सिद्ध - एक समय में अनेक (एक से अधिक) मोक्ष जाने वाले अनेक सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - भगवान् ऋषभदेव आदि।

प्रथम समय सिद्ध - जिनको सिद्ध हुए पहला समय हुआ है। वे प्रथम समय सिद्ध यावत् अनन्त समय सिद्ध की एक वर्गणा होती है।

परम्पर सिद्ध - जिनको सिद्ध हुए दो समय से लेकर अनन्त समय हो गए हैं उन्हें परंपर सिद्ध कहते हैं। इनकी भी दो समय से लेकर अनन्त समय पर्यन्त एक-एक वर्गणा जाननी चाहिये।

प्रश्न - एक समय में अधिक से अधिक कितने जीव मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर - बत्तीसा, अडयाला, सट्ठी बावत्तरि य बोद्धव्वा।

चुलसीई छण्णउई उ, दुरहियमट्ठुत्तर सयं च ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - एक समय से आठ समय तक एक एक से लेकर बत्तीस तक जीव मोक्ष जा सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पहले समय में जघन्य एक दो और उत्कृष्ट बत्तीस जीव सिद्ध हो सकते हैं। इसी तरह दूसरे समय में भी जघन्य एक दो और उत्कृष्ट बत्तीस जीव मोक्ष जा सकते हैं। इसी तरह तीसरे, चौथे यावत् आठवें समय तक जघन्य एक दो और उत्कृष्ट बत्तीस जीव मोक्ष जा सकते हैं। आठ समयों के बाद निश्चित रूप से अन्तर पड़ता है।

तेतीस से लेकर अड़तालीस तक जीव निरन्तर सात समय तक मोक्ष जा सकते हैं। इसके पश्चात् निश्चित रूप से अन्तर पड़ता है। ऊनपचास से लेकर साठ तक जीव निरन्तर छह समय तक मोक्ष जा सकते हैं। इसके बाद निश्चित रूप से अन्तर पड़ता है। इकसठ से बहत्तर तक जीव निरन्तर पांच समय तक, तिहत्तर से चौरासी तक निरन्तर चार समय तक, पिच्यासी से छयानवें तक निरन्तर तीन समय तक, सत्तानवें से एक सौ दो तक निरन्तर दो समय तक मोक्ष जा सकते हैं। इसके बाद निश्चित रूप से अन्तर पड़ता है। एक सौ तीन से लगा कर एक सौ आठ तक जीव निरन्तर एक समय तक मोक्ष जा सकते हैं अर्थात् एक समय में उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं। इसके पश्चात् अवश्य अन्तर पड़ता है। दो तीन आदि समय तक निरन्तर उत्कृष्ट सिद्ध नहीं हो सकते हैं।

पुद्गल - जिसका एकत्व, पृथक्त्व, मिलने और बिछुड़ने का स्वभाव हो। तत्त्वार्थ सूत्र अ० ५ सूत्र २३ टीका में पुद्गल के विषय में कहा है - **"पूरण गलन धर्मिण पुद्गलाः"** - पूरण गलन धर्म वाले पुद्गल कहलाते हैं।

प्रश्न - परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर - अनुयोगद्वार सूत्र में परमाणु का लक्षण इस प्रकार बताया है -

सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तुं भेत्तुं व जं किर न सक्का।

तं परमाणुं सिद्धा वयंति आदि पमाणाणं॥

अर्थ - सुतीक्ष्ण शस्त्र से भी जिसका छेदन-भेदन न किया जा सके उसको सिद्ध अर्थात् भवस्थ केवलज्ञानी परमाणु कहते हैं। तात्पर्य यह है कि पुद्गल का इतना सूक्ष्म अंश जिसके फिर दो विभाग नहीं किये जा सके वह परमाणु कहलाता है।

प्रश्न - परमाणु की पहचान क्या है ?

उत्तर - **कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।**

एकरसवर्णगन्धो, द्विस्पर्शः कार्यलिंगश्च॥

अर्थ - सब पुद्गल स्कन्धों का अन्तिम कारण परमाणु है अर्थात् परमाणु से ही स्कन्ध बनते हैं। वह अत्यन्त सूक्ष्म है और नित्य है। उसमें एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श पाए जाते हैं। वह परमाणु छद्मस्थ जीवों के नजर नहीं आता है। पुद्गल स्कन्ध परमाणुओं से बनता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये परमाणु कारण है और पुद्गल स्कन्ध कार्य है। कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जाता है-जैसे कि धूए के देखकर अग्नि का अनुमान रूप ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार पुद्गल स्कन्धों को देखकर परमाणु का अनुमान किया जाता है क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता है।

एगे जंबूद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं जाव अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं। एगे समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थयराणं चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं एगा रयणी उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। अद्दा णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते, चित्ता णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते, साइ णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते। एगपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। एवं एगसमयठिइया, एगगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव एगगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। एगट्ठाणं समत्तं॥ ११॥

कठिन शब्दार्थ - जंबूद्दीवे - जम्बू द्वीप, **दीवे** - द्वीप, **सव्वदीवसमुद्दाणं** - सब द्वीप समुद्रों के मध्य में, **परिक्खेवेणं** - परिक्षेप-परिधि, **किंचि** - कुछ, **विसेसाहिए** - विशेषाधिक, **चउव्वीसाए**-चौबीस, **तित्थयराणं** - तीर्थंकरों में, **चरमतित्थयरे** - अंतिम तीर्थङ्कर, **सिद्धे** - सिद्ध, **बुद्धे** - बुद्ध, **मुत्ते** - मुक्त, **सव्वदुक्खप्पहीणे** - सर्व दुःख प्रहीण-सब दुःखों का क्षय करने वाले, **अणुत्तरोववाइयाणं**- अनुत्तरौपपातिक, **उड्ढं उच्चत्तेणं** - शरीर की ऊँचाई, **रयणी** - रत्नि-हाथ, **अद्दा**-आर्द्रा, **एगतारे** - एक तारा वाला, **णक्खत्ते** - नक्षत्र, **पण्णत्ते** - कहा गया है, **चित्ता** - चित्रा, **साइ** - स्वाति, **एगट्ठाणं** - पहला स्थान, **समत्तं** - समाप्त ।

भावार्थ - सब द्वीप समुद्रों के मध्य में जम्बूद्वीप नामक एक द्वीप है। उसका परिक्षेप यानी परिधि (घेराव) ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष १३।। साढे तेरह अङ्गुल से कुछ विशेषाधिक है। इस अवसर्पिणी काल में भगवान् ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थङ्करों में अन्तिम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अकेले ही सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं यावत् सब दुःखों का क्षय करने वाले हुए हैं। अनुत्तरौपपातिक अर्थात् विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध इन पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले देवों के शरीर की ऊंचाई एक रत्नि यानी हाथ प्रमाण है। आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। आकाश के एक प्रदेश का अवगाहन कर रहने वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। इसी प्रकार एक समय की स्थिति वाले और एक गुण काले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं यावत् एक गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। एक एक पदार्थों का वर्णन करने वाला पहला स्थान समाप्त हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जम्बू वृक्ष से विशेष पहचान वाला जो द्वीप है वह जम्बूद्वीप कहलाता है। जंबूद्वीप का परिचय देते हुए सूत्रकार ने जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में इस प्रकार पाठ दिया है -

"कहि णं भंते ! जंबूद्दीवे ? के महालए णं भंते ! जंबूद्दीवे ? किं संठिए णं भंते ! जंबूद्दीवे ? किं आयारभाव पडोयारे णं जंबूद्दीवे पण्णत्ते ? गोयमा ! अयण्णं जंबूद्दीवे सव्वद्दीव समुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेयपूयसंठाण संठिए, वट्टे पुक्खरकण्णिाया संठाण संठिए, वट्टे पडिपुण्ण चंद संठाण संठिए, एगं जोयणसयसहस्साइं, सोलस्स सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसं जोयणसए तिण्णि य कोसं अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।" **- सूत्र ३**

अर्थात् - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से गौतमस्वामी ने पूछा - "हे भगवन् ! जम्बूद्वीप कहाँ पर है ? जम्बूद्वीप कितना बड़ा है ? उसका आकार भाव क्या है ?" प्रभु फरमाते हैं कि - हे गौतम ! यह जंबूद्वीप सर्वद्वीप समुद्रों के मध्य में हैं। सब द्वीपों में छोटा है। वह तेल के पूए (मालपूएँ) के समान, रथ के पहिये के समान, पुष्करणी की कर्णिका के समान तथा पूर्णमासी के चन्द्र के समान गोल आकार वाला है एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है जिसकी परिधि ३,१६,२२७ योजन तीन कोस एक सौ अठाईस धनुष और साढे तेरह अंगुल से कुछ विशेषाधिक है।

उपरोक्त विशेषणों वाला जंबूद्वीप एक ही है अर्थात् इन विशेषणों से रहित दूसरे अनेक जम्बूद्वीप भी हैं। इसी जम्बूद्वीप में मनुष्यों का निवास है । अन्य जम्बूद्वीपों में नहीं।

भगवान् महावीर स्वामी के लिए सर्वप्रथम 'श्रमण' विशेषण दिया गया है। '**श्रमु तपसि खेदे च**' इस तप और खेद अर्थ वाली "श्रमु" धातु से 'श्रमण' शब्द बना है। '**श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः**' जिसका अर्थ होता है कि-जो तपस्या करे और जगत् के जीवों के खेद (दुःख) को जाने, वह 'श्रमण' कहलाता है।

अथवा '**समणे**' शब्द की संस्कृत छाया 'समनः' भी होती है। जिसका अर्थ यह है कि - जिसका मन शुभ हो, जो समस्त प्राणियों पर समभाव रखे, उसे 'समन' कहते हैं। जो ऐश्वर्यादि युक्त हो अर्थात् पूज्य हो उसे भगवान् कहते हैं।

राग द्वेषादि आन्तरिक शत्रु दुर्जेय है। उनका निराकरण करने से जो महान् वीर-पराक्रमी हैं, वह महावीर कहलाता है। भगवान् का यह गुणनिष्पन्न नाम देवों द्वारा दिया गया था। जैसा कि आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के १५वें अध्ययन में कहा है - "**अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं, खंति**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खमे, पडिमाणं पालए, धीइमं, अरइरइसहे, दविए, वीरियसंपण्णे देवेहिं से णामं कए समणे भगवं महावीरे।"

अर्थ - दीक्षा लेने के बाद भगवान् महावीर स्वामी ने भय को उत्पन्न करने वाले एवं भयंकर देव मनुष्य और तिर्यंचों के परिषहों को सहन किया। और उन परीषह उपसर्गों में अचल तथा अड़ोल एवं अकम्प रहे। क्षमा पूर्वक सहन किये। भिक्षु पडिमाओं का पालन किया। धैर्यवान, ज्ञानवान अरति-रति को सहन करने वाले और अतुल वीर्य सम्पन्न होने के कारण देवों ने उनका नाम **'महावीर'** दिया था। क्योंकि जन्म का नाम तो उनका वर्द्धमान था जो कि माता-पिता के द्वारा गुणनिष्पन्न दिया गया था।

।। इति प्रथम स्थानक समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीअं ठाणं - द्वितीय स्थान

प्रथम उद्देशक

एक स्थानक नाम वाले प्रथम अध्ययन का निरूपण करने के बाद अब सूत्रकार संख्या क्रम से द्वितीय स्थानक नाम वाले द्वितीय अध्ययन का निरूपण करते हैं। प्रथम अध्ययन में आत्मा आदि पदार्थों का एकत्व सामान्य से कहा गया है। प्रस्तुत अध्ययन में विशेष रूप से आत्मा आदि पदार्थों का द्विविध रूप से कथन किया जाता है। इस द्वितीय अध्ययन के चार उद्देशक हैं जिसमें प्रथम उद्देशक का प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

जदत्थि णं लोए तं सव्वं दुपओयारं तंजहा - जीवच्चेव अजीवच्चेव। तसे चेव थावरे चेव, सजोणियच्चेव अजोणियच्चेव, साउयच्चेव अणाउयच्चेव, सइंदिय च्चेव अणिंदियच्चेव, सवेयगा चेव अवेयगा चेव, सरूवि चेव अरूवि चेव, सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव, संसारसमावण्णगा चेव असंसारसमावण्णगा चेव, सासया चेव असासया चेव॥ १२॥

कठिन शब्दार्थ - **जद् (जं)** - जितने, **अत्थि** - हैं, **लोए** - लोक में, **तं** - वे, **सव्वं** - सब **दुपओयारं (दुपडोयारं)** - द्विपदावतार-द्विप्रत्यवतार दो पदों से कहे जाने वाले, **च** - और, **सजोणियच्चेव** - सयोनिक और, **साउयच्चेव** - आयुष्य सहित और **अणाउय** - आयु रहित, **सइंदिय**- इन्द्रिय सहित, **अणिंदिय** - इन्द्रिय रहित, **सवेयगा** - सवेदक, **अवेयगा** - अवेदक, **सपोग्गला** - सपुद्गल-कर्म पुद्गलों सहित, **सासया** - शाश्वत, **असासया** - अशाश्वत।

भावार्थ - लोक में जितने भी पदार्थ हैं वे सब दो पदों से कहे जाने वाले हैं अथवा दो पदों में उन सब का समावेश हो जाता है। जैसे कि - जीव और अजीव। त्रस और स्थावर। सयोनिक यानी चौरासी लाख जीव योनि में से किसी योनि में उत्पन्न होने वाले और अयोनिक यानी सिद्ध। आयुष्य सहित और आयुष्य रहित - सिद्ध। इन्द्रियाँ सहित और इन्द्रियाँ रहित - सयोगी केवली और सिद्ध। सवेदक यानी स्त्रीवेदादि से सहित और अवेदक यानी वेदरहित सिद्ध आदि। सरूपी और अरूपी। सपुद्गल यानी कर्म पुद्गलों सहित और अपुद्गल यानी कर्मपुद्गलों से रहित। संसार समापन्नक यानी संसारी और असंसार समापन्नक यानी सिद्ध। शाश्वत यानी जन्म मरण से रहित सिद्ध और अशाश्वत यानी जन्म मरण से युक्त संसारी जीव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सूत्रकार ने उपरोक्त सूत्र में जीव तत्त्व की द्विविधता (जीव तत्त्व का स्वरूप पक्ष-प्रतिपक्ष के रूप में) प्रतिपादित की है।

त्रस - त्रस नाम कर्म के उदय से जो जीव त्रास एवं भय तथा सर्दी गर्मी आदि से अपना बचाव करने के लिये गमनागमन कर सकते हैं वे त्रस कहलाते हैं। जैसे - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

स्थावर - स्थावर नाम कर्म के उदय से जो जीव गति रहित - स्थिर स्वभाव वाले हैं वे स्थावर कहलाते हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीव - पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय।

आगासे चेव, णो आगासे चेव। धम्मे चेव, अधम्मे चेव। बंधे चेव, मोक्खे चेव। पुण्णे चेव, पावे चेव। आसवे चेव, संवरे चेव। वेयणा चेव, णिज्जरा चेव। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - जीवकिरिया चेव, अजीवकिरिया चेव। जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - सम्मत्तकिरिया चेव, मिच्छत्तकिरिया चेव। अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - इरियावहिया चेव, संपराइया चेव। दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तंजहा - काइया चेव, अहिगरणिया चेव। काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता,तंजहा - अणुवरयकाय किरिया चेव, दुप्पउत्तकायकिरिया चेव। अहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - संजोयणाहिगरणिया चेव, णिव्वत्तणाहिगरणिया चेव। दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तंजहा - पाउसिया चेव, परियावणिया चेव। पाउसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - जीवपाउसिया चेव, अजीवपाउसिया चेव। परियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - सहत्थपरियावणिया चेव, परहत्थपरियावणिया चेव। दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तंजहा - पाणाइवाय किरिया चेव, अपच्चक्खाण किरिया चेव। पाणाइवाय किरिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - सहत्थपाणाइवाय किरिया चेव, परहत्थपाणाइवाय किरिया चेव। अपच्चक्खाण किरिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - जीव अपच्चक्खाण किरिया चेव, अजीव अपच्चक्खाण किरिया चेव॥ १३॥

कठिन शब्दार्थ - **आगासे** - आकाशास्तिकाय, **किरियाओ** - क्रियाएं, **सम्मत्तकिरिया** - सम्यक्त्व क्रिया, **मिच्छत्तकिरिया** - मिथ्यात्व क्रिया, **दुविहा** - दो प्रकार की, **इरियावहिया** - ईर्यापथिकी, **संपराइया** - साम्परायिकी, **काइया** - कायिकी, **अहिगरणिया** - आधिकरणिकी, **अणुवरयकाय** - अनुपरतकाय, **दुप्पउत्तकाय** - दुष्प्रयुक्त काय, **संजोयणाहिगरणिया** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयोजनाधिकरणिकी, **णिव्वत्तणाहिगरणिया** - निर्वर्तनाधिकरणिकी, **पाउसिया** - प्राद्वेषिकी, **परियावणिया**- पारितापनिकी, **सहत्थपरियावणिया** - स्वहस्तपारितापनिकी, **परहत्थपरियावणिया** - परहस्त पारितापनिकी, **पाणाइवाय** - प्राणातिपातिकी, **अपच्चक्खाण** - अप्रत्याख्यानिकी।

भावार्थ - जीव का कथन किया जा चुका है। अब अजीव का कथन किया जाता है - आकाशास्तिकाय और नो आकाशास्तिकाय अर्थात् आकाशास्तिकाय से भिन्न धर्मास्तिकाय आदि। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। बन्ध और मोक्ष। पुण्य और पाप। आस्रव और संवर। वेदना और निर्जरा। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - जीव क्रिया - जैसे कि जीव के व्यापार से उत्पन्न होने वाली क्रिया और अजीव क्रिया - अजीव के व्यापार से उत्पन्न होने वाली क्रिया। जीव क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों जीव के व्यापार होने से क्रिया है। अजीव क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - ईर्यापथिकी और साम्परायिकी। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - कायिकी यानी काया से होने वाली क्रिया और आधिकरणिकी यानी बाहरी खड्ग (तलवार) आदि अधिकरणों से लगने वाली क्रिया। कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई हैं यथा - सावद्य कार्यों से निवृत्त न होने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव की काया के हलन चलन आदि व्यापार से लगने वाली क्रिया और दुष्प्रयुक्त काय क्रिया यानी इष्ट अनिष्ट विषय में सुख दुःख उत्पन्न होने से और मन के बुरे संकल्प विकल्पों से लगने वाली क्रिया। आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - संयोजनाधिकरणिकी यानी पहले से बनी हुई तलवार और उसकी मूठ को जोड़ने रूप क्रिया से लगने वाली क्रिया और निर्वर्तनाधिकरणिकी यानी तलवार आदि शस्त्रों को बनाने रूप क्रिया से लगने वाली क्रिया। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - प्राद्वेषिकी यानी किसी पर द्वेष करने से लगने वाली क्रिया और पारितापनिकी यानी जीवों को परिताप और दुःख देने से लगने वाली क्रिया। प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - जीवप्राद्वेषिकी यानी किसी जीव पर द्वेष करने से लगने वाली क्रिया और अजीव प्राद्वेषिकी यानी पत्थर आदि पर गिर पड़ने से एवं दीवाल या स्तम्भ आदि से शिर फूट जाने से उन पर द्वेष करने से लगने वाली क्रिया। पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - अपने हाथ से स्वदेह को या परदेह को परिताप उपजाने से लगने वाली क्रिया स्वहस्त पारितापनिकी और दूसरों के हाथ से स्वदेह को या परदेह को परिताप उपजवाने से लगने वाली क्रिया परहस्त पारितापनिकी। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा-जीव हिंसा से लगने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी और सावद्य कार्य का पच्चक्खाण-त्याग न करने से अविरति जीवों को लगने वाली क्रिया अप्रत्याख्यानिकी। प्राणातिपातिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा-क्रोध के वश होकर अपने हाथ से अपने प्राणों का या दूसरों के प्राणों को हनन करने से लगने वाली क्रिया स्वहस्त प्राणातिपातिकी और दूसरों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाथ से अपने प्राणों का या परप्राणों का हनन करवाने से लगने वाली क्रिया परहस्त प्राणातिपातिकी है। अप्रत्याख्यानी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा-जीव सहित वनस्पति आदि पदार्थों का पच्चक्खाण न करने से लगने वाली जीव अप्रत्याख्यानिकी क्रिया और मदिरा आदि पदार्थों का प्रत्याख्यान न करने से लगने वाली क्रिया अजीव अप्रत्याख्यानिकी कहलाती हैं।

विवेचन - प्रश्न - ईर्यापथिकी क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर - **"ईरणमीर्या - गमनं तद्विशिष्टः पन्था ईर्यापथस्तत्र भवा ऐर्यापथिकी"** - मार्ग में यतनापूर्वक गमन करते समय काययोग के कारण जो क्रिया होती है वह ईर्यापथिकी क्रिया है। अथवा उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली इन ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानों में रहे हुए अप्रमत्त साधु को सिर्फ योग के कारण जो साता वेदनीय रूप कर्म बन्धता है उसे ईर्यापथिकी क्रिया कहते हैं। यह क्रिया पहले समय में बंधती है। दूसरे समय में वेदी जाती है और तीसरे समय में उसकी निर्जरा हो जाती है।

प्रश्न - सांपरायिकी क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर-संपराय यानी कषाय के कारण जीव को लगने वाली क्रिया सांपरायिकी क्रिया कहलाती है। पहले गुणस्थान से लेकर दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थान वालों को यह क्रिया लगती है।

जीव क्रिया के द्वारा कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। कर्म अजीव होने के कारण इन दोनों क्रियाओं को अजीव क्रिया कहा है।

कायिकी क्रिया - शरीर की प्रवृत्ति से होने वाली क्रिया कायिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं-१. अनुपरत काय क्रिया - अविरत (सावद्य कार्यों से निवृत्त न होने) सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव के काया की हलन चलन आदि से लगने वाली क्रिया और २. दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया - इष्ट अनिष्ट विषय में सुख दुःख उत्पन्न होने से और मन के बुरे संकल्पों से लगने वाली क्रिया।

आधिकरणिकी क्रिया - जिस क्रिया से जीव नरक में जाने का अधिकारी बनता है उसे 'अधिकरण' कहते हैं। अथवा तलवार आदि उपघातक शस्त्रों को 'अधिकरण' कहते हैं उनको बनाने और संग्रह करने की प्रवृत्ति को आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं-१. संयोजनाधिकरणिकी-पूर्व निर्मित शस्त्र आदि हिंसक उपकरणों के पुर्जों के संयोजन से लगने वाली क्रिया जैसे कि तलवार और तलवार के मूठ को मिलाना, तथा ऊखल और मूसल को मिलाना। २. निर्वर्तनाधिकरणिकी-तलवार आदि शस्त्रों के निर्माण से लगने वाली क्रिया अर्थात् नये शस्त्र आदि बनाना।

प्राद्वेषिकी - जीव या अजीव पर द्वेष करने से जो क्रिया लगती है उसे प्राद्वेषिकी क्रिया कहते हैं। जीव प्राद्वेषिकी और अजीव प्राद्वेषिकी के रूप में इसके दो भेद होते हैं।

पारितापनिकी - दूसरें जीवों को परिताप (पीडा) देने वाली क्रिया पारितापनिकी कहलाती

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

है। इसके दो भेद हैं - १. स्वहस्तपारितापनिकी - अपने हाथों से अपने या पराए शरीर को परिताप देना २. परहस्तपारितापनिकी - दूसरों के हाथों से अपने या पराए शरीर को परिताप देना।

प्राणातिपातिकी - जीवहिंसा से लगने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं- १. स्वहस्त प्राणातिपातिकी - अपने हाथों से अपने प्राणों या दूसरे के प्राणों का अतिपात (विनाश) करना २. परहस्त प्राणातिपातिकी - दूसरों के हाथों से अपने प्राणों का या दूसरे के प्राणों का अतिपात करना।

अप्रत्याख्यानिकी - अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़ा सा भी विरति परिणाम न होने रूप क्रिया अप्रत्याख्यानिकी है। अथवा अव्रत से जो कर्मबन्ध होता है वह अप्रत्याख्यानिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं - १. जीव अप्रत्याख्यानिकी - जीव विषयक अविरति से होने वाला कर्मबंध। २. अजीव अप्रत्याख्यानिकी - अजीव विषयक अविरति से होने वाला कर्म बंध।

यह जीव भूतकाल में अनंत भवों में अनन्त शरीर धारण कर चुका है। यदि मरते समय उस शरीर पर रहे हुए ममत्व का पच्चक्खाण (त्याग) नहीं करता है तो उस शरीर की हड्डी आदि से किसी भी अवयव से जो क्रियाएं आगे होगी वे सभी क्रियाएं उस जीव को लगेगी। इसी प्रकार अपने पास रहे हुए जो तलवार चाकू आदि शस्त्र हैं यदि मरते समय उनका पच्चक्खाण (त्याग) नहीं किया तो आगे उनसे होने वाली सभी क्रियाएं उस जीव को लगेगी वह जीव चाहे जहां पर हो। अतः प्रत्याख्यान आवश्यक है।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आरंभिया चेव, परिग्गहिया चेव। आरंभिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - जीव आरंभिया चेव, अजीव आरंभिया चेव। एवं परिग्गहिया वि। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - मायावत्तिया चेव, मिच्छादंसणवत्तिया चेव। मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - आयभाववंकणया चेव, परभाव वंकणया चेव। मिच्छादंसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - ऊणाइरित्त मिच्छादंसणवत्तिया चेव, तव्वइरित्त मिच्छादंसणवत्तिया चेव। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - दिट्ठिया चेव, पुट्ठिया चेव। दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - जीव दिट्ठिया चेव, अजीव दिट्ठिया चेव। एवं पुट्ठिया वि। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पाडुच्चिया चेव, सामंतोवणिवाइया चेव। पाडुच्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - जीव पाडुच्चिया चेव अजीव पाडुच्चिया चेव। एवं सामंतोवणिवाइया वि॥ १४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - आरंभिया - आरम्भिकी, **परिग्गहिया** - पारिग्रहिकी, **मायावत्तिया** - माया प्रत्ययिकी, **मिच्छादंसणवत्तिया** - मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी, **आयभाववंकणया** - आत्मभाव वञ्चनता, **परभाववंकणया** - पर भाव वंचनता, **मिच्छादंसणवत्तिया** - मिथ्यादर्शन प्रत्यया, **ऊणाइरित्त-मिच्छादंसणवत्तिया** - ऊनातिरिक्त (न्यूनाधिक) मिथ्यादर्शन प्रत्यया, **तव्वइरित्तमिच्छादंसणवत्तिया**- तद् व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्यया, **दिट्ठिया** - दृष्टिजा या दृष्टिका, **पुट्ठिया** - पृष्टिजा (पृष्टिका), **पाडुच्चिया** - प्रातीत्यिकी, **सामंतोवणिवाइया** - सामन्तोपनिपातिकी।

भावार्थ - दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - आरम्भ से लगने वाली क्रिया आरम्भिकी और ममत्व रूप परिग्रह से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी। आरम्भिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - जीवों का उपमर्दन एवं आरम्भ से लगने वाली क्रिया जीव आरम्भिकी और मृतकलेवर या वस्त्रादि को बनाने से लगने वाली क्रिया अजीव आरम्भिकी। इसी प्रकार पारिग्रहिकी क्रिया के भी दो भेद हैं - द्विपद चतुष्पद आदि जीवों पर ममता करने से लगने वाली क्रिया जीव पारिग्रहिकी और सोना चांदी आदि पर ममता करने से लगने वाली क्रिया अजीव पारिग्रहिकी। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - माया करने से लगने वाली क्रिया मायाप्रत्ययिकी और मिथ्यात्व से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शनप्रत्यया। मायाप्रत्ययिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - मन में बुरे परिणाम रख कर बाहर अच्छे भाव बतलाना यह आत्मभाव वञ्चनता है और खोटे लेख आदि लिख कर दूसरों को ठगना यह परभाव वञ्चनता है। मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - सर्वज्ञ के वचनों से हीनाधिक मानने से लगने वाली क्रिया न्यूनाधिक मिथ्यादर्शन प्रत्यया है जैसे कि आत्मा स्वशरीर व्यापक है उसे तिल बराबर या अंगुष्ठ बराबर मानना अथवा पांच सौ धनुष प्रमाण या सर्वव्यापी मानना। तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्यया। जैसे कि आत्मा के अस्तित्व को ही न मानना। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - किसी को देखने से लगने वाली क्रिया दृष्टिजा या दृष्टिका और प्रश्नादि पूछने से लगने वाली क्रिया पृष्टिजा या पृष्टिका अथवा स्पर्श करने से लगने वाली क्रिया स्पृष्टिजा या स्पृष्टिका है। दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - हाथी घोड़ा आदि जीवों को देखने से लगने वाली क्रिया जीव दृष्टिजा या जीवदृष्टिका और चित्र, महल आदि अजीव पदार्थों को देखने से लगने वाली क्रिया अजीव दृष्टिजा या अजीव दृष्टिका। इसी प्रकार पृष्टिजा या स्पृष्टिजा क्रिया के भी दो भेद हैं। यथा - रागद्वेष के वश होकर जीव और अजीव के विषय में पूछना या इन्हें स्पर्श करना जीव पृष्टिजा या जीव स्पृष्टिजा और अजीव पृष्टिजा या अजीव स्पृष्टिजा क्रिया कहलाती है। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - प्रातीत्यिकी और सामन्तोपनिपातिकी। प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - जीव सम्बन्धी निन्दा और प्रशंसा सुन कर उस पर रागद्वेष करने से लगने वाली क्रिया जीव प्रातीत्यिकी और अजीव सम्बन्धी निन्दा और प्रशंसा सुन कर उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर राग द्वेष करने से लगने वाली क्रिया अजीव प्रातीत्यिकी है। इसी प्रकार सामन्तोपनिपातिकी क्रिया के भी दो भेद हैं। जैसे कि किसी रूपवान् और बलवान् सांड को तथा सुन्दर रथ आदि को देख कर लोग उसकी प्रशंसा करते हैं उसे सुन कर उसका स्वामी खुश होता है उससे लगने वाली क्रिया जीव सामन्तोपनिपातिकी और अजीव सामन्तोपनिपातिकी कहलाती है।

विवेचन - आरम्भिकी - पृथ्वीकाय आदि छह काया रूप जीव तथा अजीव के आरम्भ से लगने वाली क्रिया को आरम्भिकी क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं - १. जीव आरम्भिकी - छह काया के जीवों का उपमर्दन एवं आरंभ करने से २. अजीव आरम्भिकी - जीव रहित शरीर आटे आदि के बनाये हुए जीव की आकृति के पदार्थ या वस्त्र आदि के आरम्भ करने से लगने वाली क्रिया आरम्भिकी क्रिया है।

पारिग्रहिकी - 'परिग्रहो धर्मोपकरणवर्जवस्तुस्वीकारः, धर्मोपकरणमूर्च्छा च, स प्रयोजनं यस्याः सा पारिग्रहिकी।'

अर्थ - धर्मोपकरण जो धर्म की साधना के लिये रखे जाते हैं उनको छोड़ कर अन्य समस्त पर-पदार्थ परिग्रह है। धर्मोपकरणों पर ममता होना भी परिग्रह है। मूर्च्छा-ममत्व भाव से लगने वाली क्रिया - 'पारिग्रहिकी' है। इसके भी दो भेद हैं - १. जीव पारिग्रहिकी - कुटुम्ब, परिवार, दास, दासी, गाय भैंसादि चतुष्पद, शुक (तोता) आदि पक्षी, धान्य फल आदि स्थावर जीवों को ममत्व भाव से अपनाना २. अजीव पारिग्रहिकी - सोना, चांदी, मकान, वस्त्र, आभूषण, शयन आदि अजीव वस्तुओं पर ममत्व भाव रखना पारिग्रहिकी क्रिया है।

माया प्रत्ययिकी - सरलता का भाव न होना - कुटिलता का होना माया है। क्रोध, मान, माया और लोभ के निमित्त से लगने वाली क्रिया माया प्रत्ययिकी है। इसके दो भेद हैं - १. आत्मभाव वञ्चनता - हृदय की कुटिलता - अन्तर में कुछ और तथा बाहर में कुछ और इस प्रकार आत्मा में ठगाई के भाव होना २. परभाव वञ्चनता - खोटे तोल, नाप आदि से दूसरों को हानि पहुँचाना, विश्वास जमा कर ठग लेना आदि माया प्रत्ययिकी क्रिया है।

मिथ्यादर्शन प्रत्यया - जीव को अजीव, अजीव को जीव, धर्म को अधर्म, अधर्म को धर्म, साधु को असाधु, असाधु को साधु समझना इत्यादि विपरीत श्रद्धान से तथा तत्त्व में अश्रद्धान आदि से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया है। इसके दो भेद हैं - १. न्यूनाधिक मिथ्यादर्शन प्रत्यया - श्री जिनेश्वर देव के कथन से कम अथवा अधिक श्रद्धान करना और २. तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्यया- आत्मा का अस्तित्व ही नहीं मानना अथवा न्यूनाधिक मानना रूप मिथ्यात्व और जीव को अजीव, अजीव को जीव आदि खोटी मान्यता रखना। इसमें अन्य सभी प्रकार के मिथ्यात्व का समावेश हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिजा (दृष्टिका) - रागद्वेष से कलुषित चित्त पूर्वक किसी जीव या अजीव पदार्थ को देखने से जो क्रिया लगती है उसे दृष्टिजा (दृष्टिका) कहते हैं।

स्पृष्टिजा (स्पृष्टिका) **पृष्टिजा** (पृष्टिका) - रागादि से कलुषित चित्त पूर्वक जीव अजीव के स्पर्श से लगने वाली क्रिया स्पृष्टिजा (स्पृष्टिका) कहलाती है। अथवा मलिन भावना से जो प्रश्न किया जाता है उसे पृष्टिजा (पृष्टिका) कहते हैं। जीव और अजीव के भेद से यह क्रिया भी दो प्रकार की होती है।

प्रातीत्यिकी - जीव और अजीव रूप बाह्य वस्तु के आश्रय से उत्पन्न राग द्वेष और उससे होने वाली क्रिया प्रातीत्यिकी कहलाती है।

सामन्तोपनिपातिकी - जीव और अजीव वस्तुओं के किये हुए संग्रह को देख कर लोग प्रशंसा करे और उस प्रशंसा को सुन कर हर्षित होना। इस प्रकार बहुत से लोगों के द्वारा अपनी प्रशंसा सुन कर हर्षित होने से यह क्रिया लगती है। यह भी जीव और अजीव के भेद से दो प्रकार की होती है।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - साहत्थिया चेव, णेसत्थिया चेव । साहत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - जीवसाहत्थिया चेव, अजीवसाहत्थिया चेव। एवं णेसत्थिया वि। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आणवणिया चेव, वेयारणिया चेव। आणवणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - जीव आणवणिया चेव, अजीव आणवणिया चेव। एवं वेयारणिया वि। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा- अणाभोगवत्तिया चेव, अणवकंखवत्तिया चेव। अणाभोगवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - अणाउत्त आइयणया चेव, अणाउत्तपमज्जणया चेव। अणवकंखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - आयसरीर अणवकंखवत्तिया चेव, परसरीर अणवकंखवत्तिया चेव। दो किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव। पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - मायावत्तिया चेव, लोभवत्तिया चेव। दोसवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - कोहवत्तिया चेव, माणवत्तिया चेव॥ १५॥

कठिन शब्दार्थ - साहत्थिया - स्वहस्तिकी, **णेसत्थिया** - नैसृष्टिकी, **आणवणिया** - आज्ञापनी (आनायनी), **वेयारणिया** - वैदारिणी, **अणाभोगवत्तिया** - अनाभोगप्रत्यया, **अणवकंखवत्तिया** - अनवकांक्षाप्रत्यया, **अणाउत्तआइयणया** - *अनायुक्त आदानता*, ***अणाउत्तपमज्जणया***-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनायुक्त प्रमार्जनता, **आयसरीरअणववकंखवत्तिया** - आत्म शरीर अनवकांक्षा प्रत्यया, **परसरीर-अणववकंखवत्तिया** - परशरीर अनवकांक्षा प्रत्यया, **लोभवत्तिया** - लोभ प्रत्यया, **कोहवत्तिया** - क्रोध प्रत्यया, **माणवत्तिया** - मान प्रत्यया।

भावार्थ - दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - अपने हाथ से बनाई हुई वस्तु के द्वारा होने वाले आरम्भ से लगने वाली क्रिया स्वहस्तिकी और किसी वस्तु को फेंकने से लगने वाली क्रिया नैसृष्टिकी है। स्वहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - जीवस्वहस्तिकी यानी अपने हाथ में पकड़े हुए जीव से किसी दूसरे जीव को मारने से लगने वाली क्रिया और अपने हाथ में ग्रहण किये हुए अजीव तलवार आदि से जीव को मारने से लगने वाली क्रिया अजीवस्वहस्तिकी है। इसी प्रकार नैसृष्टिकी क्रिया के भी दो भेद हैं। जैसे कि - राजा की आज्ञा से यन्त्र द्वारा जल को कुएं आदि से बाहर निकालना जीव नैसृष्टिकी क्रिया है और धनुष से बाण को फेंकना अजीव नैसृष्टिकी क्रिया है। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - आज्ञा देने से लगने वाली क्रिया आज्ञापनी अथवा किसी को लाने से लगने वाली क्रिया आनायनी और विदारण यानी छेदन भेदन से लगने वाली क्रिया वैदारिणी। आज्ञापनी या आनायनी क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - जीव आज्ञापनी या जीव आनायनी और अजीव आज्ञापनी या अजीव आनायनी। इसी प्रकार वैदारिणी क्रिया के भी दो भेद हैं। यथा - जीव वैदारिणी और अजीव वैदारिणी। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - अनाभोग प्रत्यया यानी बिना उपयोग से होने वाला कर्मबन्ध और स्वशरीर की अपेक्षा बिना लगने वाली क्रिया अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया है। अनाभोग प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - अनायुक्त आदानता यानी बिना उपयोग वस्त्रादि को ग्रहण करने से लगने वाली क्रिया और अनायुक्तप्रमार्जनता यानी बिना उपयोग पात्रादि को पूंजने से लगने वाली क्रिया। अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है यथा - अपने शरीर को हानि पहुँचाने का कार्य करने से लगने वाली क्रिया आत्मशरीर अनवकांक्षा प्रत्यया और दूसरों के शरीर को हानि पहुंचाने का कार्य करने से लगने वाली क्रिया परशरीर अनवकांक्षा प्रत्यया कहलाती है। दो क्रियाएं कही गई हैं यथा - प्रेम से लगने वाली क्रिया प्रेम प्रत्यया और द्वेष से लगने वाली क्रिया द्वेष प्रत्यया। प्रेम प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है जैसे कि माया से लगने वाली क्रिया मायाप्रत्यया और लोभ से लगने वाली क्रिया लोभप्रत्यया। द्वेष प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है जैसे कि क्रोध से लगने वाली क्रिया क्रोधप्रत्यया और मान से लगने वाली क्रिया मानप्रत्यया कहलाती है।

विवेचन - अपने हाथ में ग्रहण किए हुए जीव को मारने पीटने रूप तथा अपने हाथ में ग्रहण किये हुए जीव से दूसरे जीव को मारने पीटने रूप क्रिया स्वहस्तिकी कहलाती है। इसके दो भेद हैं- १. जीव स्वहस्तिकी और २. अजीव स्वहस्तिकी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैसृष्टिकी - किसी वस्तु को फैंकने से होने वाली क्रिया नैसृष्टिकी कहलाती है। इसके दो भेद हैं - १. जीव नैसृष्टिकी - खटमल यूका आदि को पटक देने, फैंकने या फव्वारे से जल छोड़ने आदि से होने वाली क्रिया और २. अजीव नैसृष्टिकी - बाण फैंकने, लकड़ी शस्त्र आदि फैंकने से होने वाली क्रिया।

आज्ञापनिकी (आनायनी) - किसी की आज्ञा से जीव अथवा अजीव को लाने से अथवा दूसरे के द्वारा मंगवाने से जो क्रिया लगती है उसे आज्ञापनिकी या आनायनी क्रिया कहते हैं।

वैदारिणी - विदारण करने से लगने वाली क्रिया - जीव और अजीव पदार्थों को चीरने फाडने से अथवा खोटी वस्तु को असली-अच्छी बतलाने से जो क्रिया लगती है उसे वैदारिणी कहते हैं। अथवा विचारणिका - जीव और अजीव के व्यवहार-लेन देन में दो व्यक्तियों को समझा कर सौदा पटाने रूप (दलाल की तरह) या किसी को ठगने के लिए किसी वस्तु की प्रशंसा करने से लगने वाली क्रिया विचारणिका कहलाती है।.

अनाभोग प्रत्यया - अनजानपने से उपयोग शून्यता से होने वाली क्रिया। इसके दो भेद हैं - १. अनायुक्त आदानता - बिना उपयोग से वस्त्र पात्र आदि को ग्रहण करने और रखने रूप २. अनायुक्त अप्रमार्जनता - असावधानी से प्रतिलेखना प्रमार्जना करने से लगने वाली क्रिया।

अनवकांक्षा-प्रत्यया - हिताहित की उपेक्षा से लगने वाली क्रिया अनवकांक्षा प्रत्यया कहलाती है। इसके दो भेद हैं - १. आत्मशरीर अनवकांक्षा प्रत्यया - अपने हित की अपेक्षा नहीं रख कर अपने शरीर आदि को हानि पहुँचाने रूप और २. पर शरीर अनवकांक्षाप्रत्यया - परहित की अपेक्षा नहीं रखकर दूसरों को हानि पहुँचाने रूप। अथवा इस लोक और परलोक की परवाह नहीं कर के दोनों लोक बिगाड़ने रूप क्रिया।

प्रेम प्रत्यया - राग से लगने वाली क्रिया। इसके दो भेद हैं - १. माया प्रत्यया और २. लोभ प्रत्यया।

द्वेष प्रत्यया - द्वेष से लगने वाली क्रिया। इसके दो भेद हैं - १. क्रोध से लगने वाली क्रिया क्रोध प्रत्यया और २. मान से लगने वाली क्रिया मान प्रत्यया कहलाती है।

दुविहा गरिहा पण्णत्ता तंजहा - मणसा वेगे गरहइ, वयसा वेगे गरहइ। अहवा गरिहा दुविहा पण्णत्ता तंजहा - दीहं वेगे अद्धं गरहइ, रहस्सं वेगे गरहइ। दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते तंजहा - मणसा वेगे पच्चक्खाइ, वयसा वेगे पच्चक्खाइ। अहवा पच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - दीहं वेगे अद्धं पच्चक्खाइ, रहस्सं वेगे अद्धं पच्चक्खाइ। दोहिं ठाणेहिं अणगारे संपण्णे अणाइयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं वीइवएज्जा, तंजहा - विज्जाए चेव चरणेण चेव॥ १६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **गरिहा** - गर्हा, **एगे** - कितनेक, **गरहइ** - गर्हा (निंदा) करता है, **पच्चक्खाणे**- प्रत्याख्यान, **पच्चक्खाइ** - प्रत्याख्यान करता है, **दीहं** - दीर्घ, **अद्धं** - काल तक, **रहस्सं**- ह्रस्व, **संपण्णे**- संपन्न, **अणाइयं** - अनादि, **अणवयग्गं** - अनवदग्र-अनन्त, **दीहमद्धं** - दीर्घ मार्ग वाले, **चाउरंत** - चार अंत वाले, **संसार कंतारं** - संसार रूप कान्तार (अरण्य) वन को, **वीइवएज्जा** - अतिक्रमण कर जाता है-पार कर जाता है, **विज्जाए** - विद्या-ज्ञान से, **चरणेण** - चारित्र से।

भावार्थ - स्वकृत पाप की गुरु के सामने निन्दा करना गर्हा है। वह दो प्रकार की कही गई है यथा - कितनेक पुरुष मन से ही पाप की निन्दा करते हैं और कितनेक पुरुष केवल वचन से ही अपने पाप की निन्दा करते हैं अथवा दूसरे प्रकार से गर्हा दो प्रकार की कही गई है जैसे कि कितनेक पुरुष दीर्घ काल तक अर्थात् लम्बे समय तक अपने पाप की निन्दा करते हैं और कितनेक ह्रस्व यानी अल्प काल तक अपने पाप की निन्दा करते हैं। प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि - कितनेक पुरुष मन से ही पाप का प्रत्याख्यान - त्याग करते हैं और कितनेक पुरुष वचन से ही प्रत्याख्यान करते हैं। अथवा दूसरे प्रकार से प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि कितनेक पुरुष दीर्घ काल के लिए यानी यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं और कितनेक पुरुष ह्रस्व यानी थोड़े समय के लिये प्रत्याख्यान करते हैं। विद्या से यानी ज्ञान से और चारित्र से, इन दो स्थानों से यानी गुणों से सम्पन्न - युक्त अनगार - साधु अनादि अनन्त दीर्घ काल वाले अथवा दीर्घ मार्ग वाले चार अन्त यानी नरकादि गति रूप चार विभाग वाले संसार रूप कान्तार (अरण्य) वन को अतिक्रमण कर जाता है यानी पार कर जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विवेचन - दुष्कृत (खराब) आचरण की निन्दा गर्हा कहलाती है। स्व और पर के भेद से गर्हा दो प्रकार की होती है अथवा द्रव्य और भाव से गर्हा के दो भेद हैं। मिथ्यादृष्टि और उपयोग रहित सम्यगदृष्टि जीव के द्रव्य गर्हा होती है। और उपयोग युक्त सम्यग्दृष्टि जीव के भाव गर्हा होती है। यहां साधन (करण) की अपेक्षा गर्हा के दो भेद कहे हैं - १. मानसिक गर्हा और २. वाचिक गर्हा। कोई मन से स्वकृत पाप की निन्दा करता है और कोई वचन से निन्दा करता है। मन और वचन की गर्हा की अपेक्षा से टीकाकार ने चार भंग किये हैं - १. एक मन से गर्हा करता है वचन से नहीं २. एक वचन से गर्हा करता है मन से नहीं ३. एक मन से भी गर्हा करता है और वचन से भी गर्हा करता है ४. एक मन से भी गर्हा नहीं करता और वचन से भी गर्हा नहीं करता है।

काल की अपेक्षा सूत्रकार ने गर्हा के दो भेद किये हैं - १. दीर्घकालीन गर्हा और २. अल्पकालीन गर्हा। प्रत्याख्यान का अर्थ बतलाते हुए टीकाकार ने कहा है -

"प्रमादप्रातिकूल्येन मर्यादयाख्यानं-कथनं प्रत्याख्यानं, विधि-निषेध विषया प्रतिज्ञेत्यर्थः"

अर्थ - मर्यादापूर्वक पाप कर्म न करने की तथा भगवान् की आज्ञा पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा को प्रत्याख्यान कहा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्हा की तरह ही प्रत्याख्यान के दो-दो भेद कहे हैं।

विद्या (ज्ञान) और चारित्र मोक्ष का साधन है। कहा भी है - **'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः'** ज्ञान और क्रिया ही मोक्ष प्रदायक है। चारित्र के बिना ज्ञान पंगु है और ज्ञान के बिना चारित्र अन्धा है। तत्त्वार्थ सूत्र के रचनाकार उमास्वाति ने **"सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः"** सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को मोक्ष मार्ग बताया है। सम्यक् तप का ग्रहण सम्यक् चारित्र में हो जाता है और सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का ग्रहण ज्ञान में हो जाता है। इस तरह विद्या और चरण मोक्ष के उपाय हैं।

संसार के लिए भगवान् ने **'अणाइयं'** आदि विशेषण लगाये हैं जिनका अर्थ इस प्रकार है -

अणाइयं - अनादि अर्थात् जिसका आदि प्रारम्भ न हो अथवा **अणाइयं** - अज्ञातिक अर्थात् जिसका कोई स्वजन नहीं रहता, ऐसे पाप कर्म बांधता है अथवा **अणाइयं** यानी 'ऋणातीत' अर्थात् ऋण से होने वाले दुःख की अपेक्षा अधिक दुःखदायी। अथवा **'अणाइयं'** यानी अणातीत अर्थात् अतिशय पाप।

अणवयग्गं-अनवदग्र - यानी अनन्त अर्थात् जिसका परिमाण ज्ञात न हो, जिसके अन्त का पता न चले, उसे अनन्त कहते हैं।

दीहमद्धं - अध्व का अर्थ है - मार्ग और दीह का अर्थ है दीर्घ (लम्बा), जिसका मार्ग लम्बा हो वह **'दीहमद्धं'** कहलाता है। अथवा दीर्घकाल वाले को **'दीहमद्धं'** कहते हैं।

चाउरंतं - चाउरंतं का अर्थ है - चार विभाग वाला। नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। इस प्रकार जिसमें चार विभाग वह चाउरन्त - चातुरन्त कहलाता है।

ज्ञान और चारित्र से संपन्न अनगार अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले, चार विभाग वाले संसार रूप कान्तार (अरण्य) वन को पार कर जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए तंजहा - आरंभे चेव परिग्गहे चेव। दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलं बोहिं बुज्झेज्जा तंजहा - आरंभे चेव परिग्गहे चेव। दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा तंजहा- आरंभे चेव परिग्गहे चेव। एवं णो केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा। णो केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा। णो केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा। णो केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा। एवं सुयणाणं, ओहिणाणं, मणपज्जवणाणं, केवलणाणं॥ १७॥

कठिन शब्दार्थ - **ठाणाइं** - स्थानों को, **अपरियाणित्ता** - जाने बिना और छोड़े बिना, **आया**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा, **केवलिपण्णत्तं** - केवलि प्ररूपित, **धम्मं** - धर्म को, **सवणयाए** - श्रवण करने के लिये, **णो**- नहीं, **लभेज्जा** - प्राप्त कर सकता है, **आरंभे** - आरंभ, **परिग्गहे** - परिग्रह, **केवलं** - केवल-शुद्ध, **बोहिं** - बोधि-सम्यक्त्व को, **बुज्झेज्जा** - प्राप्त कर सकता है, **मुंडे** - मुण्ड, **भवित्ता** - हो कर, **अगाराओ** - अगार अर्थात् घर से एवं गृहस्थावास से निकल कर, **अणगारियं** - अनगारपने-साधुपने को, **पव्वइज्जा** - अंगीकार कर सकता है, **बंभचेरवासं** - ब्रह्मचर्यवास में, **आवसेज्जा** - बस सकता है, **संजमेणं** - संयम से, **संजमेज्जा** - संयमित कर सकता है। **संवरेणं** - संवर से, **संवरेज्जा** - संवृत कर सकता है, **आभिणिबोहियणाणं** - आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान), **उप्पाडेज्जा** - उत्पन्न कर सकता है, **सुयणाणं** - श्रुतज्ञान, **ओहिणाणं** - अवधिज्ञान, **मणपज्जवणाणं** - मनःपर्यवज्ञान, **केवलणाणं** - केवलज्ञान को।

भावार्थ - आरम्भ और परिग्रह के स्वरूप को ज्ञपरिज्ञा से यथावत् जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से छोड़े बिना ग्यारह बातों की प्राप्ति नहीं हो सकती है सो बतलाया जाता है - १. आरम्भ और परिग्रह, इन दो स्थानों को जानकर छोड़े बिना आत्मा केवलिप्ररूपित धर्म को श्रवण करने के लिये प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् सुन नहीं सकता है। २. आरम्भ और परिग्रह, इन दो स्थानों को जानकर छोड़े बिना आत्मा केवल यानी शुद्ध बोधि यानी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है। ३. आरम्भ और परिग्रह, इन दो स्थानों को जानकर छोड़े बिना आत्मा द्रव्य मुण्ड और भाव मुण्ड होकर गृहस्थावास से निकल कर शुद्ध अनगारपने को यानी साधुपने को अङ्गीकार नहीं कर सकता है। ४. इसी प्रकार आरम्भ और परिग्रह को जानकर छोड़े बिना आत्मा शुद्ध ब्रह्मचर्यवास में नहीं बस सकता है अर्थात् शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता है। ५. शुद्ध संयम से अपनी आत्मा को संयमित नहीं कर सकता अर्थात् शुद्ध संयम का पालन नहीं कर सकता है। ६. शुद्ध संवर से आस्रवद्वारों को संवृत नहीं कर सकता है यानी आस्रवों को नहीं रोक सकता है। ७. शुद्ध आभिनिबोधिक यानी मतिज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता है। ८. इसी प्रकार श्रुतज्ञान, ९. अवधिज्ञान, १०. मनःपर्यवज्ञान और ११. केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता है अर्थात् इन शुद्ध पांच ज्ञानों को प्राप्त नहीं कर सकता है।

विवेचन - हिंसा आदि सावद्य कार्य आरम्भ है। मूर्च्छा (ममता) को परिग्रह कहते हैं। धर्म साधन के लिए रखे हुए उपकरण को छोड़ कर सभी धन धान्य आदि ममता के कारण होने से परिग्रह है। यही कारण है कि धन धान्य आदि बाह्य परिग्रह माने गये हैं और मूर्च्छा (ममत्व-गृद्धि भाव) आभ्यन्तर परिग्रह माने गये हैं।

आरम्भ और परिग्रह को ज्ञ परिज्ञा से जान कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोड़े बिना जीव को इन ग्यारह बोलों की प्राप्ति नहीं होती है - १. केवली प्ररूपित धर्म नहीं सुन सकता है २. सम्यक्त्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त नहीं कर सकता है। ३. गृहस्थावस्था का त्याग कर साधुपने को अंगीकार नहीं कर सकता है ४. शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता है ५. शुद्ध संयम का पालन नहीं कर सकता है ६. आस्रवों को नहीं रोक सकता है ७-११ पांच ज्ञानों (१. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्यवज्ञान और ५. केवलज्ञान) को प्राप्त नहीं कर सकता है।

दो ठाणाइं परियाणित्ता आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए तंजहा - आरंभे चेव परिग्गहे चेव एवं जाव केवलणाणं उप्पाडेज्जा। दोहिं ठाणेहिं आया लभेज्ज सवणयाए तंजहा - सोच्चा चेव अभिसमिच्चा चेव जाव केवलणाणं उप्पाडेज्जा॥ १८॥

कठिन शब्दार्थ - **सोच्चा** - सुन कर, **अभिसमिच्चा** - जान कर एवं श्रद्धा कर।

भावार्थ - आरम्भ और परिग्रह, इन दो स्थानों के स्वरूप को जानकर और छोड़कर आत्मा केवलिप्ररूपित धर्म को सुन सकता है। इसी प्रकार यावत् सम्यक्त्व, मुण्डपना, ब्रह्मचर्य, संयम, संवर, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है। दो स्थानों से आत्मा केवलिप्ररूपित धर्म को श्रवण कर सकता है जैसे कि - सुन कर और उस पर श्रद्धा करके अर्थात् शास्त्रश्रवण और श्रद्धा, इन दो कारणों से आत्मा को धर्मश्रवण यावत् केवलज्ञान, इन उपरोक्त ग्यारह बातों की प्राप्ति हो सकती है।

विवेचन - आरंभ और परिग्रह को ज्ञ परिज्ञा से जान कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागने वाला जीव १. केवली प्ररूपित धर्म सुनने २. बोधि प्राप्त करने ३. गृहस्थावास छोड़ कर साधु होने ४. ब्रह्मचर्य पालन करने ५. विशुद्ध संयम पालन करने ६. संवर प्राप्त करने ७. शुद्ध मतिज्ञान ८. श्रुतज्ञान ९. अवधिज्ञान १०. मनःपर्यवज्ञान और ११. केवलज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है। शास्त्र श्रवण कर और उस पर श्रद्धा करके जीव को इन ११ बोलों की प्राप्ति हो सकती है।

दो समाओ पण्णत्ताओ तंजहा - उस्सप्पिणी समा चेव, ओसप्पिणी समा चेव। दुविहे उम्माए पण्णत्ते तंजहा जक्खावेसे चेव मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं, तत्थ णं जे से जक्खावेसे से णं सुहवेयतराए चेव, सुहविमोयतराए चेव, तत्थ णं जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं से णं दुहवेयतराए चेव दुहविमोयतराए चेव। दो दंडा पण्णत्ता तंजहा - अट्ठादंडे चेव, अणट्ठादंडे चेव। णेरइयाणं दो दंडा पण्णत्ता तंजहा-अट्ठादंडे चेव, अणट्ठादंडे चेव। एवं चउवीसं दंडओ जाव वेमाणियाणं ॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **समाओ** - समा-काल, **दुविहे** - दो प्रकार का, **उम्माए** - उन्माद, **जक्खावेसे**- यक्षावेश, **मोहणिजस्स कम्मस्स** - मोहनीय कर्म के, **उदएणं** - उदय से, **सुहवेयतराए**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुख पूर्वक वेदन किया जा सकता है, **सुह विमोयतराए** - उससे मुक्त होना सहज है, **दुहवेयतराए** - वेदन करना कठिन है, **दुहविमोयतराए** - मुक्त होना कठिन है, **अट्ठादंडे** - अर्थ दण्ड, **अणट्ठादंडे** - अनर्थ दण्ड।

भावार्थ - भरत और ऐरवत क्षेत्र में दो प्रकार का काल कहा गया है जैसे कि उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल। दो प्रकार का उन्माद कहा गया है जैसे कि यक्षावेश अर्थात् व्यन्तर आदि किसी देवकृत और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला। इन में जो यक्षावेश से होने वाला उन्माद है वह सुखपूर्वक वेदन किया जा सकता है और उससे मुक्त होना भी सहज ही है किन्तु इनमें जो उन्माद मोहनीय कर्म के उदय से होता है उसका वेदन करना कठिन है और उससे मुक्त होना भी बड़ा कठिन है। दो दण्ड कहे गये हैं जैसे कि अर्थ दण्ड और अनर्थ दण्ड। नैरयिक जीवों में दो दण्ड कहे गये हैं यथा-अर्थ दण्ड और अनर्थदण्ड। इसी प्रकार वैमानिक देवों तक चौबीस दण्डकों में दो दण्डक कहे गये हैं।

विवेचन - दण्ड के दो भेद हैं-१. अर्थदण्ड और २. अनर्थ दण्ड। अपने और दूसरे के लिए त्रस और स्थावर जीवों की जो हिंसा होती है उसे अर्थदण्ड कहते हैं। बिना किसी प्रयोजन के जीव जो हिंसा रूप कार्य करता है, वह अनर्थदण्ड है। चौबीस ही दण्डकों के जीवों में ये दो दण्डक कहे गये हैं।

बुद्धि का विपरीतपना अर्थात् बौद्धिक अस्वस्थता को उन्माद कहते हैं। दो प्रकार का उन्माद कहा है - १. यक्षावेश - देवकृत अर्थात् शरीर में व्यन्तर आदि देव के प्रवेश से होने वाला उन्माद और २. मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला उन्माद।

दुविहे दंसणे पण्णत्ते तंजहा - सम्मदंसणे चेव, मिच्छादंसणे चेव। सम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - णिसग्गसम्मदंसणे चेव, अभिगमसम्मदंसणे चेव। णिसग्गसम्म दंसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पडिवाई चेव, अपडिवाई चेव। अभिगमसम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पडिवाई चेव, अपडिवाई चेव। मिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - अभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव अणभिग्गहिय मिच्छादंसणे चेव। अभिग्गहिय मिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सपज्जवसिए चेव, अपज्जवसिए चेव। एवं अणभिग्गहिय मिच्छादंसणे वि॥ २०॥

कठिन शब्दार्थ - **दंसणे** - दर्शन, **सम्मदंसणे** - सम्यग्-दर्शन, **मिच्छादंसणे** - मिथ्यादर्शन, **णिसग्गसम्मदंसणे** - निसर्ग सम्यग् दर्शन, **अभिगमसम्मदंसणे** - अभिगम सम्यग् दर्शन, **पडिवाई** - प्रतिपाती, **अपडिवाई** - अप्रतिपाती, **अभिग्गहिय मिच्छादंसणे** - आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणभिगगहिय मिच्छादंसणे - अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन, **सपज्जवसिए** - सपर्यवसित-अन्तसहित, **अपज्जवसिए**- अपर्यवसित-अन्तरहित।

भावार्थ - दर्शन दो प्रकार का कहा गया है यथा - सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन। सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है यथा - निसर्ग सम्यग्दर्शन यानी स्वभाव से ही जिनोक्त वचनों में रुचि होना मरुदेवी माता के समान और अभिगम यानी गुरु के उपदेश आदि से जिनोक्त वचनों में रुचि होना अभिगम सम्यग्दर्शन है भरतादि के समान। निसर्ग सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि प्रतिपाती यानी प्राप्त होकर फिर चला जाय ऐसा औपशमिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और अप्रतिपाती यानी एक बार प्राप्त होने के बाद फिर वापिस न जाने वाला ऐसा क्षायिक सम्यक्त्व। मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है यथा - आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन और अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन। आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि सपर्यवसित यानी जिसका अन्त है ऐसा, भव्य जीवों का और अपर्यवसित यानी अन्त रहित अभव्य जीवों का। इसी प्रकार अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन के भी सपर्यवसित और अपर्यवसित ये दो भेद होते हैं।

विवेचन - दर्शन अर्थात् तत्त्व विषयक रुचि। दर्शन के दो भेद हैं - १. सम्यग्दर्शन - तत्त्वार्थ श्रद्धान् को सम्यग्दर्शन कहते हैं अर्थात् मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय उपशम या क्षयोपशम से आत्मा में जो परिणाम होता है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। २. मिथ्यादर्शन - मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से अदेव में देव बुद्धि और अधर्म में धर्म बुद्धि आदि रूप आत्मा के विपरीत श्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहते हैं।

सम्यग्दर्शन के दो भेद हैं - १. निसर्ग सम्यग्दर्शन - पूर्व क्षयोपशम के कारण बिना गुरु उपदेश के स्वभाव से ही श्रद्धा होना निसर्ग सम्यग्दर्शन है। जैसे मरुदेवी माता। २. अभिगम सम्यग्दर्शन - गुरु आदि के उपदेश से अथवा अंग उपांग आदि के अध्ययन से जीवादि तत्त्वों पर रुचि-श्रद्धा होना अभिगम सम्यग्दर्शन है। प्रतिपाति (पडिवाई) और अप्रतिपाति के भेद से निसर्ग सम्यग्दर्शन एवं अभिगम सम्यग्दर्शन के दो दो भेद होते हैं।

मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा है - १. आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन - तत्त्व की परीक्षा किये बिना ही पक्षपातपूर्वक एक सिद्धांत (पक्ष) का आग्रह करना और अन्य पक्षों का खण्डन करना आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन है। २. अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन - गुणदोष की परीक्षा किये बिना ही सब पक्षों को बराबर समझना अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन है। सपर्यवसित और अपर्यवसित के भेद से आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन और अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन के दो-दो भेद होते हैं।

दुविहे णाणे पण्णत्ते तंजहा - पच्चक्खे चेव परोक्खे चेव। पच्चक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - केवलणाणे चेव णो केवलणाणे चेव। केवलणाणे दुविहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते तंजहा - भवत्थकेवलणाणे चेव, सिद्धकेवलणाणे चेव। भवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा-सजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। सजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढम समय सजोगि भवत्थ-केवलणाणे चेव, अपढमसमयसजोगि भवत्थकेवलणाणे चेव। अहवा चरम-समयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अचरमसमयसजोगि भवत्थकेवलणाणे चेव। एवंअजोगिभवत्थकेवलणाणे वि। सिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - अणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव परंपरसिद्ध केवलणाणे चेव। अणंतरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - एक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्ध केवलणाणे चेव। परंपरसिद्ध केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - एक्क परंपरसिद्ध केवलणाणे चेव, अणेक्कपरंपरसिद्ध केवलणाणे चेव। णो केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - ओहिणाणे चेव, मणपज्जवणाणे चेव । ओहिणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा-भवपच्चइए चेव, खओवसमिए चेव। दोण्हं भवपच्चइए पण्णत्ते तंजहा - देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव। दोण्हं खओवसमिए पण्णत्ते तंजहा - मणुस्साणं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। मणपज्जवणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - उज्जुमइ चेव, विउलमइ चेव। परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - आभिणिबोहियणाणे चेव, सुयणाणे चेव। आभिणिबोहियणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सुयणिस्सिए चेव, असुयणिस्सिए चेव। सुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते तंजहा- अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव। असुयणिस्सिए वि एमेव। सुयणाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - अंगपविट्ठे चेव, अंगबाहिरे चेव। अंगबाहिरे दुविहे पण्णत्ते तंजहा- आवस्सए चेव, आवस्सयवइरित्ते चेव। आवस्सयवइरित्ते दुविहे पण्णत्ते तंजहा - कालिए चेव, उक्कालिए चेव॥ २१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णाणे** - ज्ञान, **पच्चक्खे** - प्रत्यक्ष, **परोक्खे** - परोक्ष, **णोकेवलणाणे** - नो केवलज्ञान, **भवत्थकेवलणाणे** - भवस्थ केवलज्ञान, **सिद्धकेवलणाणे** - सिद्ध केवलज्ञान, **पढमसमय सजोगि भवत्थकेवलणाणे** - प्रथम समय सयोगी भवस्थ केवल ज्ञान, **अपढम समय सजोगि भवत्थ केवल णाणे** - अप्रथम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान, **अणंतरसिद्ध केवलणाणे**- अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान, **परंपरसिद्ध केवलणाणे** - परम्परा सिद्ध केवलज्ञान, **एक्काणंतरसिद्ध**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवलणाणे - एकानन्तर सिद्ध केवलज्ञान, **अणेक्काणंतर सिद्ध केवलणाणे** - अनेकानन्तरसिद्ध-केवलज्ञान, **भवपच्चइए** - भव प्रत्यय, **खओवसमिए** - क्षायोपशमिक, **उज्जुमइ** - ऋजुमति, **विउलमइ**- विपुलमति, **सुयणिस्सिए** - श्रुतनिश्रित, **असुयणिस्सिए** - अश्रुत निश्रित, **अत्थोग्गहे** - अर्थावग्रह, **वंजणोग्गहे** - व्यञ्जनावग्रह, **अंगपविट्ठे** - अंगप्रविष्ट, **अंगबाहिरे** - अंग बाह्य, **आवस्सए**- आवश्यक, **आवस्सयवइरित्ते** - आवश्यक व्यतिरिक्त, **कालिए** - कालिक, **उक्कालिए** - उत्कालिक।

भावार्थ - ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि प्रत्यक्ष यानी पांच इन्द्रियाँ और मन की सहायता के बिना पदार्थों को जानने वाला ज्ञान और परोक्ष यानी पांच इन्द्रियाँ और मन की सहायता से पदार्थों को जानने वाला ज्ञान। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। जैसे कि केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान। केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि भवस्थ केवलज्ञान और मोक्ष स्थित सिद्ध भगवान् का केवलज्ञान। भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है यथा - सयोगिभवस्थ केवलज्ञान यानी तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली का केवलज्ञान और अयोगिभवस्थकेवलज्ञान यानी चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली का केवलज्ञान। सयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि जिस सयोगी केवली को केवलज्ञान उत्पन्न हुए अभी एक समय ही हुआ है वह प्रथम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान और जिस सयोगी केवली को केवलज्ञान उत्पन्न हुए एक समय से अधिक समय हो गया है वह अप्रथमसमय सयोगिभवस्थ केवलज्ञान। अथवा सयोगिभवस्थकेवलज्ञान के दूसरी तरह से दो भेद बतलाये जाते हैं। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली का अन्तिम समय का केवलज्ञान वह चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अचरमसमय सयोगिभवस्थकेवलज्ञान। इसी प्रकार अयोगिभवस्थकेवलज्ञान के भी भेद समझना चाहिए। सिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि जिसको सिद्ध हुए अभी एक समय ही हुआ है वह अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान और जिसको सिद्ध हुए एक समय से अधिक हो गया है। वह परम्परासिद्धकेवलज्ञान। अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि एक समय में एक ही सिद्ध हो वह एकानन्तरसिद्ध केवलज्ञान और एक समय में अनेक सिद्ध हो वह अनेकानन्तरसिद्ध केवलज्ञान। परम्परासिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि एक समय में जो एक ही सिद्ध हुआ हो वैसे का केवलज्ञान एक परम्परा सिद्ध केवलज्ञान और अनेक परम्परासिद्ध केवलज्ञान। नोकेवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान। अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि भवप्रत्यय-जिस अवधिज्ञान के होने में भव ही कारण हो उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं और क्षायोपशमिक-ज्ञान तप आदि कारणों से जो अवधिज्ञान होता है उसे क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते हैं। देव और नैरयिक इन दोनों को भवप्रत्यय अवधिज्ञान यानी जन्म से मरण तक रहने वाला ही अवधिज्ञान होता है ऐसा कहा गया है अर्थात् देवता और नारकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को इन दो गतियों में उत्पन्न होते समय जितना अवधिज्ञान होता है उतना ही उनकी आयु पूर्ण होने तक बना रहता है घटता बढ़ता नहीं। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दोनों को कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला क्षायोपशमिक अवधिज्ञान होता है। मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि मन में चिन्तित पदार्थ को सामान्य रूप से जानना वह ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान और मन में चिन्तित पदार्थ को विशेष रूप से जानना वह विपुलमति मनःपर्यवज्ञान। परोक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि आभिनिबोधिक ज्ञान यानी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। आभिनिबोधिक ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित। श्रुतनिश्रित दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। इसी प्रकार अश्रुतनिश्रित के भी अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह ये दो भेद हैं। श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि अङ्ग प्रविष्ट आचाराङ्ग आदि और अङ्ग बाह्य उत्तराध्ययन आदि। अङ्ग बाह्य श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि अवश्य करने योग्य सामायिक आदि छह आवश्यक रूप और आवश्यक व्यतिरिक्त। आवश्यक व्यतिरिक्त दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि कालिक यानी दिन और रात्रि के पहले पहर और अन्तिम पहर में जिन सूत्रों को पढ़ने की आज्ञा हैं वे कालिकश्रुत हैं, जैसे उत्तराध्ययन आदि और जिन सूत्रों को पढ़ने में समय की मर्यादा निश्चित नहीं है अर्थात् अस्वाध्याय के समय को टाल कर दिन रात में किसी भी समय पढ़े जा सकने वाले सूत्र उत्कालिक कहलाते हैं, जैसे दशवैकालिक आदि।

विवेचन - वस्तु के विशेष धर्म को जानना ज्ञान कहलाता है। ज्ञान दो प्रकार का कहा है -

१. प्रत्यक्ष - इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना साक्षात् आत्मा से जो ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष ज्ञान है जैसे अवधि ज्ञान, मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान।

२. परोक्ष - इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो वह परोक्ष ज्ञान है। जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। अथवा जो ज्ञान अस्पष्ट हो (विशद न हो) उसे परोक्षज्ञान कहते हैं जैसे स्मरण, प्रत्यभिज्ञान आदि।

मति आदि ज्ञान की अपेक्षा बिना त्रिकाल एवं त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् हस्तामलकवत् जानना केवल ज्ञान है। केवलज्ञान दो प्रकार का कहा है-१. भवस्थ केवलज्ञान-तेरहवें चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली का केवलज्ञान २. सिद्ध केवलज्ञान-मोक्ष स्थित सिद्ध भगवान् का केवल ज्ञान।

नो केवलज्ञान के दो भेद हैं - **१. अवधिज्ञान** - इन्द्रिय और मन के सहायता के बिना द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की मर्यादा पूर्वक जो ज्ञान रूपी पदार्थों को जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

२. मनः पर्यवज्ञान - इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मर्यादा को लिए हुए संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानना मनः पर्यवज्ञान है।

अवधिज्ञान के दो भेद हैं - **१. भवप्रत्यय अवधिज्ञान** - जिस अवधिज्ञान के होने में भव ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण हो उसे भव प्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं। जैसे - नारकी और देवताओं को जन्म से ही अवधिज्ञान होता है, **२. क्षायोपशमिक अवधिज्ञान** - ज्ञान, तप आदि कारणों से मनुष्य और तिर्यंचों को जो अवधिज्ञान होता है उसे क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते हैं। इसे गुण द्रव्य या लब्धि प्रत्यय भी कहा जाता है।

मनःपर्यवज्ञान के दो भेद हैं -

१. ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान - दूसरे के मन में सोचे हुए भावों को सामान्य रूप से जानना ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान है। जैसे अमुक व्यक्ति ने घड़ा लाने का विचार किया है।

२. विपुलमति मनःपर्यवज्ञान - दूसरे के मन में सोचे हुए पदार्थ के विषय में विशेष रूप से जानना विपुलमति मनःपर्यवज्ञान है। जैसे अमुक ने जिस घडे को लाने का विचार किया है वह घडा अमुक रंग का अमुक आकार वाला और अमुक समय में बना है। इत्यादि विशेष पर्यायों अवस्थाओं को जानना।

परोक्षज्ञान के दो भेद हैं - १. आभिनिबोधिक ज्ञान और २. श्रुतज्ञान।

१. आभिनिबोधिक ज्ञान - पांचों इन्द्रियों और मन के द्वारा योग्य देश में रहे हुए पदार्थ का जो ज्ञान होता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान या मतिज्ञान कहलाता है।

२. श्रुतज्ञान - शास्त्रों को सुनने और पढने से इन्द्रिय और मन के द्वारा जो ज्ञान हो वह श्रुतज्ञान है। अथवा मतिज्ञान के बाद में होने वाले एवं शब्द तथा अर्थ का विचार करने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे 'घट' शब्द सुनने पर उसके बनाने वाले का उसके रंग और आकार आदि का विचार करना।

आभिनिबोधिकज्ञान दो प्रकार का कहा गया है - **१. श्रुतनिश्रित** - श्रुत के आश्रित जो ज्ञान है वह श्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है। अर्थावग्रह आदि रूप ज्ञान श्रुतनिश्रित है, **२. अश्रुतनिश्रित** - मतिज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम से औत्पत्तिकी आदि बुद्धि रूप जो ज्ञान उत्पन्न होता है अथवा श्रोत्रेन्द्रिय आदि से होने वाला ज्ञान अश्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान है।

श्रुतनिश्रित के दो भेद हैं - **१. अर्थावग्रह** - पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को अर्थावग्रह कहते हैं अर्थावग्रह में पदार्थ के वर्ण, गन्ध आदि का ज्ञान होता है। इसकी स्थिति एक समय की है।

२. व्यञ्जनावग्रह - अर्थावग्रह से पहले होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है अर्थात् अर्थावग्रह से पहले होने वाला अत्यन्त अस्पष्ट ज्ञान व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। दर्शन के बाद व्यञ्जनावग्रह होता है। यह चक्षु और मन को छोड़ कर शेष चार इन्द्रियों से ही होता है। इसकी जघन्य स्थिति आवलिका के असंख्यातवें भाग की है और उत्कृष्ट दो से नौ श्वासोच्छ्वास तक है।

श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है - **१. अंगप्रविष्ट-श्रुतज्ञान** - जिन आगमों में गणधरों ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर भगवान् के उपदेश को ग्रथित किया है उन आगमों को अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञान कहते हैं। आचारांग आदि बारह अंगों का ज्ञान अंगप्रविष्ट् श्रुतज्ञान है।

२. अंग बाह्य श्रुतज्ञान - द्वादशांगी के बाहर का शास्त्रज्ञान अंगबाह्य श्रुतज्ञान कहलाता है। जैसे दशवैकालिक आदि। अंग बाह्य के दो भेद हैं -

१. आवश्यक - जो अवश्य करने योग्य है वह आवश्यक कहलाता है जैसा कि कहा है -

समणेण सावएण य अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।

अंतो अहो णिसस्स य, तम्हा आवस्सयं णामं॥

अर्थ - साधु, साध्वी और श्रावक, श्राविका के लिये दिन और रात्रि के अंत में जो कारण से अवश्य करने योग्य है वह आवश्यक कहलाता है। आवश्यक के सामायिक आदि छह भेद हैं।

२. आवश्यक व्यतिरिक्त - आवश्यक से जो भिन्न है वह आवश्यक व्यतिरिक्त कहलाता है। आवश्यक व्यतिरिक्त के दो भेद है - **१. कालिक श्रुत** - दिन और रात्रि के प्रथम और अंतिम प्रहर में जिन सूत्रों को पढ़ने की आज्ञा है वे कालिक श्रुत कहलाते हैं। जैसे - उत्तराध्ययन आदि **२. उत्कालिक श्रुत** - जिन आगमों को पढने में समय की मर्यादा निश्चित नहीं है अर्थात् जो अस्वाध्याय के समय को टाल कर किसी भी समय पढ़े जा सकते हैं वे उत्कालिक श्रुत कहलाते हैं जैसे दशवैकालिक सूत्र आदि।

दुविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा - सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव। सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सुत्तसुयधम्मे चेव, अत्थसुयधम्मे चेव। चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - अगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव। दुविहे संजमे पण्णत्ते तंजहा- सरागसंजमे चेव, वीयरागसंजमे चेव। सराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा- सुहुमसंपराय सरागसंजमे चेव, बायरसंपराय सरागसंजमे चेव। सुहुमसंपराय सरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय सुहुमसंपराय सरागसंजमे चेव, अपढमसमय सुहुमसंपराय सरागसंजमे चेव। अहवा चरमसमय सुहुमसंपराय सरागसंजमे चेव, अचरमसमय सुहुमसंपराय सरागसंजमे चेव। अहवा सुहुमसंपराय सरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - संकिलेसमाणए चेव, विसुज्झमाणए चेव। बायरसंपराय सरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय बायरसंपराय सरागसंजमे चेव, अपढमसमय बायरसंपराय सरागसंजमे चेव। अहवा चरमसमय बायरसंपराय सरागसंजमे अचरमसमयबायर संपराय सरागसंजमे चेव। अहवा बायर संपराय सरागसंजमे दुविहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते तंजहा - पडिवाई चेव, अपडिवाई चेव। वीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा- उवसंतकसाय वीयरागसंजमे चेव, खीणकसाय वीयरागसंजमे चेव। उवसंतकसाय वीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय उवसंतकसाय वीयरागसंजमे चेव, अपढमसमय उवसंतकसाय वीयरागसंजमे चेव। अहवा चरमसमय उवसंत कसाय वीयरागसंजमे चेव, अचरमसमय उवसंत कसाय वीयरागसंजमे चेव। खीण-कसायवीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे चेव, केवलिखीणकसाय वीयराग संजमे चेव। छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सयंबुद्ध छउमत्थखीणकसाय वीयरागसंजमे चेव, बुद्धबोहिय छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे चेव। सयंबुद्ध छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय सयंबुद्ध छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे चेव, अपढमसमय सयंबुद्ध छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे चेव। अहवा चरमसमय सयंबुद्ध छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे चेव, अचरमसमय सयंबुद्ध छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे चेव। बुद्धबोहिय छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय बुद्धबोहिय छउमत्थखीणकसाय वीयरागसंजमे, अपढमसमय बुद्धबोहिय छउमत्थखीणकसाय वीयराग संजमे। अहवा चरमसमय बुद्धबोहिय छउमत्थखीण कसाय वीयराग संजमे, अचरमसमय बुद्धबोहिय छउमत्थखीण कसाय वीयराग संजमे। केवलिखीणकसाय वीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सजोगिकेवलिखीणकसाय वीयराग संजमे, अजोगि-केवलिखीणकसाय वीयराग संजमे। सजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय सजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे, अपढमसमय सजोगिकेवलिखीणकसाय वीयराग संजमे। अहवा चरमसमय सजोगि-केवलिखीणकसाय वीयराग संजमे, अचरमसमय सजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे। अजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे दुविहे पण्णत्ते तंजहा- पढमसमय अजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे, अपढमसमय अजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे। अहवा चरमसमय अजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे, *अचरमसमय अजोगिकेवलि खीणकसाय वीयराग संजमे॥ २२॥*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - धम्मे - धर्म, **सुयधम्मे** - श्रुतधर्म, **चरित्तधम्मे** - चारित्रधर्म, **अगारचरित्तधम्मे**- अगार-गृहस्थ चारित्र धर्म, **अणगारचरित्तधम्मे** - अनगार चारित्र धर्म, **सुहुम संपराय सराग संजमे**- सूक्ष्म संपराय सराग संयम, **बायरसंपराय सराग संजमे** - बादर संपराय सराग संयम, **संकिलेसमाणए**- संक्लिश्यमान, **विसुज्झमाणए** - विशुद्ध्यमान, **उवसंत कसाय वीयराग संजमे** - उपशांत कषाय वीतराग संयम, **सयंबुद्ध छउमत्थ खीणकसाय वीयराग संजमे** - स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम, **बुद्धबोहियछउमत्थ खीणकसाय वीयराग संजमे** - बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम, **चरम समय सजोगी केवली खीणकसाय वीयराग संजमे** - चरम समय सयोगी केवली क्षीण कषाय वीतराग संयम, **अपढम समय अजोगी केवलि खीण कसाय वीयराग संजमे** - अप्रथम समय अयोगी केवली क्षीण कषाय वीतराग संयम।

भावार्थ - दुर्गति में जाते हुए जीवों की दुर्गति से रक्षा करके सुगति में पहुँचावे वह धर्म कहलाता है, वह धर्म दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि श्रुतधर्म यानी द्वादशाङ्गी रूप सिद्धान्त और चारित्रधर्म - पालन किया जाने वाला व्रतादि रूप। श्रुतधर्म दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि सूत्र रूप श्रुतधर्म और अर्थरूप श्रुतधर्म। चारित्र धर्म दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों का पालन करने रूप गृहस्थचारित्र धर्म और गृहस्थावास को छोड़ कर पांच महाव्रत आदि का पालन करने रूप अनगार चारित्र धर्म। संयम यानी अनगार चारित्र धर्म दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि सराग संयम और वीतराग संयम। सरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि सूक्ष्म संज्वलन कषाय जिसमें रहता है ऐसे दसवें गुणस्थानवर्ती साधु का संयम सूक्ष्म संपराय सरागसंयम और बादर कषाय जिसमें रहता है यानी छठे से नवें गुणस्थान तक के जीवों का संयम बादर सम्पराय सरागसंयम। सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान को प्राप्त हुए जिसे अभी एक ही समय हुआ है वह प्रथम समय सूक्ष्म सम्पराय सरागसंयम और सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान को प्राप्त हुए जिसे एक समय से अधिक समय हो गया है, वह अप्रथम समय सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम। अथवा सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम के दूसरी तरह से दो भेद हैं जैसे कि चरम समय सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम यानी सूक्ष्म सम्पराय नामक दसवें गुणस्थान का अन्तिम समय और अचरम समय सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम। अथवा सूक्ष्मसम्पराय सराग संयम के दूसरी तरह से दो भेद कहे गये हैं जैसे कि उपशम श्रेणी से गिरते हुए जीव का जो सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम है वह संक्लिश्यमान कहलाता है और उपशम श्रेणी में चढ़ते हुए जीव का सूक्ष्मसम्पराय सराग संयम विशुद्ध्यमान कहा जाता है। बादर सम्पराय सरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - प्रथम समय बादर सम्पराय सराग संयम और अप्रथम समय बादर सम्पराय सराग संयम अथवा चरम समय बादर सम्पराय सराग संयम और अचरम समय बादर सम्पराय सराग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम। अथवा बादर सम्पराय सराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा उपशम श्रेणी वाले जीव का संयम प्रतिपाती और क्षपक श्रेणी वाले जीव का संयम अप्रतिपाती। वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा उपशान्त कषाय वीतराग संयम यानी ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव का संयम और क्षीण कषाय वीतराग संयम यानी बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव का संयम। उपशान्त कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा जिस जीव को ग्यारहवें गुणस्थान में गये सिर्फ एक समय हुआ है उसका संयम प्रथम समय उपशान्त कषाय वीतराग संयम और जिस जीव को ग्यारहवें गुणस्थान में गये एक समय से अधिक समय हो गया है उसका संयम अप्रथम समय उपशान्त कषाय वीतराग संयम। अथवा चरम समय उपशान्त कषाय वीतराग संयम और अचरम समय उपशान्त कषाय वीतराग संयम। क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम और केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम। छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा गुरु के उपदेश के बिना ही जातिस्मरण आदि ज्ञान से स्वयं प्रतिबोध पाकर कषायों को क्षीण करने वालों का संयम स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम और गुरु के उपदेश से प्रतिबोध प्राप्त करके कषायों को क्षीण करने वालों का संयम बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम। स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा- प्रथम समय स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग और अप्रथम समय स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम। अथवा चरम समय स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम और अचरम समय स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम। बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - प्रथम समय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम और अप्रथम समय बुद्धबोधित छद्मस्थ कषाय वीतराग संयम। अथवा चरम समय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम और अचरम समय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग संयम। केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - सयोगि केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम और अयोगि केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम। सयोगि केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - प्रथम समय सयोगि केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम और अप्रथम समय सयोगि केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम। अथवा चरम समय सयोगि केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम और अचरम समय सयोगि केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम। अयोगी केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है यथा - प्रथमसमय अयोगी केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम और अप्रथम समय अयोगी केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम। अथवा चरम समय अयोगी केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम और अचरम समय अयोगी केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणी को धारण करे और सुगति में पहुँचावे, उसे धर्म कहते हैं। जैसा कि कहा है -

दुर्गतौ पततो जीवान्, यस्माद् धारयते ततः।

धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद् धर्मः इति स्मृतः।।

अर्थ - दुर्गति में जाते हुए जीवों की रक्षा करके उनको शुभ स्थान में स्थापित करे उसे धर्म कहते हैं।

अथवा - **वत्थु सहावो धम्मो, खंती पमुहो दसविहो धम्मो।**

जीवाणं रक्खणं धम्मो, रयणतयं च धम्मो॥

अर्थ - १. वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। २. क्षमा, निर्लोभता आदि दस लक्षण रूप धर्म है। ३. जीवों की रक्षा करना - बचाना यह भी धर्म है। ४. सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय को भी धर्म कहते हैं। अर्थात् जिस अनुष्ठान या कार्य से निःश्रेयस-कल्याण की प्राप्ति हो वही धर्म है। धर्म के दो भेद हैं - १. श्रुतधर्म और २ चारित्र धर्म।

१. श्रुतधर्म - अंग उपांग रूप वाणी को श्रुतधर्म कहते हैं। वाचना, पृच्छना आदि स्वाध्याय के भेद भी श्रुत धर्म कहलाते हैं।

२. चारित्र धर्म - कर्मों के नाश करने की चेष्टा चारित्र धर्म है। मूल गुण और उत्तर गुणों के समूह को चारित्र धर्म कहते हैं अर्थात् क्रिया रूप धर्म ही चारित्र धर्म है।

श्रुतधर्म के दो भेद हैं - **१. सूत्र श्रुत धर्म** - द्वादशांगी और उपांग आदि के मूल पाठ को सूत्र श्रुतधर्म कहते हैं। **२. अर्थ श्रुत धर्म** - द्वादशांगी और उपांग आदि के अर्थ को अर्थ श्रुत धर्म कहते हैं।

चारित्र धर्म के दो भेद हैं - **१. अगार चारित्र धर्म** - अगारी (श्रावक) के देश विरति धर्म को अगार चारित्र धर्म कहते हैं। **२. अनगार चारित्र धर्म** - अनगार (साधु) के सर्व विरति धर्म को अनगार चारित्र धर्म कहते हैं। सर्वविरति रूप धर्म में तीन करण तीन योग से त्याग होता है।

चारित्र धर्म (संयम) दो प्रकार का कहा है - १. सराग संयम और २. वीतराग संयम।

१. सराग संयम - जो मायादि रूप स्नेह से युक्त है वह सराग, राग सहित जो संयम है वह सराग संयम कहलाता है। **२. वीतराग संयम** - जो राग रहित है वह वीतराग, वीतराग का जो संयम है वह वीतराग संयम कहलाता है।

सराग संयम दो प्रकार का कहा गया है - १. सूक्ष्म संपराय सराग संयम और २. बादर सम्पराय सराग संयम। सम्पराय का अर्थ कषाय होता है। जिस संयम में सूक्ष्म संपराय अर्थात् संज्वलन लोभ का सूक्ष्म अंश रहता है उसे सूक्ष्म संपराय सराग संयम कहते हैं। अर्थात् दसवें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानवर्ती साधु का संयम सूक्ष्म सराग संयम कहलाता है। बादर कषाय जिसमें रहता है ऐसे छठे से नवें गुणस्थान तक के जीवों का संयम, बादर सम्पराय सराग संयम कहलाता है। क्षपक श्रेणी एवं उपशम श्रेणी पर चढने वाले साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने से उनका सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम विशुद्ध्यमान कहलाता है। उपशम श्रेणी से गिरते हुए साधु के परिणाम संक्लेश युक्त होते हैं इसलिये उनका सूक्ष्म संपराय सराग संयम संक्लिश्यमान कहलाता है।

जिस समय संयम की प्राप्ति होती है वह प्रथम समय और शेष द्वितीय आदि समय अप्रथम समय कहलाते हैं। उपशम श्रेणी वाले जीवों का संयम प्रतिपाती और क्षपक श्रेणी वाले जीवों का संयम अप्रतिपाती होता है। ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव का संयम उपशान्त कषाय वीतराग संयम कहलाता है और बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव का संयम क्षीण कषाय वीतराग संयम कहलाता है।

दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता तंजहा - सुहुमा चेव, बायरा चेव। एवं जाव दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता तंजहा - सुहुमा चेव बायरा चेव। दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता तंजहा पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। एवं जाव वणस्सइकाइया। दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता तंजहा - परिणया चेव, अपरिणया चेव। एवं जाव वणस्सइकाइया। दुविहा दव्वा पण्णत्ता तंजहा - परिणया चेव, अपरिणया चेव। दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता तंजहा - गइसमावण्णगा चेव, अगइसमावण्णगा चेव। एवं जाव वणस्सइकाइया। दुविहा दव्वा पण्णत्ता तंजहा - गइसमावण्णगा चेव, अगइसमावण्णगा चेव। दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता तंजहा - अणंतरोवगाढा चेव, परंपरोवगाढा चेव। जाव दव्वा॥ २३॥

कठिन शब्दार्थ - **सुहुमा** - सूक्ष्म, **बायरा** - बादर, **पज्जत्तगा** - पर्याप्तक, **अपज्जत्तगा** - अपर्याप्तक, **परिणया** - परिणत, **अपरिणया** - अपरिणत, **दव्वा** - द्रव्य, **गइसमावण्णगा** - गति समापन्नक, **अगइसमावण्णगा** - अगति समापन्नक, **अणंतरोवगाढा** - अनन्तरावगाढ, **परंपरोवगाढा**- परम्परावगाढ।

भावार्थ - पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सूक्ष्म और बादर। इसी प्रकार अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सूक्ष्म और बादर। पृथ्वीकायिक जीवों के दूसरी तरह से दो भेद कहे गये हैं यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक यावत् वनस्पतिकायिक तक जीवों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो दो भेद जानना चाहिए। पृथ्वीकायिक जीवों के दूसरी तरह से दो भेद कहे गये हैं यथा परिणत यानी शस्त्र लग कर जो अचित्त हो गये हैं और अपरिणत अर्थात्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचित्त। इसी प्रकार अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीवों के भी परिणत और अपरिणत ये दो दो भेद जानने चाहिए। द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - परिणत अर्थात् जो एक पर्याय को छोड़ कर दूसरी पर्याय को प्राप्त हो गये हैं और अपरिणत अर्थात् जो विवक्षित पर्याय वाले हैं। पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं जैसे कि गतिसमापन्नक अर्थात् विग्रहगति से पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने के लिए जाने वाले और अगतिसमापन्नक अर्थात् स्वकाय में स्थित रहने वाले। इसी प्रकार अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीवों के दो दो भेद जानना चाहिए। द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं यथा-गतिसमापन्नक अर्थात् गमन करने वाले और अगतिसमापन्नक अर्थात् स्थित रहने वाले। पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं जैसे कि जिन जीवों ने उत्पन्न होकर अभी तुरन्त आकाश प्रदेशों का अवगाहन किया है वे अनन्तरावगाढ है और आकाशप्रदेशों का अवगाहन किये जिन्हें दो तीन समय हो गये हैं वे परम्परावगाढ हैं। इसी तरह अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक यावत् द्रव्यों तक प्रत्येक के अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ ये दो दो भेद जानने चाहिए।

विवेचन - पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है वे पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। सूक्ष्म और बादर पर्याप्त और अपर्याप्त, परिणत और अपरिणत के भेदों से पृथ्वीकायिक जीवों के दो-दो भेद कहे हैं।

सूक्ष्म-सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जिन जीवों का शरीर अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् इन्द्रिय ग्राही न हो, मात्र अतिशय ज्ञानियों द्वारा जिनका ग्रहण हो, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म जीव सर्व लोक में व्याप्त है।

बादर - बादर नाम कर्म के उदय से बादर अर्थात् स्थूल शरीर वाले एवं पांचों इन्द्रियों में से किसी इन्द्रिय से जो अवश्य ग्राही होते हैं। वे जीव बादर कहलाते हैं।

पर्याप्तक - जिस ज़ीव में जितनी पर्याप्तियाँ संभव है। वह जब उतनी पर्याप्तियों को पूरी कर लेता है तब उसे पर्याप्तक कहते हैं। एकेन्द्रिय जीव स्व योग्य चार पर्याप्तियाँ पूरी करने पर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पांच पर्याप्तियाँ पूरी करने पर और संज्ञी पंचेन्द्रिय छह पर्याप्तियाँ पूरी करने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं।

प्रश्न - पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - पर्याप्ति यानी शक्ति - सामर्थ्य विशेष। यह शक्ति पुद्गल द्रव्य के उपचय से उत्पन्न होती है। पर्याप्ति छह प्रकार की होती है - १. आहार २. शरीर ३. इन्द्रिय ४. श्वासोच्छ्वास ५. भाषा और ६ मन। इसमें एकेन्द्रिय में आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी पंचेन्द्रिय में पांच और संज्ञी पंचेन्द्रिय में छह पर्याप्तियाँ होती हैं।

अपर्याप्तक - जिस जीव की पर्याप्तियाँ पूरी न हों वह अपर्याप्तक कहा जाता है। जीव तीन पर्याप्तियों को पूर्ण करके ही मरते हैं, पहले नहीं। क्योंकि जीव आगामी भव की आयु बांध कर ही मृत्यु प्राप्त करते हैं और आयु का बन्ध उन्हीं जीवों को होता है जिन्होंने आहार, शरीर और इन्द्रिय, ये तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणत - जो स्व काय शस्त्र अथवा पर काय शस्त्र आदि से भिन्न परिणाम को प्राप्त हुए हैं अर्थात् अचित्त हो गये हैं उन्हें 'परिणत' कहते हैं।

अपरिणत - जो शस्त्र परिणत नहीं हुए हैं अर्थात् सचित्त हैं वे अपरिणत कहलाते हैं।

गति समापन्नक - अर्थात् गमन करने वाले और **अगति समापन्नक** - अर्थात् स्थित रहने वाले।

अनन्तरावगाढ - अनन्तर-वर्तमान समय में जो किसी आकाश प्रदेश में रहे हुए हैं उन्हें अनन्तरावगाढ कहते हैं। अथवा विवक्षित क्षेत्र या द्रव्य की अपेक्षा अंत रहित रहे हुए अनंतरावगाढ कहलाते हैं।

परम्परावगाढ - आकाश देश में रहे हुए जिनको दो आदि समय हुए हैं उन्हें परम्परावगाढ कहते हैं अथवा जो अंतर सहित रहे हुए हैं वे परम्परावगाढ कहलाते हैं।

दुविहे काले पण्णत्ते तंजहा - ओसप्पिणी काले चेव, उस्सप्पिणी काले चेव। दुविहे आगासे पण्णत्ते तंजहा - लोगागासे चेव, अलोगागासे चेव। णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव, अब्भंतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए। एवं देवाणं भाणियव्वं। पुढविकाइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव, अब्भंतरए कम्मए, बाहिरए ओरालिए, जाव वणस्सइकाइयाणं। बेइंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता तंजहा - अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव, अब्भंतरए कम्मए, अट्ठिमंससोणियबद्धे बाहिरए ओरालिए, जाव चउरिंदियाणं। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - अब्भंतरए चेव, बाहिरए चेव, अब्भंतरए कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारु छिराबद्धे बाहिरए ओरालिए। मणुस्साण वि एवं चेव। विग्गहगइ समावण्णगाणं णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - तेयए चेव, कम्मए चेव, णिरंतरं जाव वेमाणियाणं। णेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया तंजहा-रागेण चेव, दोसेण चेव। जाव वेमाणियाणं। णेरइयाणं दुट्ठाण णिव्वत्तिए सरीरगे पण्णत्ते तंजहा-रागणिव्वत्तिए चेव, दोसणिव्वत्तिए चेव, जाव वेमाणियाणं। दो काया पण्णत्ता तंजहा-तसकाए चेव, थावरकाए चेव। तसकाए दुविहे पण्णत्ते तंजहा - भवसिद्धिए चेव, अभवसिद्धिए चेव, एवं थावरकाए वि॥ २४॥

कठिन शब्दार्थ - **लोगागासे** - लोकाकाश, **अलोगागासे** - अलोकाकाश, **अब्भंतरए** - आभ्यंतर, **बाहिरए** - बाह्य (बाहरी), **कम्मए** - कार्मण नाम कर्म के उदय से बना हुआ, **वेउव्विए** - वैक्रिय, **ओरालिए** - औदारिक, **अट्ठिमंससोणिय बद्धे** - हड्डी मांस लोहू से युक्त, **छिरा बद्धे**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिरा से बंधा हुआ, **विग्गहगइसमावण्णगाणं** - विग्रह गति समापन्नक, **णिरंतरं** - निरन्तर, **रागेण** - राग से, **दोसेण** - दोष से, **सरीरुप्पत्ती** - शरीर की उत्पत्ति, **दुट्ठाण णिव्वत्तिए** - दो कारणों से निर्वर्तित, **रागणिव्वत्तिए** - राग निर्वर्तित, **दोस णिव्वत्तिए** - दोष निर्वर्तित, **भवसिद्धिए** - भवसिद्धिक, **अभवसिद्धिए** - अभवसिद्धिक।

भावार्थ - काल दो प्रकार का कहा गया है यथा - अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल। आकाश दो प्रकार का कहा गया है यथा - लोकाकाश और अलोकाकाश। नैरयिक जीवों के दो शरीर कहे गये हैं यथा - आभ्यन्तर यानी जीव प्रदेशों के साथ क्षीरनीर की तरह मिला हुआ तैजस और कार्मण। बाह्य - बाहरी यानी जीव प्रदेशों के साथ न मिला हुआ ऐसा वैक्रिय शरीर। आभ्यंतर शरीर कार्मण नामकर्म के उदय से बना हुआ होता है जो संसारी जीवों के सदा साथ लगा रहता है और बाहरी वैक्रियशरीर। इसी प्रकार देवों के लिए भी कहना चाहिए। पृथ्वीकायिक जीवों के दो शरीर कहे गये हैं यथा - आभ्यन्तर और बाहरी। आभ्यन्तर शरीर तैजस कार्मण और बाहरी औदारिक शरीर नामकर्म के उदय से बना हुआ हाड मांस युक्त औदारिक शरीर। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक दो दो शरीर हैं। बेइन्द्रिय जीवों के दो शरीर कहे गये हैं यथा - आभ्यन्तर और बाहरी। आभ्यन्तर शरीर तैजस कार्मण और बाहरी शरीर हड्डी, मांस, लोहू से युक्त औदारिक शरीर। यावत् तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों के भी इसी प्रकार जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों के दो शरीर कहे गये हैं यथा - आभ्यन्तर और बाहरी। आभ्यन्तर शरीर तैजस कार्मण हैं और बाहरी शरीर हड्डी, मांस, रुधिर नाड़ी और शिरा से बंधा हुआ औदारिक शरीर है। मनुष्यों के भी इसी तरह का शरीर जानना चाहिए। विग्रह गति में रहे हुए नैरयिक जीवों के दो शरीर कहे गये हैं यथा - तैजस और कार्मण। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डकों में ये दोनों शरीर निरन्तर रहते हैं। राग से और द्वेष से इन दो कारणों से नैरयिकों के शरीर की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक के जीवों के शरीर की उत्पत्ति राग और द्वेष से होती है। नैरयिक जीवों का शरीर दो कारणों से निर्वर्तित यानी पूर्ण होता है ऐसा कहा गया है जैसे कि राग निर्वर्तित और द्वेष निर्वर्तित। यावत् वैमानिक देवों तक इसी प्रकार जानना चाहिए। दो काया कही गई है यथा - त्रसकाय और स्थावरकाय। त्रसकाय दो प्रकार की कही गई है यथा - भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक। इसी प्रकार स्थावरकाय के भी भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक ये दो भेद हैं। शरीर की रचना का आरम्भ होना उत्पत्ति कहलाती है और शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का पूर्ण हो जाना निर्वर्तना कहलाती है।

विवेचन - जो प्रतिक्षण चय(वृद्धि) और अपचय(हानि) से जीर्ण शीर्ण होता है, नाश को प्राप्त करता है। जो सडन गलन आदि स्वभाव से अनुकंपन रूप है जिसका निर्माण शरीर नामकर्म के उदय से होता है, उसे शरीर कहते हैं। शरीर शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"शीर्यतेऽनुक्षणं चयापचयाभ्यां विनश्यतीति शरीरं तदेव शटनादिधर्म-तयाऽनुकम्पितत्वाच्छरीरम्।"

जिनेश्वर भगवंतों ने दो प्रकार के शरीर कहे हैं - १. आभ्यंतर और २. बाह्य। जो शरीर आत्म प्रदेशों के साथ क्षीर नीर की तरह एकीभूत होता है और जो भवान्तर में भी जीव के साथ रहता है उसे आभ्यन्तर शरीर कहते हैं। तैजस् और कार्मण ये दो शरीर आभ्यंतर हैं। जो आत्म प्रदेशों के साथ किसी अवयव की अपेक्षा अव्याप्त है भवान्तर में साथ नहीं जाता है और अतिशय ज्ञान आदि से जीवों के लिए प्रत्यक्ष होने से बाह्य शरीर है। औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर बाह्य शरीर हैं। नारकी और देवों के आभ्यंतर कार्मण शरीर और बाह्य वैक्रिय शरीर होता है। कार्मण शरीर नाम कर्म के उदय से जो सभी कर्मों के लिए आधार रूप है तथा संसारी जीवों के लिए अन्य गतियों में जाने के लिए जो सहायक है वह शरीर कार्मण वर्गणा स्वरूप है। कर्म ही कर्मक-कार्मण है। कार्मण शरीर के कथन से तैजस् शरीर का भी ग्रहण हो जाता है क्योंकि ये एक दूसरे के बिना नहीं होते हैं अर्थात् ये दोनों शरीर सदैव साथ रहते हैं। पृथ्वीकाय आदि पांच दंडकों के जीवों में बाह्य औदारिक शरीर है और आभ्यंतर तैजस् कार्मण शरीर है। वायुकायिक जीवों का वैक्रिय शरीर प्रायिक (कभी कभी) होने से यहाँ वैक्रिय शरीर की विवक्षा नहीं की है। इसी तरह तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के शरीर के विषय में भी जानना चाहिये। विशेषता यह है कि तीन विकलेन्द्रिय जीवों का औदारिक शरीर अस्थि, मांस और शोणित से आबद्ध होता है उसमें स्नायु और शिरा आदि नहीं होते हैं। जब कि संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों का औदारिक शरीर अस्थि, मांस, रुधिर, स्नायु और शिराओं से युक्त होता है।

जो वक्र गति से अभीष्ट स्थान पर जाता है उसे विग्रह गति समापन्नक कहते हैं। विग्रह गति में या वक्रगति में वाटे (मार्ग में) वहते जीव में दो शरीर पाये जाते हैं - तैजस् और कार्मण। इसी प्रकार चौबीस ही दण्डकों के विषय में जानना चाहिये। सांसारिक चौबीस ही दण्डकों के जीवों के शरीर की उत्पत्ति अर्थात् आरंभ और निर्वर्तना (शरीर के अवयवों का पूर्ण होना) का कारण राग और द्वेष से उत्पन्न कर्म ही है।

दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा पव्वावित्तए, पाईणं चेव उदीणं चेव। एवं मुंडावित्तए, सिक्खावित्तए, उवट्ठावित्तए, संभुंजित्तए, संवसित्तए सज्झायमुद्दिसित्तए, सज्झायं समुद्दिसित्तए, सज्झायमणुजाणित्तए, आलोइत्तए, पडिक्कमित्तए, णिंदित्तए, गरहित्तए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अकरणयाए अब्भुट्ठित्तए, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जित्तए। दो दिसाओ अभिगिज्झ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा झूसियाणं भत्तपाण पडियाइक्खित्ताणं पाओवगयाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए, तंजहा - पाईणं चेव उदीणं चेव।। २५॥

।। बीअट्ठाणस्स पढमो उद्देसओ समत्तो।।

कठिन शब्दार्थ - **दिसाओ** - दिशाओं को, **अभिगिज्झ** - स्वीकार करके, **णिग्गंथाणं** - निर्ग्रन्थ साधुओं को, **णिग्गंथीणं** - निर्ग्रन्थ साध्वियों को, **पव्वावित्तए** - प्रव्रजित करना, **पाईणं** - पूर्व दिशा, **उदीणं** - उत्तर दिशा, **मुंडावित्तए** - मुंडित-केश लोच करना, **सिक्खावित्तए** - शिक्षा देना, **उवट्ठावित्तए** - पांच महाव्रतों में स्थापित करना, **संभुंजित्तए** - साधु मण्डली में बैठ कर आहार करना, **संवसित्तए** - साथ रखना अर्थात् आसन पर बैठना, **सज्झायमुद्दिसित्तए**- स्वाध्याय प्रारम्भ करना, **सज्झायं समुद्दिसित्तए** - स्वाध्याय करते हुए सूत्रार्थ को स्थिर परिचित करना, **सज्झायमणुजाणित्तए**- सूत्रार्थ को धारण करने की आज्ञा देना, **आलोइत्तए** - आलोचना करना, **पडिक्कमित्तए** - प्रतिक्रमण करना, **णिंदित्तए** - आत्मसाक्षी से निन्दा करना, **गरहित्तए**- गर्हा करना, **विउट्टित्तए** - पापों का विच्छेदन करना, **विसोहित्तए** - आत्मा को निर्मल बनाना, **अकरणयाए अब्भुट्ठित्तए** - फिर पाप न करने की प्रतिज्ञा करना, **अहारिहं** - यथायोग्य, **पायच्छित्तं**- प्रायश्चित्त, **तवोकम्मं** - तप को, **पडिवज्जित्तए** - अंगीकार करना, **अपच्छिम मारणंतिय** - मरण के अंतिम समय में की जाने वाली, **संलेहणा** - संलेखना, **झूसणा** - सेवन करना, **झूसियाणं** - शरीर और कषाय आदि का क्षय करने की इच्छा वाले, **भत्तपाण पडियाइक्खित्ताणं** - आहार पानी का त्याग करके, **कालं** - मृत्यु की, **अणवकंखमाणाणं-इच्छा** न करने वाले, **पाओवगमाणं**-पादपोपगमन संथारा कर, **विहरित्तए**-विचरे।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी को पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओं को स्वीकार करके अर्थात् इन दो दिशाओं की तरफ मुंह करके निम्न लिखित १७ बातें करना कल्पता है। यथा - १. प्रव्रजित करना यानी दीक्षा देना, २. केशलोच करना, ३. शिक्षा देना यानी सूत्र और अर्थ पढ़ाना तथा पडिलेहणा आदि की शिक्षा देना, ४. महाव्रतों में स्थापित करना अर्थात् बड़ी दीक्षा देना, ५. साधु मण्डली में बैठ कर आहार करना, ६. आसन पर बैठना, ७. स्वाध्याय करना, ८. स्वाध्याय करते हुए सूत्रार्थ को स्थिर परिचित करना, ९. सूत्रार्थ को धारण करने की आज्ञा देना, १०. गुरु आदि के सन्मुख अपने पाप की आलोचना करना, ११. प्रतिक्रमण करना, १२. अपने पाप की आत्मसाक्षी से निन्दा करना, १३. गर्हा करना अर्थात् गुरुसाक्षी से अपने पापों की निन्दा करना, १४. अपने पापों का विच्छेदन करना, १५. पाप रूपी कीचड़ से अपनी आत्मा को निर्मल बनाना, १६. फिर पाप न करने की प्रतिज्ञा करना, १७. यथायोग्य प्रायश्चित्त और तप को अङ्गीकार करना। पूर्व और उत्तर इन दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशाओं की तरफ मुंह करके मरण के अन्तिम समय में की जाने वाली संलेखना का सेवन कर शरीर और कषायादि का क्षय करने की इच्छा वाले आहार और पानी का त्याग करके मृत्यु की इच्छा न करने वाले साधु और साध्वी को पादपोपगमन संथारा कर समाधि में स्थित रहना। उपरोक्त १८ क्रियाएं पूर्व दिशा तथा उत्तर दिशा की तरफ मुंह करके करनी चाहिए।

विवेचन - सूत्रकार ने पूर्व दिशा और उत्तर दिशा की ओर मुंह करके उपरोक्त १८ धार्मिक कियाएं करने का निर्देश किया है। पूर्व दिशा और उत्तर दिशा शुभ मानी गयी है। दीक्षा देना से लेकर एक साथ रहना ये छह बातें दीक्षा से सम्बन्धित हैं। ये छह ही बातें क्रमशः करनी चाहिए इससे यह बात स्पष्ट होती है कि बड़ी दीक्षा देने के बाद ही नवदीक्षित को एक मण्डली में बिठाकर साथ आहार पानी कराना चाहिए इसके पहले नहीं अर्थात् बड़ी दीक्षा देने से पहले नवदीक्षित का आहार पानी अलग रखना चाहिए। **'संवसित्तए'** शब्द का अर्थ तो यह है कि नवदीक्षित को साथ में रखना परन्तु इसका अभिप्राय यह है कि बड़ी दीक्षा से पहले नवदीक्षित की स्वतन्त्र गवेषणा से आहार पानी नहीं मंगवाना चाहिए। तथा उसके वस्त्रादि को अन्य साधुओं को काम में नहीं लेना चाहिए। बड़ी दीक्षा सुखशान्ति और समाधि पूर्वक सातवें दिन ही कर देनी चाहिए, यह सैद्धान्तिक उत्सर्ग मार्ग है। ध्रुव मार्ग है।

इन दो दिशाओं से साधक को विकास वृद्धि और अभ्युदय की प्रेरणा मिलती है। सभी तीर्थंकर साधना काल में उक्त दो दिशाओं के अभिमुख होकर ही साधना करते रहे हैं और केवल ज्ञान होने के बाद भी समवसरण में प्रवचन भी इन्हीं दो दिशाओं की ओर मुंह करके किया करते हैं। जिस मार्ग का प्रभु ने अनुसरण किया है वही मार्ग अनुयायियों के लिए भी प्रशस्त है।

।। इति दूसरे स्थान का पहला उद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय स्थान का दूसरा उद्देशक

जे देवा उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावण्णगा, तेसिणं देवाणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जइ तत्थ गया वि एगइया वेयणं वेयंति, अण्णत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति। णेरइयाणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जइ तत्थ गया वि एगया वेयणं वेयंति, अण्णत्थगया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि एगइया वेयणं वेयंति, जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं। मणुस्साणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जइ इहगया वि एगइया वेयणं वेयंति, अण्णत्थगया वि एगइया वेयणं वेयंति, मणुस्सवज्जा सेसा एक्कगमा॥ २६॥

कठिन शब्दार्थ - **उड्ढोववण्णगा** - ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले, **कप्पोववण्णगा** - कल्पोपपन्नक में उत्पन्न होने वाले, **विमाणोववण्णगा** - विमानोपपन्नक, **चारोववण्णगा** - ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने वाले, **चारट्ठिइया** - चारस्थितिक, **गइरइया** - गतिरतिक, **गइसमावण्णगा** - गति समापन्नक, **पावे कम्मे** - पाप कर्म, **वेयणं** - वेदन-उसका फल, **वेयंति** - भोगते हैं, **अण्णत्थगया** - दूसरे भव में जाकर, **सया** - सदा, **समियं** - समित-निरन्तर, **मणुस्सवज्जा** - मनुष्यों को छोड़ कर, **सेसा** - शेष, **एक्कगमा** - एक समान अभिलापक।

भावार्थ - जो देव ऊपर ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होते हैं। वे दो प्रकार के हैं - कल्पोपपन्न अर्थात् सौधर्म ईशान आदि देवलोकों में उत्पन्न होने वाले और विमानोत्पन्न अर्थात् ग्रैवेयक आदि देवलोकों में उत्पन्न होने वाले कल्पातीत। ज्योतिष्चक्र में उत्पन्न होने वाले देव दो तरह के हैं। यथा - चारस्थितिक यानी ढाई द्वीप से बाहर के ज्योतिषी देव जो कि एक ही जगह स्थिर रहते हैं और गतिरतिक यानी ढाई द्वीप में चलने फिरने वाले ज्योतिषी देव जो कि निरन्तर गति करते रहते हैं। उन सब देवों के सदा निरन्तर जो पापकर्म बंधता है उसका फल कितनेक देव उसी भव में भोगते हैं और कितनेक दूसरे भव में जाकर उसका फल भोगते हैं। नैरयिक जीवों को सदा निरन्तर जो पापकर्म बंधता है उसका फल कितनेक नारकी जीव उसी भव में भोगते हैं और कितनेक दूसरे भव में भी उसका फल भोगते हैं। यावत् पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि के जीवों तक इसी तरह का अभिलापक कहना चाहिए। मनुष्यों को सदा निरन्तर जो पापकर्म बंधता है उसका फल कितनेक इस भव में भी भोगते हैं और कितनेक दूसरे भव में भी उसका फल भोगते हैं। मनुष्यों को छोड़ कर बाकी सब का एक सरीखा अभिलापक है।

विवेचन - प्रथम उद्देशक के अंतिम सूत्र में पादपोपगमन अनशन का कथन किया गया है। पादपोपगमन अनशन करने वाले कितनेक जीव ऊर्ध्व लोक में वैमानिक देव रूप से उत्पन्न होते हैं। वे देव कैसे हैं ? उनके कर्म बंधन और वेदन का प्रतिपादन उपरोक्त सूत्रों में किया गया है। ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले वे ऊर्ध्वोपपन्नक देव दो प्रकार के कहे हैं - १. कल्पोपपन्नक - सौधर्म ईशान आदि देवलोक में उत्पन्न होने वाले और २. विमानोपपन्नक - ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले। विमानोपपन्नक देव कल्पातीत होते हैं। चार अर्थात् ज्योतिष चक्र क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले देव चारोपपन्नक (ज्योतिषी) कहलाते हैं। ज्योतिषी देव दो प्रकार के होते हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. **चार स्थितिक** - जिनकी चार यानी ज्योतिष्चक्र क्षेत्र में स्थिरता है वे चार स्थितिक कहलाते हैं ये ढाई द्वीप के बाहर रहते हैं।

२. **गतिरतिक** - गमन में जिनको रति है वे गतिरतिक कहलाते हैं। ये ज्योतिषी देव ढाई द्वीप में होते हैं। गतिरतिक सतत गति नहीं करने वाले भी होते हैं अतः गति समापन्नक शब्द दिया है जिसका अर्थ है - गति को विराम नहीं देने वाले अर्थात् निरंतर गति करने वाले। उपरोक्त चारों प्रकार के देवों के निरंतर कर्म का बंध होता है। जिसका फल कितनेक देव उसी भव में भोगते हैं और कितनेक देव परभव में भोगते हैं। मनुष्य को छोड़ कर शेष तेईस दण्डक के जीवों के कर्म वेदन के विषय में इसी प्रकार दो विकल्प समझना चाहिये। कुछ जीव विपाकोदय की अपेक्षा इस भव में और परभव में भी वेदना का अनुभव नहीं करते, यह विकल्प सूत्र में नहीं कहा गया है क्योंकि यहाँ दूसरे स्थान का वर्णन चल रहा है।

मनुष्यों को छोड़ कर बाकी सब के लिए समान अभिलापक कहने का यह अभिप्राय है कि दूसरे जीवों के लिए तो सूत्र में '**तत्थगया**' और '**अणत्थगया**' ऐसा पाठ है और मनुष्य के लिए '**इहगया**' और '**अणत्थगया**' ऐसा पाठ है । इस प्रकार मनुष्य के अभिलापक में पाठ का फर्क है। अथवा दूसरी तरह से भी इसका अभिप्राय समझना चाहिए कि दूसरे जीव तो इस भव में और दूसरे भव में कर्मों का फल भोगते हैं किन्तु कितनेक मनुष्य इसी भव में समस्त कर्मों का क्षय कर मोक्ष चले जाते हैं। इसलिए वे दूसरे भव में कर्मों का फल नहीं भोगते हैं।

णेरइया दुगइया दुआगइया पण्णत्ता तंजहा - णेरइए णेरइएसु उववज्जमाणे मणुस्सेहिंतो वा पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वा उववज्जेज्जा, से चेव णं से णेरइए णेरइयत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा पंचेंदियतिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा। एवं असुरकुमारा वि, णवरं से चेव णं से असुरकुमारे असुरकुमारत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छिज्जा। एवं सव्व देवा। पुढविकाइया दुगइया दुआगइया पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा णोपुढविकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा णोपुढविकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा। एवं जाव मणुस्सा॥ २७॥

कठिन शब्दार्थ - **दुगइया** - द्वि गतिक-दो गतियों में जाने वाले, **दुआगइया** - द्वि आगतिक-दो गतियों से आने वाले, **णेरइएसु**- नरकों में, **उववज्जमाणे** - उत्पन्न होता हुआ, **मणुस्सेहिंतो** - मनुष्यों से, **पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो**- पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में से, **णेरइयत्तं** - नैरयिकपने को,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विप्पजहमाणे- छोड़ता हुआ, **मणुस्सत्ताए** - मनुष्यों में, **पंचेंदियतिरिक्खजोणियत्ताए** - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में, **गच्छेज्जा**- जाता है ।

भावार्थ - नैरयिक जीव दो गति में जाते हैं और दो गति से आते हैं ऐसा भगवान् ने फरमाया है। जैसे कि नरक का आयुष्य बांधने वाला जीव नरकों में उत्पन्न होता हुआ मनुष्यों से अथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में से जाकर उत्पन्न होता है। वही नैरयिक नैरयिकपने को छोड़ता हुआ मनुष्यों में अथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में जाता है। इसी प्रकार असुरकुमारादि में भी कथन करना चाहिए किन्तु इतनी विशेषता है कि वह असुरकुमार आदि का जीव असुरकुमारपने को छोड़ कर मनुष्य भव में अथवा तिर्यञ्च योनि में जाता है। इस प्रकार बाकी सभी देवों के लिए भी कथन करना चाहिए। पृथ्वीकायिक जीव दो गति वाले और दो आगति वाले कहे गये हैं जैसे कि पृथ्वीकाय का आयुष्य बांध कर पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होता हुआ जीव पृथ्वीकाय से अथवा नो पृथ्वीकाय से अर्थात् नारकी के एक दण्डक को छोड़ कर बाकी २३ दण्डकों से आकर उत्पन्न होता है। वही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय को छोड़ कर पृथ्वीकाय में अथवा नो पृथ्वीकाय में अर्थात् देव और नारकी को छोड़ कर बाकी १० दण्डकों में जाता है। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों तक कहना चाहिए।

विवेचन - नैरयिक जीव दो गति में जाते हैं और दो गति से आते हैं। मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के जीव ही नरक में उत्पन्न होते हैं, अन्य गति के नहीं। नैरयिक जीव नैरयिकपने को छोड़ कर मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच में जाता है। इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर सभी देवों के विषय में जान लेना चाहिये अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय मर कर देव बन सकते हैं और देव मर कर मनुष्य और तिर्यंच गति में उत्पन्न हो सकते हैं। यहाँ तिर्यंच पंचेन्द्रिय नहीं कह कर केवल तिर्यंच गति कहने का आशय है - भवनपति से लेकर दूसरे ईशान देवलोक तक के देव पृथ्वी, पानी और वनस्पति में भी जन्म ले सकते हैं। इस सूत्र से यह भी सिद्ध हो जाता है कि नैरयिक मर कर नैरयिक और देव नहीं होता और देव मर कर देव और नैरयिक नहीं होता है।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - भवसिद्धिया चेव, अभवसिद्धिया चेव, जाव वेमाणिया १। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - अणंतरोववण्णगा चेव, परंपरोववण्णगा चेव, जाव वेमाणिया २। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - गइसमावण्णगा चेव, अगइसमावण्णगा चेव, जाव वेमाणिया ३। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - पढमसमयोववण्णगा चेव अपढमसमयोववण्णगा चेव, जाव वेमाणिया ४। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - आहारगा चेव अणाहारगा चेव, एवं जाव वेमाणिया ५। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - उस्सासगा चेव,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णोउस्सासगा चेव, जाव वेमाणिया ६। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - सइंदिया चेव अणिंदिया चेव, जाव वेमाणिया ७। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव, जाव वेमाणिया ८। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - सण्णी चेव, असण्णी चेव, एवं जाव पंचेंदिया सव्वे विगलिंदियवज्जा, जाव वेमाणिया (वाणमंतरा) ९।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - भासगा चेव, अभासगा चेव, एवमेगिंदियवज्जा सव्वे १०। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - सम्मदिट्ठिया चेव मिच्छदिट्ठिया चेव, एगिंदियवज्जा सव्वे ११। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - परित्तसंसारिया चेव, अणंतसंसारिया चेव, जाव वेमाणिया १२। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - संखेज्जकालसमयट्ठिइया चेव, असंखेज्जकालसमयट्ठिइया चेव, एवं पंचेंदिया एगिंदिय विगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा १३। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - सुलभबोहिया चेव, दुलभबोहिया चेव, जाव वेमाणिया १४। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - कण्हपक्खिया चेव सुक्कपक्खिया चेव, जाव वेमाणिया १५। दुविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - चरिमा चेव अचरिमा चेव, जाव वेमाणिया १६॥ २८॥

कठिन शब्दार्थ - अणंतरोववण्णगा - अनन्तरोपपन्नक-प्रथम समय के उत्पन्न, **परंपरोववण्णगा**- परम्परोपपन्नक-बहुत समय के उत्पन्न, **पढम समयोववण्णगा** - प्रथम समयोत्पन्न, **अपढम समयोववण्णगा** - अप्रथम समयोत्पन्न, **आहारगा** - आहारक, **अणाहारगा** - अनाहारक, **उस्सासगा** - उच्छ्वासक, **णोउस्सासगा** - नोच्छ्वासक, **सइंदिया** - सेन्द्रिय, **अणिंदिया** - अनिन्द्रिय, **विगलिंदियवजा** - विकलेन्द्रिय को छोड़ कर, **भासगा** - भाषक, **अभासगा** - अभाषक, **परित्तसंसारिया** - परित्त संसारी, **अणंतसंसारिया** - अनंत संसारी, **संखेज्जकालट्ठिइया** - संख्यात काल की स्थिति वाले, **असंखेज्जकालट्ठिइया** - असंख्यात काल की स्थिति वाले, **सुलभबोहिया** - सुलभबोधि, **दुलभबोहिया** - दुर्लभ बोधि, **कण्हपक्खिया** - कृष्णपाक्षिक, **सुक्कपक्खिया** - शुक्लपाक्षिक, **चरिमा** - चरम, **अचरिमा** - अचरम।

भावार्थ - अब चौबीस दण्डक के दो दो भेद बतलाये जाते हैं - नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक। यावत् वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में इसी प्रकार कहना चाहिए। नैरयिक जीव दो प्रकार के बतलाये गये हैं यथा - अनन्तरोपपन्नक यानी प्रथम समय के उत्पन्न और परम्परोपपन्नक यानी बहुत समय के उत्पन्न यावत् वैमानिक देवों तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार जानना चाहिए। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक। यावत् वैमानिक। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - प्रथम समयोत्पन्न और अप्रथमसमयोत्पन्न यावत् वैमानिक। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - आहारक और अनाहारक अर्थात् विग्रहगति में एक दो यावत् तीन समय तक आहार ग्रहण नहीं करते हैं। यावत् वैमानिक। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्तक और नोच्छ्वासक यानी उच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्तक। यावत् वैमानिक। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सेन्द्रिय यानी इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्तक और अनिन्द्रिय यानी इन्द्रिय पर्याप्ति से अपर्याप्तक। यावत् वैमानिक। नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यावत् वैमानिक। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - संज्ञी और असंज्ञी। इस प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रियों तक जानना चाहिए किन्तु सब एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय को छोड़ कर जानना चाहिए क्योंकि ये असंज्ञी ही होते हैं। यावत् वाणव्यन्तर देवों तक संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद होते हैं क्योंकि असंज्ञी जीव वाणव्यन्तर देवों तक ही उत्पन्न होते हैं किन्तु ज्योतिषी और वैमानिक देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - भाषक यानी भाषा पर्याप्ति को पूर्ण कर लेने वाले और अभाषक यानी जब तक वे भाषा पर्याप्ति को पूर्ण नहीं करते हैं तब तक अभाषक हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर बाकी सब जीवों के लिए जानना चाहिए क्योंकि एकेन्द्रियों में भाषापर्याप्ति नहीं होती, इसलिए वे अभाषक कहलाते हैं। नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि। एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर शेष सभी दण्डकों में इसी तरह कहना चाहिए क्योंकि एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - परित्त संसारी और अनन्त संसारी यावत् वैमानिक देवों तक इसी तरह जानना चाहिए। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - संख्यात काल की स्थिति वाले और असंख्यात काल की स्थिति वाले। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय यानी बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवों को छोड़ कर पञ्चेन्द्रिय यावत् वाणव्यन्तर देवों तक इसी तरह कहना चाहिए। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों की संख्यात वर्ष की ही स्थिति होती है और ज्योतिषी और वैमानिक देवों की असंख्यात वर्ष की ही स्थिति होती है। नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सुलभबोधि और दुर्लभबोधि। यावत् वैमानिक देव। नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। यावत् वैमानिक देव। नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा- चरम और अचरम यावत् वैमानिक देवों तक इसी प्रकार कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में सोलह प्रकार से चौबीस दण्डक के दो-दो भेद बतलाये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. भवसिद्धिक (सूत्र) - नैरयिक जीव दो प्रकार के होते हैं - भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक यावत् वैमानिकदेवों तक चौबीस ही दण्डक में इसी प्रकार कहना चाहिये।

२. अनन्तर दंडक - एक जीव के साथ में बिना अंतर के (उसी समय में) उत्पन्न दूसरे जीव अनन्तरोपपन्नक और पूर्वोक्त से विपरीत रूप में (एक के बाद एक, भिन्न भिन्न समय में) उत्पन्न जीव परंपरोपन्नक कहलाते हैं अथवा विवक्षित देश (क्षेत्र) की अपेक्षा जो अंतर रहित उत्पन्न हुए वे अनन्तरोपन्नक और विवक्षित देश में परंपरा से उत्पन्न हुए जीव परंपरोपपन्नक कहलाते हैं।

३. गति दंडक - नरक में जाते हुए और नरक में गये हुए जीव गति समापन्नक अथवा नैरयिक पने को प्राप्त हुए जीव गति समापन्नक कहलाते हैं और जिन जीवों ने नरक गति का आयुष्य बांधा है वे द्रव्य नैरयिक अगति समापन्नक कहलाते हैं अथवा चलत्व और स्थिरत्व की अपेक्षा से क्रमशः गति समापन्नक और अगति समापन्नक कहे जाते हैं।

४. प्रथम समय दंडक - जिन जीवों को उत्पन्न हुए प्रथम समय हुआ है वे प्रथम समयोपपन्नक और इससे भिन्न (दो तीन आदि) समय में उत्पन्न हुए जीव अप्रथमसमयोपपन्नक कहलाते हैं।

५. आहारक दण्डक - आहारक जीव तो हमेशा होते हैं पर अनाहारक तो विग्रह गति में एक समय अथवा दो समय तक होता है। जो त्रस नाडी में मृत्यु को प्राप्त कर पुनः त्रस नाडी में ही उत्पन्न होते हैं उनकी अपेक्षा समझना चाहिये अन्यथा दूसरी प्रकार से तीन समय पर्यन्त अनाहारक होते हैं।

प्रश्न - आहारक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो जीव सचित, अचित्त और मिश्र अथवा ओज, लोम और प्रक्षेप आहार में से किसी भी प्रकार का आहार करता है वह आहारक जीव है।

प्रश्न - अनाहारक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो जीव किसी भी प्रकार का आहार नहीं करता है वह अनाहारक है। विग्रह गति में रहा हुआ, केवली समुद्घात करने वाला, चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध ये चारों अनाहारक हैं। केवली समुद्घात के आठ समयों में से तीसरे, चौथे और पांचवें समय में जीव अनाहारक रहता है।

६. उच्छ्वास दण्डक - जो श्वासोच्छ्वास लेते हैं वे उच्छ्वासक कहलाते हैं। उच्छ्वासक श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्तक होते हैं। इससे विपरीत श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से जो अपर्याप्त हैं वे नोच्छ्वासक कहलाते हैं।

७. इन्द्रिय दंडक - इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्तक सेन्द्रिय और इन्द्रिय पर्याप्ति से अपर्याप्तक अनिन्द्रिय कहलाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. पर्याप्त दंडक – जो पर्याप्त ✿ नाम कर्म के उदय से पर्याप्त हैं वे पर्याप्तक और जो अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से अपर्याप्त हैं वे अपर्याप्तक कहलाते हैं।

९. संज्ञी दण्डक – जो मन, पर्याप्ति से पर्याप्तक है वह संज्ञी और जो मन पर्याप्ति से अपर्याप्तक है वह असंज्ञी कहलाता है जैसे नारकी के जीव संज्ञी असंज्ञी दोनों प्रकार के कहे गये हैं उसी प्रकार विकलेन्द्रिय (पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय) को छोड़कर वैमानिक दण्डक पर्यन्त कहना चाहिये। किसी किसी प्रति में **जाव वाणमंतरा** ऐसा पाठ है। इसका अभिप्राय यह समझना चाहिये कि नारकी से लगा कर वाणव्यंतर पर्यन्त असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं परन्तु ज्योतिषी और वैमानिक में उत्पन्न नहीं होते। उनमें असंज्ञीपन का अभाव होने से उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया है।

प्रश्न – विकलेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर – विकलेन्द्रिय शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है –"**विकलानि अपरिपूर्णानि संख्यया इन्द्रियाणि येषां ते विकलेन्द्रियाः**"

अर्थ – जो विकल-अपरिपूर्ण संख्या विशिष्ट इन्द्रिय वाले हैं वे विकलेन्द्रिय कहलाते हैं। यहाँ विकलेन्द्रिय शब्द से एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीव लिये गये हैं।

१०. भाषा दंडक – जिन जीवों के भाषा पर्याप्ति का उदय है वे भाषक हैं और जो जीव भाषा पर्याप्ति से अपर्याप्त हैं वे अभाषक कहलाते हैं। एकेन्द्रिय जीव सम्यग् दृष्टि रहित एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। बेइन्द्रिय आदि जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व होती है अतः यहाँ एकेन्द्रिय का वर्जन किया है।

१२. संसार दण्डक – संक्षिप्त-थोड़े भव वाले परित्त संसारी और अनंत भव वाले अनंत संसारी कहलाते हैं।

१३. स्थिति दंडक – जिन जीवों की संख्यात् काल समय रूप स्थिति होती है वे संख्येय काल समय स्थितिक कहलाते हैं जैसे दस हजार वर्ष आदि की स्थिति वाले। पल्योपम के असंख्येय भाग आदि की स्थिति वाले असंख्येय काल समय स्थितिक कहलाते हैं। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़ कर नारकी से लगाकर वाणव्यंतर देव तक के जीव दोनों प्रकार की स्थिति वाले होते हैं। ज्योतिषी और वैमानिक देव असंख्यात काल की स्थिति वाले होते हैं।

✿ यह व्याख्या सामान्य रूप से है क्योंकि अपर्याप्त नाम कर्म के उदय वाला (लब्धि अपर्याप्तक) नैरयिक और देवों में संभव नहीं और प्रस्तुत सूत्र में "**जाव वेमाणिया**" कहा है अतः यहाँ यह लगता है कि जिन जीवों ने स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण नहीं की है ऐसे करण अपर्याप्त नैरयिक और देव अपर्याप्त होते हैं अथवा करण अपर्याप्ति काल में भी अपर्याप्त नाम कर्म का उदय हो, ऐसा संभव लगता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४. बोधि दण्डक - जिन जीवों को जैन धर्म की प्राप्ति सुलभ है वे सुलभबोधिक और जिन जीवों को जैन धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है वे दुर्लभ बोधिक कहलाते हैं।

१५. पाक्षिक दंडक - शुक्ल - विशुद्ध रूप से जो पक्ष है वह शुक्लपक्ष, शुक्लपक्ष वाले शुक्लपाक्षिक कहलाते हैं। कहा है - **किरियावाई भव्वे णो अभव्वे सुक्कपक्खिए णो किण्ह पक्खिए** - क्रियावादी भव्य होते हैं अभव्य नहीं, शुक्ल पाक्षिक होते है कृष्ण पाक्षिक नहीं होते। अथवा शुक्ल-आस्तिकपन से विशुद्ध है जिनका पक्ष-समूह वह शुक्ल पक्ष और जो शुक्ल पक्ष वाले हैं वे शुक्ल पाक्षिक और इससे विपरीत पक्ष वाले कृष्ण पाक्षिक कहलाते हैं।

१६. चरम दंडक - जिन जीवों का नरक आदि अंतिम भव होता है अर्थात् पुनः जो नरक आदि में उत्पन्न नहीं होते हैं कारण कि मोक्ष में जाने से वे चरम कहलाते हैं जो पुनः नरक आदि में उत्पन्न होने वाले हैं वे अचरम कहलाते हैं।

दोहिं ठाणेहिं आया अहे लोगं जाणइ पासइ, तंजहा - समोहएणं चेव अप्पाणेणं आया अहे लोगं जाणइ पासइ, असमोहएणं चेव अप्पाणेणं आया अहे लोगं जाणइ पासइ। आहोहि समोहयासमोहएणं चेव अप्पाणेणं आया अहे लोगं जाणइ पासइ, एवं तिरियलोगं, उड्ढलोगं, केवलकप्पलोगं। दोहिं ठाणेहिं आया अहे लोगं जाणइ पासइ तंजहा - विउव्विएणं चेव अप्पाणेणं आया अहे लोगं जाणइ पासइ, अविउव्विएणं चेव अप्पाणेणं आया अहे लोगं जाणइ पासइ, आहोहि विउव्वियाविउव्विएणं चेव अप्पाणेणं आया अहे लोगं जाणइ पासइ, एवं तिरियलोगं, उड्ढलोगं, केवलकप्पलोगं। दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइं सुणेइ तंजहा - देसेण वि आया सद्दाइं सुणेइ, सव्वेण वि आया सद्दाइं सुणेइ, एवं रूवाइं पासइ, गंधाइं अग्घाइ, रसाइं आसाएइ, फासाइं पडिसंवेदेइ। दोहिं ठाणेहिं आया ओभासइ तंजहा- देसेण वि आया ओभासइ, सव्वेण वि आया ओभासइ, एवं पभासइ, विकुव्वइ, परियारेइ, भासं भासइ, आहारेइ, परिणामेइ, वेएइ, णिज्जरेइ । दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइं सुणेइ तंजहा - देसेण वि देवे सद्दाइं सुणेइ, सव्वेण वि देवे सद्दाइं सुणेइ जाव णिज्जरेइ। मरुया देवा दुविहा पण्णत्ता तंजहा - एगसरीरि चेव, बिसरीरि चेव, एवं किण्णरा, किंपुरिसा, गंधव्वा, णागकुमारा, सुवण्णकुमारा, अग्गिकुमारा, वाउकुमारा। देवा दुविहा पण्णत्ता तंजहा- एग सरीरे चेव बिसरीरे चेव॥ २१ ॥

॥ बीअट्ठाणस्स बीओ उद्देसो समत्तो॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **आया** - आत्मा, **अहेलोगं** - अधोलोक को, **जाणइ** - जानता है, **पासइ** - देखता है, **समोहएणं अप्पाणेणं** - समुद्घात करने वाले आत्म स्वभाव से, **असमोहएणं अप्पाणेणं**- असमुद्घात किये हुए आत्मा से, **आहोहि** - परमावधिज्ञानी और अवधिज्ञानी, **समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं** - समवहत और असमवहत आत्म स्वभाव से, **केवलकप्पलोगं** - सम्पूर्ण लोक को, **विउव्विएणं** - वैक्रिय शरीर करके, **अविउव्विएणं** - वैक्रिय शरीर किये बिना, **सद्दाइं** - शब्दों को **सुणेइ**- सुनता है, **देसेण** - देश से **सव्वेण** - सर्व से, **अग्घाइ** - सूंघता है, **आसाएइ** - आस्वाद लेता है, **पडिसंवेदेइ** - अनुभव करता है, **ओभासइ** - प्रकाशित होता है, **विकुव्वइ** - वैक्रिय करता है, **परियारेइ**- मैथुन सेवन करता है, **भासं भासइ** - बोलता है, **परिणामेइ** - परिणमन करता है, **वेएइ** - वेदन करता है, **णिज्जरेइ** - निर्जरा करता है, **किण्णरा** - किन्नर, **किंपुरिस** - किंपुरुष, **गंधव्वा** - गंधर्व, **मरुया देवा**- मरुत देव-लोकान्तिक देव, **एगसरीरे** - एक शरीर वाले, **बिसरीरे** - दो शरीर वाले।

भावार्थ - दो कारणों से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है यथा - समुद्घात करने वाले आत्मस्वभाव से अर्थात् समुद्घात करके आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है और असमुद्घात किये हुए आत्मा से यानी बिना समुद्घात किये ही आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है। परमावधिज्ञानी और अवधिज्ञानी आत्मा समवहत और असमवहत आत्मस्वभाव से यानी समुद्घात करके अथवा बिना समुद्घात किये ही अधोलोक को जानता और देखता है। इसी प्रकार तिर्यग्लोक को तथा ऊर्ध्वलोक को और सम्पूर्ण लोक को आत्मा जानता और देखता है। दो कारणों से यानी दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है यथा - वैक्रिय शरीर करके आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है और वैक्रिय शरीर किये बिना ही आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है। परमावधिज्ञानी आत्मा वैक्रिय शरीर करके और वैक्रिय शरीर किये बिना ही अधोलोक को जानता और देखता है। इसी प्रकार तिर्यग्लोक को, ऊर्ध्वलोक को और सम्पूर्ण लोक को जानता और देखता है। दो स्थानों से आत्मा शब्दों को सुनता है यथा - देश से अर्थात् एक कान के बहरा होने के कारण सिर्फ एक कान से ही आत्मा शब्दों को सुनता है और सर्व से यानी दोनों कानों से अथवा सम्भिन्नश्रोत लब्धि वाला आत्मा समग्र शरीर से शब्दों को सुनता है। इसी प्रकार रूपों को देश और सर्व से देखता है। गन्धों को देश और सर्व से सूंघता है। रसों का देश और सर्व से आस्वाद लेता है। स्पर्शों का देश और सर्व से अनुभव करता है। दो स्थानों से आत्मा प्रकाशित होता है। यथा- आत्मा देश से खद्योत के समान प्रकाशित होता है और आत्मा सब प्रदेशों से दीपक की तरह प्रकाशित होता है। इसी प्रकार विशेष रूप से प्रकाशित होता है। वैक्रिय करता है। मैथुन सेवन करता है। भाषा बोलता है। आहार करता है। आहार का परिणमन करता है। वेदन यानी अनुभव करता है। निर्जरा करता है। ये सभी बातें आत्मा देश से और सर्व से करती है। देव दो स्थानों से शब्द सुनता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है यथा - देव देश से शब्दों को सुनता है और देव सर्व से शब्दों को सुनता है यावत् निर्जरा करता है। लोकान्तिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - जब भवधारणीय शरीर होता है तब एक शरीर वाले और जब उत्तर वैक्रिय शरीर धारण करते हैं तब दो शरीर वाले होते हैं। इसी प्रकार किन्नर, किंपुरुष, गन्धर्व, नागकुमार, सुवर्णकुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार आदि देव एक शरीर वाले और दो शरीर वाले होते हैं। अब सभी देवों के विषय में सामान्य सूत्र बतलाया जाता है - सब देव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - एक शरीर वाले और दो शरीर वाले होते हैं।

विवेचन - आत्मा समुद्घात करके और बिना समुद्घात किये अधोलोक को अवधिज्ञान से जानती है और अवधिदर्शन से देखती है।

'आहोहि' (अधोहि) शब्द के दो संस्कृत रूप बनते हैं - यथावधि और अधोऽवधि। जिसको जैसा अवधिज्ञान प्राप्त है वह यथावधि अथवा परमावधि से अधोवर्ती (न्यून) अवधिज्ञान को अधोअवधि कहते हैं। ऐसा नियत क्षेत्र के विषय वाला अवधिज्ञानी समवहत-समुद्घात करके अथवा असमवहत-समुद्घात किये बिना जानता देखता है इसी प्रकार तिर्यग् लोक ऊर्ध्वलोक और परिपूर्ण चौदह राजू लोक को जानता देखता है इसी प्रकार वैक्रिय शरीर करके आत्मा अधोलोक आदि को जानता देखता है और वैक्रिय शरीर किये बिना भी आत्मा अधोलोक आदि को जानता देखता है। देश से और सर्व से इन दो स्थानों से आत्मा शब्दों को सुनता है रूपों को देखता है गंधों को सूंघता है रसों का आस्वाद लेता है और स्पर्शों का अनुभव करता है। इस प्रकार आत्मा देश और सर्व से प्रकाशित होता है, विशेष रूप से प्रकाशित होता है, वैक्रिय करता है, मैथुन सेवन करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, आहार का परिणमन करता है, वेदन करता है और निर्जरा करता है।

मरुत देव लोकान्तिक देव विशेष है। कहा है -

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधमरुतोऽरिष्टाश्च ॥ २६ ॥

अर्थ - १. सारस्वत २. आदित्य ३. वह्नि ४. वरुण (अरुण) ५. गर्दतोय ६. तुषित ७. अव्याबाध ८. मरुत (आग्नेय) और ९. अरिष्ट (रिष्ट)। (तत्त्वार्थ अ. ४ सू० २३)

इनमें से पहले के आठ देव आठ कृष्ण राजियों के बीच में रहते हैं और नौवा रिष्ट नामक देव कृष्ण राजियों के मध्य भाग में रिष्टाभ नामक विमान के प्रतर में रहते हैं।

ये लोकान्तिक देव एक शरीर वाले होते हैं क्योंकि विग्रह गति में कार्मण शरीर है उसके बाद वैक्रिय भाव से दो शरीर वाले होते हैं। दोनों शरीरों का समाहार-एकत्रिभूत दो शरीर हैं जिनके वे दो शरीर वाले जब भवधारणीय (मूल) शरीर ही हो तब एक शरीर वाले और जब उत्तर वैक्रिय करते हैं तब दो शरीर वाले होते हैं। किन्नर, किंपुरुष और गन्धर्व ये तीन व्यंतर जाति के देव हैं और नागकुमार आदि चार भवनपति देवों के भेद हैं। यहाँ अमुक संख्या में ही भेद लिये हैं जो दूसरे भेदों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को भी बताने वाले हैं। सभी जीवों को विग्रह गति में एक शरीर और विग्रह गति के अलावा समय में दो शरीरों की प्राप्ति होने से सामान्य रूप से देव दो प्रकार के कहे हैं।

।। द्वितीय स्थानक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय स्थान का तीसरा उद्देशक

दुविहे सद्दे पण्णत्ते तंजहा - भासासद्दे चेव, णोभासासद्दे चेव। भासासद्दे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - अक्खरसंबद्धे चेव, णोअक्खरसंबद्धे चेव। णोभासासद्दे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - आउज्जसद्दे चेव, णोआउज्जसद्दे चेव। आउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - तते चेव, वितते चेव । तते दुविहे पण्णत्ते तंजहा - घणे चेव, झुसिरे चेव। एवं वितते वि। णोआउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - भूसणसद्दे चेव, णोभूसणसद्दे चेव। णोभूसणसद्दे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - तालसद्दे चेव, लत्तियासद्दे चेव। दोहिं ठाणेहिं सद्दुप्पाए सिया तंजहा - साहण्णंताण चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया, भिज्जंताण चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया॥ ३०॥

कठिन शब्दार्थ - सद्दे - शब्द, **भासासद्दे** - भाषा शब्द, **णो भासासद्दे** - नो भाषा शब्द, **अक्खरसंबद्धे** - अक्षर सम्बद्ध-अक्षर सहित **णो अक्खर संबद्धे** - नो अक्षरसम्बद्ध-अक्षर रहित, **आउज्जसद्दे** - आतोदय शब्द, **णो आउज्जसद्दे** - नो आतोदय शब्द, **तते** - तत, **वितते** - वितत, **घणे**- घन, **झुसिरे** - शुषिर, **भूसणसद्दे** - भूषण शब्द, **तालसद्दे** - ताल शब्द-ताली बजाने का शब्द, **लत्तियासद्दे**- लतिका शब्द, **सद्दुप्पाए** - शब्द की उत्पत्ति, **साहण्णंताणं** - पीटने से, **भिज्जंताण** - तोड़ने से।

भावार्थ - भगवान् ने शब्द दो प्रकार का फरमाया है यथा - भाषा शब्द यानी जीव शब्द और नोभाषाशब्द यानी अजीवशब्द। भाषा शब्द दो प्रकार का कहा गया है यथा - अक्षरसम्बद्ध यानी अक्षरसहित और नोअक्षरसम्बद्ध यानी अक्षर रहित। नोभाषाशब्द दो प्रकार का कहा गया है यथा - आतोदय शब्द यानी मृदङ्ग आदि का शब्द और नोआतोदय शब्द यानी बांस आदि से होने वाला शब्द। आतोदय शब्द दो प्रकार का कहा गया है यथा - तत और वितत। तत शब्द दो प्रकार का कहा गया है यथा - घन और शुषिर। इसी प्रकार वितत शब्द के भी घन और शुषिर ये दो भेद हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नोआतोदय शब्द दो प्रकार का कहा गया है यथा - नुपूर आदि भूषणों के शब्द और नोभूषण शब्द। नोभूषण शब्द दो प्रकार का कहा गया है यथा - ताली बजाने का शब्द और लतिका शब्द। दो कारणों से शब्द की उत्पत्ति होती है यथा - घण्टा आदि पदार्थों को पीटने से शब्द की उत्पत्ति होती है और बांस आदि पदार्थों के तोड़ने से शब्द की उत्पत्ति होती है।

विवेचन - दूसरे स्थानक के दूसरे उद्देशक में जीव और पदार्थ अनेक प्रकार से कहे हैं। इस तीसरे उद्देशक में जीव को सहायता देने वाले पुद्गल धर्म, जीव धर्म, क्षेत्र और द्रव्य रूप पदार्थ की प्ररूपणा की है। दूसरे उद्देशक के अंतिम सूत्र में देवों के शरीर का निरूपण किया है। शरीरधारी शब्दादि का ग्राहक होता है अतः तीसरे उद्देशक के प्रारंभ में शब्द का निरूपण किया गया है।

भाषा पर्याप्ति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीव का शब्द भाषा शब्द कहलाता है और इसके अतिरिक्त जो अजीव आदि का शब्द है वह नो भाषा शब्द है। भाषा शब्द दो प्रकार का कहा है - **१. अक्षर संबद्ध** - अक्षर सहित-अक्षर के उच्चारण वाला **२. नो अक्षर संबद्ध** - अक्षर रहित-बिना अक्षर के उच्चारण वाला। नो भाषाशब्द के दो भेद हैं - **१. आतोद्य** - ढोल आदि के शब्द और **२. नो आतोद्य**- बांस आदि को फाडने (चीरने) से होने वाला शब्द। इसी प्रकार शेष शब्दों का अर्थ भावार्थ में बता दिया गया है।

अब शब्द का कारण बताते हुए सूत्रकार फरमाते हैं कि - दो कारण से शब्द की उत्पत्ति होती है - १. पुद्गलों के संघात (एकत्रित) होने से जैसे घंटा आदि को पीटने से बादर परिणाम को प्राप्त पुद्गलों के संघात से शब्द उत्पन्न होता है २. बांस आदि को भिद्यमान-विभाग करते हुए शब्दों की उत्पत्ति होती है।

दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति तंजहा - सइं वा पोग्गला साहण्णंति, परेण वा पोग्गला साहण्णंति। दोहिं ठाणेहिं पोग्गला भिज्जंति तंजहा - सइं वा पोग्गला भिज्जंति, परेण वा पोग्गला भिज्जंति। दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिसडंति तंजहा - सइं वा पोग्गला परिसडंति, परेण वा पोग्गला परिसाडिज्जंति एवं परिवडंति, विद्धंसंति। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - भिण्णा चेव, अभिण्णा चेव। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - भेउरधम्मा चेव, णोभेउरधम्मा चेव। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - परमाणु पोग्गला चेव, णोपरमाणुपोग्गला चेव। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - सुहुमा चेव, बायरा चेव। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - बद्धपासपुट्ठा चेव, णोबद्धपासपुट्ठा चेव। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - परियाइतच्चेव, अपरियाइतच्चेव। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - अत्ता चेव, अणत्ता चेव। दुविहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। एवं कंता, पिया, मणुण्णा, मणामा। दुविहा सद्दा पण्णत्ता तंजहा - अत्ता चेव, अणत्ता चेव। एवं इट्ठा जाव मणामा। दुविहा रूवा पण्णत्ता तंजहा - अत्ता चेव, अणत्ता चेव, जाव मणामा। एवं गंधा, रसा, फासा। एवमिक्किक्के छ आलावगा भाणियव्वा॥ ३१॥

कठिन शब्दार्थ - **पोग्गला** - पुद्गल, **साहण्णंति** - मिलते हैं, **सइं** - स्वयं, **परेण** - पर संयोग से, **भिज्जंति** - बिखरते हैं, **परिसडंति** - सड़ जाते हैं, **परिसाडिज्जंति** - सड़ाये जाते हैं, **परिवडंति** - गिरते हैं, **विद्धंसंति** - विध्वंस-विनष्ट होते हैं, **भिण्णा** - भिन्न-अलग अलग बिखरे हुए, **अभिण्णा**- अभिन्न-मिले हुए, **भेउरधम्मा** - स्वभाव से भिन्न-भेदन होने वाले, **णोपरमाणु-पोग्गला** - नो परमाणु पुद्गल, **बद्धपासपुट्ठा** - शरीर के कुछ भाग का स्पर्श कर बंधे हुए पुद्गल, **परियाइतच्चेव** - जिन्होंने पुद्गलों की पर्याय को स्पर्श कर लिया है, **अपरियाइतच्चेव** - पर्याय को स्पर्श नहीं किया है, **अत्ता** - गृहीत-ग्रहण किये हुए, **अणत्ता** - अगृहीत-ग्रहण न किये हुए, **इट्ठा** - इष्ट, **अणिट्ठा** - अनिष्ट, **कंता**- कान्त, **पिया** - प्रिय, **मणुण्णा** - मनोज्ञ, **मणामा** - मनोहर, **इक्किक्के** - प्रत्येक में, **आलावगा** - आलापक।

भावार्थ - दो कारणों से पुद्गल मिलते हैं यथा - पुद्गल स्वयं मिलते हैं अथवा परसंयोग से पुद्गल मिलते हैं। दो कारणों से पुद्गल बिखरते हैं यथा - पुद्गल स्वयं बिखरते हैं अथवा पुद्गल परसंयोग से बिखरते हैं। दो कारणों से पुद्गल सड़ जाते हैं यथा - पुद्गल स्वयं सड़ जाते हैं अथवा पुद्गल परसंयोग से सड़ाये जाते हैं। इसी प्रकार पुद्गल दो कारणों से गिरते हैं और विध्वंस - विनष्ट होते हैं। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - भिन्न - अलग अलग बिखरे हुए और अभिन्न - मिले हुए। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - स्वभाव से ही भिन्न होने वाले और भेदन न होने वाले वज्रादिक। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सूक्ष्म और बादर। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - शरीर पर चिपकी हुई धूलि के समान शरीर के कुछ भाग का स्पर्श कर बन्धे हुए कर्म पुद्गल और श्रोत्रेन्द्रिय आदि का स्पर्श करने वाले किन्तु बन्धे हुए नहीं। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - जिन्होंने पुद्गलों की पर्याय को स्पर्श कर लिया है और जिन्होंने पुद्गलों की पर्याय को स्पर्श नहीं किया है। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए शरीरादि और जीव के द्वारा ग्रहण न किये गये। पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - इष्ट और अनिष्ट। इसी प्रकार कान्तकारी, अकान्तकारी, प्रियकारी, अप्रियकारी, मनोज्ञ, अमनोज्ञ, मनोहर, अमनोहर। शब्द दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - जीव द्वारा गृहीत और अगृहीत। इसी प्रकार इष्ट,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनिष्ट यावत् मनोहर, अमनोहर तक कहना चाहिए। रूप दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - गृहीत और अगृहीत यावत् मनोहर, अमनोहर तक दो दो भेद कहने चाहिए। इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श के विषय में भी कहना चाहिए। इस प्रकार शब्द, रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श इन सब में प्रत्येक में गृहीत, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर ये छह-छह आलापक कह देने चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने पुद्गल के विषय में वर्णन किया है। दो कारणों से पुद्गल मिलते हैं - १. स्वयमेव - जैसे बादलों आदि की तरह पुद्गल एकत्रित होते हैं और २. पर के द्वारा - जैसे मनुष्य के द्वारा पुद्गल एकत्रित किये जाते हैं। इसी प्रकार दो-दो कारणों से पुद्गल बिखरते हैं, सडते हैं, गिरते हैं, विध्वंस-विनष्ट होते हैं। दो प्रकार के पुद्गल कहे हैं - १. भिन्न (विघटित) और २. अभिन्न - जो संघात को प्राप्त हैं, भिन्न नहीं हुए हैं। दो प्रकार के पुद्गल कहे हैं - **१. भिदुरधर्मा** - जो भिदुरत्व धर्म वाले (स्वभाव से ही भिन्न-नष्ट होने वाले) हैं वे भिदुरधर्मा कहलाते हैं। जैसे - कपूर आदि **२. नोभिदुरधर्मा** - जो भिदुरत्व (भेदन) धर्म वाले नहीं है जैसे वज्र आदि।

दो प्रकार के पुद्गल कहे हैं - **१. परमाणु पुद्गल** - जो अत्यंत सूक्ष्म है उसे परमाणु कहा जाता है। प्रत्येक स्कन्ध का मूल कारण परमाणु है वह परमाणु प्रवाह से नित्य और पर्याय से अनित्य है। परमाणु पुद्गल एक रूप, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श वाला होता है। परमाणु पुद्गल अनंत हैं। परमाणु आकाश के प्रदेश भी हो सकते हैं। अतः सूत्रकार ने परमाणु के साथ पुद्गल शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ होता है पुद्गल के परमाणु न कि अन्य के परमाणु। **२. नो परमाणु पुद्गल** अर्थात् स्कन्ध - दो प्रदेशी (द्वयणुक) स्कन्ध से ले कर महास्कन्ध पर्यन्त सभी पुद्गल इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं - **१. सूक्ष्म** - जो पुद्गल सूक्ष्म परिणाम वाले एवं शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष लक्षण विशिष्ट चार स्पर्श वाले हैं वे सूक्ष्म पुद्गल कहलाते हैं। भाषा आदि चार वर्गणा के पुद्गल सूक्ष्म है। **२. बादर** - जो पुद्गल बादर परिणाम वाले और पांच आदि स्पर्श वाले हैं वे बादर पुद्गल कहलाते हैं। अर्थात् पांच स्पर्शी स्कंध से लेकर आठ स्पर्शी स्कंध पर्यंत सभी पुद्गल बादर है। जैसे औदारिक आदि वर्गणा के पुद्गल।

दो प्रकार के पुद्गल कहे हैं - **१. बद्धपार्श्वस्पृष्ट** - जो पुद्गल रेत की तरह शरीर से स्पृष्ट (स्पर्शित) हैं वे पार्श्वस्पृष्ट और उनसे बंधे हुए शरीर में क्षीर-नीर (दूध और पानी) पानी की तरह मिले हुए गाढ सम्बंध किए हुए पुद्गल बद्ध पार्श्वस्पृष्ट कहलाते हैं। घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य पुद्गल बद्ध पार्श्व स्पृष्ट कहलाते हैं। घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य पुद्गल बद्ध पार्श्व स्पृष्ट होते हैं। **२. नो बद्ध पार्श्व स्पृष्ट** - जो पार्श्वस्पृष्ट पुद्गल बद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हैं वे नो बद्धपार्श्व स्पृष्ट पुद्गल कहलाते हैं जैसे श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य पुद्गल। आवश्यक सूत्र में कहा है -

पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।
गंधं रसं च फासं च बद्ध पुट्ठं वियागरे॥

अर्थ - श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट पुद्गलों को ग्रहण करती है। चक्षुरिन्द्रिय बिना ही स्पर्श किये गये रूप को ग्रहण करती है किन्तु घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय ये तीन इन्द्रियाँ बद्ध स्पृष्ट पुद्गलों को ग्रहण करती हैं।

गंधादि द्रव्यों की अपेक्षा भाषा के द्रव्य सूक्ष्म, विशेष संख्या वाले और वासित स्वभाव वाले होते हैं तथा श्रोत्रेन्द्रिय, विषय को ग्रहण करने में घ्राणेन्द्रिय आदि की अपेक्षा विशेष पटु होने के कारण स्पर्श मात्र से ग्रहण कर लेती है।

दुविहे आयारे पण्णत्ते तंजहा - णाणायारे चेव णो णाणायारे चेव। णो णाणायारे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - दंसणायारे चेव, णो दंसणायारे चेव। णो दंसणायारे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - चरित्तायारे चेव, णोचरित्तायारे चेव। णोचरित्तायारे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - तवायारे चेव, वीरियायारे चेव। दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - समाहि पडिमा चेव, उवहाण पडिमा चेव। दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा- विवेगपडिमा चेव, विउस्सगपडिमा चेव। दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा- भद्दा चेव, सुभद्दा चेव। दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तं जहा - महाभद्दा चेव, सव्वओभद्दा चेव। दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - खुड्डिया चेव मोयपडिमा, महल्लिया चेव मोयपडिमा। दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा-जवमज्झे चेव चंदपडिमा, वइरमज्झे चेव चंदपडिमा। दुविहे सामाइए पण्णत्ते तंजहा - अगारसामाइए चेव, अणगारसामाइए चेव॥ ३२॥

कठिन शब्दार्थ - **आयार** - आचार, **णाणायारे** - ज्ञानाचार, **णो णाणायारे** - नो ज्ञानाचार, **दंसणायारे** - दर्शनाचार, **चरित्तायारे** - चारित्राचार, **तवायारे** - तप आचार, **वीरियायारे** - वीर्याचार, **समाहिपडिमा** - समाधि प्रतिमा, **उवहाण पडिमा** - उपधान प्रतिमा, **विवेग पडिमा** - विवेक प्रतिमा, **विउस्सगपडिमा** - व्युत्सर्ग प्रतिमा, **भद्दा** - भद्रा, **सुभद्दा** - सुभद्रा, **महाभद्दा** - महाभद्रा, **सव्वओभद्दा**- सर्वतोभद्रा, **खुड्डियामोयपडिमा** - क्षुद्र मोक प्रतिमा, **महल्लिया मोयपडिमा** - महती मोक प्रतिमा, **चंदपडिमा** - चन्द्र प्रतिमा, **जवमज्झे** - यवमध्य, **वइरमज्झे** - वज्र मध्य, **अगार सामाइए** - अगार सामायिक, **अणगार सामाइए** - अनगार सामायिक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आचार दो प्रकार का फरमाया है यथा - ज्ञानाचार और नोज्ञानाचार। नोज्ञानाचार दो प्रकार का फरमाया है यथा - दर्शनाचार और नोदर्शनाचार। नोदर्शनाचार दो प्रकार का फरमाया है यथा - चारित्राचार और नोचारित्राचार। नोचारित्राचार दो प्रकार का फरमाया है यथा - तप आचार और वीर्याचार। भगवान् ने दो प्रतिमा अथवा प्रतिज्ञा फरमाई है यथा - मन के परिणाम पवित्र होना सो समाधिप्रतिमा और साधु की बारह और श्रावक की ग्यारह प्रतिमा का आचरण करना सो उपधान प्रतिमा। भगवान् ने दो प्रतिमाएं फरमाई हैं यथा - कषाय आदि का त्याग करना सो विवेकप्रतिमा और कायोत्सर्ग करना सो व्युत्सर्ग प्रतिमा। भगवान् ने दो प्रतिमाएं फरमाई हैं यथा - पूर्वादि चार दिशाओं में चार चार पहर तक कायोत्सर्ग करना सो भद्रा प्रतिमा। यह दो दिन में पूर्ण होती है और सुभद्राप्रतिमा ◆ भी इसी तरह जाननी चाहिए।

भगवान् ने दो प्रतिमाएं फरमाई हैं यथा - चारों दिशाओं में एक एक दिन कायोत्सर्ग करना सो महाभद्रा प्रतिमा। यह चार दिन में पूर्ण होती है और दस दिशाओं में एक एक दिन कायोत्सर्ग करना सो सर्वतोभद्रा प्रतिमा। यह दस दिन में पूर्ण होती है। भगवान् ने दो प्रतिमाएं फरमाई हैं यथा - क्षुद्र मोक प्रतिमा और मोक प्रतिमा। दो प्रतिमाएं फरमाई हैं यथा - यवमध्य चन्द्र प्रतिमा, जो जौ नामक धान्य की तरह बीच में मोटी और दोनों किनारों पर पतली एवं चन्द्रमा की तरह घटती बढती हो। यथा - शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल आहार लेवे फिर प्रतिदिन एक एक कवल बढाते जाय यावत् पूर्णिमा के दिन १५ कवल आहार लेवे। फिर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को १५ कवल आहार लेवे फिर प्रतिदिन एक एक कवल घटाते जाय यावत् अमावस्या के दिन एक कवल आहार लेवे। यह यवमध्या चन्द्रप्रतिमा कहलाती है और वज्रमध्या चन्द्रप्रतिमा, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को १५ कवल आहार लेवे फिर क्रमशः प्रतिदिन एक एक घटाते हुए अमावस्या को एक कवल लेवे। फिर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल आहार लेवे फिर प्रतिदिन एक एक बढाते हुए पूर्णिमा के दिन १५ कवल आहार लेवे यह वज्रमध्या चन्द्रप्रतिमा है

नोट - यवमध्य चन्द्रप्रतिमा और वज्र मध्य चन्द्र प्रतिमा का स्वरूप टीकाकार ने जो लिखा है वह आगम से मेल नहीं खाता है। क्योंकि व्यवहार सूत्र के दसवें उद्देशक में इन दोनों प्रतिमाओं का स्वरूप मूल पाठ में इस प्रकार बतलाया गया है-यवमध्य चन्द्र प्रतिमा को अंगीकार करने वाले अनगार को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (एकम) को एक दत्ति आहार लेना कल्पता है। फिर प्रति दिन एक-एक दत्ति बढ़ाता जाए यावत् पूर्णिमा के दिन पन्द्रह दत्ति आहार लेना कल्पता है। फिर कृष्णपक्ष

◆ टीकाकार ने लिखा है कि सुभद्र प्रतिमा का स्वरूप देखने में नहीं आया। इसलिए उसका स्वरूप नहीं लिखा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की प्रतिपदा को १४ दत्ति आहार लेना कल्पता है फिर प्रतिदिन एक-एक दत्ति घटाता जाए। इस प्रकार चौदस के दिन एक दत्ति आहार लेना कल्पता है और अमावस्या के दिन उपवास करना कल्पता है। इस प्रकार यह यवमध्य चन्द्र प्रतिमा का स्वरूप है। वज्रमध्य चन्द्र प्रतिमा का स्वरूप इससे विपरीत है। यह प्रतिमा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रारंभ की जाती है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को पन्द्रह दत्ति आहार लेवे। फिर क्रमशः प्रतिदिन एक-एक घटाते हुए अमावस्या को एक दत्ति लेवे। फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को दो दत्ति आहार लेवे फिर प्रतिदिन एक-एक बढ़ाते हुए चौदस के दिन १५ दत्ति आहार लेवे। फिर पूर्णिमा के दिन उपवास करें। यह वज्र मध्य चन्द्र प्रतिमा का स्वरूप है। (व्यवहार सूत्र १० वां उद्देशक)

सामायिक दो प्रकार की कही गई है यथा- अगार सामायिक यानी श्रावक की मर्यादित काल की सामायिक और अनगार सामायिक यानी साधु की यावज्जीवन की सामायिक।

विवेचन - मोक्ष के लिए किया जाने वाला ज्ञानादि आसेवन रूप अनुष्ठान विशेष आचार कहलाता है। अथवा गुण वृद्धि के लिए किया जाने वाला आचरण आचार कहलाता है। अथवा पूर्व पुरुषों से आचरित ज्ञानादि आसेवन विधि को आचार कहते हैं। दूसरा स्थान होने से सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में आचार के दो-दो भेद किये हैं। समुच्चय में आचार के पांच भेद होते हैं - १. ज्ञानाचार २. दर्शनाचार ३. चारित्राचार ४. तप आचार और वीर्याचार।

१. ज्ञानाचार - सम्यक् तत्त्व का ज्ञान कराने के कारण भूत श्रुतज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है। ज्ञानाचार के आठ भेद हैं - १. **कालाचार** - शास्त्र में जिस समय जो सूत्र पढने की आज्ञा है उस समय ही उसे पढना। २. **विनयाचार** - ज्ञानदाता, गुरु का विनय करना ३. **बहुमानाचार**- ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा भाव रखना ४. **उपधानाचार** - ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना ५. **अनिह्नवाचार** - ज्ञान पढाने वाले गुरु का नाम नहीं छिपाना। ६. **व्यञ्जनाचार**- सूत्र के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना ७. **अर्थाचार** - सूत्र का शुद्ध एवं सत्य अर्थ करना। ८. **तदुभयाचार** - सूत्र और अर्थ (दोनों) को शुद्ध पढ़ना और समझना।

२. दर्शनाचार - दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व का निःशंकितादि रूप से शुद्ध आराधना करना दर्शनाचार है। दर्शनाचार के आठ भेद हैं - १. **निःशंकित** - वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में संदेह नहीं करना। २. **निःकांक्षित** - परदर्शन (मिथ्यामत) की इच्छा नहीं करना ३. **निर्विचिकित्सा** - धर्म क्रिया के फल के विषय में सन्देह नहीं करना, साधु साध्वी के शरीर और वस्त्रों को मलिन देखकर उनसे घृणा नहीं करना। क्योंकि यह साधु-साध्वी का त्यागवृत्ति रूप आचार है। ४. **अमूढदृष्टि** - पाखण्डियों (मिथ्यामत) का आडम्बर देख कर उससे मोहित नहीं होना ५. **उपबृंहा** - गुणी पुरुषों को देखकर उनके गुणों की प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. **स्थिरीकरण** - धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना ७. **वात्सल्य** - अपने धर्म और साधर्मियों से प्रेम रखना ८. **प्रभावना** - वीतराग प्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना तथा कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा के समान प्रभावना (प्रकाशित) करना।

३. चारित्राचार - ज्ञान एवं श्रद्धा पूर्वक सर्व सावद्य योगों का त्याग करना चारित्र है। चारित्र का सेवन करना चारित्राचार है। चारित्राचार के आठ भेद हैं - १. ईर्यासमिति २. भाषा समिति ३. एषणा समिति ४. आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति ५. उच्चार प्रस्रवण खेल जल्ल सिंघाण परिस्थापनिका समिति ६. मन गुप्ति ७. वचन गुप्ति ८. काय गुप्ति।

४. तप आचार - इच्छा निरोध रूप अनशन आदि तप का सेवन करना तप आचार है। तप आचार के १२ भेद हैं - १. अनशन २. ऊणोदरी ३. भिक्षाचरी ४. रस परित्याग ५. कायक्लेश ६. प्रतिसंलीनता ७. प्रायश्चित्त ८. विनय ९. वैयावृत्य १०. स्वाध्याय ११. ध्यान और १२. व्युत्सर्ग।

५. वीर्य्याचार - अपनी शक्ति का गोपन न करते हुए धर्मकार्यों में यथाशक्ति मन, वचन, काया द्वारा प्रवृत्ति करना वीर्य्याचार है। वीर्य्याचार के तीन भेद हैं-१. धर्मकार्य में बलवीर्य को छिपावे नहीं २. उपरोक्त ज्ञानाचार आदि के ३६ भेदों में उद्यम करे ३. शक्ति के अनुसार धर्म कार्य करे।

ये सभी मिला कर आचार के (८+८+८+१२+३) ३९ भेद हुए।

प्रतिमा - प्रतिज्ञा विशेष को 'प्रतिमा' कहते हैं। विभिन्न प्रकार से प्रतिमाओं के दो दो भेद और अर्थ भावार्थ में बता दिये गये हैं।

सामायिक - सर्व सावद्य व्यापारों का त्याग करना और निरवद्य व्यापारों में प्रवृत्ति करना सामायिक है। अथवा सम अर्थात् रागद्वेष रहित पुरुष की प्रतिक्षण कर्म निर्जरा से होने वाली अपूर्व शुद्धि सामायिक है। सम अर्थात् ज्ञान, दर्शन,चारित्र की प्राप्ति सामायिक है। सामायिक दो प्रकार की कही है - **१. अगार सामायिक** - अगार (श्रावक) की अल्प काल की सामायिक को अगार सामायिक कहते हैं। अगार का अर्थ है घर। घर गृहस्थ में रहते हुए जिस सामायिक का पालन किया जाए वह अगार सामायिक कहलाती है। श्रावक दो करण तीन योग से अल्प समय के लिये सावद्य योगों का त्याग करता है। **२. अनगार सामायिक** - अनगार (साधु) की जीवन पर्यन्त की सामायिक अनगार सामायिक कहलाती है। इसमें साधु तीन करण तीन योग से यावज्जीवन सावद्य कार्यों का त्याग करता है। अर्थात् साधु का पंच महाव्रत रूप सर्वविरति चारित्र अनगार सामायिक है।

दोण्हं उववाए पण्णत्ते तंजहा - देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव। दोण्हं उव्वट्टणा पण्णत्ता तंजहा - णेरइयाणं चेव, भवणवासीणं चेव। दोण्हं चयणे पण्णत्ते तंजहा- जोइसियाणं चेव, वेमाणियाणं चेव। दोण्हं गब्भवक्कंती पण्णत्ता तंजहा - मणुस्साणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। दोण्हं गब्भत्थाणं आहारे पण्णत्ते तंजहा - मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। दोण्हं गब्भत्थाणं वुड्ढी पण्णत्ता तंजहा - मणुस्साणं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। एवं णिव्वुड्ढी, विगुव्वणा, गइपरियाए, समुग्घाए, कालसंजोगे, आयाई, मरणे। दोण्हं छविपव्वा पण्णत्ता तंजहा- मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। दो सुक्कसोणियसंभवा पण्णत्ता तंजहा - मणुस्सा चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया चेव। दुविहा ठिई पण्णत्ता तंजहा- कायट्ठिई चेव, भवट्ठिई चेव। दोण्हं कायट्ठिई पण्णत्ता तंजहा - मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। दोण्हं भवट्ठिई पण्णत्ता तंजहा - देवाणं चेव णेरइयाणं चेव। दुविहे आउए पण्णत्ते तंजहा - अद्धाउए चेव, भवाउए चेव। दोण्हं अद्धाउए पण्णत्ते तंजहा - मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। दोण्हं भवाउए पण्णत्ते तंजहा - देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव। दुविहे कम्मे पण्णत्ते तंजहा- पएसकम्मे चेव, अणुभावकम्मे चेव। दो अहाउयं पालेंति तंजहा - देवच्चेव, णेरइयच्चेव। दोण्हं आउयसंवट्टए पण्णत्ते तंजहा - मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव॥ ३३॥

कठिन शब्दार्थ - दोण्हं - दो का, **उववाए** - उपपातजन्म, **उवट्टणा** - उद्वर्त्तना, **चयणे** - च्यवन, **गब्भवक्कंती** - गर्भ व्युत्क्रांति-गर्भ से उत्पत्ति, **गब्भत्थाणं** - गर्भ में रहे हुए ही, **वुड्ढी** - वृद्धि, **णिव्वुड्ढी** - निवृद्धि-क्षीण हो जाते हैं, **विगुव्वणा** - विकुर्वणा, **गइपरियाए** - गति पर्याय, **समुग्घाए** - समुद्घात, **कालसंजोगे** - कालकृत अवस्था, **आयाई** - गर्भ से बाहर निर्गम, **मरणे** - मरण-मृत्यु, **छविपव्वा** - चमडी और पर्व **सुक्कसोणियसंभवा** - शुक्र और शोणित-वीर्य और रज से उत्पन्न, **कायट्ठिई** - कायस्थिति, **भवट्ठिई** - भवस्थिति, **आउए** - आयुष्य, **अद्धाउए** - अद्धायु, **भवाउए** - भवायु, **पएसकम्मे** - प्रदेश कर्म, **अणुभावकम्मे** - अनुभाव कर्म, **अहाउयं** - यथायु, **आउय-संवट्टए**- आयु संवर्तक।

भावार्थ - देव और नैरयिक इन दो का उपपात जन्म कहा गया है क्योंकि वहां गर्भस्थिति नहीं है। नैरयिक और भवनपति देव इन दोनों का मरण उद्वर्त्तना कहलाता है। ज्योतिषी और वैमानिक इन दोनों का मरण च्यवन कहलाता है। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दो की उत्पत्ति गर्भ से होती है ऐसा फरमाया गया है। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दोनों के गर्भ में रहे हुए ही आहार कहा गया है अर्थात् ये दोनों गर्भ में रहे हुए ही आहार करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दोनों की गर्भ में रहे हुए ही वृद्धि कही गई है अर्थात् गर्भ में रहे हुए ही ये बढते हैं इसी प्रकार वात पित्त आदि की विषमता से क्षीण हो जाते हैं। कोई कोई वैक्रिय लब्धि वाले जीव विकुर्वणा करते हैं गतिपर्याय यानी हलन चलन करते हैं अथवा मर कर दूसरी गति में चले जाते हैं अथवा गर्भ में से प्रदेश बाहर निकाल कर संग्राम करते हैं जैसा कि भगवती सूत्र में कहा गया है। गर्भ में रहे हुए ही ये मारणान्तिक आदि समुद्घात करते हैं। इनकी कालकृत अवस्था होती है। गर्भ से बाहर निर्गम होता है और इनकी मृत्यु मरण कहलाता है। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दो के चमड़ी और पर्व यानी हड्डियों की सन्धि होती है। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ये दो पिता के वीर्य और माता के रज से उत्पन्न होते हैं ऐसा फरमाया है। स्थिति दो प्रकार की कही गई है यथा - कायस्थिति और भवस्थिति। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दोनों की कायस्थिति कही गई है अर्थात् ये मर कर फिर उसी काया में जन्म ले सकते हैं। देव और नैरयिक इन दो की भवस्थिति कही गई है क्योंकि देव मर कर फिर देवों में और नारकी में उत्पन्न नहीं हो सकता और नारकी से निकला हुआ जीव फिर नारकी में और देवों में उत्पन्न नहीं हो सकता है। आयुष्य दो प्रकार का फरमाया है यथा - अद्धायु यानी काल प्रधान आयु और भवायु यानी भव प्रधान आयु। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दोनों की अद्धायु होती है ऐसा फरमाया गया है और देवों की और नैरयिकों की इन दोनों की भवायु होती है अर्थात् उस भव की जितनी आयु होती है उतनी पूर्ण करके ही मरते हैं ऐसा फरमाया गया है। कर्म दो प्रकार का फरमाया गया है यथा - प्रदेश कर्म यानी कर्म प्रदेशों को वेदना और अनुभाव कर्म यानी कर्मों के रस को वेदना। देव और नैरयिक ये दो यथायु अर्थात् उस भव की जितनी आयु है उतनी पूर्ण करके ही मरते हैं। इनका आयुष्य बीच में नहीं टूटता है। मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दोनों की आयु संवर्तक कही गई है अर्थात् शस्त्र आदि सात कारणों से इनकी आयु बीच में भी टूट सकती है।

विवेचन-प्रस्तुत प्रथम चार सूत्रों में जन्म मरण के लिए निम्न शब्दों का प्रयोग किया गया है-

उपपात - देव और नारक जीवों का जन्म गर्भ से नहीं होता। वे अन्तर्मुहूर्त्त में ही अपने पूर्ण शरीर का निर्माण कर लेते हैं इसलिए उनके जन्म को उपपात कहा जाता है। देव शय्या में उत्पन्न होते हैं और नैरयिक जीव कुम्भियों में उत्पन्न होते हैं।

उद्वर्तन - *नैरयिक और भवनवासी देव अधोलोक में रहते हैं।* वे मर कर ऊपर आते हैं इसलिए उनके मरण को उद्वर्तन कहा जाता है।

च्यवन - ज्योतिषी और वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में रहते हैं वे आयुष्य पूर्ण कर नीचे आते हैं इसलिए उनके मरण को च्यवन कहा जाता है।

गर्भ व्युत्क्रांति - मनुष्य और तिर्यंच गर्भ से पैदा होते हैं इसलिए उनके गर्भाशय से उत्पन्न होने को गर्भ व्युत्क्रांति कहा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निवृद्धि – यहाँ 'नि' शब्द का अर्थ अभाव है। वात, पित्त आदि दोषों से शरीर की जो हानि होती है उसे निवृद्धि कहते हैं।

विकुर्वणा – वैक्रिय लब्धि वाले मनुष्य और तिर्यंच के विर्कुवणा होती है।

गति पर्याय – गति का अर्थ है जाना अथवा वर्तमान भव से मर कर दूसरे भव में जाना अथवा वैक्रिय लब्धि वाले गर्भस्थ (मनुष्य तिर्यंच) जीव का प्रदेशों से बाहर संग्राम करना गति पर्याय है। श्री भगवती सूत्र के शतक १ में प्रभु फरमाते हैं – **"जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे णेरइएसु उववज्जेज्जा ? गोयमा। अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा से केणट्ठेणं ० ? गोयमा ! से णं सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धिए विउव्विअलद्धीए पराणीयं आगयं सोच्चा णिसम्म पएसे णिच्छुब्भइ णिच्छुब्भइत्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ समोहण्णइत्ता चाउरंगिणिं सेणं विउव्वइ विउव्वइत्ता चाउरंगिणीए सेणाए पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ।"**

प्रश्न – हे भगवन् ! क्या जीव गर्भ में रहा हुआ नैरयिक रूप में उत्पन्न होता है ?

उत्तर – हे गौतम ! कोई एक उत्पन्न होता है और कोई एक उत्पन्न नहीं होता है।

प्रश्न – हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

उत्तर – हे गौतम ! संज्ञी पंचेन्द्रिय सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त वीर्य लब्धि और वैक्रिय लब्धि सम्पन्न जीव गर्भ में रहते हुए आक्रान्त शत्रु को सुन कर अपने प्रदेशों को बाहर निकाल कर वैक्रिय लब्धि से चतुरंगिणी सेना बना कर शत्रु सेना के साथ संग्राम करता है। संग्राम करते हुए यदि उस गर्भस्थ जीव की मृत्यु हो जाय तो वह नरक में उत्पन्न हो सकता है।

काल संयोग – देव और नैरयिक अन्तर्मुहूर्त्त में पूर्णांग हो जाते हैं किन्तु मनुष्य और तिर्यंच काल क्रम के अनुसार अपने अंगों का विकास करते हैं। कालकृत अवस्था को कालसंयोग कहते हैं।

आयाति – गर्भ से बाहर आना आयाति कहलाता है।

छविपर्व – छवि अर्थात् चर्म (चमडा) और पर्व अर्थात् संधियों के बन्धन। चर्म युक्त संधिबन्धन को छवि पर्व कहते हैं। कुछ प्रतियों में **'छवियत्त'** पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ है – छविकात्मक शरीर। कहीं कहीं **'छविपत्त'** पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ है – छवि प्राप्त । मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव छवि और पर्व वाले होते हैं।

काय स्थिति – किसी एक ही काय (निकाय) में मर कर पुनः उसी में जन्म ग्रहण करने की स्थिति को कायस्थिति कहते हैं। पृथ्वीकाय आदि के जीवों का पृथ्वीकाय आदि से चव कर पुनः पृथ्वीकाय आदि में ही उत्पन्न होना।

भव स्थिति – जिस भव में जीव उत्पन्न होता है उसके उसी भव की स्थिति को भव स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच लगातार सात आठ जन्मों तक मनुष्य और तिर्यंच हो सकते हैं इसलिए उनके कायस्थिति और भवस्थिति दोनों होती है

यहाँ मूल में '**सतट्ठ भव**' शब्द दिया है। जिसका अर्थ कई लोग सात भव देवता के और आठ भव तिर्यंच के अथवा मनुष्य के इस प्रकार पन्द्रह भव अर्थ कर देते हैं। किन्तु यह आगम सम्मत नहीं है क्योंकि भगवती सूत्र के चौवीसवें शतक में गमा के थोकड़े में बतलाया गया है कि तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य मरकर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के रूप में अथवा मनुष्य के रूप में आठ भव कर सकते हैं। उसकी उत्कृष्ट स्थिति बने तो सात भव तो कर्म भूमि के एक करोड़ पूर्व एक करोड़ पूर्व के कर सकता है और आठवां भव अकर्मभूमि का तीन पल्योपम की स्थिति वाला युगलिक का कर सकता है। इस प्रकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय की और मनुष्य की उत्कृष्ट काय स्थिति सात करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्योपम की बन सकती है।

प्रश्न - यदि ऐसा है तो आठ ही भव युगलिक के कर लेवे तो काय स्थिति बहुत उत्कृष्ट बन सकती है ?

उत्तर - नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता है। क्योंकि युगलिक मरकर तो देव ही होता है। युगलिक नहीं होता है। यदि युगलिक मरकर युगलिक हो जाता तो युगलिक की काय स्थिति बन सकती थी। परन्तु वैसा नहीं होता है। इसलिए युगलिक की काय स्थिति नहीं बन सकती है। युगलिक की जो भव स्थिति है वहीं उसकी काय स्थिति भी होती है।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय की भी काय स्थिति होती है। इस सूत्र से उनकी काय स्थिति का निषेध नहीं समझना चाहिये। क्योंकि प्रस्तुत सूत्र अन्य योग व्यवछेदक नहीं है। किन्तु योग व्यवछेदक है अर्थात् दो की कायस्थिति का विधान ही करता है। दूसरों की कायस्थिति का निषेध नहीं करता है। देव और नैरयिक मृत्यु के बाद देव और नैरयिक नहीं बनते अतः उनकी भवस्थिति होती है, कायस्थिति नहीं होती।

अद्धायु - अद्धा यानी काल, काल प्रधान आयुष्य जन्मान्तर में भी साथ रहने वाली आयु अद्धायु कहलाती है। कायस्थिति का आयुष्य अद्धायु होता है। मनुष्य ने मनुष्य की अथवा तिर्यंच पंचेन्द्रिय ने तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आयुष्य बांधी है तो उसे अद्धायु कहते हैं।

भवायु - जिस जाति में जीव उत्पन्न होता है उसके आयुष्य को भवायु कहा जाता है। जो कालान्तर में साथ नहीं रहती ऐसी भव प्रधान आयुष्य भव आयुष्य कहलाती है।

प्रदेश कर्म - जिस कर्म के प्रदेशों (पुद्गलों) का ही वेदन होता है रस का नहीं होता उसे प्रदेश कर्म कहते हैं।

अनुभाव कर्म - जिस कर्म के बंधे हुए रस के अनुसार वेदन होता है उसे अनुभाव कर्म कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथायु - आयु पूर्ण हुए बिना किसी भी निमित्त से जिनकी आयु कम नहीं होती, उपक्रम नहीं लगता वे यथायु वाले कहलाते हैं। जैसे देव और नैरयिक।

आयु संवर्त्तक - संवर्त्त यानी घटना, जो घटता है वह संवर्त्तक कहलाता है। आयुष्य का जो संवर्त्तक है वह आयु संवर्त्तक है। अर्थात् उपक्रम लगने से जिसकी आयु बीच में टूट सकती है वे आयु संवर्त्तक कहे जाते हैं जैसे मनुष्य तिर्यंच का आयुष्य सात कारणों से टूट सकता है।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयामविक्खंभसंठाण परिणाहेणं तंजहा भरहे चेव, एरवए चेव। एवं एएणं अहिलावेणं हिमवए चेव, हेरण्णवए चेव। हरिवासे चेव, रम्मयवासे चेव। जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं दो खित्ता पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसं जाव पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो कुराओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्लाओ जाव देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव। तत्थ णं दो महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयामविक्खंभुच्चत्तोव्वेह संठाणपरिणाहेणं तंजहा - कूडसामली चेव, जंबू चेव सुदंसणा। तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव महासोक्खा पलिओवमट्ठिईया परिवसंति तंजहा - गरुले चेव, वेणुदेवे अणाढिए चेव जंबूद्दीवाहिवई॥ ३४॥

कठिन शब्दार्थ - **जंबूद्दीवे दीवे** - जंबूद्वीप में, **मंदरस्स** - मेरु के, **पव्वयस्स** - पर्वत के, **उत्तरदाहिणेणं** - उत्तर और दक्षिण दिशा में, **भरहे** - भरत, **एरवए** - ऐरावत, **वासा** - क्षेत्र, **आयामविक्खंभ संठाण परिणाहेणं** - लम्बाई, चौडाई संस्थान और परिधि से, **बहुसमतुल्ला** - अत्यंत समान प्रमाण वाले, **अविसेसमणाणत्ता** - किंचिन्मात्र भी भिन्नता नहीं है, **अण्णमण्णं** - परस्पर, **णाइवट्टंति** - अतिक्रमण नहीं करते हैं, **हिमवए** - हैमवत, **हेरण्णवए** - हैरण्यवत, **हरिवास**- हरिवर्ष, **रम्मयवासे** - रम्यकवर्ष, **पुरच्छिमपच्चत्थिमेणं** - पूर्व और पश्चिम दिशा में, **पुव्वविदेहे** - पूर्व विदेह, **अवरविदेहे** - पश्चिम विदेह, **देवकुरा** - देवकुरु, **उत्तरकुरा** - उत्तरकुरु, **कूडसामली** - कूट शाल्मली, **महादुमा** - महाद्रुम, **महतिमहालया** - बहुत विस्तृत, **सुदंसणा** - सुदर्शना, **आयामविक्खंभुच्चत्तोव्वेह संठाण परिणाहेणं** - लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, उद्वेध, संस्थान और परिधि से **गरुले** - गरुड़ देव, **वेणुदेवे** - वेणुदेव, **अणाढिए** - अनादृत देव, **परिवसंति** - रहते हैं, **जंबूद्दीवाहिवई**- जंबूद्वीप के अधिपति (स्वामी), **महिड्डिया** - महान् ऋद्धि वाले, **महासोक्खा** - महान् सुख के भोक्ता, **पलिओवमट्ठिईया** - एक पल्योपम की स्थिति वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस जंबूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में क्रमशः भरत और ऐरावत ये दो क्षेत्र कहे गये हैं। ये दोनों लम्बाई चौड़ाई, संस्थान यानी आकार और परिधि से अत्यन्त समान प्रमाण वाले हैं। इन में किञ्चिन्मात्र भी भिन्नता नहीं है और परस्पर अतिक्रमण नहीं करते हैं यानी दोनों समान है। इसी प्रकार इस अभिलापक के अनुसार हैमवत और हैरण्यवत तथा हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों के विषय में भी जानना चाहिए।

इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम दिशा में क्रमशः पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह ये दो क्षेत्र कहे गये हैं। ये दोनों लम्बाई चौड़ाई आदि में समान हैं यावत् इनमें कुछ भी भिन्नता नहीं हैं। इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में क्रमशः देवकुरु और उत्तरकुरु ये दो कुरु कहे गये हैं। ये दोनों लम्बाई चौड़ाई आदि में समान हैं वहाँ पर कूट शाल्मली और जम्बू ये दो महाद्रुम हैं ये दोनों वृक्ष बहुत विस्तृत, तेजवान् और अनेक उत्सवों के स्थानभूत हैं और दर्शनीय हैं। ये दोनों लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई, उद्वेध, संस्थान और परिधि से समान हैं। किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है और परस्पर एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। वहाँ पर शाल्मली वृक्ष पर और जम्बू वृक्ष पर सुपर्णकुमार जाति के वेणुदेव नाम के देव और अनादृत देव, ये दो देव रहते हैं। इनमें से अनादृत देव जम्बूद्वीप का स्वामी है महान् ऋद्धि वाला है यावत् महान् सुख का भोक्ता है इसकी स्थिति एक पल्योपम की है।

विवेचन - जंबूद्वीप परिपूर्ण चन्द्रमंडल के आकार वाला है। उसके मध्य में रहे हुए मेरु पर्वत की उत्तर दिशा में ऐरावत क्षेत्र और दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र है। दोनों क्षेत्रों की लम्बाई चौड़ाई परिधि आदि समान है इसी प्रकार हैमवत् हैरण्यवत् और हरिवर्ष रम्यकवर्ष क्षेत्र परस्पर समान है। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में पूर्व विदेह और पश्चिम दिशा में पश्चिम विदेह तथा उत्तर और दक्षिण दिशा में क्रमशः देवकुरु और उत्तरकुरु है। ये क्षेत्र भी लम्बाई चौड़ाई आदि में परस्पर तुल्य हैं। देवकुरु के मध्य भाग में कूटशाल्मली और उत्तर कुरु के मध्यभाग में जम्बू वृक्ष हैं जिन पर क्रमशः सुपर्णकुमार जाति के वेणुदेव नाम के देव और अनादृत देव निवास करते हैं। इन दोनों में से अनादृत देव जम्बूद्वीप का स्वामी है।

जम्बू वृक्ष का वर्णन करते हुए टीकाकार ने कहा है - जम्बू वृक्ष के फूल और फल रत्नमय है। जम्बू वृक्ष का विष्कंभ आठ योजन, ऊँचाई आठ योजन है दो कोस (गाऊ) जमीन में ऊंडा है स्कंध (जंबू वृक्ष के कंद से ऊपर का और शाखा जहाँ से निकली है वहाँ तक का भाग) दो योजन ऊंचा है छह छह योजन की चार महाशाखाएं चारों तरफ फैली हुई है, शाखाओं के मध्य में विडिम नाम की एक शाखा सभी शाखाओं से ऊंची है। पूर्व दिशा की शाखा के मध्य में अनादृत देव के शयन करने योग्य भवन एक कोस लम्बा है। शेष तीन शाखाओं पर तीन प्रासाद हैं उनमें तीन रमणिक सिंहासन है। जंबू वृक्ष के समान ही कूटशाल्मली वृक्ष का वर्णन जानना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका - भवन और प्रासाद में क्या अंतर है ?

समाधान - जिसकी लंबाई चौड़ाई विषम हो वह भवन और जो समान लम्बाई चौड़ाई वाला हो वह प्रासाद कहलाता है यह सामान्य नियम है। यहाँ ऐसा नहीं समझना चाहिये।

जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासहरपव्वया पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयाम विक्खंभुच्चत्तोव्वेहसंठाण परिणाहेणं तंजहा चुल्लहिमवंते चेव सिहरि चेव। एवं महाहिमवंते चेव रुप्पि चेव, एवं णिसढे चेव णीलवंते चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं हेमवयएरण्णवएसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता जाव सद्दावाई चेव वियडावाई चेव, तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति तंजहा साई चेव पभासे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं हरिवास रम्मएसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव गंधावाई चेव मालवंतपरियाए चेव, तत्थणं दो देवा महिड्डिया चेव जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति तंजहा अरुणे चेव पउमे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं देवकुराए पुव्वावरे पासे एत्थ णं आसखंधसरिसा अद्धचंदसंठाणसंठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा बहुसमतुल्ला जाव सोमणसे चेव विज्जुप्पभे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं उत्तरकुराए पुव्वावरे पासे एत्थणं आसखंधसरिसा अद्धचंदसंठाण संठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा बहुसमतुल्ला जाव गंधमायणे चेव मालवंते चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो दीहवेयड्ढ पव्वया पण्णत्ता तंजहा बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव दीहवेयड्ढे एरावए चेव दीहवेयड्ढे, भरहएणं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्लाओ अविसेसमणाणत्ताओ अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयामविक्खंभुच्चत्तसंठाण परिणाहेणं तंजहा तिमिसगुहा चेव खंडगप्पवायगुहा चेव, तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति तंजहा - कयमालए चेव णट्टमालए चेव। एरावयए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - जाव कयमालए चेव णट्टमालए चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव विक्खंभुच्चत्तसंठाण परिणाहेणं, तंजहा - चुल्लहिमवंत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कूडे चेव वेसमणकूडे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं महाहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता तंजहा - बहुसमतुल्ला जाव महाहिमवंत कूडे चेव वेरुलिय कूडे चेव। एवं णिसढे वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव णिसढकूडे चेव रुयगप्पभे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तंजहा - णीलवंतकूडे चेव उवदंसण कूडे चेव, एवं रुप्पिम्मि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तंजहा - रुप्पि कूडे चेव मणिकंचणकूडे चेव, एवं सिहरिम्मि वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तंजहा - सिहरिकूडे चेव तिगिंछिकूडे चेव॥ ३५॥

कठिन शब्दार्थ - **चुल्लहिमवंते** - चुल्लहिमवान्, **सिहरि** - शिखरी, **वासहरपव्वया** - वर्षधर पर्वत, **महाहिमवंते** - महाहिमवान्, **रुप्पि** - रुक्मी, **णिसढे** - निषध, **णीलवंते** - नीलवान्, **जंबूमंदरस्स**- जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के, **हेमवयएरण्णवएसु** - हेमवत और हैरण्यवत, **वासेसु** - क्षेत्रों में, **वट्टवेयड्डपव्वया** - वृत्त वैताढ्य पर्वत, **सद्दावाई** - शब्दापाती, **वियडावाई** - विकटापाती, **साई**- स्वाति, **पभासे** - प्रभास, **हरिवासरम्मएसु** - हरिवास और रम्यक्वास क्षेत्रों में, **गंधावाई** - गन्धापाती, **मालवंतपरियाए** - माल्यवंत, **पउमे** - पद्म, **विज्जुप्पभे** - विद्युत्प्रभ, **वक्खारपव्वया** - वक्षस्कार पर्वत, **आसखंधसरिसा** - घोडे के कंधे के आकार वाले, **अद्धचंद संठाणसंठिया** - अर्द्ध चन्द्राकार संस्थान वाले, **गंधमायणे** - गन्धमादन, **मालवंते** - माल्यवान्, **दीहवेयड्डपव्वया** - दीर्घ वैताढ्य पर्वत, **तिमिसगुहा** - तिमिस्र गुफा, **खंडगप्पवायगुहा** - खण्डप्रपात गुफा, **कयमालए** - कृतमाल्यक, **णट्टमालए** - नृतमाल्यक, **कूडा** - कूट, **रुयगप्पभे** - रुचकप्रभ, **उवदंसणकूडे** - उपदर्शन कूट, **तिगिंछि कूडे** - तिगिच्छ कूट।

भावार्थ - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में चुल्ल हिमवान् और शिखरी ये दो वर्षधर पर्वत अर्थात् क्षेत्र की मर्यादा करने वाले पर्वत कहे गये हैं, ये दोनों पर्वत लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई, उद्वेध-गहराई, संस्थान आकार और परिधि से समान हैं इनमें कुछ भी भिन्नता नहीं है। परस्पर ये दोनों एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। इसी प्रकार महाहिमवान् और रुक्मी पर्वत के विषय में जानना चाहिए। इसी प्रकार निषध और नीलवान् के लिए जानना चाहिए। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों में दो वृत्त यानी गोल वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं उनके नाम ये हैं - शब्दापाती और विकटापाती। ये दोनों बराबर हैं, इनमें कुछ भी भिन्नता नहीं है। इन दोनों पर्वतों पर क्रमशः स्वाति और प्रभास ये दो देव रहते हैं ये महान् ऋद्धि वाले हैं यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिवास और रम्यक्वास क्षेत्रों में क्रमशः गन्धापाती और माल्यवंत नामक दो वृत्त वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं यावत् ये दोनों समान हैं। इन दोनों पर्वतों पर क्रमशः अरुण और पद्म ये दो देव रहते हैं। ये दोनों महर्द्धिक हैं यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में देवकुरु के पूर्व और पश्चिम में क्रमशः सोमनस और विद्युत्प्रभ ये दो वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं ये अश्व (घोड़े) के कन्धे के आकार वाले हैं यानी मूल में नीचे और फिर आगे ऊंचे ऊंचे होते गये हैं इनका संस्थान अर्द्धचन्द्राकार है यावत् ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में उत्तरकुरु के पूर्व और पश्चिम में क्रमशः गन्ध मादन और माल्यवान् नामक दो वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। ये घोड़े के कन्धे के समान आकार वाले हैं इनका संस्थान अर्द्धचन्द्राकार है यावत् दोनों बिल्कुल समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो दीर्घ (लंबे) वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं यथा भरतक्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य और ऐरावत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत ये दोनों पर्वत समान हैं। भरत क्षेत्र के दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर तिमिस्र गुफा और खण्डप्रपात गुफा ये दो गुफाएं कही गई हैं। लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, आकार और परिधि से ये दोनों बिल्कुल समान हैं। इन में कुछ भी भिन्नता नहीं है। परस्पर ये दोनों एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती हैं। वहां पर इन दोनों गुफाओं में क्रमशः कृतमाल्यक और नृतमाल्यक ये दो देव रहते हैं। ये दोनों महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले हैं। ऐरावत क्षेत्र के दीर्घ वैताढ्य पर्वत के अन्दर दो गुफाएं कही गई हैं। उनमें कृतमाल्यक और नृतमाल्यक ये दो देव रहते हैं यावत् सारा वर्णन भरत क्षेत्र की गुफाओं के समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं यथा - चुल्ल हिमवान् कूट और वैश्रमण कूट। ये दोनों कूट लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, संस्थान और परिधि से बिल्कुल समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं यथा - महाहिमवान् कूट और वेरुलिय कूट। ये दोनों समान हैं। इसी तरह निषध वर्षधर पर्वत पर निषधकूट और रुचकप्रभ कूट ये दो कूट कहे गये हैं। यावत् ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं यथा - नीलवान् कूट और उपदर्शन कूट। यावत् ये दोनों समान हैं। इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं यथा - रुक्मी कूट और मणिकञ्चन कूट। यावत् ये दोनों समान हैं। इसी प्रकार शिखरी वर्षधर पर्वत पर दो कूट कहे गये हैं यथा - शिखरी कूट और तिगिंच्छ कूट। यावत् ये दोनों समान हैं।

विवेचन - जो वर्ष (क्षेत्र) की मर्यादा करने वाला हो उसे वर्षधर कहते हैं। भरतक्षेत्र के उत्तर में चुल्लहिमवान् पर्वत है और शिखरी पर्वत ऐरवत क्षेत्र के आगे है यानी शिखरी पर्वत से उत्तर में ऐरवत क्षेत्र है। ये दोनों पर्वत पूर्व और पश्चिम से लम्बाई में लवण समुद्र तक जुडे हुए है। इन पर्वतों की जीवा, लम्बाई आदि के लिये निम्न गाथाएं दी है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउवीस सहस्साइं, णव य सए जोयणाण बत्तीसे।
चुल्लहिमवंतजीवा, आयामेण कलद्धं च॥
पणयालीस सहस्सा, सयमेगं नव य बारस कलाओ।
अद्धं कलाए हिमवंत, परिरओ सिहरिणो चेव॥

अर्थ - चुल्लहिमवान् पर्वत की जीवा लम्बाई से २४९३२ योजन और अर्द्ध कला $\frac{१}{३८}$ है इसी प्रकार शिखरी पर्वत की जीवा जानना। दोनों पर्वत भरत क्षेत्र से दुगुने विस्तार वाले १०० योजन ऊंचे, २५ योजन जमीन में गहरे और आयत (लम्बा) तथा चतुरस्र संस्थान वाले हैं। दोनों की परिधि ४५१०९ योजन और १२॥ कला है। जैसे चुल्लहिमवान् और शिखरी पर्वत के लिये कहा उसी प्रकार महाहिमवान् आदि पर्वतों के लिए जानना चाहिये। मेरुपर्वत की दक्षिण दिशा में महाहिमवान् और उत्तर दिशा में रुक्मी पर्वत है इसी प्रकार दक्षिण में निषध और उत्तर में नीलवान् पर्वत है। इनका लम्बाई आदि का विशेष वर्णन 'क्षेत्र समास' नामक ग्रंथ में दिया गया है जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिये।

पर्वतों की जमीन में ऊंडाई प्रायः ऊँचाई से चौथे भाग होती है। गोल परिधि अपनी अपनी चौडाई से तिगुनी और कुछ न्यून छह भाग युक्त होती है। चौरस परिधि लम्बाई और चौडाई से दुगुनी होती है।

जो पर्वत पल्य (पाले) के आकार के होते हैं उन्हें 'वृत्त वैताढ्य' कहते हैं। मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में हैमवत क्षेत्र में शब्दापाती और मेरु पर्वत की उत्तर दिशा में हैरण्यवत क्षेत्र में विकटापाती नाम के दो वृत्त वैताढ्य पर्वत हैं जो १००० योजन के परिमाण वाले एवं रत्नमय हैं। इन दोनों पर्वतों पर क्रमशः स्वाति और प्रभास नाम के दो देव रहते हैं कारण कि वहाँ उनके भवन हैं इसी प्रकार हरिवर्ष क्षेत्र में गंधापाती और रम्यक् वर्ष में माल्यवंत पर्वत हैं जहाँ पर क्रम से अरुण और पद्म देव रहते हैं।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में देवकुरु के पूर्व और पश्चिम में सौमनस और विद्युतप्रभ नाम के दो वक्षस्कार पर्वत और उत्तर कुरु के पूर्व और पश्चिम में क्रमशः गन्धमादन और माल्यवान् नाम के दो वक्षस्कार पर्वत हैं। निषध पर्वत के समीप सौमनस और विद्युतप्रभ तथा नीलवान पर्वत के नजदीक गंधमादन और माल्यवंत ये चार वक्षस्कार पर्वत हैं। ये इन वर्षधर पर्वतों के नजदीक ५०० योजन विस्तार वाले ४०० योजन ऊंचे और १०० योजन जमीन में ऊंडे (गहरे) हैं। चार वक्षस्कार पर्वतों की लम्बाई ३० हजार योजन और छह कला की है। ये वक्षस्कार पर्वत अश्व (घोडे) के स्कंध के समान और अर्द्ध चन्द्राकार संस्थान वाले हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में दो दीर्घ (लम्बा) वैताढ्य पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत भरत और ऐरवत क्षेत्र के मध्य भाग में पूर्व और पश्चिम से लवण समुद्र को स्पर्श करते हैं। दोनों २५ योजन ऊँचे हैं २५ गाऊ ऊंडे (गहरे) है और २५ योजन चौड़े हैं। आयत संठाण वाले सर्व रत्नमय है।

भरतक्षेत्र के दीर्घ वैताढ्य पर्वत के पश्चिम भाग में तमिस्रा गुफा ५० योजन लम्बी १२ योजन चौड़ी और आठ योजन ऊंची आयत चतुरस्र संस्थान वाली है। जो विजय द्वार के समान आठ योजन ऊंचे और चार योजन चौड़े द्वार वाली वज्र के किवाडों से ढकी हुई है जिसके बहुमध्य भाग में दो योजन के अंतर एवं तीन योजन के विस्तार वाली उन्मग्नजला और निमग्नजला नाम की दो नदियाँ हैं। तमिस्रा गुफा की तरह पूर्व भाग में खण्डप्रपात गुफा जाननी चाहिये। तमिस्रा गुफा में कृतमाल्यक और खण्डप्रपात गुफा में नृतमाल्यक नाम के दो देव बसते हैं। ऐरावत क्षेत्र में भी भरत क्षेत्र की तरह समझ लेना चाहिये।

चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर ११ कूट शिखर हैं। उनमें से पर्वत के अधिपति देव का निवास होने से और देवों के निवासभूत कूटों में पहला होने से हिमवत् कूट का ग्रहण किया है और सभी कूटों में अंतिम होने से वैश्रमण कूट का ही ग्रहण किया है क्योंकि यहाँ दो स्थानों का अधिकार चल रहा है अतः सूत्रकार ने दो कूटों के ही नाम दिये हैं। चौतीस दीर्घ वैताढ्य, माल्यवान विद्युतप्रभ निषध और नीलवान् इन सभी पर्वतों में नौ-नौ कूट कहे हैं। शिखरी और लघु हिमवान् पर्वत पर ११-११ कूट हैं। रुक्मी और महाहिमवान् पर्वत पर ८-८ तथा सौमनस तथा गंधमादन पर्वत पर ७-७ कूट हैं। १६ वक्षस्कार पर्वतों पर चार-चार कूट कहे गये हैं। पूर्ववत् यहाँ भी दूसरे और अंतिम कूटों का ही नाम सूत्रकार ने ग्रहण किया है।

जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणेणं चुल्लहिमवंतसिहरीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयामविक्खंभउव्वेह संठाण परिणाहेणं तंजहा - पउमद्दहे चेव पुंडरीयद्दहे चेव। तत्थ णं दो देवयाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति तंजहा - सिरी चेव लच्छी चेव। एवं महाहिमवंतरुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तंजहा महापउमद्दहे चेव महापोंडरीयद्दहे चेव। देवयाओ हिरिच्चेव बुद्धिच्चेव। एवं णिसढणीलवंतेसु वासहरपव्वएसु तिगिंछिद्दहे चेव केसरिद्दहे चेव। देवयाओ धिई चेव कित्तिच्चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं महाहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति तंजहा - रोहियच्चेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिकंतच्चेव। एवं णिसढाओ वासहरपव्वयाओ तिगिंछिद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति तंजहा - हरिच्चेव सीओअच्चेव। जंबू मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंताओ वासहरपव्वयाओ केसरिद्दहाओ दो महाणइओ पवहंति तंजहा - सीया चेव णारीकंता चेव, एवं रुप्पीओ वासहरपव्वयाओ महापोंडरीयद्दहाओ दो महाणईओ पवहंति तंजहा- णरकंता चेव रुप्पकूला चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं भरहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला तंजहा - गंगप्पवायद्दहे चेव सिंधुप्पवायद्दहे चेव। एवं हिमवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला तंजहा- रोहियप्पवायद्दहे चेव रोहियंसप्पवायद्दहे चेव। जंबू मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हरिवासे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला तंजहा - हरियप्पवायद्दहे चेव हरिकंतप्पवायद्दहे चेव । जंबू मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं महाविदेह वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला तंजहा - सीयप्पवायद्दहे चेव सीओयप्पवायद्दहे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं रम्मए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला तंजहा- णरकंतप्पवायद्दहे चेव णारीकंतप्पवायद्दहे चेव। एवं एरण्णवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला सुवण्णकूलप्पवायद्दहे चेव रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं एरवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला तंजहा - रत्तप्पवायद्दहे चेव रत्तावइप्पवायद्दहे चेव। जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं भरहे वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्ला तंजहा - गंगा चेव सिंधु चेव, एवं जहा पवायद्दहा एवं णईओ भाणियव्वाओ जाव एरवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्लाओ तंजहा - रत्ता चेव रत्तवई चेव॥ ३६॥

कठिन शब्दार्थ - महद्दहा - महाद्रह, **पउमद्दहे** - पद्म द्रह, **पुंडरीयद्दहे** - पुण्डरीक द्रह, **सिरी**- श्री, **लच्छी** - लक्ष्मी, **देवयाओ** - देवियाँ, **महाहिमवंतरुप्पीसु** - महा हिमवान् और रुप्पी-रुक्मी, **हिरि** - ह्री, **चेव** - और, **बुद्धि** - बुद्धि, **धिई** - धृति, **कित्तिच्चेव** - और कीर्ति, **रोहियच्चेव** - रोहिता, **हरिकंत**- हरिकान्ता, **महाणईओ** - महा नदियाँ, **पवहंति** - निकलती है, **सीओआ** - सीतोदा, **सीया** - सीता, **णारीकंता** - नारीकान्ता, **णरकंता** - नरकान्ता, **रुप्पकूला** - रुप्यकूला, **पवायद्दहा** - प्रपात द्रह, **गंगप्पवायद्दहे** - गंगा प्रपात द्रह, **सिंधुप्पवायद्दहे** - सिन्धु प्रपात द्रह, **रोहियप्पवायद्दहे** - रोहित प्रपात द्रह, **रोहियंसप्पवायद्दहे** - रोहितांस प्रपात द्रह, **सुवण्णकूलप्पवायद्दहे**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुवर्णकूल प्रपात द्रह, **रुप्पकूलप्पवायद्दहे** - रुप्यकूल प्रपात द्रह, **रत्तप्पवायद्दहे** - रक्ता प्रपात द्रह, **रत्तावइप्पवायद्दहे** - रक्तवती प्रपात द्रह।

भावार्थ - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण में चुल्लहिमवान् और शिखरी वर्षधर पर्वतों पर दो महाद्रह कहे गये हैं ये दोनों लम्बाई, चौड़ाई, उद्वेघ, संस्थान और परिधि से समान हैं। इनमें कुछ भी भिन्नता नहीं है और परस्पर एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं वे ये हैं पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह। यहां पर उन द्रहों में श्री और लक्ष्मी ये दो देवियाँ रहती हैं, वे महान् ऋद्धि वाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली हैं। इसी तरह महाहिमवान् और रुक्मी वर्षधर पर्वतों पर क्रमशः महापद्मद्रह और महापुण्डरीकद्रह ये दो महाद्रह कहे गये हैं यावत् ये दोनों समान हैं। इन दोनों द्रहों में क्रमशः ह्री और बुद्धि ये दो देवियाँ रहती है। इसी प्रकार निषध और नीलवान् वर्षधर पर्वतों पर क्रमशः तिगिंच्छि द्रह और केसरी द्रह हैं। इनमें धृति और कीर्ति ये दो देवियाँ रहती हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के महापद्म द्रह से रोहिता और हरिकान्ता ये दो महानदियाँ निकलती हैं। इसी तरह निषध नामक वर्षधर पर्वत के तिगिंच्छि द्रह से हरिता और सीतोदा ये दो महानदियाँ निकलती हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरी द्रह से सीता और नारीकान्ता ये दो महानदियाँ निकलती हैं। इसी प्रकार रुक्मी नामक वर्षधर पर्वत के महापुण्डरीक द्रह से नरकान्ता और रूप्यकूला ये दो महानदियाँ निकलती हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में गंगा प्रपात द्रह और सिन्धुप्रपातद्रह ये दो प्रपातद्रह कहे गये हैं। ये दोनों समान हैं। इसी प्रकार हिमवत क्षेत्र में रोहित प्रपात द्रह और रोहितांस प्रपात द्रह ये दो प्रपात द्रह कहे गये हैं। ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में हरिवर्ष क्षेत्र में हरितप्रपात द्रह और हरिकान्तप्रपात द्रह ये दो प्रपात द्रह कहे गये हैं। ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में महाविदेह क्षेत्र में सीताप्रपात द्रह और सीतोदाप्रपात द्रह ये दो प्रपातद्रह कहे गये हैं। ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में रम्यक वर्ष क्षेत्र में नरकान्त प्रपात द्रह और नारीकान्त प्रपात द्रह ये दो प्रपात द्रह कहे गये हैं ये दोनों समान हैं। इसी प्रकार ऐरण्यवत् क्षेत्र में सुवर्णकूल प्रपात द्रह और रुप्यकूलप्रपात द्रह ये दो प्रपात द्रह कहे गये हैं ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में रक्ताप्रपात द्रह और रक्तवती प्रपात द्रह ये दो प्रपात द्रह कहे गये हैं। ये दोनों समान हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में गङ्गा और सिन्धु ये दो महानदियाँ कही गई हैं। ये दोनों समान हैं। इस प्रकार जैसे प्रपातद्रहों का कथन किया गया है उसी प्रकार नदियों का कथन करना चाहिए अर्थात् उन सब प्रपात द्रहों में से उसी नाम की नदियाँ निकलती हैं यावत् ऐरवत क्षेत्र में रक्ता और रक्तवती ये दो महानदियाँ कही गई हैं। ये दोनों समान हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - छह वर्षधर पर्वतों पर छह द्रह कहे हैं उनके नाम क्रमशः इस गाथा में दिये हैं -

पउमे य १ महापउमे २ तिगिंछी ३ केसरी ४ दहे चेव।

हरए महापुंडरिए ५ पुंडरीए चेव य ६ दहाओ॥

- १ पद्म २. महापद्म ३. तिगिंछी ४. केशरी ५. महापुंडरीक और ६. पुंडरीक। हिमवान् पर्वत के ऊपर बहुमध्य भाग में पद्म है जिसके अंदर पद्मद्रह है। इसी प्रकार शिखरी पर्वत के ऊपर बहुमध्य भाग में पुंडरीक नाम का द्रह है। दोनों द्रह पूर्व और पश्चिम में १००० योजन के लम्बे, ५०० योजन चौड़े चार कोणों से १० योजन ऊंचे चांदी के तीर, वज्रमय पाषाण रक्त सुवर्ण तल वाले, सुवर्ण मध्य रजत मणि की वेलु वाले हैं चारों दिशाओं में मणि के पगथिये (सोपान) वाले सुखपूर्वक उतरने योग्य तोरण, ध्वज और छत्र आदि से सुशोभित नीलोत्पल और पुंडरीक कमल आदि से रचित विविध पक्षी और मछलियाँ जहाँ घूम रही है तथा भ्रमरों के समूह से उपभोग्य ऐसे पद्म द्रह में श्रीदेवी और पुंडरीक द्रह में लक्ष्मी देवी है। दोनों देवियाँ पल्योपम के आयुष्य वाली होने से भवनपति जाति की है। क्योंकि वाणव्यंतर देवियों की उत्कृष्ट आयु अर्द्ध पल्योपम की होती है जबकि भवनपति देवियों की उत्कृष्ट आयु ४॥ पल्योपम प्रमाण होती है। दोनों महाद्रह के मध्य १ योजन के लम्बे-चौड़े आधे योजन के जाड़े आधे योजन के ऊंचे और जल में १० योजन डूबे हुए कमल हैं। जिनके वज्रमय मूल, रिष्टरत्नमय कंद, वैडूर्य रत्नमय नाल और बाह्यपत्र तथा जांबूनद (सुवर्ण) मय अंदर के पत्र पीले सुवर्ण की कर्णिका और तपे हुए सुवर्ण की केशरी तंतुएं हैं। उन दो कमलों की दो कर्णिका आधे योजन की लम्बी चौडी और एक कोस ऊंची है उसके ऊपर इन दो देवियों के भवन हैं। महाहिमवान् पर्वत पर महापद्म द्रह और रुक्मी पर्वत पर महापोंडरीक द्रह है। दोनों द्रह दो हजार योजन लम्बे एक हजार योजन चौड़े हैं दो योजन के लम्बे चौड़े कमल हैं इन दोनों कमल में दो देवियां रहती है। महापद्म में ह्री देवी और महापुंडरीक में बुद्धि देवी है। निषध पर्वत के तिगिंछी द्रह में धृति देवी और नीलवान् पर्वत के केशरी द्रह में कीर्ति देवी का निवास है। ये दोनों द्रह ४ हजार योजन के लम्बे और दो हजार योजन के चौड़े हैं।

रोहित नदी महापद्म द्रह के दक्षिण तरफ के तोरण से निकल कर १६०५ योजन से कुछ अधिक (पांच कला) दक्षिण दिशा के पर्वत के ऊपर जा कर (बह कर) हार के आकार में कुछ अधिक २०० योजन प्रमाण वाले मगर (मत्स्य) के पडनाल रूप प्रपात-प्रवाह से महाहिमवान् पर्वत के रोहित नामक कुण्ड में गिरती है। मगर के मुख की जीभ १ योजन लम्बी १२॥ योजन चौडी और १ योजन जाडी है तथा रोहित प्रपात कुंड में से दक्षिण दिशा के तोरण द्वार से निकल कर हैमवत क्षेत्र के मध्य भाग में रहे हुए शब्दापाती नामक वृत्त वैताढय पर्वत से दो कोस दूर रह कर २८००० नदियों को साथ मिला कर जगती (कोट) के नीचे भूमि को भेद कर पूर्व दिशा से लवण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्र में जा गिरती है। प्रवाह में यानी निकलते समय रोहित नदी १२॥ योजन चौडी और १ गाऊ ऊंडी होती है उसके बाद क्रमशः वृद्धि पाती हुई मुख (समुद्र प्रवेश) में १२५ योजन चौडी २॥ योजन ऊंडी और दोनों तरफ दो वेदिका और दो वनखण्ड से युक्त होती है। इसी प्रकार सभी महानदियाँ, पर्वतों, कूटों और वेदिका आदि से युक्त है। हरिकान्ता नदी तो महापद्म द्रह से ही उत्तर दिशा के तोरण द्वार से निकल कर कुछ अधिक १६०५ योजन तक उत्तर दिशा में पर्वत ऊपर हो कर २०० योजन प्रमाण वाले प्रपात से हरिकांता कुंड में गिरती है। मगरमुख की जीभिका (जिह्वा) का प्रमाण पूर्ववत् जानना चाहिये। वह प्रपात कुण्ड से उत्तर दिशा के तोरण द्वार से निकल कर हरिवर्ष क्षेत्र के मध्य भाग में रहे हुए गंधापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत से एक योजन दूर रह कर पश्चिम दिशा में ५६००० नदियों के साथ लवण समुद्र में गिरती है। यह हरिकांता नदी रोहित नदी से दुगुने प्रमाण वाली है।

हरित महानदी तिगिंछि द्रह के दक्षिण दिशा के तोरण द्वार से निकल कर कुछ अधिक ७४२१ योजन दक्षिण दिक्षा सन्मुख होकर पर्वत के ऊपर जाकर कुछ अधिक ४०० योजन प्रमाण वाले प्रपात से हरिकुंड में गिर कर पूर्व के समुद्र में मिलती है। शेष लम्बाई आदि हरिकान्ता नदी के अनुसार जानना चाहिये। शीतोदा महानदी तिगिंछि द्रह के उत्तर दिशा के तोरण द्वार से निकल कर कुछ अधिक ७४२१ योजन उत्तर दिशा सन्मुख होकर कुछ अधिक ४०० योजन प्रमाण वाले प्रपात से शीतोदा कुण्ड में गिरती है। मगरमुख की जीभ ४ योजन लम्बी ५ योजन चौडी और १ योजन जाडी समझना चाहिए। शीतोदा कुण्ड से उत्तर दिशा के तोरण द्वार से निकल कर देवकुरु क्षेत्र का विभाग करती हुई चित्र और विचित्र कूट वाले दो पर्वतों और निषध द्रह आदि पांच द्रहों के दो भाग करती हुई ८४००० नदियों के साथ मिलती हुई भद्रशाल वन के मध्य में मेरु की पश्चिम दिशा से पश्चिम महाविदेह के मध्य भाग द्वारा एक विजय में से २८-२८ हजार नदियों के साथ मिल कर जयंत द्वार के नीचे से पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है। शीतोदा नदी प्रवाह में ५० योजन चौडी और १ योजन गहरी है उसके बाद अनुक्रम से बढ़ती हुई मुख में (समुद्र में मिलते समय) ५०० योजन चौडी और १० योजन गहरी होती है।

शीता महानदी केशरी द्रह के दक्षिण तोरण से निकल कर कुंड में गिर कर मेरु पर्वत के पूर्व से पूर्वविदेह के मध्य से विजय द्वार के नीचे से पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है। शेष वक्तव्यता शीतोदा नदी के समान जानना चाहिये। नारीकांता नदी तो उत्तर दिशा के तोरण से निकल कर रम्यक् क्षेत्र का विभाग करती हुई हरित महानदी के वक्तव्यतानुसार रम्यक् वर्ष के मध्य भाग से पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है। नरकांता नदी महापुंडरीक द्रह में से दक्षिण दिशा के तोरण द्वार से निकल कर रम्यक वर्ष का विभाग करती है। हरिकांता नदी की वक्तव्यता के अनुसार पूर्व समुद्र में प्रवेश करती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। रुप्यकूला नदी महापुंडरीक द्रह के उत्तर दिशा के तोरण से निकल कर हैरण्यवत क्षेत्र के दो विभाग करती हुई रोहित नदी की वक्तव्यता के अनुसार पश्चिम समुद्र में गिरती है।

प्रपात यानी गिरना, नदी जिस कुण्ड में गिरती है वह प्रपात द्रह (प्रपात कुण्ड) कहलाते हैं। हिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर रहे पद्म द्रह के पूर्व दिशा के तोरण से निकल कर पूर्व दिशा सन्मुख ५०० योजन जाकर गंगावर्तन कूट में पुनः मुडती हुई ५२३ योजन और ३॥ कला तक दक्षिण दिशा सन्मुख पर्वत पर जाकर गंगा महानदी लम्बाई से अर्द्ध योजन प्रमाण चौडाई से ६। योजन वाली जाडाई से आधे गाऊ वाली जीभिका युक्त ऐसे मुंह फाडे हुए मगर के समान प्रवाह से १ योजन प्रमाण वाले और मोती के हार के जैसे प्रपात (ऊंचे से गिरना) से गंगाप्रपात कुंड में गिरती है वह कुण्ड ६० योजन लम्बा और चौड़ा कुछ कम १९० योजन की परिधि वाला दस योजन ऊंचा और विविध मणियों से बंधा हुआ है। उस कुंड के पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में तीन तीन पगथियाँ (सोपान) दर्शनीय है जो विविध तोरणों से युक्त है। मध्य भाग में गंगा देवी का द्वीप है। गंगा प्रपात कुण्ड से दक्षिण दिशा के तोरण से निकल कर प्रवाह में (निकलते समय) ६। योजन चौडी आधे कोस ऊंडी गंगा नदी उत्तरार्द्ध भरत के दो भाग करती हुई ७००० नदियों से मिल कर खंड प्रपात गुफा के पूर्व भाग से नीचे वैताढय पर्वत को भेद कर दक्षिणार्द्ध भरत के दो विभाग करती हुई १४००० नदियों (७ हजार उत्तरार्द्ध भरत की व ७००० दक्षिणार्द्ध भरत की) के साथ प्रवेश स्थल में ६२॥ योजन चौडी और १। योजन ऊंडी ऐसी जगती का भेदन करती हुई पूर्व के लवण समुद्र में प्रवेश करती है। गंगा प्रपात द्रह के समान सिंधु प्रपात द्रह का वर्णन जानना चाहिये। दूसरा स्थान होने से इसी प्रकार हिमवत् हरिवर्ष, महाविदेह रम्यक् वर्ष, हेरण्यवत ऐरवत क्षेत्र के दो-दो प्रपात द्रह कहे गये हैं। मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में सात महानदियाँ बहती हैं - गंगा, सिन्धु, रोहितांशा, रोहिता हरिकांता, हरिसलिता, सीतोदा। मेरु पर्वत की उत्तर दिशा में सात महानदियाँ बहती है - सीता, नारीकाता, नरकान्ता, रुप्यकूला, सुवर्णकूला, रक्ता, रक्तवती। पद्म और पोंडरीक द्रह से ३-३ महानदियाँ निकलती है शेष द्रहों से दो-दो महानदियाँ निकलती है। जम्बूद्वीप में कुल १४ महानदियाँ है। विशेष वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र से जानना चाहिये।

जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले होत्था। एवं इमीसे ओसप्पिणीए जाव पण्णत्ते। एवं आगमिस्साए उस्सप्पिणीए जाव भविस्सइ। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए मणुया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, दोण्णि य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था। एवं इमीसे ओसप्पिणीए जाव पालइत्था। एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगमिस्साए उस्सप्पिणीए जाव पालइस्संति। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एग समए एग जुगे दो अरिहंत वंसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। एवं चक्कवट्टि वंसा, दसार वंसा। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एग समए दो अरिहंता उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। एवं चक्कवट्टिणो, एवं बलदेवा, एवं वासुदेवा, जाव उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। जंबूद्दीवे दीवे दो कुरासु मणुया सया सुसमसुसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा देवकुराए चेव उत्तरकुराए चेव। जंबूद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा - हरिवासे चेव रम्मयवासे चेव। जंबूद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसमदुसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा - हेमवए चेव एरण्णवए चेव। जंबूद्दीवे दीवे दोसु खित्तेसु मणुया सया दुसमसुसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा - पुव्वविदेहे चेव अवरविदेहे चेव। जंबूद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहं वि कालं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा - भरहे चेव एरवए चेव॥ ३७॥

कठिन शब्दार्थ - **तीताए** - अतीत, **सुसम दूसमाए** - सुषम दुष्षम नामक चौथा, **समाए** - आरा, **दो सागरोवमकोडाकोडीओ** - दो कोडाकोडी (कोटाकोटि) सागरोपम का, **होत्था** - हुआ था, **आगमिस्साए** - आगामी, **उड्ढं उच्चत्तेणं** - ऊंचाई, **गाउयाइं** - कोस की, **परमाउं** - पूर्ण आयु का, **पालइत्था** - पालन करते थे, **एगजुगे** - एक युग में, **अरिहंत वंसा** - अरिहंतों के वंश, **उप्पज्जिंसु** - उत्पन्न हुए थे, **उप्पज्जंति** - उत्पन्न होते हैं, **उप्पज्जिस्संति** - उत्पन्न होंगे, **चक्कवट्टि वंसा** - चक्रवर्तियों के वंश, **दसार वंसा** - दसार (वासुदेवों) के वंश, **सुसमसुसमं** - सुषमसुषम नामक पहले आरे जैसी, **उत्तमं**- उत्तम, **इड्ढिं** - ऋद्धि को, **पत्ता** - प्राप्त करके, **पच्चणुब्भवमाणा** - अनुभव करते हुए, **विहरंति**- विचरते हैं, **सुसमं** - सुषम नामक दूसरे आरे की, **अवरविदेहे** - अपर (पश्चिम) विदेह।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी काल में सुषमदुष्षम नामक चौथा आरा दो कोडाकोडी सागरोपम का हुआ था। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणी काल का सुषमदुष्षम नामक तीसरा आरा यावत् दो कोडाकोडी सागरोपम का कहा गया है। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणी काल का सुषमदुष्षम नामक चौथा आरा यावत् दो कोडाकोडी सागरोपम का होगा। इस जम्बूद्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी में सुषमा नामक पांचवें आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गाउ यानी कोस की थी और वे मनुष्य दो पल्योपम पूर्ण आयु का पालन करते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थे यानी उनकी आयु दो पल्योपम की होती थी। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणी के दूसरे आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गाउ और आयु दो पल्योपम थी। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणी काल के सुषमा नामक पांचवें आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गाउ और आयुष्य दो पल्योपम की होगी। इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में एक युग में एक ही समय में दो अरिहन्तों के वंश उत्पन्न हुए थे तथा उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार दो चक्रवर्तियों के वंश और दो दसार यानी वासुदेव राजाओं के वंश उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे। इस जम्बूद्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में एक समय में दो अरिहन्त (तीर्थंकर) उत्पन्न हुए थे तथा उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार दो चक्रवर्तियों के वंश, दो बलदेवों के वंश, दो वासुदेव एक समय में उत्पन्न हुए थे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इस जम्बूद्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु इन दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषमसुषम नामक पहले आरे जैसी उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं। इस जम्बूद्वीप में हरिवर्ष और रम्यकवर्ष इन दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषम नामक दूसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए यानी उसे भोगते हुए विचरते हैं। इस जम्बूद्वीप में हैमवत और ऐरण्यवत इन दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा सुषमदुष्षम नामक तीसरे आरे सम्बन्धी उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं। इस जम्बूद्वीप में पूर्व विदेह और अपरविदेह यानी पश्चिमविदेह इन दो क्षेत्रों में मनुष्य सदा दुष्षमसुषम नामक चौथे आरे सम्बन्धी उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करके उसका अनुभव करते हुए यानी उसे भोगते हुए विचरते हैं। इस जम्बूद्वीप में भरत और ऐरवत इन दो क्षेत्रों में मनुष्य छहों आरों के भिन्न भिन्न भावों का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

विवेचन - पांच वर्ष के काल को एक युग कहते हैं। एक युग में अरिहंतों के दो वंश-प्रवाह कहे हैं। एक भरत क्षेत्र में उत्पन्न और दूसरा ऐरवत क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में छह-छह आरे होते हैं। यह काल भरत और ऐरवत क्षेत्र में ही होता है। प्रथम सुषमसुषम आरे में जितनी आयु और अवगाहना भरत ऐरवत क्षेत्र में होती है उतनी ही आयु और अवगाहना देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों की होती है। सुषम नामक दूसरे आरे में जितनी आयु और अवगाहना होती है उतनी ही हरिवर्ष रम्यक् वर्ष क्षेत्र के मनुष्यों की सदैव रहती है। सुषम दुष्षम नामक तीसरे आरे में जितनी आयु अवगाहना होती है उतनी ही आयु और अवगाहना हैमवत् हैरण्यत में रहती है।

देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र की मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम (जघन्य पल्योपम के असंख्य भाव न्यून भी आयुष्य होता है) और अवगाहना तीन कोस की होती है। इन मनुष्यों के ५६ पसलियाँ होती है और सुषम सुषम नामक पहले आरे की तरह अत्यंत सुख का अनुभव करते हैं। ४९ दिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक अपनी संतान की प्रतिपालना करते हैं। तीन दिन में आहार करते हैं। हरिवर्ष रम्यक् वर्ष क्षेत्र के मनुष्यों की आयु दो पल्योपम और शरीर की ऊंचाई दो गाऊ की होती है वे दो दिन में आहार करते है और ६४ दिन तक अपनी संतान की पालना करते हैं उनके १२८ पसलियाँ होती है। हैमवत् हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों की आयु १ पल्योपम और अवगाहना १ गाऊ की होती है। वज्रऋषभनाराच संहनन वाले इन युगलिकों के शरीर में ६४ पसलियाँ होती है एक दिन में आहार करते हैं और ७९ दिन तक संतान की पालना करते हैं।

पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह के मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक करोड पूर्व की और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष की होती है। दुष्षम सुषम नामक चौथे आरे के समान यहाँ भाव वर्तते हैं।

जंबूद्दीवे दीवे दो चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। दो सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा। दो कत्तिया, दो रोहिणीओ, दो मगसिराओ, दो अद्दाओ एवं भाणियव्वं -

कत्तियरोहिणी मगसिर, अद्दा य पुणव्वसू य पूसो य।
तत्तो वि अस्सलेसा, महा य दो फग्गुणीओ य।। १ ।।
हत्थो चित्ता साई, विसाहा तह य होइ अणुराहा।
जेट्ठा मूलो पुव्वा य, आसाढा उत्तरा चेव ।। २ ।।
अभिइ सवण धणिट्ठा, सयभिसया दो य होंति भद्दवया।
रेवइ अस्सिणि भरणी, णेयव्वा आणुपुव्वीए।। ३ ।।

एवं गाहाणुसारेणं णेयव्वं जाव दो भरणीओ। दो अग्गी, दो पयावई, दो सोमा, दो रुद्दा, दो अइई, दो बहस्सई, दो सप्पी, दो पीई, दो भगा, दो अज्जमा, दो सविया, दो तट्ठा, दो वाऊ, दो इंदग्गी, दो मित्ता, दो इंदा, दो णिरई, दो आऊ, दो विस्सा, दो बम्हा, दो विण्हू, दो वसू, दो वरुणा, दो अया, दो विविद्धी, दो पुस्सा, दो अस्सा, दो यमा। दो इंगालगा, दो वियालगा, दो लोहितक्खा, दो सणिच्चरा, दो आहुणिया, दो पाहुणिया, दो कणा, दो कणगा, दो कणकणगा, दो कणगवियाणगा, दो कणगसंताणगा, दो सोमा, दो सहिया, दो आसासणा, दो कज्जोवगा, दो कब्बडगा, दो अयकरगा, दो दुंदुभगा, दो संखा, दो संखवण्णा, दो संखवण्णाभा, दो कंसा, दो कंसवण्णा, दो कंसवण्णाभा, दो रुप्पी, दो रुप्पाभासा, दो णीला,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो णीलोभासा, दो भासा, दो भासरासी, दो तिला, दो तिलपुप्फवण्णा, दो दगा, दो दगपंचवण्णा, दो काका, दो कक्कंधा, दो इंदग्गी, दो धूमकेऊ, दो हरी, दो पिंगला, दो बुद्धा, दो सुक्का, दो बहस्सई, दो राहू, दो अगत्थी, दो माणवगा, दो कासा, दो फासा, दो धुरा, दो पमुहा, दो वियडा, दो विसंधी, दो णियल्ला, दो पइल्ला, दो जडियाइलगा, दो अरुणा, दो अग्गिल्ला, दो काला, दो महाकालगा, दो सोत्थिया, दो सोवत्थिया, दो बद्धमाणगा, दो पूसमाणगा, दो अंकुसा, दो पलंबा दो णिच्चालोगा, दो णिच्चुज्जोया, दो संयपभा, दो ओभासा, दो सेयंकरा, दो खेमंकरा, दो आभंकरा, दो पभंकरा, दो अपराजिया, दो अरया दो असोगा, दो विगयसोगा, दो विमला, दो विमुहा, दो वितत्ता, दो वितत्था, दो विसाला, दो साला, दो सुव्वया, दो अणियट्टा, दो एगजडी, दो दुजडी, दो करकरिगा, दो रायग्गला, दो पुप्फकेऊ, दो भावकेऊ॥ ३८॥

कठिन शब्दार्थ - **चंदा** - चन्द्रमा, **पभासिंसु** - प्रकाशित हुए थे, **पभासंति** - प्रकाशित होते हैं, **पभासिस्संति** - प्रकाशित होंगे, **सूरिया** - सूर्य, **तविंसु** - तपे थे, **तवंति** - तपते हैं, **तविस्संति** - तपेंगे, **कत्तिया** - कृतिका, **अद्दा** - आर्द्रा, **पुणव्वसू** - पुनर्वसु, **पूसो** - पुष्य, **अस्सलेसा** - अश्लेषा, **महा**- मघा, **फग्गुणीओ** - फाल्गुनी, **हत्थो** - हस्त, **चित्ता** - चित्रा, **विसाहा** - विशाखा, **अणुराहा** - अनुराधा, **जेट्ठा** - ज्येष्ठा, **पुव्वाआसाढा** - पूर्वा आषाढा, **अभिई** - अभिजित, **सवण** - श्रवण, **धणिट्ठा**- धनिष्ठा, **सयभिसया** - शत भिषक्, **अस्सिणि** - अश्विनी।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा प्रकाशित हुए थे, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होंगे। इसी प्रकार दो सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे। इस जम्बूद्वीप में दो कृतिका, दो रोहिणी, दो मृगशिर, दो आर्द्रा नक्षत्र हैं। इस प्रकार कहना चाहिए -

१. कृतिका २. रोहिणी ३. मृगशिर ४. आर्द्रा ५. पुनर्वसु ६. पुष्य ७. अश्लेषा ८. मघा ९-१०. दो फाल्गुनी यानी पूर्वा फाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी ११. हस्त १२. चित्रा १३. स्वाति १४. विशाखा १५. अनुराधा १६. ज्येष्ठा १७. मूल १८. पूर्वा आषाढा १९. उत्तरा आषाढा २०. अभिजित २१. श्रवण २२. धनिष्ठा २३. शतभिषक् २४-२५. दो भाद्रपद यानी पूर्व भाद्रपद और उत्तर भाद्रपद २६. रेवती २७. अश्विनी २८. भरणी। इस प्रकार अनुक्रम से ये २८ नक्षत्र जानने चाहिएं। इस तरह गाथा के अनुसार यावत् दो भरणी तक जानना चाहिए। इन २८ नक्षत्रों के २८ देवता होते हैं। क्रमशः उनके नाम इस प्रकार हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. दो अग्नि, २. दो प्रजापति, ३. दो सोम, ४. दो रुद्र, ५. दो अदिति, ६. दो बृहस्पति, ७. दो सर्पि, ८. दो पितर, ९. दो भग, १०. दो अर्यमा, ११. दो सविता, १२. दो त्वष्टा, १३. दो वायु, १४. दो इन्द्राग्नि, १५. दो मित्र, १६. दो इन्द्र, १७. दो निर्ऋति, १८. दो आप, १९. दो विश्व, २०. दो ब्रह्मा, २१. दो विष्णु, २२. दो वसु, २३. दो वरुण, २४. दो अज, २५. दो विवृद्धि, २६. दो पूषा, २७. दो अश्विन, २८. दो यम।

अब ८८ ग्रहों के नाम कहे जाते हैं - १. अङ्गारक, २. व्यालक, ३. लोहिताक्ष, ४. शनैश्चर, ५. आहुनिक, ६. प्राहुनिक, ७. कण, ८. कनक, ९. कनकनक, १०. कनकवितानक, ११. कनकसंतानक, १२. सोम, १३. सहित, १४. आश्वासन, १५. कार्योपक, १६. कर्बट, १७. अयस्कर, १८. दुंदुभक, १९. शंख, २०. शंखवर्ण, २१. शंखवर्णाभ, २२. कंस, २३. कंसवर्ण, २४. कंसवर्णाभ, २५. रुक्मी, २६. रुक्माभासा, २७. नील, २८. नीलाभास २९. भास, ३०. भासराशि तिल, ३१. तिलपुष्पवर्ण, ३२. दग, ३३. दगपंचवर्ण, ३४. काक, ३५. काकान्ध, ३६. इन्द्राग्नि, ३७. धूमकेतु, ३८. हरि, ३९. पिङ्गल, ४०. बुद्ध, ४१. शुक्र, ४२. बृहस्पति, ४३. राहु, ४४. अगस्त्य, ४५. माणवक, ४६. कास, ४७. स्पर्श, ४८. धुर, ४९. प्रमुख, ५०. विकट, ५१. विसंधि, ५२. नियल, ५३. पइल, ५४. जरितालक, ५५. अरुण, ५६. अगिलक, ५७. काल, ५८. महाकाल, ५९. स्वस्तिक, ६०. सौवस्तिक, ६१. वर्धमान अथवा पुष्यमान अथवा अंकुश, ६२. प्रलम्ब, ६३. नित्यलोक, ६४. नित्योद्योत, ६५. स्वयंप्रभ, ६६. अवभास, ६७. श्रेयस्कर, ६८. क्षेमंकर, ६९. आभंकर, ७०. प्रभंकर, ७१. अपराजित, ७२. अरज, ७३. अशोक, ७४. विगतशोक, ७५. विमल, ७६. विमुख, ७७. वितत, ७८. वितथ, ७९. विशाल, ८०. शाल, ८१. सुव्रत, ८२. अनिवर्त, ८३. एकजटी, ८४. द्विजटी, ८५. करकरिक, ८६. राजगल, ८७. पुष्पकेतु, ८८. भावकेतु। ये ८८ महाग्रह हैं। इन प्रत्येक के दो दो भेद होते हैं।

विवेचन - चन्द्रमा सौम्य (शांत) प्रकाश वाला होने से उसके लिये प्रकाशित होना कहा है। जबकि सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होने से उसके लिए तपना कहा है। तीनों कालों में प्रकाश का कथन करने से सर्वकाल पर्यंत चन्द्रादि भावों का अस्तित्वपना सिद्ध होता है। जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा और दो सूर्य होने से उनका परिवार भी दुगुना दुगुना समझना चाहिये। अट्ठाईस नक्षत्रों के २८ देवताओं के नाम भावार्थ में दे दिये हैं। एक-एक चन्द्रमा के और एक-एक सूर्य के २८-२८ नक्षत्र और ८८-८८ ग्रह होते हैं। परन्तु यहाँ दो स्थान का वर्णन होने से दो-दो नक्षत्र और दो-दो ग्रहों का कथन किया गया है।

जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल विक्खंभेणं पण्णत्ते। लवणस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता॥ ३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - वेइया - वेदिका, **चक्कवाल विक्खंभेणं** - चक्रवाल विष्कंभ।

भावार्थ - जम्बूद्वीपों में के द्वीप की अर्थात् इस जम्बूद्वीप की वेदिका दो गाऊ की यानी दो कोस की ऊंची कही गई है। लवण समुद्र दो लाख योजन का चक्रवालविष्कम्भ यानी चौड़ा कहा गया है। लवणसमुद्र की वेदिका दो गाऊ की ऊंची कही गई है।

विवेचन - नगर के चारों ओर कोट की तरह जंबूद्वीप के चारों ओर जगती है। जो वज्रमय है आठ योजन की ऊँची, ऊपर चार योजन की चौडी और नीचे (मूल में) १२ योजन की चौड़ी है। उस जगती से दो गाऊ ऊँची ५०० धनुष चौड़ी और विविध रत्नमय जाली वाली पद्मवर वेदिका है। जो गवाक्ष और सोने के घूंघरों वाले घंटा सहित देवों के बैठने, सोने, मोहित होने और क्रीडा स्थान रूप है। यह वेदिका दो वनखण्डों से युक्त है। जम्बूद्वीप के चारों ओर दो लाख योजन का लवण समुद्र है जिसकी वेदिका दो गाऊ ऊंची है। आगमों में जंबूद्वीप के लिए जगती का वर्णन है वेदिका का वर्णन नहीं है। अतः यहाँ मूल पाठ में जगती का वर्णन उचित होने की संभावना है।

धायइ संडे दीवे पुरच्छिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव, एरवए चेव। एवं जहा जंबूद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव दोसु वासेसु मणुया छव्विहं वि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति तंजहा भरहे चेव, एरवए चेव। णवरं कूडसामली चेव धायइरुक्खे चेव, देवा गरुले चेव वेणुदेवे, सुदंसणे चेव। धायइसंडदीवे पच्चत्थिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव, एरवए चेव जाव छव्विहं वि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति भरहे चेव, एरवए चेव। णवरं कूडसामली चेव, महाधायइरुक्खे चेव, देवा गरुले चेव वेणुदेवे, पियदंसणे चेव। धायईसंडे णं दीवे दो भरहाइं, दो एरवयाइं, दो हेमवयाइं, दो हेरण्णवयाइं, दो हरिवासाइं, दो रम्मगवासाइं, दो पुव्वविदेहाइं, दो अवरविदेहाइं, दो देवकुराओ, दो देवकुरुमहद्दुमा, दो देवकुरुमहद्दुमवासी देवा, दो उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमा, दो उत्तर-कुरुमहद्दुमवासी देवा, दो चुल्लहिमवंता, दो महाहिमवंता, दो णिसहा, दो णीलवंता, दो रुप्पी, दो सिहरी, दो सद्दावाई, दो सद्दावाईवासी साई देवा, दो वियडावाई, दो वियडावाइवासी पभासा देवा, दो गंधावाई, दो गंधावाईवासी अरुणा देवा, दो मालवंतपरियागा, दो मालंतपरियागावासी पउमा देवा, दो मालवंता, दो चित्तकूडा, दो पम्हकूडा, दो णलिणकूडा, दो एगसेला, दो तिकूडा, दो वेसमणकूडा, दो अंजणा, दो मायंजणा, दो सोमणसा, दो विज्जुप्पभा, दो अंकावई, दो पम्हावई, दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसीविसा, दो सुहावहा, दो चंदपव्वया, दो सूरपव्वया, दो णागपव्वया, दो देवपव्वया, दो गंधमायणा, दो उसुगारपव्वया, दो चुल्लहिमवंतकूडा, दो वेसमणकूडा, दो महाहिमवंतकूडा, दो वेरुलियकूडा, दो णिसहकूडा, दो रुयगकूडा, दो णीलवंतकूडा, दो उवदंसणकूडा, दो रुप्पिकूडा, दो मणिकंचणकूडा, दो सिहरिकूडा, दो तिगिंछिकूडा, दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीओ सिरीदेवीओ, दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीओ हिरीओ देवीओ एवं जाव दो पुंडरीयद्दहा, दो पुंडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीदेवीओ, दो गंगाप्पवायद्दहा जाव, दो रत्तवईप्पवायद्दहा, दो रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाओ, दो गाहवईओ, दो दहवईओ, दो पंकवईओ, दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ, दो खीरोयाओ, दो सीहसोयाओ, दो अंतोवाहिणीओ, दो उम्मिमालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, दो गंभीरमालिणीओ, दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छगावई, दो आवत्ता, दो मंगलावत्ता, दो पुक्खला, दो पुक्खलावई, दो वच्छा, दो सुवच्छा, दो महावच्छा, दो वच्छगावई, दो रम्मा, दो रम्मगा, दो रमणिज्जा, दो मंगलावई, दो पम्हा, दो सुपम्हा, दो महपम्हा, दो पम्हगावई, दो संखा, दो णलिणा, दो कुमुया, दो सलिलावई, दो वप्पा, दो सुवप्पा, दो महावप्पा, दो वप्पगावई, दो वग्गू, दो सुवग्गू, दो गंधिला, दो गंधिलावई। दो खेमाओ, दो खेमपुरीओ, दो रिट्ठाओ, दो रिट्ठपुरीओ, दो खग्गीओ, दो मजुंसाओ, दो ओसहीओ, दो पुंडरीगिणीओ, दो सुसीमाओ, दो कुंडलाओ, दो अपराजियाओ, दो पभंकराओ, दो अंकावईओ, दो पम्हावईओ, दो सुभाओ, दो रयणसंचयाओ, दो आसपुराओ, दो सीहपुराओ, दो महापुराओ, दो विजयपुराओ, दो अपराजियाओ, दो अवराओ, दो असोयाओ, दो विगयसोगाओ, दो विजयाओ, दो वेजयंतीओ, दो जयंतीओ, दो अपराजियाओ, दो चक्कपुराओ, दो खग्गपुराओ, दो अवज्झाओ, दो अउज्झाओ। दो भद्दसालवणा, दो णंदणवणा, दो सोमणसवणा, दो पंडगवणा, दो पंडुकंबलसिलाओ, दो अइपंडुकंबलसिलाओ, दो रत्तकंबलसिलाओ, दो अइरत्तकंबलसिलाओ, दो मंदरा, दो मंदरचूलियाओ। धायइसंडस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता॥ ४०॥

कठिन शब्दार्थ - धायइसंडे दीवे - धातकीखण्ड नामक द्वीप में, **पुरच्छिमद्धेणं** - पूर्वार्द्ध में,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवरं - इतनी विशेषता है कि, **धायइरुक्खे** - धातकी वृक्ष, **पच्चत्थिमद्धेणं** - पश्चिमार्द्ध में **देवकुरुमहदुमा** - देवकुरु महाद्रुम, **देवकुरुमहदुमवासी** - देव कुरु महाद्रुमवासी, **मालवंत परियागावासी** - माल्यवान् पर्यायवासी, **एकासेला** - एकशैल, **मायंजणा** - मातञ्जन, **आसीविसा** - आशीविष, **सुहावहा** - सुखावह, **चंदपव्वया** - चन्द्रपर्वत, **सूरपव्वया** - सूर्य पर्वत, **उसुगारपव्वया** - इषुकार पर्वत, **उम्मत्तजलाओ** - उन्मत्तजला, **खीरोयाओ** - क्षीरोदक, **सीहसोयाओ** - सिंह स्रोता, **अंतोवाहिणीओ** - अन्तर्वाहिनी, **उम्मिमालिणीओ** - ऊर्मिमालिनी, **कच्छा** - कच्छ, **पुक्खलावई** - पुष्कलावती, **वप्पगावई** - वप्रगावती, **वग्गू** - वल्गु, **खेमाओ** - क्षेमा, **रयणसंचयाओ** - रत्नसंचया, **विगयसोगाओ** - विगतशोका, **खग्गपुराओ** - खड्गपुरा, **अवज्झाओ** - अवद्या, **भद्दसाल वणा** - भद्रशाल वन, **णंदण वणा** - नंदन वन, **सोमणस वणा** - सोमनस वन, **पंडग वणा** - पंडग वन, **पंडुकंबलसिलाओ** - पाण्डुकम्बल शिला, **अइरत्तकंबलसिलाओ** - अति रक्त कम्बल शिला, **मंदरचूलियाओ** - मेरु पर्वत की चूलिकाएं।

भावार्थ - धातकी खण्ड नामक द्वीप में पूर्वार्द्ध में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में भरत और ऐरवत ये दो क्षेत्र कहे गये हैं यावत् वे दोनों समान हैं। इस प्रकार जैसा जम्बूद्वीप में कहा है वैसा यहां पर भी कह देना चाहिए यावत् भरत और ऐरवत इन दो क्षेत्रों में मनुष्य छहों आरों का अनुभव करते हुए विचरते हैं। यहां तक सारा अधिकार जम्बूद्वीप के समान कह देना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि वहां पर क्रमशः कूटशाल्मली और धातकी ये दो वृक्ष हैं और इन पर क्रमशः गरुड़ वेणुदेव और सुदर्शन ये दो देव रहते हैं। धातकी खण्ड द्वीप में पश्चिमार्द्ध में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में भरत और ऐरवत ये दो क्षेत्र कहे गये हैं यावत् ये दोनों समान हैं यावत् भरत और ऐरवत क्षेत्र में मनुष्य छहों आरों का अनुभव करते हुए विचरते हैं। यहां तक सारा अधिकार जम्बूद्वीप के समान कह देना चाहिए सिर्फ इतनी विशेषता है कि वहां पर वृक्षों के नाम कूटशाल्मली और महाधातकी वृक्ष हैं और इन पर क्रमशः गरुड़ वेणुदेव और प्रियदर्शन ये दो देव रहते हैं। धातकी खण्ड द्वीप में दो भरत, दो ऐरवत, दो हेमवत, दो हैरण्यवत, दो हरिवास, दो रम्यकवास, दो पूर्वविदेह, दो अपरविदेह यानी पश्चिमविदेह, दो देवकुरु, दो देवकुरु महाद्रुम, दो देवकुरु महाद्रुमवासी देव, दो उत्तरकुरु, दो उत्तरकुरुमहाद्रुम, दो उत्तरकुरु महाद्रुमवासी देव, दो चुल्लहिमवान्, दो महाहिमवान्, दो निषध, दो नीलवान्, दो रुक्मी, दो शिखरी, दो शब्दापाती, दो शब्दापातीवासी स्वाति देव, दो विकटापाती, दो विकटापातीवासी प्रभास देव, दो गन्धापाती, दो गन्धापातीवासी अरुण देव, दो माल्यवान् पर्याय, दो माल्यवान् पर्यायवासी पद्म देव, दो माल्यवान्, दो चित्रकूट, दो पद्मकूट, दो नलिनकूट, दो एकशैल, दो त्रिकूट, दो वैश्रमणकूट, दो अञ्जन, दो मातञ्जन, दो सोमनस, दो विद्युत्प्रभ, दो अङ्कावती, दो पद्मावती, दो आशीविष, दो सुखावह, दो

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

चन्द्रपर्वत, दो सूर्यपर्वत, दो नागपर्वत, दो देवपर्वत, दो गन्धमादन गजदंता पर्वत हैं। ये सब धातकी खण्ड के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में रहे हुए हैं, इसलिए ये सब दो दो कहे गये हैं। धातकीखण्ड के उत्तर और दक्षिण ऐसे दो विभाग करने वाले दो इषुकार पर्वत हैं, दो चुल्लहिमवान् कूट, दो वैश्रमणकूट, दो महाहिमवानकूट, दो वैडूर्यकूट, दो निषधकूट, दो रुचककूट, दो नीलवान्कूट, दो उपदर्शनकूट, दो रुक्मीकूट, दो मणिकंचनकूट, दो शिखरीकूट, दो तिगिंच्छिकूट, दो पद्मद्रह, दो पद्मद्रह में रहने वाली श्री देवियाँ, दो महापद्मद्रह, दो महापद्म द्रह में रहने वाली ह्री देवियाँ हैं। इस प्रकार यावत् दो पुण्डरीक द्रह, दो पुण्डरीक द्रह में रहने वाली लक्ष्मी देवियाँ, दो गङ्गाप्रपात द्रह यावत् दो रक्तवतीप्रपात द्रह, दो रोहिता, यावत् दो रुप्यकूला, दो गाहवती नदियाँ, दो द्रहवती नदियाँ, दो पङ्कवती नदियाँ, दो तप्तजला, दो मत्तजला, दो उन्मत्तजला, दो क्षीरोदक, दो सिंहस्रोता, दो अन्तर्वाहिनी, दो उर्मिमालिनी, दो फेनमालिनी, दो गम्भीरमालिनी नदियाँ हैं। दो कच्छ, दो सुकच्छ, दो महाकच्छ, दो कच्छगावती, दो आवर्ता, दो मङ्गलावर्ता, दो पुष्कला, दो पुष्कलावती, दो वत्सा, दो सुवत्सा, दो महावत्सा, दो वच्छगावती, दो रम्या, दो रम्यगा, दो रमणीय, दो मङ्गलावती, दो पद्मा, दो सुपद्मा, दो महापद्मा, दो पद्मगावती, दो शंखा, दो नलिना, दो कुमुदा, दो सलिलावती, दो वप्रा, दो सुवप्रा, दो महावप्रा, दो वप्रगावती, दो वल्गु, दो सुवल्गु, दो गन्धिला, दो गन्धिलावती, इस प्रकार सब दो दो हैं। अब राजधानियों के नाम बताये जाते हैं। यथा - दो क्षेमा, दो क्षेमपुरी, दो रिष्टा, दो रिष्टपुरी, दो खड्गी, दो मञ्जुषा, दो औषधि, दो पुण्डरीकिणी, दो सुसीमा, दो कुण्डला, दो अपराजिता, दो प्रभङ्करा, दो अङ्कावती, दो पद्मावती, दो शुभा, दो रत्नसञ्चया, दो आशपुरा, दो सिंहपुरा, दो महापुरा, दो विजयपुरा, दो अपराजिता, दो अपरा, दो अशोका, दो विगतशोका, दो विजया, दो वैजयंती, दो जयंती, दो अपराजिता, दो चक्रपुरा, दो खड्गपुरा, दो अवदया, दो अयोध्या, इस प्रकार सब के दो दो भेद हैं। धातकीखण्ड द्वीप में दो मेरु पर्वत हैं, इसलिए दो भद्रशाल वन, दो नन्दन वन, दो सोमनस वन, दो पण्डक वन, दो पाण्डुकम्बल शिला, दो अति पाण्डुकम्बल शिला, दो रक्तकम्बल शिला, दो अतिरक्त कम्बल शिलाएं हैं, दो मेरु पर्वत हैं और दो मेरु पर्वत की चूलिकाएं हैं । धातकीखण्ड द्वीप की वेदिका दो गाऊ ऊंची कही गई हैं।

विवेचन - एक लाख योजन के जम्बूद्वीप के चारों ओर दो लाख योजन का लवण समुद्र है। लवण समुद्र के चारों ओर ४ लाख योजन की लम्बाई चौड़ाई वाला धातकी खंड द्वीप है। धातकी अर्थात् वृक्ष विशेष खंड यानी वनसमूह जहां धातकी नामक वृक्ष विशेष का वन समूह है वह धातकी खण्ड कहलाता है। उससे युक्त जो द्वीप है वह धातकी खण्ड द्वीप है। धातकी खण्ड ऐसा जो द्वीप है वह धातकी खण्ड द्वीप कहलाता है उसका जो अर्द्ध पूर्वक विभाग है वह धातकीखण्डद्वीप पूर्वार्द्ध है। पूर्व और पश्चिम विभाग इषुकार पर्वत के कारण हुआ है। जैसा कि टीकाकार ने कहा है-५००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजन ऊँचा, १००० योजन चौडा तथा दक्षिण और उत्तर से कालोदधि समुद्र और लवण समुद्र को स्पर्श किये हुए अर्थात् कालोदधि समुद्र और लवण समुद्र पर्यन्त लम्बे ऐसे दो श्रेष्ठ इषुकार पर्वत धातकीखण्ड के मध्य रहे हुए हैं। उन दो इषुकार पर्वत से पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध ऐसे दो विभाग धातकी खण्ड के कहे गये हैं। शेष वर्णन जम्बूद्वीप प्रकरण के अनुसार जानना चाहिये। विशेषता यह है कि जम्बूद्वीप की अपेक्षा धातकी खंड द्वीप में मेरु, वर्ष (क्षेत्र) और वर्षधर पर्वतों की संख्या दुगुनी है अर्थात् धातकीखंड में दो मेरु पर्वत, चौदह वर्ष (क्षेत्र) और बारह वर्षधर पर्वत हैं उनके नाम जम्बूद्वीप के अनुसार ही है। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की ऊँचाई १ लाख योजन है जबकि धातकीखंड के मेरु की ऊंचाई ८५ हजार योजन है। मेरु पर्वत पर चार वन और चार अभिषेक शिलाएं है। शेष नदी, क्षेत्र, पर्वत आदि भी धातकी खंड में जंबूद्वीप से दुगुनी संख्या में है।

कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। पुक्खरवर दीवड्ढपुरच्छिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव, एरवए चेव, तहेव जाव दो कुराओ पण्णत्ताओ देवकुरा चेव उत्तरकुरा चेव। तत्थ णं दो महतिमहालया महद्दुमा पण्णत्ता तंजहा - कूडसामली चेव पउमरुक्खे चेव, दो देवा गरुले चेव वेणुदेवे पउमे चेव, जाव छव्विहं वि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति। पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता तंजहा तहेव णाणत्तं कूडसामली चेव महापउमरुक्खे चेव, देवा गरुले चेव वेणुदेवे पुंडरीए चेव। पुक्खरवर दीवड्ढे णं दीवे दो भरहाइं दो एरवयाइं जाव दो मंदरा दो मंदरचूलियाओ। पुक्खरवरस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वेसिं वि णं दीव समुद्दाणं वेइयाओ दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ताओ॥ ४१॥

कठिन शब्दार्थ - कालोदस्स - कालोदधि, **समुद्दस्स** - समुद्र की, **पुक्खरवरदीवड्ढ पुरच्छिमद्धेणं** - पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व के आधे भाग में।

भावार्थ - कालोदधि समुद्र की वेदिका दो गाऊ यानी कोस ऊंची कही गई है। पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व के आधे भाग में मेरु पर्वत की उत्तर और दक्षिण दिशा में भरत और ऐरवत ये दो क्षेत्र कहे गये हैं यावत् वे दोनों समान हैं। यावत् देवकुरु और उत्तरकुरु ये दो कुरु कहे गये हैं, यहां तक सारा अधिकार उसी प्रकार यानी धातकीखण्ड के समान कहना चाहिये। वहां पर कूटशाल्मली और पद्म वृक्ष नाम के दो बड़े विस्तार वाले महाद्रुम कहे गये हैं। उन पर क्रमशः गरुड़ वेणुदेव और पद्म ये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो देव रहते हैं। यावत् वहां के मनुष्य छहों काल का अनुभव करते हुए विचरते हैं। पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम के आधे भाग में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में भरत और ऐरवत ये दो क्षेत्र कहे गये हैं यावत् सारा अधिकार धातकीखण्ड के समान है। सिर्फ इतनी विशेषता है कि वहाँ पर कूटशाल्मली और महापद्म वृक्ष नाम के दो महाद्रुम हैं और उन पर क्रमशः गरुड़ वेणुदेव और पुण्डरीक ये दो देव रहते हैं। अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में दो भरत, दो ऐरवत, दो मेरु पर्वत, दो मेरु पर्वत की चूलिकाएं हैं यावत् सारा अधिकार धातकीखण्ड द्वीप के समान कह देना चाहिए। पुष्करवर द्वीप की वेदिका दो गाऊ ऊँची कही गई है। सभी द्वीप समुद्रों की वेदिकाएं दो गाऊ ऊंची कही गई है।

विवेचन - धातकीखण्ड द्वीप के चारों ओर ८ लाख योजन की लम्बाई चौडाई वाला कालोद (कालोदधि) समुद्र है। कालोदधि समुद्र के चारों ओर १६ लाख योजन की लम्बाई चौडाई वाला पुष्करवर द्वीप है। इस द्वीप के मध्य में वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत है जो इस द्वीप के दो विभाग करता है। इसके भीतर आधे भाग में ही मनुष्य रहते हैं बाहर नहीं। अर्द्ध पुष्कर द्वीप में धातकीखण्ड की तरह नदी, वर्ष, वर्षधर और मेरु पर्वत आदि है।

एक लाख योजन का जम्बूद्वीप, दोनों तरफ चार लाख योजन का लवण समुद्र, दोनों तरफ आठ लाख योजन का धातकीखण्डद्वीप, दोनों तरफ १६ लाख योजन का कालोदधि समुद्र और दोनों तरफ सोलह लाख योजन का पुष्करार्द्ध द्वीप इस प्रकार १+४+८+१६+१६=४५ लाख योजन का अढाई द्वीप है। अढाई द्वीप में ही मनुष्य रहते हैं इसलिये इसे मनुष्य लोक अथवा मनुष्य क्षेत्र कहते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि मनुष्य लोक में ही चर (गति शील) हैं। सूर्य की गति से दिन रात आदि काल की गणना होती है अतः मनुष्य लोक को ही 'समय क्षेत्र' कहते हैं।

दो असुरकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा - चमरे चेव बली चेव। दो णागकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा धरणे चेव भूयाणंदे चेव। दो सुवण्णकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा वेणुदेवे चेव वेणुदाली चेव। दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा हरि चेव हरिस्सहे चेव। दो अग्गिकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा अग्गिसिहे चेव अग्गिमाणवे चेव। दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा पुण्णे चेव विसिट्ठे चेव। दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा जलकंते चेव जलप्पभे चेव। दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा अमियगई चेव अमियवाहणे चेव। दो वाउकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा वेलंबे चेव पभंजणे चेव। दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता तंजहा घोसे चेव महाघोसे चेव। दो पिसायइंदा पण्णत्ता तंजहा काले चेव महाकाले चेव। दो भूयइंदा पण्णत्ता तंजहा सुरूवे चेव पडिरूवे चेव। दो जक्खिंदा पण्णत्ता तंजहा पुण्णभद्दे चेव माणिभद्दे चेव। दो रक्खसिंदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता तंजहा भीमे चेव महाभीमे चेव। दो किण्णरिंदा पण्णत्ता तंजहा किण्णरे चेव किंपुरिसे चेव। दो किंपुरिसिंदा पण्णत्ता तंजहा सप्पुरिसे चेव महापुरिसे चेव। दो महोरगिंदा पण्णत्ता तंजहा अइकाए चेव महाकाए चेव। दो गंधव्विंदा पण्णत्ता तंजहा गीयरई चेव गीयजसे चेव। दो अणपण्णिंदा पण्णत्ता तंजहा सण्णिहिए चेव सामण्णे चेव। दो पणपण्णिंदा पण्णत्ता तंजहा धाए चेव विहाए चेव। दो इसिवाइ इंदा पण्णत्ता तंजहा इसि चेव इसिवालए चेव। दो भूयवाइ इंदा पण्णत्ता तंजहा इस्सरे चेव महिस्सरे चेव। दो कंकिंदा पण्णत्ता तंजहा सुवच्छे चेव विसाले चेव। दो महाकंकिंदा पण्णत्ता तंजहा हस्से चेव हस्सरई चेव। दो कुहंडिंदा पण्णत्ता तंजहा सेए चेव महासेए चेव। दो पयंगिंदा पण्णत्ता तंजहा पयए चेव पययवई चेव। जोइसियाणं देवाणं दो इंदा पण्णत्ता तंजहा चंदे चेव सूरे चेव। सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता तंजहा सक्के चेव ईसाणे चेव। एवं सणंकुमार माहिंदेसु कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता तंजहा सणंकुमारे चेव माहिंदे चेव। बंभलोगलंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता तंजहा बंभे चेव लंतए चेव। महासुक्कसहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता तंजहा महासुक्के चेव सहस्सारे चेव। आणय पाणय आरण अच्चुएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता तंजहा पाणए चेव अच्चुए चेव। महासुक्कसहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा दुवण्णा पण्णत्ता तंजहा हालिद्दा चेव सुक्किल्ला चेव। गेविज्जगाणं देवाणं दो रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता॥ ४२॥

॥ तइओ उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **असुरकुमारिंदा** - असुरकुमारों के इन्द्र, **भूयाणंदे** - भूतानन्द, **णागकुमारिंदा**- नागकुमारों के इन्द्र, **अग्गिसिहे** - अग्नि शिखा, **अग्गिमाणवे** - अग्निमाणवक, **विसिट्ठे** - विशिष्ठ, **अमियगई** - अमितगति, **प्रभंजणे** - प्रभञ्जन, **जक्खिंदा** - यक्षों के इन्द्र, **अणपण्णिंदा** - आणपन्नी के इन्द्र, **सण्णिहिए** - सन्निहित, **सामण्णे** - श्रामण्य, **इसिवालए** - ऋषि पालक, **महिस्सरे** - महेश्वर, **महाकंकिंदा** - महाकंदीय के इन्द्र, **पययवई** - पतंगपति, **सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु** - सौधर्म और ईशान इन दो देवलोकों में, **सक्के** - शक्र, **विमाणा** - विमान, **हालिद्दा** - पीले, **सुक्किल्ला**- सफेद, **गेविज्जगाणं** - ग्रैवेयक, **रयणीओ** - रत्नि (हाथ)।

भावार्थ - असुरकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं - चमर और बली। धरण और भूतानन्द ये दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नागकुमारों के इन्द्र कहे गये हैं। सुवर्णकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं यथा - वेणुदेव और वेणुदाली। विद्युत्कुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं यथा - हरि और हरिसह। अग्निकुमारों के दो इन्द्र-अग्निशिखा और अग्निमाणवक। द्वीपकुमारों के दो इन्द्र-पूर्ण और विशिष्ठ। उदधिकुमारों के दो इन्द्र-जलकान्त और जलप्रभ। दिशाकुमारों के दो इन्द्र-अमितगति और अमित वाहन। वायुकुमारों के दो इन्द्र-वेलम्ब और प्रभञ्जन। स्तनितकुमारों के दो इन्द्र-घोष और महाघोष। ये १० भवनपतियों के २० इन्द्र हैं। पिशाचों के दो इन्द्र-काल और महाकाल। भूतों के दो इन्द्र-सुरूप और प्रतिरूप। यक्षों के दो इन्द्र-पूर्णभद्र और माणिभद्र। राक्षसों के दो इन्द्र-भीम और महाभीम। किन्नरों के दो इन्द्र-किन्नर और किंपुरुष। किंपुरुषों के दो इन्द्र-सत्पुरुष और महापुरुष। महोरगों के दो इन्द्र-अतिकाय और महाकाय। गन्धर्वों के दो इन्द्र-गीतरति और गीतयश। आणपन्नी के दो इन्द्र-सन्निहित और श्रामण्य। पाणपन्नी के दो इन्द्र-धात और विधात। ऋषिवादी के दो इन्द्र-ऋषि और ऋषिपालक। भूतवादी के दो इन्द्र-ईश्वर और महेश्वर। कूंधित (स्कंधक) के दो इन्द्र-सुवत्स और विशाल। महाकूंधित (महास्कंधक) के दो इन्द्र-हास्य और हास्यरति। कुहंड (कूष्माण्ड) के दो इन्द्र-श्वेत और महाश्वेत। पतङ्ग के दो इन्द्र-पतङ्ग और पतङ्गपति। ये सोलह व्यन्तर देवों के ३२ इन्द्र हैं। ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र कहे गये हैं यथा-चन्द्र और सूर्य। सौधर्म और ईशान इन दो देवलोकों में दो इन्द्र कहे गये हैं यथा-शक्र और ईशान। इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकों में दो इन्द्र कहे गये हैं यथा - सनत्कुमार और माहेन्द्र। ब्रह्मलोक और लान्तक इन दो देवलोकों में दो इन्द्र कहे गये हैं यथा - ब्रह्म और लान्तक। महाशुक्र और सहस्रार इन दो देवलोकों में दो इन्द्र कहे गये हैं यथा-महाशुक्र और सहस्रार। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार देवलोकों में दो इन्द्र कहे गये हैं यथा - प्राणत और अच्युत अर्थात् आनत और प्राणत इन नवें और दसवें दो देवलोकों में एक प्राणत इन्द्र हैं तथा आरण और अच्युत इन ग्यारहवें और बारहवें दो देवलोकों में एक अच्युत इन्द्र हैं। बारह वैमानिक देवलोकों में दस इन्द्र हैं। भवनपति देवों के २०, वाणव्यंतर देवों के ३२, ज्योतिषी देवों के २, और वैमानिक देवों के १० ये सब मिलाकर ६४ इन्द्र हैं। महाशुक्र और सहस्रार इन दो देवलोकों में विमान पीले और सफेद दो रंग के कहे गये हैं। ग्रैवेयक देवों की ऊँचाई दो रत्नि यानी दो हाथ की कही गई है।

विवेचन - असुरकुमार आदि दस भवनपति देव, मेरु पर्वत की अपेक्षा उत्तर और दक्षिण इन दो दिशाओं के आश्रित होने से प्रत्येक दिशा का एक एक इन्द्र होने के कारण भवनपति के २० इन्द्र कहे हैं। इसी प्रकार आठ जाति के व्यंतर देवों के १६ इन्द्र हैं तथा आणपन्नी आदि ८ व्यंतर विशेष निकाय के देवों के सोलह इन्द्र हैं। ज्योतिषी देवों में असंख्यात चन्द्र और सूर्य होने पर भी जाति मात्र का आश्रय करने से चन्द्र और सूर्य, ये दो इन्द्र कहे गये हैं। सौधर्म आदि बारह देवलोकों के १० इन्द्र है। इस प्रकार सब मिला कर ६४ इन्द्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सौधर्म और ईशान देवलोक के विमान पांच वर्ण वाले हैं। तीसरे और चौथे देवलोक के विमान काले वर्ण को छोड़ कर शेष चार वर्ण वाले हैं। पांचवें और छठे देवलोक के विमान कृष्ण और नील वर्ण के सिवाय शेष तीन वर्ण वाले हैं। सातवें और आठवें देवलोक के विमान पीले और श्वेत इन दो वर्ण वाले है। नौवें देवलोक से ऊपर के देवलोकों के विमान श्वेत वर्ण वाले हैं।

।। इति श्री द्वितीय स्थान का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय स्थान का चौथा उद्देशक

समया इ वा, आवलिया इ वा, जीवा इ वा, अजीवा इ वा, पवुच्चइ । आणपाणू इ वा, थोवे इ वा, जीवा इ वा, अजीवा इ वा पवुच्चइ। खणा इ वा, लवा इ वा, जीवा इ वा, अजीवा इ वा पवुच्चइ। एवं मुहुत्ता इ वा, अहोरत्ता इ वा, पक्खा इ वा, मासा इ वा, उउ इ वा, अयणा इ वा, संवच्छरा इ वा, जुगा इ वा, वाससया इ वा, वाससहस्सा इ वा, वाससयसहस्सा इ वा, वासकोडी इ वा, पुव्वंगा इ वा, पुव्वा इ वा, तुडियंगा इ वा, तुडिया इ वा, अडडंगा इ वा, अडडा इ वा, अववंगा इ वा, अववा इ वा, हूहूयंगा इ वा, हूहूया इ वा, उप्पलंगा इ वा, उप्पला इ वा, पउमंगा इ वा, पउमा इ वा, णलिणंगा इ वा, णलिणा इ वा, अच्छणिउरंगा इ वा, अच्छणिउरा इ वा, अउयंगा इ वा, अउया इ वा, णउयंगा इ वा, णउया इ वा, पउयंगा इ वा, पउया इ वा, चूलियंगा इ वा, चूलिया इ वा, सीसपहेलियंगा इ वा, सीसपहेलिया इ वा, पलिओवमा इ वा, सागरोवमा इ वा, उस्सप्पिणी इ वा, ओसप्पिणी इ वा, जीवा इ वा, अजीवा इ वा पवुच्चइ॥ ४३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **समया** - समय, **आवलिया** - आवलिका, **जीवा** - जीव, **अजीवा** - अजीव, **पवुच्चइ** - कहे जाते हैं, **आणपाणू** - आण प्राण (श्वासोच्छ्वास), **थोवे** - स्तोक, **खणा** - क्षण, **लवा** - लव, **मुहुत्ता** - मुहूर्त्त, **अहोरत्ता** - अहोरात्रि, **पक्खा** - पक्ष, **मासा** - मास, **उउ** - ऋतु, **अयणा** - अयन, **संवच्छरा** - संवत्सर, **जुगा** - युग, **पुव्वंगा** - पूर्वाङ्ग, **पुव्वा** - पूर्व, **तुडियंगा**- त्रुटितांग, **अडडंगा** - अडडाङ्ग, **अडडा** - अडड, **अववंगा** - अववाङ्ग, **अववा** - अवव, **हूहूयंगा**- हूहूकांग, **हूहूया** - हूहूक, **उप्पलंगा** - उत्पलांग, **उप्पला** - उत्पल, **पउमंगा** - पद्मांग, **पउमा** - पद्म, **णलिणंगा** - नलिनाङ्ग, **णलिणा** - नलिन, **अच्छणिउरंगा** - अक्षनिकुराङ्ग, **अच्छणिउरा** - अक्षनिकुर,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अउयंगा - अयुताङ्ग, **अउया** - अयुत, **णउयंगा** - नियुत्ताङ्ग, **णउया** - नियुत, **पउयंगा** - प्रयुताङ्ग, **पउया** - प्रयुत, **चूलियंगा** - चूलिकांग, **चूलिया** - चूलिका, **सीसपहेलियंगा** - शीर्ष प्रहेलिकांग, **सीसपहेलिया** - शीर्ष प्रहेलिका।

भावार्थ - समय (काल) का लक्षण वर्तना है। वह जीव और अजीव पर वर्तता है। इसलिए समय, आवलिका आदि समय के दो दो भेदों के साथ जीव और अजीव का कथन किया जाता है -

काल का अत्यन्त सूक्ष्म भेद समय कहलाता है और असंख्यात समय की आवलिका, ये दोनों जीव और अजीव कहे जाते हैं। संख्यात आवलिका का एक श्वास होता है और संख्यात आवलिका का एक निःश्वास होता है। श्वास और उच्छ्वास दोनों मिलकर एक श्वासोच्छ्वास कहलाता है। सात श्वासोच्छ्वास का एक स्तोक, ये दोनों जीव और अजीव कहे जाते हैं। संख्यात श्वासोच्छ्वास का एक क्षण और सात स्तोक का एक लव, ये दोनों जीव और अजीव कहे जाते हैं। इसी प्रकार ७७ लव अथवा ३७७३ श्वासोच्छ्वास का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त की एक अहोरात्रि, पन्द्रह अहोरात्रि का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन, दो अयन का एक संवत्सर यानी वर्ष, पांच वर्ष का एक युग, बीस युग के सौ वर्ष, दस सौ वर्ष के हजार वर्ष, सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष, सौ लाख वर्ष का एक करोड़ वर्ष, चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वाङ्ग, चौरासी लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है। एक पूर्व में १४ अंक होते हैं यथा - ७०५६०००००००००० इस संख्या को वर्तमान में चालू गणित के अनुसार इस प्रकार बोल सकते हैं - सात नील, पांच खरब, साठ अरब का एक पूर्व। चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटिताङ्ग, चौरासी लाख त्रुटिताङ्ग का एक त्रुटित, चौरासी लाख त्रुटित का एक अडडाङ्ग, चौरासी लाख अडडाङ्ग का एक अडड, चौरासी लाख अडड का एक अववाङ्ग, चौरासी लाख अववाङ्ग का एक अवव, चौरासी लाख अवव का एक हूहूकाङ्ग, चौरासी लाख हूहूकाङ्ग का एक हूहूक, चौरासी लाख हूहूक का एक उत्पलाङ्ग, चौरासी लाख उत्पलाङ्ग का एक उत्पल, चौरासी लाख उत्पल का एक पद्माङ्ग, चौरासी लाख पद्माङ्ग का एक पद्म, चौरासी लाख पद्म का एक नलिनाङ्ग, चौरासी लाख नलिनाङ्ग का एक नलिन, चौरासी लाख नलिन का एक अक्षनिकुराङ्ग या अर्थनूपुराङ्ग, चौरासी लाख अक्षनिकुराङ्ग या अर्थनूपुराङ्ग का एक अक्षनिकुर या अर्थनूपुर, चौरासी लाख अक्षनिकुर या अर्थनूपुर का एक अयुताङ्ग, चौरासी लाख अयुताङ्ग का एक अयुत, चौरासी लाख अयुत का एक नियुताङ्ग, चौरासी लाख नियुताङ्ग का एक नियुत, चौरासी लाख नियुत का एक प्रयुताङ्ग, चौरासी लाख प्रयुताङ्ग का एक प्रयुत, चौरासी लाख प्रयुत का एक चूलिकाङ्ग, चौरासी लाख चूलिकाङ्ग का एक चूलिका, चौरासी लाख चूलिका का एक शीर्षप्रहेलिकाङ्ग, चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकाङ्ग का एक शीर्षप्रहेलिका होता है। इस प्रकार १९४ अंक तक संख्या है। अभिप्राय यह है कि ५४ अंक लिखकर उसके ऊपर १४०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बिन्दियाँ लगाने से १९४ अंक होते हैं। इसको शीर्ष प्रहेलिका कहते हैं। इसमें मतान्तर भी है। वह यह है कि २५० अंक तक की संख्या को शीर्षप्रहेलिका कहते हैं। १९४ अंक इस प्रकार है। यथा -

७५८, २६३२५, ३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ ये ५४ अंक है इनके ऊपर १४० बिन्दियाँ लगाने से शीर्षप्रहेलिका संख्या बनती है।

वीर निर्वाण ८२७-८४० वर्ष बाद मथुरा में नागार्जुन की अध्यक्षता में और वल्लभीपुरी में स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में इस प्रकार दो वाचनाएं हुई। माथुरी वाचना में शीर्षप्रहेलिका में १९४ अंक होते हैं। वल्लभी वाचना में २५० अंकों की संख्या को शीर्ष प्रहेलिका कहा है। यथा -

१८७९५५१७९५५०११२५९५४१९००९६९९८१३४३०७७०७९७४६५४९४२६१९७७ ७४७६५७२५७३४५७१८१८१६ इन ७० अंकों पर १८० बिन्दियाँ लगाने पर २५० अंक होते हैं।

शीर्षप्रहेलिका की अंक राशि चाहे १९४ अंक प्रमाण हो अथवा २५० अंक प्रमाण हो परन्तु गणना के नामों में शीर्ष प्रहेलिका को ही अन्तिम स्थान प्राप्त है। यद्यपि शीर्ष प्रहेलिका से भी आगे संख्यात काल पाया जाता है तो भी सामान्य ज्ञानी के व्यवहार योग्य शीर्षप्रहेलिका ही मानी गई है। इसके आगे के काल को उपमा के माध्यम से वर्णन किया गया है।

शीर्ष प्रहेलिका तक के काल का व्यवहार संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले रत्नप्रभा पहली नरक के नैरयिक तथा भवनपति और वाणव्यन्तर देवों के तथा भरत और ऐरवत क्षेत्र में अवसर्पिणी के तीसरे सुषमदुष्षमा आरे के अन्तिम भाग में होने वाले मनुष्यों के और तिर्यंचों के आयुष्य का प्रमाण बताने के लिए किया जाता है। इससे ऊपर असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंचों के आयुष्य का प्रमाण पल्योपम से और उसके आगे के आयुष्य वाले देव और नारकों का आयुष्य प्रमाण सागरोपम से निरूपण किया जाता है।

यह व्यावहारिक काल है। इससे आगे असंख्यात काल है किन्तु वह व्यवहार में समझ में न आने से उपमा के द्वारा कहा गया है। पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। यह सब काल जीव और अजीव कहे जाते हैं क्योंकि यह सब काल जीव और अजीव पर प्रवर्तता है।

विवेचन - काल का अविभाज्य अंश जिसका विभाग बुद्धि की कल्पना से नहीं किया जा सकता, उसको 'समय' कहते हैं। असंख्यात समयों की एक आवलिका होती है। संख्यात अर्थात् ४४४६ आवलिका का एक श्वास और ४४४६ आवलिका का एक उच्छ्वास होता है (इसकी गणित इस प्रकार हैं - १,६७,७७,२१६ आवलिका का एक मुहूर्त्त होता है। जैसा कि कहा है -

तीन साता, दो आगला आगल पाछल सोल।
इतनी आवलिका मिलाय कर एक मुहूर्त्त तूं बोल॥

दूसरी तरफ बतलाया गया है कि ३७७३ श्वासोच्छ्वास का एक मुहूर्त्त होता है। इसलिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपरोक्त आवलिका १,६७,७७,२१६ में ३७७३ का भाग देने पर ४४४६ से कुछ अधिक आवलिका का परिमाण निकल आता है।) संख्यात आवलिकाओं का एक आणापाणू (श्वासोच्छ्वास) होता है। सात आणापाणू का एक स्तोक, ७ स्तोक का एक लव, ७७ लव का एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्तों का एक अहोरात्र, १५ अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक संवत्सर, पांच संवत्सर का एक युग, बीस युग के १०० वर्ष यावत् ८४ लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व, ८४ लाख पूर्वों का एक त्रुटिताङ्ग इस प्रकार उत्तरोत्तर ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा करने पर शीर्ष प्रहेलिका पर्यन्त उत्कृष्ट संख्यात संख्या बन जाती है। इसके आगे भी संख्यात संख्या है किन्तु वह शब्दों द्वारा नहीं कही जा सकती है। इससे आगे असंख्यात काल है जो उपमा द्वारा समझाया जाता है। उत्सेधअंगुल के परिमाण से चार कोस के लम्बे और चार कोस के चौड़े कुएं को देवकुरु उत्तरकुरु के युगलिए के सात दिन के बच्चे के बालों के अत्यंत सूक्ष्म खण्ड करके भरे फिर सौ सौ वर्ष में एक एक बाल का खण्ड निकाले। जितने समय में वह कुआ खाली हो उतने समय को एक पल्योपम कहते हैं। दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। दस कोडाकोडी सागरोपम का एक उत्सर्पिणी काल होता है और अवसर्पिणी काल भी दस कोडाकोडी सागरोपम का होता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों काल मिल कर एक काल चक्र होता है अर्थात् बीस क्रोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र होता है।

गामा इ वा, णगरा इ वा, णिगमा इ वा, रायहाणी इ वा, खेडा इ वा, कब्बडा इ वा, मडंबा इ वा, दोणमुहा इ वा, पट्टणा इ वा, आगरा इ वा, आसमा इ वा, संबाहा इ वा, सण्णिवेसा इ वा, घोसा इ वा, आरामा इ वा, उज्जाणा इ वा, वणाइ वा, वणखंडा इ वा, वावी इ वा, पुक्खरणी इ वा, सराइ वा, सरपंती इ वा, अगडा इ वा, तलागा इ वा, दहा इ वा, णई इ वा, पुढवी इ वा, उदही इ वा, वायखंधा इ वा, उवासंतरा इ वा, वलया इ वा, विग्गहा इ वा, दीवा इ वा, समुद्दा इ वा, वेला इ वा, वेइया इ वा, दारा इ वा, तोरणा इ वा, णेरइया इ वा, णेरइयावासा इ वा, जाव वेमाणिया इ वा, वेमाणियावासा इ वा, कप्पा इ वा, कप्पविमाणावासा इ वा, वासा इ वा, वासहरपव्वया इ वा, कूडा इ वा, कूडागारा इ वा, विजया इ वा, रायहाणी इ वा, जीवा इ वा, अजीवा इ वा पवुच्चइ । छाया इ वा, आयवा इ वा, दोसिणा इ वा, अंधगारा इ वा, ओमाणा इ वा, उम्माणा इ वा, अइयाणगिहा इ वा, उज्जाणगिहा इ वा, अवलिंबा इ वा, सणिप्पवाया इ वा, जीवा इ वा, अजीवा इ वा, पवुच्चइ॥ ४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **गामा** - ग्राम, **णगरा** - नगर (नकर) **णिगमा** - निगम, **रायहाणी** - राजधानी, **खेडा** - खेट (खेड़ा), **कब्बडा** - कर्बट, **मडंबा** - मडम्ब, **दोणमुहा** - द्रोणमुख, **पट्टणा** - पत्तन, **आगरा** - आकर, **आसमा** - आश्रम, **संबाहा** - संबाह, **सण्णिवेसा** - सन्निवेश, **घोसा** - घोष, **आरामा** - आराम, **उज्जाणा** - उद्यान, **वणा** - वन, **वणखंडा** - वनखण्ड, **वावी** - बावडी, **पुक्खरणी** - पुष्करणी, **सरा** - सरोवर, **सरपंती** - सरोवरों की पंक्ति, **अगडा** - अगड (कुआ), **तलागा** - तालाब, **दहा** - द्रह, **णई** - नदी, **उदही** - उदधि, **वायखंधा** - वात स्कन्ध, **उवासंतरा** - उपा सान्तर-वातस्कंध के नीचे रहने वाला आकाश, **वलया** - वलय, **विग्गहा** - विग्रह, **दीवा** - द्वीप, **समुद्दा** - समुद्र, **वेला** - वेल, **दारा** - द्वार, **तोरणा** - तोरण, **छाया** - छाया, **आयवा** - आतप, **दोसिणा** - ज्योत्सना, **अंधगारा** - अंधकार, **ओमाणा** - अवमान् **उम्माणा** - उन्मान, **अइयाणगिहा** - अतियान गृह, **उज्जाणगिहा** - उद्यान में होने वाले घर, **अवलिंबा** - अवलिम्ब, **सण्णिप्पवाया** - सन्निप्रपात।

भावार्थ - ग्राम नगर आदि में रहने वालों जीवों की अपेक्षा उनको जीव कहा गया है और ये ग्राम, नगर आदि चूना, ईंट, पत्थर आदि अचेतन पदार्थों से बनाये जाते हैं। इसलिए इनको अजीव कहा गया है।

ग्राम-जहाँ प्रवेश करने पर कर लगता हो (यह प्राचीन व्याख्या मात्र है) जिसके चारों ओर कांटों की बाड़ हो अथवा जहाँ मिट्टी का परकोटा हो और जहाँ किसान लोग रहते हों उसे ग्राम कहते हैं। जहाँ राज्य का कर न लगता हो उसे नगर या नकर कहते हैं (यह शब्द की व्युत्पत्ति मात्र है अन्यथा आजकल सब नगरों और शहरों में राज्य का कर लगता है।) जहाँ महाजनों की बस्ती अधिक हो उसे निगम कहते हैं। जहाँ राजा का निवास होता है उसे राजधानी कहते हैं। जिसके चारों ओर धूल का परकोटा हो उसे खेट या खेडा कहते हैं। कुनगर को कर्बट कहते हैं। जिसके चारों तरफ दो दो कोस तक कोई गांव न हो उसे मडम्ब कहते हैं। जिसमें जाने के लिये जल और स्थल दोनों प्रकार के रास्ते हों उसे द्रोणमुख कहते हैं। जिसमें जाने के लिये जल या स्थल दोनों में से एक रास्ता हो उसे पत्तन कहते हैं। लोह आदि की खान को आकर कहते हैं। परिव्राजकों के रहने के स्थान को एवं तीर्थस्थान को आश्रम कहते हैं। समभूमि वाले स्थान को संबाह कहते हैं। सन्निवेश यानी सार्थवाह के ठहरने का पड़ाव, घोष यानी नदी के किनारे ग्वालों की बस्ती, आराम यानी स्त्री पुरुषों के क्रीड़ा करने का बगीचा (व्यक्तिगत बगीचा), उदयान यानी बहुत प्रकार के वृक्षों से युक्त बगीचा पब्लिक-सार्वजनिक बगीचा, जो सर्वसाधारण जनता के उपयोग में आता हो। जहाँ एक जाति के वृक्ष हो वह वन कहलाता है। जहाँ अनेक जाति के वृक्ष हों वह वनखण्ड कहलाता है। वापी यानी चार कोनों वाली बावड़ी, पुष्करणी यानी कमलादि से युक्त बावडी, सरोवर, सरोवरों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की पंक्ति, अगड यानी कुआं, तालाब, द्रह, नदी, रत्नप्रभा आदि पृथ्वी, घनोदधि, वातस्कन्ध यानी घनवात और तनुवात, वातस्कन्ध के नीचे रहने वाला आकाश, वलय यानी घनोदधि, घनवात आदि का बन्ध, विग्रह यानी त्रस नाड़ी में रहे हुए वक्र गति के स्थान, द्वीप, समुद्र, वेल यानी समुद्र के जल की वृद्धि रूप वेल, वेदिका, द्वार, तोरण, नैरयिक, नैरयिकों के रहने का स्थान, यावत् वैमानिक देव वैमानिक देवों के रहने का स्थान, कल्प यानी बारह देवलोक, देवलोकों में रहने का स्थान, वर्ष यानी भरत आदि क्षेत्र, क्षेत्रों की मर्यादा करने वाले वर्षधर पर्वत, कूट यानी पर्वत का शिखर, कूटागार यानी पर्वत शिखर की गुफा, विजय राजधानी - जहां राजा रहता है ये सब अपेक्षा विशेष से जीव और अजीव कहे जाते हैं। शरीर और वृक्षादि की छाया, सूर्य का आतप, चन्द्रमा की ज्योत्स्ना, अन्धकार, अवमान यानी क्षेत्र आदि प्रमाण, उन्मान यानी सेर मन (वर्तमान में किलो आदि) आदि तोल, अतियानगृह यानी नगर आदि में प्रवेश करते ही जो घर हों वे, उद्यान में होने वाले घर यानी लता मण्डप आदि, अवलिम्ब यानी देशविशेष और सन्निप्रपात यानी जल गिरने के स्थान आदि, ये सब जीव और अजीव कहे जाते हैं यानी ये सब जीव और अजीवों से व्याप्त हैं इसलिये अपेक्षा विशेष से जीव और अजीव कहे जाते हैं।

'अवलिंब' के स्थान पर कहीं **'ओलिंद'** पाठ भी है। जिसका अर्थ है बाहर के दरवाजे के पास का स्थान। **'सणिप्पवाय'** की संस्कृत छाया **'शनैः प्रपात और सनिष्प्रपात'** हो सकती है। यहाँ पर सनिष्प्रपात का अर्थ होता है। प्रकोष्ट अपवरक अर्थात् भीतरी दरवाजे के पास का स्थान। ये दोनों अर्थ प्रकरण संगत लगते हैं।

विवेचन - ग्राम, नगर, निगम आदि शब्दों के अर्थ भावार्थ में स्पष्ट कर दिये हैं। नैरयिक से लेकर वैमानिक देव तक चौबीस ही दण्डकों के जीव कर्म पुद्गलों की अपेक्षा अजीव कहे गये हैं।

दो रासी पण्णत्ता तंजहा जीवरासी चेव अजीवरासी चेव। दुविहे बंधे पण्णत्ते तंजहा पेज्जबंधे चेव दोसबंधे चेव। जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं बंधंति तंजहा रागेण चेव दोसेण चेव। जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं उदीरेंति तंजहा अब्भोगमियाए चेव वेयणाए उवक्कमियाए चेव वेयणाए। एवं वेदेंति एवं णिज्जरेंति अब्भोगमियाए चेव वेयणाए उवक्कमियाए चेव वेयणाए॥ ४५॥

कठिन शब्दार्थ - रासी - राशि, पेज्जबंधे - रागबन्ध, दोसबंधे - द्वेष बन्ध, उदीरेंति - उदीरणा करते हैं, अब्भोगमियाए - आभ्युपगमिकी, उवक्कमियाए - औपक्रमिकी, णिज्जरेंति - निर्जरा करते हैं।

भावार्थ - दो राशि कही गई है यथा - जीव राशि और अजीव राशि। दो प्रकार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंध कहा गया है यथा - रागबन्ध और द्वेषबन्ध। जीव दो स्थानों से पापकर्म बाँधते हैं यथा राग से और द्वेष से। जीव दो स्थानों से पाप कर्म की उदीरणा करते हैं यथा - आभ्युपगमिकी यानी अपनी इच्छा से तपश्चरण, केशलोच आदि वेदना को सहन करने से और औपक्रमिकी यानी शरीर में उत्पन्न हुई ज्वर आदि की वेदना को भोगने से। इसी प्रकार उपरोक्त दो कारणों से वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार आभ्युपगमिकी वेदना और औपक्रमिकी वेदना इन दो कारणों से जीव कर्मों की निर्जरा करते हैं।

विवेचन - वस्तु के समूह को राशि कहते हैं। राशि दो कही गयी है। जीवराशि के ५६३ भेद हैं और अजीव राशि के ५६० भेद हैं।

कषाय के वश हो कर जीव कर्म-पुद्गलों को ग्रहण करे तथा आत्मा के प्रदेश और कर्म पुद्गल एक साथ क्षीर-नीर के समान मिले तथा लोह पिण्ड और अग्नि के समान एक मेक हो कर बन्धे, उसे बन्ध कहते हैं। बन्ध का मुख्य कारण कषाय है। कषाय के दो भेद हैं-राग (माया और लोभ) और द्वेष (क्रोध और मान)। राग और द्वेष कर्म बंध के बीज रूप है इसीलिए बंध दो प्रकार का कहा है। योग के निमित्त से प्रकृति बंध और प्रदेश बंध होता है। जबकि कषाय के निमित्त से स्थिति बंध और अनुभाग बंध होता है।

शंका - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच कर्म बंध के हेतु कहे हैं। फिर यहाँ कषाय को ही कर्म बंध का कारण क्यों कहा है ?

समाधान - पाप कर्मों के बंधन में कषाय की प्रधानता बताने के लिए ही कर्म बंध का कारण कषाय कहा गया है। कषाय, स्थिति बंध और अनुभाग बंध का कारण है और अत्यंत अनर्थ करने वाला होने से कषाय को मुख्य कहा है कहा भी है -

को दुक्खं पावेज्जा, कस्स व सोक्खेहिं विम्हओ होज्जा ?
को वा न लहेज्ज मोक्खं ? रागद्दोसा जइ न होज्जा॥

अर्थ - यदि रागद्वेष नहीं होते तो कौन दुःख पाता ? अथवा कौन सुख में विस्मय होता ? अथवा मोक्ष को कौन नहीं प्राप्त करता यानी सभी मोक्ष को प्राप्त कर लेते किन्तु राग और द्वेष ही बाधक है।

उदय का अवसर आये बिना कर्मों को उदय में लाना, उदीरणा कहलाती है। उदीरणा दो प्रकार की होती है - **१. आभ्युपगमिकी** - अपनी इच्छा से अंगीकार करने से अथवा अंगीकार करने में होने वाली उदीरणा आभ्युपगमिकी है जैसे केश लोच, तपस्या आदि से वेदना सहन करने से उदीरणा होती है **२. औपक्रमिकी** - उपक्रम से-कर्म के उदीरण कारण से होने वाली अथवा उन कर्मों के उदीरण में हुई उदीरणा औपक्रमिकी है जैसे ज्वर, अतिसार आदि व्याधियों के उत्पन्न होने से होने वाली वेदना। इन दोनों कारणों से जीव कर्मों की निर्जरा भी करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोहिं ठाणेहिं आया सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ तंजहा, देसेण वि आया सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ, सव्वेण वि आया, सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ। एवं फुसित्ताणं एवं फुडित्ताणं एवं संवट्टित्ताणं णिवट्टित्ताणं। दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए तंजहा खएण चेव उवसमेण चेव, एवं जाव मणपज्जव णाणं उप्पाडेज्जा तंजहा खएण चेव उवसमेण चेव॥ ४६॥

कठिन शब्दार्थ - फुसित्ताणं - स्पर्श करके, **णिज्जाइ** - निकलता है, **देसेण** - देश से, **सव्वेण**- सब प्रदेशों से, **फुडित्ताणं** - स्फुरित होकर, अथवा-स्फोटन करके, **संवट्टित्ताणं** - संकोच करके, **णिवट्टित्ताणं** - पृथक् कर के, **केवलि पण्णत्तं** - केवली प्रज्ञप्त, **धम्मं** - धर्म को, **सवणयाए लभेज्जा**- श्रवण कर सकता है, **खएण** - क्षय से, **उवसमेण** - उपशम से, **उप्पाडेज्जा** - उत्पन्न कर सकता है।

भावार्थ - दो स्थानों से आत्मा शरीर का स्पर्श करके निकलता है यथा देश से यानी पैर आदि अङ्गों से इलिका गति में आत्मा शरीर का स्पर्श करके निकलता है इस प्रकार शरीर के किसी अङ्ग में से निकलने वाला जीव चारों गतियों में से किसी एक गति में जाता है और गेंद की तरह सब प्रदेशों से आत्मा शरीर का स्पर्श करके निकलता है सब अंगों से निकलने वाला जीव मोक्ष में जाता है। इसी प्रकार देश से और सर्वप्रदेशों से स्फुरित होकर के स्फोटन करके आत्मा निकलता है। इसी प्रकार इलिका गति में देश से और कन्दुक गति में सर्वप्रदेशों से संकोच करके तथा जीव प्रदेशों से शरीर को पृथक् करके आत्मा शरीर से निकलता है।

दो स्थानों से आत्मा केवलिभाषित धर्म को श्रवण कर सकता है यथा उदय में आये हुए ज्ञानावरणीय और दर्शन मोहनीय के क्षय से और उदय में नहीं आये हुए के उपशम से।

इसी प्रकार क्षय से और उपशम से आत्मा यावत् मनःपर्यय ज्ञान तक उत्पन्न कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने आत्मा के शरीर त्याग एवं अन्य शरीर के ग्रहण के समय की सूक्ष्म गति का विश्लेषण किया है। जब आत्मा शरीर का त्याग करती है तो देश रूप से भी करती है और सर्व रूप से भी करती है। यहाँ पांच प्रकार के शरीर समुदाय की अपेक्षा देश से औदारिक आदि शरीर को छोड़ कर तैजस कार्मण शरीर को ग्रहण कर भवान्तर में जाना और सर्व से सभी (पांचों) शरीरों का त्याग करना अर्थात् सिद्ध होना है।

यह दूसरा ठाणा है। यहां दो दो का अधिकार होने से 'क्षय और उपशम' ये दो शब्द दिये हैं किन्तु यहाँ अर्थ 'क्षयोपशम' से है। क्योंकि यहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन चार ज्ञानों का कथन किया गया है, ये चारों ज्ञान क्षायोपशमिक भाव में हैं। केवलज्ञान क्षायिक भाव में हैं। उसका यहाँ कथन नहीं किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल पाठ में 'जाव' शब्द से निम्न पाठ का ग्रहण हुआ है - "**केवल बोहिं बुज्झेज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, केवलेणं संजमेणं संजमिज्जा, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, केवलं आभिणिबोहियणाणमुप्पाडेज्जा**" सम्यक्त्व, दीक्षित होना, ब्रह्मचर्य का पालन, संयम, संवर, मतिज्ञान आदि क्षयोपशम भाव से ही पैदा होते हैं इस कारण सूत्रकार ने क्षयोपशमजन्य सद्गुणों का ही वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया है।

दुविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते तंजहा - पलिओवमे चेव सागरोवमे चेव। से किं तं पलिओवमे ? पलिओवमे -

जं जोयणविच्छिण्णं, पल्लं एगाहियप्परूढाणं।
होज्ज णिरंतर णिचियं, भरियं वालग्ग कोडीणं।। १॥
वाससए वाससए एक्केक्के, अवहडम्मि जो कालो।
सो कालो बोद्धव्वो, उवमा एगस्स पल्लस्स।। २॥
एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हविज्ज दसगुणिया।
तं सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे परिमाणं।। ३॥ ४७॥

कठिन शब्दार्थ - अद्धोवमिए - उपमा से जानने योग्य काल, **जोयणविच्छिण्णं** - एक योजन का विस्तीर्ण-लंबा, चौड़ा और गहरा, **पल्लं** - पल्य (कुआं), **एगाहियप्परूढाणं** - एक दिन से लगा कर सात दिन तक के बच्चे के, **वालग्गकोडीणं** - बालाग्र-बालों के अत्यंत छोटे छोटे टुकडे, **णिरंतर णिचियं** - अत्यंत ठूंस ठूंस कर, **भरियं** - भरा जाय, **वाससए** - सौ वर्षों में, **एक्केक्के** - एक-एक, **अवहडम्मि** - निकाला जाय, **पल्लस्स** - पल्य की, **उवमा** - उपमा, **परिमाणं** - परिमाण।

भावार्थ - उपमा से जानने योग्य काल दो प्रकार का कहा गया है यथा - पल्योपम यानी पल्य की उपमा वाला और सागरोपम अर्थात् सागर की उपमा वाला। शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! वह पल्य की उपमा वाला काल कौनसा है? तब भगवान् पल्योपम का स्वरूप फरमाते हैं-

उत्सेध अंगुल परिमाण से एक योजन का लम्बा चौड़ा और गहरा एक कुआं हो। वह कुआं एक दिन से लगा कर सात दिन तक के बच्चे के अथवा मुण्डन करवाने के बाद एक दिन से लगा कर सात दिन तक बढे हुए बालों के अत्यन्त छोटे छोटे टुकड़े करके खूब अच्छी तरह से ठूंस ठूंस कर भर दिया जाय। फिर सौ सौ वर्षों में एक एक बाल का टुकड़ा निकाला जाय। इसमें जितना समय लगे वह काल पल्योपम जानना चाहिये। यह एक पल्य की उपमा है।। २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन पल्यों को दस कोडाकोडी से गुणा किया जाय वह एक सागरोपम का परिमाण होता है अर्थात् दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

विवेचन - पदार्थों के बदलने में जो निमित्त हो उसे काल कहते हैं अथवा समय के समूह को काल कहते हैं। काल की दो उपमायें हैं - १. पल्योपम और २. सागरोपम।

१. पल्योपम - पल्य अर्थात् कूप की उपमा से गिना जाने वाला काल 'पल्योपम' कहलाता है। पल्योपम के तीन भेद हैं - १. उद्धार पल्योपम २. अद्धा पल्योपम ३. क्षेत्र पल्योपम।

२. सागरोपम - सागर की उपमा वाला काल सागरोपम कहलाता है। दस कोडाकोडी पल्योपम को सागरोपम कहते हैं। सागरोपम के तीन भेद हैं - १. उद्धार सागरोपम २. अद्धा सागरोपम और ३. क्षेत्र सागरोपम।

पल्योपम, सागरोपम का विस्तृत विवेचन अनुयोग द्वार सूत्र में दिया गया है जिज्ञासुओं को वहाँ से देखना चाहिये।

दुविहे कोहे पण्णत्ते तंजहा - आयपइट्ठिए चेव परपइट्ठिए चेव। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, एवं जाव मिच्छादंसणसल्ले। दुविहे संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - तसा चेव थावरा चेव। दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - सिद्धा चेव असिद्धा चेव। दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - सइंदिया चेव अणिंदिया चेव। एवं एसा गाहा फासेयव्वा जाव ससरीरी चेव असरीरी चेव -

सिद्धसइंदियकाए, जोगे वेए कसाय लेस्सा य।
णाणुवओगाहारे, भासग चरिमे य ससरीरी॥ १॥ ४८॥

कठिन शब्दार्थ - **आयपइट्ठिए** - आत्म प्रतिष्ठित, **परपइट्ठिए** - पर प्रतिष्ठित, **फासेयव्वा** - अनुसरण करना चाहिये।

भावार्थ - क्रोध दो प्रकार का कहा गया है यथा - आत्मप्रतिष्ठित यानी अपनी निज की कोई त्रुटि देख कर अपनी आत्मा में उत्पन्न होने वाला अथवा अपनी आत्मा द्वारा दूसरे पर होने वाला क्रोध और पर प्रतिष्ठित यानी दूसरे के द्वारा कटु वचनादि सुन कर उत्पन्न होने वाला अथवा दूसरे पर किया जाने वाला क्रोध। इस प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिक देवों तक चौबीस दण्डक में मिथ्यादर्शन शल्य तक अठारह ही पापस्थानों के आत्मप्रतिष्ठित और परप्रतिष्ठित ये दो दो भेद कह देने चाहिये। संसार समापन्नक यानी संसार में रहे हुए जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - त्रस और स्थावर। सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सिद्ध और असिद्ध। सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियाँ वाले और अनिन्द्रिय अर्थात् केवली भगवान्। इस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् सशरीरी और अशरीरी तक इस गाथा का अनुसरण करना चाहिए अर्थात् इस गाथा के अनुसार जानना चाहिए। गाथा मूल पाठ में दी हुई है, जिसका अर्थ यह है -

१. सिद्ध, असिद्ध २. सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय ३. सकायी, अकायी ४. सयोगी, अयोगी ५. सवेदी, अवेदी ६. सकषायी, अकषायी ७. सलेश्य, अलेश्य ८. ज्ञानी, अज्ञानी ९. साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी अर्थात् ज्ञानोपयोगी, दर्शनोपयोगी १०. आहारी, अनाहारी ११. भाषक, अभाषक १२. चरम, अचरम और १३. सशरीरी, अशरीरी। इस प्रकार इन तेरह बोलों का कथन कर देना चाहिए।

विवेचन - क्रोध मोहनीय के उदय से होने वाला, कृत्य अकृत्य के विवेक को हटाने वाला प्रज्वलन स्वरूप आत्मा के परिणाम को क्रोध कहते हैं। क्रोध वश जीव किसी की बात सहन नहीं करता और बिना विचारे अपने और पराए अनिष्ट के लिए हृदय में और बाहर जलता रहता है। क्रोध दो प्रकार का कहा है - **१. आत्म प्रतिष्ठित** - अपनी स्वयं की कोई त्रुटि देख कर अपनी आत्मा में उत्पन्न होने वाला अथवा अपनी आत्मा द्वारा दूसरों पर होने वाला क्रोध आत्म प्रतिष्ठित कहलाता है। **२. पर प्रतिष्ठित** - दूसरों के द्वारा कटु वचन आदि सुन कर उत्पन्न होने वाला अथवा दूसरों पर किया जाना वाला क्रोध पर प्रतिष्ठित है। क्रोध के इन दो भेदों की तरह नैरयिक आदि चौबीस दण्डकों में शेष मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अठारह पापों के दो-दो भेद समझना चाहिये।

दो मरणाइं समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइं णो णिच्चं कित्तियाइं णो णिच्चं पूइयाइं णो णिच्चं पसत्थाइं णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा वलयमरणे चेव, वसट्टमरणे चेव। एवं णियाणमरणे चेव तब्भवमरणे चेव। गिरिपडणे चेव तरुपडणे चेव। जलप्पवेसे चेव जलणप्पवेसे चेव। विसभक्खणे चेव सत्थोवाडणे चेव। दो मरणाइं जाव णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति, कारणेण पुण अप्पडिकुट्ठाइं तंजहा - वेहाणसे चेव गिद्धपिट्ठे चेव। दो मरणाइं समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णियाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - पाओवगमणे चेव भत्तपच्चक्खाणे चेव। पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - णीहारिमे चेव अणीहारिमे चेव णियमं अपडिक्कमे। भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - णीहारिमे चेव अणीहारिमे चेव णियमं सपडिक्कमे॥ ४९॥

कठिन शब्दार्थ - मरणाइं - मरण, **णो** - नहीं, **णिच्चं** - नित्य, **वण्णियाइं** - वर्णित किये हैं, **कित्तियाइं** - कीर्तन किये गये हैं, **पूइयाइं (बूइयाइं)** - पूजने योग्य, **पसत्थाइं** - प्रशस्त,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब्भणुण्णायाइं - अभ्यनुज्ञात-आचरण की आज्ञा, **वलयमरणे** - वलन्मरण, **वसट्टमरणे** - वशार्त्त मरण, **णियाणमरणे** - निदान मरण, **तब्भवमरणे** - तद्भवमरण, **गिरिपडणे** - गिरिपतन, **तरुपडणे** - तरुपतन, **जलप्पवेसे**- जल प्रवेश, **जलणप्पवेसे** - ज्वलन (अग्नि) प्रवेश, **विसभक्खणे** - विष भक्षण, **सत्थोवाडणे** - शस्त्रावपाटन, **अप्पडिकुट्ठाइं** - अप्रतिकृष्ट-निषेध नहीं किया है, **वेहाणसे** - वैहानस, **गिद्धपिट्ठे** - गृद्ध स्पृष्ट (गृद्ध पृष्ठ) **पाओवगमणे** - पादपोपगमन, **भत्तपच्चक्खाणे** - भक्त प्रत्याख्यान, **णीहारिमे** - निर्हारिम, **अणीहारिमे**- अनिर्हारिम, **णियमं** - नियम से, **अपडिक्कमे** - अप्रतिकर्म-शरीर की हलन चलन रहित, **सपडिक्कमे**- सप्रतिकर्म।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो मरण कदापि आचरण करने योग्य नहीं बतलाये हैं, कदापि कीर्तन नहीं किये हैं, कदापि आदरने योग्य नहीं बतलाये हैं, इनकी कदापि प्रशंसा नहीं की है और ये कदापि अभ्यनुज्ञात नहीं हैं अर्थात् इनका आचरण करने के लिए कदापि आज्ञा नहीं दी है वे दो मरण ये हैं-वलन्मरण यानी परीषहों से घबरा कर संयम से भ्रष्ट होकर मरना और वशार्त्तमरण अर्थात् दीपक की शिखा पर गिर कर मरने वाले पतङ्गिये के समान इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होकर मरना। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले दो दो मरणों की भी भगवान् ने आज्ञा नहीं दी है। यथा - निदान मरण यानी ऋद्धि आदि का निदान करके मरना और तद्भवमरण यानी जो जीव जिस भव में है उसी भव के योग्य आयुष्य बांध कर मरना। गिरिपतन यानी पर्वत पर से गिर कर मरना और तरुपतन अर्थात् वृक्ष पर से गिर कर मरना। जलप्रवेश यानी पानी में गिर कर मरना और ज्वलनप्रवेश यानी अग्नि में गिर कर मरना। विषभक्षण यानी जहर खाकर मरना और शस्त्रावपाटन यानी शस्त्र से अपने शरीर को चीर डालना। आगे कहे जाने वाले दो मरण सदा अभ्यनुज्ञात नहीं हैं यानी इनका सदा आचरण करने के लिए आज्ञा नहीं दी हैं किन्तु कारण उपस्थित होने पर यानी ब्रह्मचर्य आदि की रक्षा का दूसरा कोई उपाय न हो तो भगवान् ने इन दो मरणों का निषेध नहीं किया है यथा - वैहानस यानी फांसी द्वारा वृक्ष आदि में लटक कर मरना और गृद्धस्पृष्ट या गृद्धपृष्ठ यानी मरे हुए हाथी या ऊंट आदि के कलेवर में प्रवेश कर अपने शरीर का मांस गिद्ध पक्षियों को खिला देना।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो मरण सदा वर्णित किये हैं यावत् ये दो मरण अभ्यनुज्ञात होते हैं अर्थात् इनका आचरण करने के लिए भगवान् ने आज्ञा दी है यथा पादपोपगमन यानी कटे हुए वृक्ष के समान निश्चल होकर समाधिपूर्वक मरना और भक्तप्रत्याख्यान यानी तीन आहार या चारों आहार का त्याग करना। पादपोपगमन मरण दो प्रकार का कहा गया है यथा - निर्हारिम यानी जो गांव, नगर आदि वसति में किया जाता है और फिर मृतशरीर को वहाँ से बाहर ले जाना पड़ता है और अनिर्हारिम यानी यह पर्वत की गुफा आदि में किया जाता है जहाँ से मृत शरीर को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाहर ले जाने की आवश्यकता नहीं रहती है। यह दोनों प्रकार का पादपोपगमन मरण निश्चित रूप से अप्रतिकर्म यानी शरीर की हलन चलन आदि क्रिया से रहित होता है। भक्तप्रत्याख्यान मरण दो प्रकार का कहा गया है यथा निर्हारिम और अनिर्हारिम। यह दोनों प्रकार का भक्तप्रत्याख्यान मरण निश्चित रूप से सप्रतिकर्म है यानी इसमें शरीर की हलन चलन आदि क्रियाओं का त्याग नहीं होता है।

विवेचन - श्रमु तपसि खेदे च इस धातु से 'श्रमण' शब्द बनता है। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

श्राम्यति तपस्य ति, तपः करोति इति श्रमणः।

तथा श्राम्यति-जगत् जीवानां खेदं दुःखं जानाति इति श्रमणः॥

अर्थ - जो तप संयम में अपना जीवन लगाता है तथा जगत् के जीवों को दुःखी देखकर उनके दुःख को दूर करने का उपाय बताता है उसे श्रमण कहते हैं। श्रमण पांच प्रकार के कहे हैं - १, निर्ग्रन्थ २. शाक्य ३. तापस ४. गैरिक ५. आजीविक। प्रस्तुत सूत्र में शाक्य (बौद्ध भिक्षु) आदि का निषेध करने के लिये श्रमण का विशेषण दिया है निर्ग्रन्थ, जिसका अर्थ है - बाह्य और आभ्यंतर ग्रंथ (परिग्रह) से मुक्त ऐसे श्रमण निर्ग्रन्थ के लिए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दो-दो मरण आचरण करने योग्य नहीं बतलाये हैं, कीर्तित नहीं किये हैं, आदरने योग्य नहीं बताये हैं, प्रशंसा नहीं की है और आचरण करने की आज्ञा नहीं दी है। वे इस प्रकार हैं -

१. वलन्मरण - संयम की प्रवृत्तियों में खिन्न हुए - खेद प्राप्त जीवों का जो मरण होता है, वह वलन्मरण है।

२. वशार्त्तमरण - तेल सहित दीपक की शिखा को देख कर व्याकुल बने पतंगिये की तरह इन्द्रियों के वश बने हुए जीवों का जो मरण है, वह वशार्त्त मरण है।

३. निदान मरण - ऋद्धि और भोग आदि की प्रार्थना 'निदान' है और निदान पूर्वक जो मरण होता है वह निदान मरण है।

४. तद्भवमरण - जो जीव जिस भव में है उसी भव के योग्य आयुष्य बांध कर मरना तद्भव मरण है। तद्भव मरण संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्यों और तिर्यंचों को होता है। वे ही तद्भव का आयुष्य बंध करते हैं। कहा भी है -

मोत्तुं अकम्मभूमग-नरतिरिए सुरगणे य णेरइए।

सेसाणं जीवाणं, तब्भवमरणं तु केसिं चि।।

- अकर्म भूमिक मनुष्य, तिर्यंच और देव तथा नैरयिकों को छोड़ कर शेष मनुष्य और तिर्यंचों में कितनेक जीवों को ही तद्भवमरण होता है।

५. गिरिपतन मरण - पर्वत पर से गिर कर मरना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. **तरुपतन मरण** – वृक्ष पर से गिर कर मरना।

७. **जल प्रवेश मरण** – पानी में गिर कर मरना।

८. **ज्वलन प्रवेश मरण** – अग्नि में गिर कर मरना।

९. **विषभक्षण मरण** – जहर खाकर मरना।

१०. **शस्त्रावपाटन मरण** – जिस मरण में छुरी तलवार आदि शस्त्रों से अपने शरीर का विदारण होता है वे शस्त्रावपाटन मरण कहलाते हैं

शेष दो मरण की भी प्रभु ने आज्ञा नहीं दी है किन्तु कारण उपस्थित होने पर यानी ब्रह्मचर्य आदि की रक्षा का दूसरा कोई उपाय न हो तो भगवान् ने इन दो मरणों का निषेध नहीं किया है। वे इस प्रकार हैं –

११. **वैहानस मरण** – फांसी द्वारा वृक्ष आदि पर लटक कर मरना।

१२. **गृद्ध स्पृष्ट (गृद्ध पृष्ठ) मरण** – मरे हुए हाथी या ऊँट आदि के कलेवर में प्रवेश कर अपने शरीर के मांस को गिद्ध पक्षियों को खिला देना ऐसी इच्छा वाले जीव का मरण गृद्ध स्पृष्ट मरण है।

ये १२ भेद अप्रशस्त मरण के हैं। प्रशस्त मरण भव्य जीवों को होता है जिनके लिये भगवान् ने आज्ञा दी है। उसके दो भेद हैं –

१. **पादपोपगमन** – पादप अर्थात् वृक्ष, उपगमन यानी उपमा वाला। तात्पर्य यह है कि कटा हुआ वृक्ष या कटी हुई वृक्ष की शाखा जिस प्रकार स्वतः हलन चलन रहित निष्प्रकम्प रहती है। उसी के समान निश्चल रहकर मरण को प्राप्त करना पादपोपगमन मरण कहलाता है।

२. **भक्त प्रत्याख्यान** – भक्त यानी भोजन, प्रत्याख्यान यानी त्याग, तीन या चारों आहार का त्याग करना भक्त प्रत्याख्यान मरण कहलाता है। पादपोपगमन और भक्त प्रत्याख्यान मरण दो-दो प्रकार का होता है, यथा – १. निर्हारिम और २. अनिर्हारिम। मरण स्थान से मृत शरीर को बाहर ले जाना निर्हारिम कहलाता है और मरण स्थान पर ही मृत शरीर को पड़े रहने देना अनिर्हारिम कहलाता है। जब समाधि मरण गाँव, नगर आदि बस्ती में होता है तब शव (मृत शरीर) को बाहर ले जाकर छोड़ा जा सकता है या दाह क्रिया की जा सकती है किन्तु जब समाधि मरण पहाड़ की गुफा आदि निर्जन स्थान में होता है तब शव बाहर नहीं ले जाया जाता है।

के अयं लोए ? जीवच्चेव अजीवच्चेव। के अणंता लोए ? जीवच्चेव अजीवच्चेव। के सासया लोए ? जीवच्चेव अजीवच्चेव। दुविहा बोही पण्णत्ता तंजहा – णाणबोही चेव दंसणबोही चेव। दुविहा बुद्धा पण्णत्ता तंजहा – णाणबुद्धा दंसण बुद्धा चेव। एवं मोहे मूढा॥ ५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **के** - क्या, **अणंता** - अनंत, **सासया** - शाश्वत, **बोही** - बोधि-जिनधर्म की प्राप्ति, **णाणबोही** - ज्ञानबोधि, **दंसणबोही** - दर्शन बोधि, **बुद्धा** - बुद्ध-बोधि से युक्त पुरुष, **णाणबुद्धा** - ज्ञान बुद्ध, **दंसणबुद्धा** - दर्शन बुद्ध, **मोहे** - मोह से, **मूढा** - मूढ।

भावार्थ - हे भगवन् ! यह लोक क्या है? जीव है या अजीव है? हे गौतम ! यह लोक जीव और अजीव स्वरूप है। हे भगवन् ! इस लोक में अनन्त क्या हैं? हे गौतम ! जीव और अजीव अनन्त है। हे भगवन् ! इस लोक में शाश्वत क्या है? हे गौतम ! जीव और अजीव शाश्वत है। बोधि अर्थात् जिनधर्म की प्राप्ति दो प्रकार की कही गई है यथा - ज्ञानबोधि और दर्शनबोधि। बुद्ध यानी बोधि से युक्त पुरुष दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - ज्ञान बुद्ध और दर्शन बुद्ध। इसी प्रकार मोह से मूढ भी दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - ज्ञान के आवरण से आच्छादित सो ज्ञानमूढ और दर्शन के आवरण से आच्छादित सो दर्शन मूढ यानी मिथ्यादृष्टि।

विवेचन - जो दिखाई देता है वह लोक है। यह लोक पंचास्तिकाय मय होने से जीव और अजीव रूप है। ऐसे पंचास्तिकायमय लोक को जिनेश्वर भगवंतों ने अनादि अनंत कहा है। जीव और अजीव अनंत है। जीव और अजीव द्रव्यार्थ की अपेक्षा शाश्वत है। अनंत और शाश्वत जो जीव है वे बोधि लक्षण और मोह लक्षण रूप स्वभाव से बुद्ध और मूढ होते हैं। बोधि अर्थात् जिनधर्म का लाभ-प्राप्ति। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान की जो प्राप्ति होती है वह ज्ञान बोधि कहलाती है और दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से सम्यग् रूप से होने वाली दर्शन की प्राप्ति अर्थात् श्रद्धा का लाभ दर्शन बोधि है। बुद्ध यानी बोधि से युक्त पुरुष दो प्रकार के कहे गये हैं -

१. ज्ञान बोधि वाला ज्ञान बुद्ध और २. दर्शन बोधि वाला दर्शन बुद्ध। जैसे बोधि और बुद्ध दो प्रकार के कहे हैं उसी प्रकार मोह और मूढ भी दो प्रकार के कहे हैं। जो ज्ञान को आच्छादन करे वह ज्ञान मोह अर्थात् ज्ञानावरणीय का उदय और जो सम्यग्-दर्शन को आच्छादित करे वह दर्शन मोह। मूढ दो प्रकार के कहे हैं - १. ज्ञान के आवरण से आच्छादित ज्ञान मूढ और दर्शन के आवरण से आच्छादित दर्शन मूढ कहलाता है।

णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - देसणाणावरणिज्जे चेव सव्वणाणावरणिज्जे चेव। दरिसणावरणिज्जे कम्मे एवं चेव। वेयणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सायावेयणिज्जे चेव असायावेयणिज्जे चेव। मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - दंसणमोहणिज्जे चेव चरित्तमोहणिज्जे चेव। आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - अद्धाउए चेव भवाउए चेव। णामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - सुहणामे चेव असुहणामे चेव। गोए कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा- उच्चागोए चेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णीयागोए चेव। अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा - पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहियागामिपहं॥ ५१॥

कठिन शब्दार्थ - देसणाणावरणिज्जे - देश ज्ञानावरणीय, **सव्वणाणावरणिज्जे** - सर्व ज्ञानावरणीय, **दरिसणावरणिज्जे** - दर्शनावरणीय, **सायावेयणिज्जे** - साता वेदनीय, **असायावेयणिज्जे**- असाता वेदनीय, **दंसणमोहणिज्जे** - दर्शन मोहनीय, **चरित्तमोहणिज्जे** - चारित्र मोहनीय, **अद्धाउए** - अद्धा आयुष्य (कायस्थिति), **भवाउए** - भवायुष्य (भवस्थिति) **सुहणामे** - शुभ नाम, **असुहणामे** - अशुभ नाम, **उच्चागोए** - उच्चगोत्र, **णीयागोए** - नीच गोत्र, **अंतराइए** - अन्तराय, **पडुप्पण्ण-विणासिए**- प्रत्युत्पन्न विनाशी, **पिहियागामिपहं** - पिहितागामिपथ।

भावार्थ - ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - देश ज्ञानावरणीय और सर्व ज्ञानावरणीय। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म भी दो प्रकार का है। यथा - देश दर्शनावरणीय और सर्व दर्शनावरणीय। वेदनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - साता वेदनीय और असाता वेदनीय। मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। आयु कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - अद्धा आयुष्य अर्थात् कायस्थिति और भवायुष्य अर्थात् भवस्थिति। नाम कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - शुभ नाम और अशुभ नाम। गोत्र कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - उच्च गोत्र और नीच गोत्र। अन्तराय कर्म दो प्रकार का कहा गया है यथा - प्रत्युत्पन्न विनाशी यानी वर्तमान में मिलने वाली वस्तु में अन्तराय डाल देना और पिहितागामिपथ यानी आगामी काल में मिलने वाली वस्तु में अन्तराय डाल देना।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आठ कर्मों के दो-दो भेद कहे हैं। आठ कर्मों का स्वरूप इस प्रकार है -

१. ज्ञानावरणीय कर्म - ज्ञान के आवरण करने वाले कर्म को ज्ञानावरणीय कहते हैं। जिस प्रकार आंख पर कपडे की पट्टी लपेटने से वस्तुओं को देखने में रुकावट हो जाती है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का ज्ञान करने में रुकावट पड़ जाती है परन्तु यह कर्म आत्मा को सर्वथा ज्ञानशून्य अर्थात् जड़ नहीं कर देता है। जैसे घने बादलों से सूर्य के ढंक जाने पर भी सूर्य का, दिन रात बताने वाला प्रकाश तो रहता ही है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान के ढक जाने पर भी जीव में इतना ज्ञानांश तो रहता ही है कि वह जड़ पदार्थ से पृथक् समझा जा सके। ज्ञान का जो देश-मतिज्ञान आदि चार का आवरण करता है वह देश ज्ञानावरणीय और सर्व-केवलज्ञान का जो आवरण करता है वह सर्व ज्ञानावरणीय है। पांच ज्ञानावरणीय कर्मों में सिर्फ एक केवल ज्ञानावरणीय सर्वघाती है और शेष चार कर्म देशघाती है।

२. दर्शनावरणीय - दर्शन अर्थात् सामान्य अर्थ बोध का आवरण करने वाले कर्म को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनावरणीय कहते हैं। जैसे द्वारपाल राजा के दर्शन में बाधक होता है उसी प्रकार दर्शन गुण का घातक दर्शनावरणीय कर्म है। चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और अवधिदर्शनावरणीय देश दर्शनावरणीय कर्म है, जो दर्शन गुण का देश से आवरण करते हैं। अतएव ये तीन देशघाती है। पांच प्रकार कि निद्रा और केवलदर्शनावरणीय ये छह भेद सर्व दर्शनावरणीय कर्म के हैं। अतएव सर्वघाती है।

३. वेदनीय - जो वेदा जाता है, अनुभव किया जाता है, वह वेदनीय कर्म है। साता-सुख, जो सुख रूप से वेदा जाता है वह साता वेदनीय और जो दुःख रूप वेदा जाता है वह आसातावेदनीय कर्म है। मधु से लिपटी तीक्ष्ण तलवार की धार को जीभ से चाटने के समान सुख और दुःख का उत्पादक वेदनीय कर्म जानना चाहिए।

४. मोहनीय - जो भान भूला देता है वह मोहनीय कर्म है, जैसे मद्य पान किया हुआ मूढ मनुष्य परतंत्र हो जाता है उसी प्राकर मोहनीय कर्म से मूढ बना हुआ प्राणी परतंत्र हो जाता है। जो दर्शन का भान भूलावे वह दर्शन मोहनीय कर्म है। दर्शन मोहनीय कर्म के तीन भेद हैं - १. मिथ्यात्व मोहनीय २. मिश्र मोहनीय और ३. सम्यक्त्व मोहनीय। सामायिक आदि चारित्र का जो भान भूलाता है वह १६ कषाय और ९ नोकषाय भेद रूप चारित्र मोहनीय कर्म है।

५. आयुष्य - जो गति को प्राप्त कराता है वह आयुष्य कर्म है। चार गति के जीवों को आयुष्य कर्म सुख दुःख नहीं देता परन्तु सुख दुःख के आधार भूत शरीर में रहे हुए जीव को धारण करता है। अर्थात् सुख दुःख देना वेदनीय कर्म का सामर्थ्य है। आयुष्य कर्म तो जीव को शरीर में रोक रखता है। आयुकर्म के दो भेद हैं - १. अद्धायु जो कि कायस्थिति रूप (मनुष्य तिर्यंच की) है। २. भवायु - भवस्थिति रूप है।

६. नाम - जो जीव को विचित्र पर्यायों में परिणमाता है वह नाम कर्म है। जैसे कुशल चित्रकार निर्मल और अनिर्मल वर्णों से शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है उसी प्रकार नाम कर्म भी लोक में अच्छे बुरे, इष्ट अनिष्ट अनेक प्रकार के रूप करवाता है। तीर्थंकर आदि नाम कर्म की शुभ प्रकृतियाँ भी है तो अनादेय आदि अशुभ प्रकृतियाँ भी है।

७. गोत्र - जिस कर्म के कारण जीव पूज्य (ऊंच) अथवा अपूज्य (नीच) कुलों में उत्पन्न होता है वह गोत्र कर्म है। जैसे कुंभकार लोक में पूज्य घृत कुंभ आदि एवं अपूज्य मदिरा के घट आदि बर्तन बनाता है उसी प्रकार गोत्र कर्म लोक में पूज्य इक्ष्वाकु आदि गोत्र और अपूज्य चांडाल आदि गोत्र में उत्पन्न करवाता है। ऊँच गोत्र पूज्यपने का कारण है और नीच गोत्र अपूज्यपने का कारण है।

८. अन्तराय - जो कर्म आत्मा के दान लाभ आदि रूप शक्तियों का घात करता है वह अन्तराय है। यह कर्म भण्डारी के समान है। जैसे राजा की दान देने की आज्ञा होने पर भण्डारी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिकूल होने से याचक को खाली हाथ लौटना पड़ता है। राजा की इच्छा को भण्डारी सफल नहीं होने देता। भण्डारी की तरह यह अन्तराय कर्म जीव की इच्छा को सफल नहीं होने देता। अन्तराय कर्म के दो भेद कहे हैं - १. वर्तमान में मिलने वाली वस्तु जिस कर्म से नहीं मिलती वह प्रत्युत्पन्न विनाशी अन्तराय कर्म है। पाठान्तर से वर्तमान में प्राप्त वस्तु का नाश करने के स्वभाव वाला प्रत्युत्पन्न विनाशी अन्तराय कर्म है। २. भविष्यकाल में मिलने योग्य वस्तु के मार्ग को जो रोके वे पिहित आगामी पथ अंतराय है। कहीं कहीं **आगामिपन्था** पाठ है। कहीं कहीं '**आगमपहं**' पाठ है जिसका अर्थ है - लाभ का मार्ग।

दुविहा मुच्छा पण्णत्ता तंजहा - पेज्जवत्तिया चेव दोसवत्तिया चेव । पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता तंजहा - माए चेव लोभे चेव। दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता तंजहा - कोहे चेव माणे चेव। दुविहा आराहणा पण्णत्ता तंजहा - धम्मियाराहणा चेव केवलिआराहणा चेव। धम्मियाराहणा दुविहा पण्णत्ता तंजहा-सुयधम्माराहणा चेव चरित्तधम्माराहणा चेव। केवलिआराहणा दुविहा पण्णत्ता तंजहा-अंतकिरिया चेव कप्पविमाणोववत्तिया चेव। दो तित्थयरा णीलुप्पलसमा वण्णेणं पण्णत्ता तंजहा - मुणिसुव्वए चेव अरिट्ठणेमी चेव। दो तित्थयरा पियंगुसमाणा वण्णेणं पण्णत्ता तंजहा - मल्ली चेव पासे चेव। दो तित्थयरा पउमगोरा वण्णेणं पण्णत्ता तंजहा - पउमप्पहे चेव वासुपुज्जे चेव। दो तित्थयरा चंदगोरा वण्णेणं पण्णत्ता तंजहा - चंदप्पभे चेव पुप्फदंते चेव॥ ५२॥

कठिन शब्दार्थ - मुच्छा - मूर्च्छा, **पेज्जवत्तिया** - प्रेम प्रत्यया, **दोसवत्तिया** - द्वेष प्रत्यया, **धम्मियाराहणा** - धार्मिक आराधना, **केवलि आराहणा** - केवलि आराधना, **अंतकिरिया** - अन्तक्रिया, **कप्पविमाणोववत्तिया** - कल्पविमानोपपातिका, **णीलुप्पलसमा** - नील कमल के समान नीले वर्ण के, **पियंगुसमाणा** - प्रियंगु वृक्ष के समान हरे वर्ण के, **पउमगोरा** - रक्त कमल के समान, **चंदगोरा**-चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले।

भावार्थ - मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है यथा - प्रेमप्रत्यया अर्थात् प्रेम के कारण होने वाली और द्वेषप्रत्यया अर्थात् द्वेष के कारण होने वाली। प्रेम प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है यथा - माया और लोभ। द्वेषप्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है यथा - क्रोध और मान। आराधना दो प्रकार की कही गई है यथा - धार्मिक आराधना यानी श्रुत चारित्र धर्म का पालन करने वाले साधुओं की आराधना और केवलि आराधना अर्थात् श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी इनकी आराधना। धार्मिक आराधना दो प्रकार की कही गई है यथा - श्रुतधर्म की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आराधना और चारित्रधर्म की आराधना। केवलिआराधना दो प्रकार की कही गई है यथा - अन्तक्रिया यानी केवलज्ञानी इस भव का अन्त करके मोक्ष में जाते समय शैलेशी रूप क्रिया करते हैं सो अन्तक्रिया आराधना और कल्पविमानोपपातिका अर्थात् जिससे श्रुतकेवली आदि सौधर्मादि देवलोकों में तथा नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं वह कल्पविमानोपपातिका आराधना कहलाती है।

इस अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थंकरों में से श्री मुनिसुव्रत स्वामी और श्री अरिष्टनेमिनाथ भगवान् ये दो तीर्थङ्कर वर्ण की अपेक्षा नीलकमल के समान नीले वर्ण के कहे गये हैं। मल्लिनाथ भगवान् और पार्श्वनाथ भगवान् ये दो तीर्थंकर वर्ण से प्रियंगु वृक्ष के समान हरे वर्ण के कहे गये हैं। पद्मप्रभस्वामी और वासुपूज्य स्वामी ये दो तीर्थंकर वर्ण से रक्त कमल के समान लाल वर्ण वाले कहे गये हैं। चन्द्रप्रभ स्वामी और पुष्पदन्त-सुविधिनाथ स्वामी ये दो तीर्थंकर वर्ण से चन्द्रमा के समान सफेद गौर वर्ण वाले कहे गये हैं। शेष १६ तीर्थंकरों का वर्ण सोने के समान पीला गौर था।

विवेचन - मूर्च्छा यानी मोह-सत् असत् के विवेक का नाश। मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है। मूर्च्छा से उत्पन्न कर्म का क्षय आराधना से होता है अतः आराधना के तीन सूत्र दिये हैं।

अन्तक्रिया - कर्म अथवा कर्म कारणक भव का अन्त करना अन्तक्रिया है। द्विस्थान होने से यहाँ अन्तक्रिया के दो भेद कहे गये हैं। यों तो अन्तक्रिया एक ही स्वरूप वाली होती है किन्तु सामग्री के भेद से अन्तक्रिया चार प्रकार की कही गई है जिनका वर्णन चौथे स्थान में किया जायेगा।

सच्चप्पवाय पुव्वस्स णं दुवे वत्थू पण्णत्ता। पुव्वाभद्दवया णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। उत्तरभद्दवया णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। एवं पुव्वफग्गुणी उत्तराफग्गुणी। अंतो णं मणुस्सखेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता तंजहा - लवणे चेव कालोदे चेव। दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा तंजहा - सुभूमे चेव बंभदत्ते चेव॥ ५३॥

कठिन शब्दार्थ - **सच्चप्पवाय** - सत्य प्रवाद, **पुव्वस्स** - पूर्व की, **दुवे** - दो, **वत्थू** - वस्तु-अध्ययन-विशेष, **दुतारे** - दो तारों वाला, **अंतो** - अन्दर, **लवणे** - लवण समुद्र, **कालोदे** - कालोदधि समुद्र, **चक्कवट्टी** - चक्रवर्ती, **अपरिचत्त कामभोगा** - कामभोगों का त्याग न करने वाले, **कालमासे** - यथा समय, **कालं किच्चा** - आयुष्य पूर्ण करके, **अप्पइट्ठाणे** - अप्रतिष्ठान नामक, **उववण्णा** - उत्पन्न हुए हैं।

भावार्थ - सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तु यानी अध्ययन कहे गये हैं। पूर्व भाद्रपद नक्षत्र दो तारों वाला कहा गया है। उत्तर भाद्रपद नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है। इसी प्रकार पूर्वाफाल्गुनी और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र भी दो दो तारों वाले कहे गये हैं। इस मनुष्य क्षेत्र के अन्दर दो समुद्र कहे गये हैं यथा - लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र। आठवां चक्रवर्ती सुभूम और बारहवां चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती कामभोगों का त्याग न करने से यथा समय अपना आयुष्य पूर्ण करके सातवीं तमस्तमा नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुए हैं। वहाँ तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

विवेचन - सत्य प्रवाद - जीवों के हित के लिये सत्य-संयम अथवा सत्य वचन है जिसमें ऐसे भेद सहित और प्रतिपक्ष सहित जो कहा जाता है वह सत्य प्रवाद, ऐसा जो पूर्व सर्व श्रुत से प्रथम रचित होने से सत्य प्रवाद पूर्व कहलाता है। १४ पूर्व में यह छठा पूर्व है जिसका प्रमाण छह पद अधिक एक करोड़ है। सत्य प्रवाद पूर्व की दो वस्तु है। अध्ययन आदि की तरह पूर्व का विभाग विशेष 'वस्तु' कहलाता है।

कामभोग-'काम्यन्ते इति कामा' - जो मन को रुचि कर होता है वह 'काम' कहलाता है। शब्द और रूप विषय काम है। जो भोगा जाता है वह 'भोग' है। गंध, रस और स्पर्श विषय भोग हैं। कामभोगों का त्याग करके दीक्षा नहीं लेने के कारण दो चक्रवर्ती अर्थात् आठवां चक्रवर्ती सुभूम और बारहवां चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त मर कर ३३ सागरोपम की स्थिति वाली सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में उत्पन्न हुए हैं। इस आगम पाठ से यह सिद्ध होता है कि इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्तियों में से इन दो चक्रवर्तियों को छोड़ कर शेष दस मोक्ष में गये। टीकाकार लिखते हैं कि तीसरा चक्रवर्ती मघवा और चौथा चक्रवर्ती सनत्कुमार, इन दोनों चक्रवर्तियों ने दीक्षा तो ली थी किन्तु उसी भव में मोक्ष में नहीं गये किन्तु दोनों चक्रवर्ती तीसरे देवलोक में गये हैं। किन्तु यह बात आगम से मेल नहीं खाती है। क्योंकि यदि ये मोक्ष न जाकर देवलोक में गये होते तो जिस प्रकार यहाँ द्विस्थान में सुभूम और ब्रह्मदत्त इन दो चक्रवर्तियों का नरक भ्रमण बतलाया वैसे ही मघवा और सनत्कुमार इन दोनों चक्रवर्तियों का स्वर्ग गमन बतला देते। परन्तु वैसा नहीं बतलाया है। तथा इसी स्थानांग सूत्र के चौथे ठाणे के पहले उद्देशक के पहले सूत्र में ही चार अंतक्रियाओं का वर्णन किया गया है। अन्तक्रिया का अर्थ है जो उसी भव में मोक्ष जावे। उसमें तीसरी अन्तक्रिया में सनत्कुमार चक्रवर्ती का नाम है।

उत्तराध्ययन सूत्र के १८वें अध्ययन में १० चक्रवर्तियों का मोक्ष गमन बतलाया गया है। इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्ती भी मोक्ष गये हैं।

असुरिंद वज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारे कप्पे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। दोसु कप्पेसु कप्पत्थियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - सोहम्मे चेव ईसाणे चेव। दोसु कप्पेसु देवा तेउलेस्सा पण्णत्ता तंजहा - सोहम्मे चेव ईसाणे चेव। दोसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा पण्णत्ता तंजहा - सोहम्मे चेव ईसाणे चेव। दोसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा पण्णत्ता तंजहा - सणंकुमारे चेव माहिंदे चेव। दोसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा पण्णत्ता तंजहा - बंभलोए चेव लंतगे चेव। दोसु कप्पेसु देवा सद्दपरियारगा पण्णत्ता तंजहा - महासुक्के चेव सहस्सारे चेव। दो इंदा मणपरियारगा पण्णत्ता तंजहा - पाणए चेव अच्चुए चेव। जीवाणं दुट्ठाण णिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा तंजहा - तसकाय णिव्वत्तिए चेव थावरकाय णिव्वत्तिए चेव। एवं उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा। बंधिंसु वा बंधंति वा बंधिस्संति वा। उदीरिंसु वा उदीरेंति वा उदीरिस्संति वा। वेदिंसु वा वेदेंति वा वेदिस्संति वा। णिज्जरिंसु वा णिज्जरिंति वा णिज्जरिस्संति वा। दुपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता, दुपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता एवं जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।। ५४॥

चउत्थो उद्देसो॥ दुट्ठाणं समत्तं।।

कठिन शब्दार्थ - असुरिंदवज्जियाणं - असुरकुमार देवों के दो इन्द्रों को छोड़ कर, **ठिई** - स्थिति, **देसूणाइं** - देशोन, **उक्कोसेणं** - उत्कृष्ट, **जहण्णेणं** - जघन्य, **साइरेगाइं** - सातिरेक-साधिक, **कप्पेसु** - कल्पों में-देवलोकों में, **कप्पत्थियाओ** - कल्पस्त्रियाँ, **कायपरियारगा** - काय परिचारक, **फासपरियारगा** - स्पर्श परिचारक, **रूवपरियारगा** - रूप परिचारक, **सद्दपरियारगा** - शब्द परिचारक, **मणपरियारगा** - मन परिचारक, **णिव्वत्तिए** - निर्वर्तित, **चिणिंसु** - इकट्ठे किये हैं, **चिणंति** - इकट्ठे करते हैं, **चिणिस्संति**- इकट्ठे करेंगे, **उवचिणिंसु** - कर्मों का उपचय किया है, **उवचिणंति** - उपचय करते हैं, **उवचिणिस्संति**- उपचय करेंगे, **उदीरिंसु** - उदीरणा की है, **वेदिंसु** - वेदन किया है, **णिज्जरिंसु** - निर्जरा की है, **दुपएसिया**- द्वि प्रदेशी, **खंधा** - स्कन्ध, **दुगुणलुक्खा** - द्वि गुण रूक्ष।

भावार्थ - दस जाति के भवनवासी देवों में से असुरकुमार देवों के चमर और बली इन दो इन्द्रों को छोड़ कर शेष सब भवनवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति देशोन दो पल्योपम की कही गई है। सौधर्म नामक पहले देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की कही गई है। ईशान नामक दूसरे देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है। सनत्कुमार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामक तीसरे देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम कही गई है। माहेन्द्र नामक चौथे देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है। सौधर्म और ईशान इन दो देवलोकों में कल्प स्त्रियाँ यानी देवियाँ होती है। सौधर्म और ईशान इन दो देवलोकों में देवों की तेजोलेश्या कही गई है। सौधर्म और ईशान इन दो देवलोकों में देव कायपरिचारक अर्थात् मनुष्य की तरह काया से कामभोग का सेवन करते हैं ऐसा कहा गया है। सनत्कुमार और माहेन्द्र यानी तीसरे और चौथे इन दो देवलोकों में देव स्पर्शपरिचारक कहे गये हैं अर्थात् देवियों के शरीर को स्पर्श करने मात्र से ही इन देवों की कामवासना शान्त हो जाती है। ब्रह्मलोक और लान्तक अर्थात् पांचवे और छठे इन दो देवलोकों में देव रूपपरिचारक कहे गये हैं अर्थात् देवियों के रूप को देख कर ही इन देवों की कामवासना शान्त हो जाती है। महाशुक्र और सहस्रार अर्थात् सातवें और आठवें इन दो देवलोकों में देव शब्दपरिचारक कहे गये हैं अर्थात् देवियों के मधुर शब्दों को सुन कर ही इन देवों की कामवासना शान्त हो जाती हैं। प्राणतेन्द्र यानी नवें दसवें देवलोक का इन्द्र और अच्युतेन्द्र यानी ग्यारहवें और बारहवें देवलोक का इन्द्र ये दो इन्द्र तथा इन चारों देवलोकों के देव मन परिचारक कहे गये हैं अर्थात् अपने मन में देवियों का चिन्तन करने मात्र से ही इन देवों की कामवासना शान्त हो जाती है। त्रसकाय से निर्वर्तित स्थावर काय से निर्वर्तित इन दो स्थानों से निर्वर्तित अर्थात् त्रस और स्थावर काय में उत्पन्न होकर जीवों ने कर्मपुद्गलों को पापकर्म रूप से इकट्ठे किये हैं, इकट्ठे करते हैं और इकट्ठे करेंगे। इसी प्रकार कर्मों का उपचय किया है, उपचय करते हैं और उपचय करेंगे। कर्मों का बन्ध किया है, बन्ध करते हैं और बन्ध करेंगे। इसी प्रकार कर्मों की उदीरणा की है, उदीरणा करते हैं और उदीरणा करेंगे। कर्मों का वेदन किया है, वेदन करते हैं और वेदन करेंगे। इसी प्रकार कर्मों की निर्जरा की है, निर्जरा करते हैं और निर्जरा करेंगे। द्विप्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। दो प्रदेशों को अवगाहन कर रहे हुए पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। इसी प्रकार यावत् द्विगुणरूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं।

विवेचन - परिचारक-परिचरंति - जो स्त्री का सेवन (भोग) करते हैं वे परिचारक कहलाते हैं। जो काया से परिचारणा करते हैं वे काय परिचारक हैं। जो अंग के स्पर्श मात्र से वेद (उपताप) की शांति करने वाले हैं वे स्पर्श परिचारक हैं। मन से विषय का सेवन करने वाले मनः परिचारक कहलाते हैं। परिचारणा के लिए कहा है -

दो कायप्पवियारा कप्पा, फरिसेण दोण्णि दो रूवे।
सद्दे दो चउर मणे, उवरिं परियारणा णत्थि ॥

- पहले दूसरे दो देवलोकों के देव काया से विषय सेवन करते हैं। तीसरे चौथे देवलोक के देव स्पर्श से, पांचवे छठे देवलोक के देव रूप से, सातवें आठवें देवलोक के देव शब्द से और शेष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार देवलोक के देव मन से विषय सेवन करने वाले होते हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में परिचारणा (विषय सेवन) नहीं होती।

चय - कषाय आदि से परिणत जीव को जिन कर्म पुद्गलों का उपादान-ग्रहण होता है, उसे चय कहते हैं।

उपचय - ग्रहण किये हुए कर्म के अबाधाकाल (जब तक उदय में न आवे वह) को छोड़ कर ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप निषेक (कर्म दल की रचना विशेष) को 'उपचय' कहते हैं। प्रथम स्थिति में जीव बहुत कर्मदलिक की रचना करता है इसके बाद दूसरी स्थिति में विशेषहीन निषेक करता है यावत् उत्कृष्ट स्थिति में विशेषहीन निषेक करता है।

बंधन - ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप से रचित निषेक को पुनः कषाय की परिणति विशेष से निकाचित दृढ़ बंधन रूप जानना।

उदीरणा - उदय को प्राप्त नहीं हुए कर्म को करण (जीव वीर्य) से खींच कर उदय में लाना।

वेदन - अनुभव अर्थात् कर्म को भोगना।

निर्जरा - कर्म का अकर्म रूप होना अर्थात् कर्म का नाश होना।

॥ इति चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

॥ इति द्वितीय स्थान समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तइयं ठाणं तृतीय स्थान

प्रथम उद्देशक

द्वितीय स्थानक के बाद क्रम से तृतीय स्थानक आता है। तीसरे स्थानक में चार अनुयोग के द्वार रूप चार उद्देशक कहे हैं। इसके प्रथम उद्देशक में दूसरे स्थान के अंतिम चौथे उद्देशक की तरह जीवादि पर्याय का कथन किया जाता है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तओ इंदा पण्णत्ता तंजहा - णामिंदे ठवणिंदे दव्विंदे। तओ इंदा पण्णत्ता तंजहा - णाणिंदे दंसणिंदे चरित्तिंदे। तओ इंदा पण्णत्ता तंजहा - देविंदे असुरिंदे मणुस्सिंदे॥ ५५॥

कठिन शब्दार्थ - **तओ** - तीन, **इंदा** - इन्द्र, **णामिंदे** - नाम इन्द्र, **ठवणिंदे** - स्थापना इन्द्र, **दव्विंदे** - द्रव्येन्द्र, **णाणिंदे** - ज्ञानेन्द्र, **दंसणिंदे** - दर्शनेन्द्र, **चरित्तिंदे** - चारित्रेन्द्र, **देविंदे**- देवेन्द्र, **असुरिंदे** - असुरेन्द्र, **मणुस्सिंदे** - मनुष्येन्द्र ।

भावार्थ - श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने तीन प्रकार के इन्द्र फरमाये हैं यथा - किसी का नाम इन्द्र रख देना सो नाम इन्द्र, किसी वस्तु में इन्द्र की स्थापना कर देना सो स्थापना इन्द्र और जो जीव आगामी काल में इन्द्र होगा वह द्रव्येन्द्र। इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - ज्ञानेन्द्र-केवलज्ञानी, दर्शनेन्द्र-क्षायिक सम्यग्दर्शनी और चारित्रेन्द्र-यथाख्यात चारित्र वाला। और भी इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - देवेन्द्र यानी ज्योतिषी और वैमानिक देवों का इन्द्र, असुरेन्द्र यानी भवनपति और वाणव्यन्तरों का इन्द्र और मनुष्येन्द्र यानी चक्रवर्ती आदि।

विवेचन - संक्षिप्त में निक्षेप के चार भेद हैं यथा - नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। नाम की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने लिखा है -

यद वस्तुनोऽभिधानं स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम्।
पर्यायानभिधेयञ्च नाम यादृच्छिकं च तथा॥

अर्थ - अर्थ की अपेक्षा रखे बिना अपनी इच्छानुसार किसी भी वस्तु की कुछ संज्ञा रख देना नाम कहलाता है। किसी का नाम रखने पर उसका 'पर्यायवाची' शब्द उसके लिए प्रयुक्त नहीं होता है। जैसे किसी ग्वाले का नाम रख दिया इन्द्रचन्द। उसमें इन्द्र पणा नहीं है। किन्तु माता-पिता आदि की इच्छा अनुसार उसका नाम रख दिया है। इन्द्र का पर्यायवाची '**शक्र**' है किन्तु उसको शक्रचन्द

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं कह सकते। इसी प्रकार किसी बच्चे का नाम हस्तीमल रख दिया। उसको गजमल नाम से नहीं पुकारा जा सकता। तात्पर्य यह है कि अपनी इच्छानुसार रखी हुई संज्ञा को 'नाम' कहते हैं।

स्थापना के दो भेद हैं - १. सद्भाव स्थापना और २. असद्भाव स्थापना। जिसमें वस्तु का यथार्थ आकार हो उसको सद्भाव स्थापना कहते हैं। जैसे किसी कुम्हार ने मिट्टी का घोड़ा बनाया। घोड़े के आकार रूप चार पैर, कान, पूँछ आदि बनाई यह सद्भाव स्थापना है। और यों ही किसी लकड़ी के टुकड़े को घोड़ा कह देना असद्भाव स्थापना है अथवा जिसमें हाथी की आकृति हो वह सद्भाव स्थापना है। तथा शतरंज आदि में लकड़ी की गोटी को हाथी, घोड़ा आदि कहना। यह असद्भाव स्थापना है।

इन्द्र - **'इदि परमैश्वर्ये'** धातु से इन्द्र शब्द बना है। जिसका अर्थ है जो परम ऐश्वर्य सम्पन्न हो, उसे इन्द्र कहते हैं। उसके यहाँ तीन भेद किये हैं यथा - १. नाम इन्द्र २. स्थापना इन्द्र और ३. द्रव्य इन्द्र। नाम - संज्ञा मात्र से जो इन्द्र है वह नामेन्द्र अथवा जो सचेतन (जीव) अथवा अचेतन (अजीव) वस्तु का इन्द्र ऐसा अयथार्थ नाम दिया जाता है वह नामेन्द्र, नाम और नाम वाले के अभेद उपचार से नाम ऐसा जो इन्द्र है वह नामेन्द्र अथवा इन्द्र के अर्थ से शून्य होने से केवल नाम से जो इन्द्र है वह नामेन्द्र कहलाता है। इन्द्र आदि के अभिप्राय से किसी वस्तु में इन्द्र की स्थापना की जाती है, वह स्थापनेन्द्र है। द्रव्य **'द्रु गतौ'** इस धातु से द्रव्य शब्द बना है। **द्रवति-गच्छति तान्-तान् पर्यायान् इति द्रव्यम्**। जो उन उन पर्यायों को प्राप्त होता है अथवा उन-उन पर्यायों से प्राप्त होता है अथवा द्रो - सत्ता के अवयव के विकार अथवा वर्ण आदि गुणों के द्राव-समूह को द्रव्य कहते हैं। जो भूत पर्याय और भाविभाव पर्याय के योग्य होता है वह द्रव्य कहलाता है। घी का घड़ा खाली होने पर भी घी का घड़ा ही कहलाता है यह भूत पर्याय और जो राजकुमार भविष्य में राजा होने वाला है वह भावि पर्याय। उपयोग रहित और अप्रधान वह द्रव्य ऐसा इन्द्र वह द्रव्येन्द्र है। द्रव्येन्द्र दो प्रकार का है - आगम से और नो आगम से। आगम से द्रव्येन्द्र यानी आगम को स्वीकार कर ज्ञान की अपेक्षा अर्थ किया जाता है और नो आगम से इन्द्र शब्द का जानकार परन्तु उपयोग रहित वक्ता वह द्रव्येन्द्र है। आध्यात्मिक ऐश्वर्य की अपेक्षा से भावेन्द्र तीन प्रकार के कहे हैं - **१. ज्ञानेन्द्र** - केवलज्ञानी **२. दर्शनेन्द्र** - क्षायिक सम्यग्-दर्शन वाला और **३. चारित्रेन्द्र** - यथाख्यात चारित्र वाला। बाह्य ऐश्वर्य की अपेक्षा से भावेन्द्र तीन प्रकार के कहे हैं - **१. देवेन्द्र** - ज्योतिषी वैमानिक देवों का इन्द्र **२. असुरेन्द्र** - भवनपति वाणव्यंतर देवों का इन्द्र **३. मनुष्येन्द्र** - चक्रवर्ती आदि।

तिविहा विगुव्वणा पण्णत्ता तंजहा - बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विगुव्वणा, बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विगुव्वणा, बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता वि अपरियाइत्ता वि एगा विगुव्वणा। तिविहा विगुव्वणा पण्णत्ता तंजहा - अब्भंतरए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोग्गले परियाइत्ता एगा विगुव्वणा, अब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विगुव्वणा, अब्भंतरे पोग्गले परियाइत्ता वि अपरियाइत्ता वि एगा विगुव्वणा। तिविहा विगुव्वणा पण्णत्ता तंजहा - बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विगुव्वणा, बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विगुव्वणा, बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता वि अपरियाइत्ता वि एगा विगुव्वणा॥ ५६॥

कठिन शब्दार्थ - **विगुव्वणा** - विकुर्वणा, **बाहिरए** - बाह्य-बाहर के, **पोग्गले** - पुद्गलों को, **परियाइत्ता** - ग्रहण करके, **अपरियाइत्ता** - ग्रहण न करके, **अब्भंतरे** - आभ्यन्तर, **बाहिरब्भंतरए** - बाहरी और आभ्यंतर।

भावार्थ - विकुर्वणा तीन प्रकार की कही गई है यथा - भवधारणीय-मूल शरीर जितने क्षेत्र को अवगाहन कर रहा हुआ है उस क्षेत्र से बाहर के पुद्गलों को वैक्रिय समुद्घात द्वारा ग्रहण करके नवीन रूप बनाना यह एक विकुर्वणा है। २. बाहरी पुद्गलों को ग्रहण न करके सिर्फ भवधारणीय रूप रहना, यह एक ३. बाहरी पुद्गलों को ग्रहण करके और ग्रहण न करके भी यानी भवधारणीय शरीर में ही कुछ विशेषता करना यह एक विकुर्वणा है। विकुर्वणा तीन प्रकार की कही गई है यथा- १. आभ्यन्तर यानी भवधारणीय और औदारिक शरीर के अन्दर के पुद्गलों को ग्रहण करके वैक्रिय करना एक विकुर्वणा है। २. आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण न करके वैक्रिय करना एक विकुर्वणा है और ३. आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके और ग्रहण न करके भी वैक्रिय करना, यह एक विकुर्वणा है। अथवा दूसरे प्रकार से विकुर्वणा तीन प्रकार की कही गई है यथा - १. बाहरी और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के पुद्गलों को लेकर वैक्रिय करना यह एक विकुर्वणा है। २. बाहरी और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण न करके वैक्रिय करना यह एक विकुर्वणा है। ३. बाहरी और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके और ग्रहण न करके वैक्रिय करना यह एक विकुर्वणा है। तत्त्व केवलिगम्य है।

विवेचन - भवधारणीय (मूल शरीर) शरीर को अवगाह कर नहीं प्राप्त हुए (स्पर्श कर नहीं रहे हुए) बाहर के क्षेत्र प्रदेश में रहे हुए बाह्य पुद्गलों को वैक्रिय समुद्घात से ग्रहण कर जो विकुर्वणा की जाती है उसे उत्तर वैक्रिय रूप पहली विकुर्वणा कहते हैं। जो बाह्य पुद्गलों को ग्रहण नहीं करके विकुर्वणा की जाती है उसे भवधारणीय रूप दूसरी विकुर्वणा कहते हैं। बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके और नहीं ग्रहण करके जो भवधारणीय शरीर के लिए कुछ विशेष करने रूप विकुर्वणा की जाती है वह तीसरी विकुर्वणा है।

विकुर्वणा का एक अर्थ शोभा (विभूषा) करना भी होता है। जिसमें १. बाह्य पुद्गल-वस्त्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभरण आदि को ग्रहण कर शोभा करना। २. बाह्य पुद्गल ग्रहण किये बिना ही विभूषा करना जैसे कि - केश नख आदि को संवारना और ३. उभय से बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके और ग्रहण न करके शोभा करना अथवा ग्रहण नहीं करके कीडों या सर्प आदि का रक्तपना और फण आदि फैलाने रूप लक्षण वाली विकुर्वणा करना। इसी प्रकार दूसरा सूत्र जानना। विशेष यह है कि भवधारणीय - मूल शरीर से अथवा औदारिक शरीर से जो अवगाहित क्षेत्र के विषय में वर्तते हैं वे आभ्यंतर पुद्गल जानना। विभूषा पक्ष में थूंकना आदि आभ्यंतर पुद्गल जानना। बाह्य आभ्यंतर पुद्गलों के ग्रहण करने से भवधारणीय शरीर की रचना करना उसके बाद भवधारणीय शरीर का केश आदि का संवारना और नहीं ग्रहण करने से बहुत समय से विकुर्वणा किये हुए शरीर के ही मुख आदि की विकृति करने रूप, उभय से तो अनिष्ट बाह्य आभ्यंतर पुद्गलों को ग्रहण करने से इष्ट बाह्य-आभ्यंतर पुद्गलों का ग्रहण नहीं करने से भवधारणीय शरीर से भिन्न अनिष्ट रूप की रचना करना।

तिविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - कइसंचिया, अकइसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया। एवमेगिंदियवज्जा जाव वेमाणिया। तिविहा परियारणा पण्णत्ता तंजहा - एगे देवे अण्णे देवे अण्णेसिं देवाणं देवीओ य अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय विउव्विय परियारेइ। एगे देवे णो अण्णे देवा णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ य अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय विउव्विय परियारेइ। एगे देवे णो अण्णे देवा णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ य अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ, णो अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पाणं विउव्विय विउव्विय परियारेइ। तिविहे मेहुणे पण्णत्ते तंजहा - दिव्वे, माणुस्सए, तिरिक्खजोणीए। तओ मेहुणं गच्छंति तंजहा - देवा मणुस्सा तिरिक्खजोणीया तओ मेहुणं सेवंति तंजहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा॥ ५७॥

कठिन शब्दार्थ - कइसंचिया - कति संचित, **अकइसंचिया** - अकति संचित, **अवत्तव्वगसंचिया** - अवक्तव्य संचित, **अभिजुंजिय** - वश में करके, **परियारेइ** - मैथुन सेवन करते हैं, **विउव्विय** - वैक्रिय रूप बना कर के।

भावार्थ - नैरयिक तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - कति सञ्चित अर्थात् एक एक समय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्यात उत्पन्न होते हैं। अकतिसञ्चित अर्थात् एक एक समय में असंख्यात अनन्त उत्पन्न होते हैं, और अवक्तव्यसञ्चित अर्थात् जिनका परिमाण कति और अकति द्वारा नहीं कहा जा सकता है। एकेन्द्रियों को छोड़ कर यावत् वैमानिक देवों तक १९ दण्डक में इसी प्रकार कह देना चाहिए, क्योंकि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय इन चार में तो समय समय पर असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं और वनस्पतिकाय में अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं।

परिचारणा यानी देवों का मैथुन तीन प्रकार का कहा गया है यथा - कोई कोई देव अपने से कम ऋद्धि वाले दूसरे देवों को और दूसरे देवों की देवियों को अपने वश में करके उन देवियों के साथ मैथुन सेवन करते हैं तथा कोई कोई देव अपनी देवियों को ही वश में करके उनके साथ मैथुन सेवन करते हैं और कोई कोई देव स्वयं अपने शरीर को ही परिचारणा के योग्य देवी का रूप बना कर उसके साथ मैथुन सेवन करते हैं। २. कोई कोई देव न तो अपने से कम ऋद्धि वाले दूसरे देवों को और न दूसरे देवों की देवियों को वश करके उनके साथ मैथुन सेवन करते हैं किन्तु अपनी देवियों को वश करके उनके साथ मैथुन सेवन करते हैं और स्वयं अपने शरीर को ही परिचारणा के योग्य देवी का रूप बना कर उसके साथ मैथुन सेवन करते हैं। ३. कोई कोई देव न तो अपने से कम ऋद्धि वाले दूसरे देवों को और न दूसरे देवों की देवियों को वश करके उनके साथ मैथुन सेवन करते हैं और न अपनी देवियों को वश करके उनके साथ मैथुन सेवन करते हैं किन्तु स्वयं अपने शरीर को ही परिचारणा के योग्य देवी का रूप बना कर उसके साथ मैथुन सेवन करते हैं। तीन प्रकार का मैथुन कहा गया है यथा - देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यञ्च सम्बन्धी। तीन मैथुन सेवन करते हैं यथा - देव, मनुष्य और तिर्यञ्च योनि के जीव। तीन मैथुन सेवन करते हैं यथा - स्त्री, पुरुष और नपुंसक।

विवेचन - कति अर्थात् कितनी संख्या वाला - संख्यात। संचित यानी - एकत्रित किये हुए। कतिसंचित यानी उत्पत्ति की समानता से बुद्धि से एकत्रित किये हुए। अकति - यानी न कति अर्थात् संख्यात नहीं-असंख्यात अथवा अनंत। अवक्तव्य अर्थात् जो कति-संख्यात और अकति- असंख्यात या अनंत इस प्रकार निर्णय करने में शक्य नहीं, वह अवक्तव्य है। नैरयिक तीन प्रकार के कहे हैं - कति संचित, अकति संचित और अवक्तव्य संचित। नैरयिक एक समय में एक दो आदि संख्यात असंख्यात उत्पन्न होते हैं। नैरयिक की तरह भवनपति देवों आदि के विषय में भी समझना चाहिए। क्योंकि दोनों की संख्या समान है। एकेन्द्रिय को छोड़ कर शेष दंडकों के विषय में इसी तरह समझना चाहिए। एकेन्द्रिय में प्रति समय अकतिसंचित-असंख्यात अथवा अनंत ही उत्पन्न होते हैं एक अथवा संख्यात उत्पन्न नहीं होते हैं।

मिथुनं - स्त्री पुरुष युगल, दोनों का सम्मिलित चौथा पाप मैथुन कहलाता है। नैरयिकों में द्रव्य से मैथुन संभव नहीं होने से तीन प्रकार का मैथुन कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिविहे जोगे पण्णत्ते तंजहा - मणजोगे वयजोगे कायजोगे, एवं णेरइयाणं विगलिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं। तिविहे पओगे पण्णत्ते तंजहा -मणपओगे वयपओगे कायपओगे, जहा जोगो विगलिंदिय वज्जाणं तहा पओगो वि। तिविहे करणे पण्णत्ते तंजहा - मणकरणे वयकरणे कायकरणे, एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं। तिविहे करणे पण्णत्ते तंजहा - आरंभकरणे संरंभकरणे समारंभकरणे, णिरंतरं जाव वेमाणियाणं॥ ५८॥

कठिन शब्दार्थ - **जोगे** - योग, **विगलिंदियवज्जाणं** - विकलेन्द्रिय को छोड़ कर, **पओगे** - प्रयोग, **मणपओगे** - मन प्रयोग, **वयपओगे** - वचन प्रयोग, **कायपओगे** - काय प्रयोग, **करणे** - करण, **आरंभकरणे** - आरंभ करण, **संरंभ करणे** - संरम्भ करण, **समारंभकरणे** - समारंभ करण।

भावार्थ - तीन प्रकार का योग कहा गया है यथा - मनोयोग, वचनयोग और काययोग। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियों को छोड़ कर नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिक देवों तक सभी दण्डकों में इसी प्रकार तीनों योग पाये जाते हैं। तीन प्रकार का प्रयोग कहा गया है यथा- मनप्रयोग, वचनप्रयोग और कायप्रयोग। जिस प्रकार योग का कथन किया उसी प्रकार एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियों को छोड़ कर प्रयोग भी सब दण्डकों में पाया जाता है। तीन प्रकार का करण कहा गया है यथा - मन करण, वचन करण और काय करण। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों को छोड़ कर यावत् वैमानिकों तक सभी दण्डकों में इसी प्रकार कहना चाहिए। तीन प्रकार का करण कहा गया है यथा - पृथ्वीकाय आदि छह काय जीवों को मारना सो आरम्भ करण, इन जीवों को मारने का संकल्प करना सो संरम्भकरण और इन जीवों को परिताप उपजाना सो समारम्भकरण है। ये तीनों करण निरन्तर यावत् वैमानिक देवों तक सभी दण्डकों में पाये जाते हैं।

विवेचन - वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम या क्षय होने पर मन, वचन, काया के निमित्त से आत्म प्रदेशों के चंचल होने को 'योग' कहते हैं। अथवा वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से उत्पन्न शक्ति विशेष से होने वाले साभिप्राय आत्मा के पराक्रम को 'योग' कहते हैं। योग के तीन भेद हैं - १. मनोयोग २. वचन योग ३. काय योग।

१. मनोयोग - नो इन्द्रिय मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम स्वरूप आन्तरिक मनोलब्धि होने पर मनोवर्गणा के आलम्बन से मन के परिणाम की ओर झुके हुए आत्मप्रदेशों का जो व्यापार होता है, उसे मनोयोग कहते हैं।

२. वचन योग - मति ज्ञानावरण, अक्षर श्रुत ज्ञानावरण आदि कर्म के क्षयोपशम से आन्तरिक वचन (वाग्) लब्धि उत्पन्न होने पर वचन वर्गणा के आलम्बन से भाषा परिणाम की ओर अभिमुख आत्मप्रदेशों का जो व्यापार होता है, उसे वचन योग कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. काययोग - औदारिक आदि शरीर वर्गणा के पुद्गलों के आलंबन से होने वाले आत्म प्रदेशों के व्यापार को काय योग कहते हैं। आत्मा के परिणाम विशेष को करण कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा किया जाय वह 'करण' कहलाता है। करण के तीन भेद हैं - १. आरम्भ २. संरम्भ और ३. समारम्भ।

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ इन तीन शब्दों का अर्थ बतलाने वाली गाथा इस प्रकार है -

संकप्पो संरंभो, परितावकरो भवे समारंभो।
आरंभो उद्दवओ, सव्वणयाणं विसुद्धाणं॥

अर्थ - १. संरम्भ - पृथ्वीकाय आदि जीवों की हिंसा विषयक मन में संक्लिष्ट परिणामों का लाना संरम्भ कहलाता है।

२. समारम्भ - पृथ्वीकाय आदि जीवों को सन्ताप देना समारम्भ कहलाता है।

३. आरम्भ - पृथ्वीकाय आदि जीवों की हिंसा करना 'आरम्भ' कहलाता है।

मूल पाठ में **'विगलिंदियवज्जाणं'** शब्द दिया है। इसका अर्थ समझने की आवश्यकता है। वह इस प्रकार है। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन ये पाँच इन्द्रियाँ कही गई है। सम्पूर्ण को **'सकल'** कहते हैं। 'कम' (न्यून) को **'विकल'** कहते हैं। जिसके पाँचों इन्द्रियाँ परिपूर्ण हो उसे पंचेन्द्रिय (सकलेन्द्रिय) कहते हैं। पाँच इन्द्रियों से जिसके कम हो उसे **'विकलेन्द्रिय'** कहते हैं। इस अपेक्षा से एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय इन चार को विकलेन्द्रिय कहते हैं। यहाँ पर इन चारों के लिए विकलेन्द्रिय शब्द का प्रयोग हुआ है। शास्त्रकार की विवक्षा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इसलिए कहीं पर एकेन्द्रिय शब्द का प्रयोग अलग हुआ है, वहाँ पर सिर्फ पृथ्वीकाय आदि पाँच एकेन्द्रियों का ही ग्रहण हुआ है। आगे विकलेन्द्रिय शब्द से बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय इन तीन का ही ग्रहण हुआ है। एकेन्द्रियों में गति, स्थिति, अवगाहना आदि कुछ बातों की परस्पर भिन्नता होने के कारण शास्त्रकार ने उनको अलग ले लिया है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय में विशेष भिन्नता न होने के कारण इन तीनों को एक विकलेन्द्रिय शब्द से ग्रहण कर लिया गया है।

तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - पाणे अइवाइत्ता भवइ, मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण पाण खाइम साइमेणं पडिलाभित्ता भवइ, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति। तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा- णो पाणे अइवइत्ता भवइ, णो मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुयएसणिज्जेणं असण पाण खाइम साइमेणं पडिलाभित्ता भवइ, इच्चेएहिं तिहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति। तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - पाणे अइवाइत्ता भवइ, मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता णिंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमाणित्ता अण्णयरेणं अमणुण्णेणं अपीइकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति। तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - णो पाणे अइवइत्ता भवइ, णो मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता णमंसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासित्ता मणुण्णेणं पीइकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति॥ ५९॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पाउयत्ताए - अल्प आयुष्य रूप से, **पगरेंति** - बांधते हैं, **अइवाइत्ता भवइ** - विनाश करता है, **मुसं** - मृषा-झूठ, **तहारूवं** - तथारूप के, **अफासुएणं** - अप्रासुक, **अणेसणिज्जेणं** - अनेषणीय, **असणं** - अशन, **पाण** - पान, **खाइम** - खादिम, **साइमेणं** - स्वादिम, **पडिलाभित्ता** - प्रतिलाभित करके, **इच्चेएहिं** - इन, **दीहाउयत्ताए**-दीर्घ आयुष्य रूप, **फासुय**-प्रासुक, **एसणिज्जेणं** - एषणीय, **हीलित्ता** - हीलना करके, **णिंदित्ता** - निन्दा करके, **खिंसित्ता** - खिंसना करके, **गरहित्ता** - गर्हा करके, **अवमाणित्ता** - अपमान करके, **अपीइकारएणं** - अप्रीतिकारक।

भावार्थ - तीन स्थानों से यानी कारणों से जीव अल्प आयुष्य रूप से कर्म बांधते हैं। यथा - जो प्राणियों का विनाश करता है। जो झूठ बोलता है और जो तथारूप अर्थात् साधु के गुणों से युक्त श्रमण माहण को यानी साधु महात्मा को अप्रासुक और अनेषणीय अशन पानी खादिम स्वादिम से प्रतिलाभित करता है अर्थात् देता है। इन तीन कारणों से यानी उपरोक्त तीन कारणों को करने वाले जीव अल्प आयुष्य बांधते हैं। तीन कारणों से जीव दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधते हैं। यथा - जो प्राणियों का विनाश नहीं करता है, जो झूठ नहीं बोलता है और जो तथा रूप यानी साधु के गुणों से युक्त श्रमण माहण यानी साधु महात्मा को प्रासुक और एषणीय अशन पानी खादिम स्वादिम बहराता है यानी देता है। इन तीन कारणों से जीव दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधते हैं। तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधते हैं। यथा - जो प्राणियों का विनाश करता है, जो झूठ बोलता है और जो तथारूप के श्रमण माहन की हीलना करके, निन्दा करके, खिंसना करके, यानी जनता के सामने उन्हें चिढा कर, गर्हा करके, अपमान करके, अमनोज्ञ और अप्रीति कारक कुछ अशन पानी खादिम स्वादिम से प्रतिलाभित करता है। इन तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधते हैं। तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधते हैं। यथा - जो प्राणियों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विनाश नहीं करता है। जो झूठ नहीं बोलता है, जो तथारूप यानी साधु के गुणों से युक्त श्रमण माहन यानी साधु महात्मा को वन्दना करके, नमस्कार करके, सत्कार करके, सन्मान करके, कल्याणकारी मङ्गलकारी धर्म देव रूप और ज्ञानवान् ऐसे शब्द कह कर विनय पूर्वक सेवा करके, मनोज्ञ प्रीतिकारक अशन पानी खादिम स्वादिम से प्रतिलाभित करता है। इन तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधते हैं।

विवेचन - तीन कारणों से जीव अल्पायु फल वाले कर्म बांधता है - १. प्राणियों की हिंसा करने वाला २. झूठ बोलने वाला ३. तथारूप (साधु के अनुरूप क्रिया और वेश आदि से युक्त दान के पात्र) श्रमण, माहण (श्रावक) को अप्रासुक, अकल्पनीय, अशन, पान, खादिम स्वादिम देने वाला जीव अल्पायु फल वाला कर्म बांधता है। इससे विपरीत तीन कारणों से जीव दीर्घ आयुष्य रूप कर्म बांधता है - १. प्राणियों की हिंसा नहीं करने वाला २. झूठ नहीं बोलने वाला ३. तथारूप के श्रमण माहण को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम स्वादिम बहराने वाला जीव दीर्घ आयु फल वाला कर्म बांधता है।

तीन स्थानों से जीव अशुभ दीर्घायु बांधता है - १. प्राणियों की हिंसा करने वाला २. झूठ बोलने वाला ३. तथारूप श्रमण माहण की जाति को प्रकट करके अवहेलना करने वाला, मन में निन्दा करने वाला, लोगों के सामने निन्दा करने वाला, अपमान करने वाला तथा अप्रीति पूर्वक अमनोज्ञ अशनादि बहराने वाला जीव अशुभ दीर्घायु फल वाला कर्म बांधता है।

तीन स्थानों से जीव शुभ दीर्घायु बांधता है - १. प्राणियों की हिंसा न करने वाला २. झूठ न बोलने वाला ३. तथारूप श्रमण माहण को वन्दना नमस्कार यावत् उनकी उपासना करके उन्हें किसी प्रकार के मनोज्ञ एवं प्रीतिकारक अशनादिक का प्रतिलाभ देने वाला अर्थात् बहराने वाला जीव शुभ दीर्घायु बांधता है।

तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती। संजयमणुस्साणं तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती। तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - मणअगुत्ती वयअगुत्ती कायअगुत्ती। एवं णेरइयाणं जाव थणियकुमाराणं। पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं असंजयमणुस्साणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं। तओ दंडा पण्णत्ता तंजहा-मणदंडे वयदंडे कायदंडे। णेरइयाणं तओ दंडा पण्णत्ता तंजहा - मणदंडे वयदंडे कायदंडे, विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं॥ ६०॥

कठिन शब्दार्थ - **गुत्तीओ** - गुप्तियाँ, **अगुत्तीओ** - अगुप्तियाँ, **संजयमणुस्साणं** - संयत मनुष्य के, **असंजयमणुस्साणं** - असंयत मनुष्य के, **दण्डा** - दण्ड।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ – तीन गुप्तियाँ कही गई हैं। यथा – मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति। संयत मनुष्य यानी साधुओं के तीन गुप्तियाँ कही गई हैं। यथा-- मनो गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति। तीन अगुप्तियाँ कही गई है। यथा- मन अगुप्ति, वचन अगुप्ति और काय अगुप्ति। ये तीनों अगुप्तियाँ नैरयिकों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक सब भवनपति देवों में पाई जाती हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों में असंयत मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में तीन अगुप्तियाँ पाई जाती हैं। तीन दंड कहे गये हैं। यथा – मन दण्ड, वचन दण्ड और काय दण्ड। नैरयिकों के तीन दण्ड कहे गये हैं। यथा – मन दण्ड, वचन दण्ड और काय दण्ड। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों को छोड़ कर यावत् वैमानिक देवों तक सभी दण्डकों में ये तीनों दण्ड पाये जाते हैं।

विवेचन - **गुप्ति** – अशुभ योग से निवृत्त हो कर शुभ योग में प्रवृत्ति करना गुप्ति है। अथवा मोक्षाभिलाषी आत्मा का आत्म-रक्षा के लिए अशुभ योगों का रोकना गुप्ति है। अथवा आने वाले कर्म रूपी कचरे को रोकना गुप्ति है। गुप्ति के तीन भेद हैं – १. मनोगुप्ति २. वचन गुप्ति और ३. काय गुप्ति।

१. मनोगुप्ति – आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, संरम्भ, सभारंभ और आरम्भ सम्बन्धी संकल्प विकल्प न करना, परलोक में हितकारी धर्मध्यान सम्बन्धी चिन्तन करना, मध्यस्थ भाव रखना, शुभ अशुभ योगों को रोक कर योग निरोध अवस्था में होने वाली अन्तरात्मा की अवस्था को प्राप्त करना मनोगुप्ति है।

२. वचन गुप्ति – वचन के अशुभ व्यापार अर्थात् संरम्भ समारम्भ और आरंभ सम्बन्धी वचन का त्याग करना, विकथा न करना, मौन रहना वचन गुप्ति है।

३. काय गुप्ति - खड़ा होना, बैठना, उठना, सोना, लांघना, सीधा चलना, इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में लगाना, संरम्भ, समारम्भ आरम्भ में प्रवृत्ति करना, इत्यादि कायिक व्यापारों में प्रवृत्ति न करना अर्थात् इन व्यापारों से निवृत्त होना कायगुप्ति है। अयतना का परिहार कर यतना पूर्वक काया से व्यापार करना एवं अशुभ व्यापारों का त्याग करना काय गुप्ति है।

गुप्ति से विपरीत अगुप्ति भी तीन प्रकार की कही है। सामान्य सूत्र की तरह नैरयिक आदि की तरह तीन अगुप्तियाँ कही गई है इतनी विशेषता है कि यहाँ एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय नहीं कहे गये हैं। क्योंकि एकेन्द्रिय में यथायोग्य वाणी और मन का अभाव होता है तथा संयत मनुष्यों का भी निषेध किया है क्योंकि उनमें गुप्ति का प्रतिपादन किया है। अगुप्ति स्वयं के लिए और दूसरों के लिए दण्ड रूप होती है। अत: आगे के सूत्र में दण्ड का निरूपण किया गया है।

दण्ड – जो चारित्र रूपी आध्यात्मिक ऐश्वर्य का अपहरण कर आत्मा को असार कर देता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह 'दण्ड' है। अथवा प्राणियों को जिससे दुःख पहुँचता है उसे 'दण्ड' कहते हैं। अथवा मन, वचन काया की अशुभ प्रवृत्ति को 'दण्ड' कहते हैं। दण्ड के तीन भेद हैं - १. मन दण्ड २. वचन दण्ड और ३. काया दण्ड।

तिविहा गरहा पण्णत्ता तंजहा - मणसा वेगे गरहइ, वयसा वेगे गरहइ, कायसा वेगे गरहइ पावाणं कम्माणं अकरणयाए। अहवा गरहा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - दीहं वेगे अद्धं गरहइ, रहस्सं वेगे अद्धं गरहइ, कायं वेगे पडिसाहरइ पावाणं कम्माणं अकरणयाए। तिविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते तंजहा - मणसा वेगे पच्चक्खाइ, वयसा वेगे पच्चक्खाइ, कायसा वेगे पच्चक्खाइ। एवं जहा गरहा तहा पच्चक्खाणे वि दो आलावगा भाणियव्वा॥ ६१ ॥

कठिन शब्दार्थ - गरहा - गर्हा, **गरहइ** - गर्हा करता है, **पावाणं कम्माणं** - पाप कर्मों का, **अकरणयाए** - न करने की, **पडिसाहरइ** - हटा लेता है, **पच्चक्खाइ** - प्रत्याख्यान करता है।

भावार्थ - पाप कर्म खराब है ऐसा जान कर पाप कर्मों को न करना सो गर्हा कहलाती है। वह गर्हा तीन प्रकार की कही गई है। यथा - वे कितनेक पुरुष मन से पापकर्म की निन्दा करते हैं, कितनेक पुरुष वचन से पाप की निन्दा करते हैं और कितनेक काया से निन्दा करते हैं अर्थात् पाप कर्म न करने की प्रतिज्ञा करते हैं अथवा दूसरी प्रकार से भी गर्हा तीन प्रकार की कही गई है। यथा- कोई जीव बहुत काल तक पापों की निन्दा करता है, कोई जीव थोड़े काल तक पापों की निन्दा करता है और कोई पाप कर्मों को न करने के लिए अपनी काया को पाप कर्मों से हटा लेता है। प्रत्याख्यान तीन प्रकार का कहा गया है यथा - कोई मन से पाप का प्रत्याख्यान करता है, कोई वचन से प्रत्याख्यान करता है और कोई काया से प्रत्याख्यान करता है। इस प्रकार जैसे गर्हा के विषय में कहा है उसी प्रकार प्रत्याख्यान के विषय में भी दो आलापक कह देना चाहिए अर्थात् कोई दीर्घ काल के लिए प्रत्याख्यान करता है, कोई अल्प काल के लिए प्रत्याख्यान करता है और कोई सदा के लिए पाप कर्मों से अपनी आत्मा को हटा लेता है।

विवेचन - स्वयं की आत्मा संबंधी अथवा दूसरों की आत्मा संबंधी दण्ड के प्रति जुगुप्सा करना गर्हा है। पाप की जुगुप्सा - निंदा यानी विशुद्ध चित्त से निरंतर पाप का खेद करना, पाप नहीं करना और पाप की विचारणा भी नहीं करनी। भूतकाल विषयक दण्ड के प्रति गर्हा होती है जब कि भविष्यकाल के दण्ड का प्रत्याख्यान होता है। किये हुए पाप कर्मों को आत्मसाक्षी से बुरा समझना निंदा कहलाता है। और उन्हीं पाप कर्मों को गुरु महाराज के सामने अथवा अपने से बड़े रत्नाधिकों के सामने प्रकट करना गर्हा कहलाता है। निष्कर्ष यह है कि आत्मसाक्षी से निन्दा और गुरु साक्षी से गर्हा कहलाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ रुक्खा पण्णत्ता तंजहा - पत्तोवए फलोवए पुप्फोवए। एवामेव तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पत्तोवा रुक्खसमाणा पुप्फोवा रुक्खसमाणा फलोवा रुक्खसमाणा। तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- णामपुरिसे, ठवणापुरिसे दव्वपुरिसे। तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा-णाणपुरिसे दंसणपुरिसे चरित्तपुरिसे। तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - वेयपुरिसे चिंधपुरिसे अहिलावपुरिसे। तिविहा पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा-उत्तम पुरिसा मज्झिमपुरिसा जहण्णपुरिसा। उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता तंजहा- धम्म पुरिसा भोग पुरिसा कम्म पुरिसा। धम्मपुरिसा अरिहंता, भोगपुरिसा चक्कवट्टी, कम्मपुरिसा वासुदेवा। मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता तंजहा- उग्गा भोगा रायण्णा। जहण्ण पुरिसा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - दासा, भयगा, भाइल्लगा॥ ६२॥

कठिन शब्दार्थ - रुक्खा - वृक्ष, **पत्तोवए** - पत्तों वाला, **फलोवए** - फलों वाला, **पुप्फोवए**- फूलों वाला, **पुरिसजाया** - पुरुषों का समूह, **पत्तोवा रुक्खसमाणा** - पत्तों वाले वृक्ष के समान, **पुप्फोवा रुक्खसमाणा** - फूलों वाले वृक्ष के समान, **फलोवा रुक्खसमाणा** - फलों वाले वृक्ष के समान, **वेयपुरिसे** - वेद पुरुष, **चिंधपुरिसे** - चिह्न पुरुष, **अहिलावपुरिसे** - अभिलाप पुरुष, **धम्मपुरिसा**- धर्मपुरुष, **भोगपुरिसा** - भोग पुरुष, **कम्मपुरिसा** - कर्म पुरुष, **उग्गा** - उग्र, **रायण्णा** - राजन्य, **भयगा**- भृतक, **भाइल्लगा** - भागीदार।

भावार्थ - तीन प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं। यथा - पत्तों वाला, फलों वाला, फूलों वाला इसी प्रकार तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - पत्तों वाले वृक्ष के समान लोकोत्तर पुरुष जो सूत्र देते हैं। फूलों वाले वृक्ष के समान लोकोत्तर पुरुष जो अर्थ देते हैं और फलों वाले वृक्ष के समान लोकोत्तर पुरुष जो सूत्र और अर्थ दोनों देते हैं। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - नाम पुरुष, स्थापना पुरुष और द्रव्यपुरुष। जो पुरुष रूप से उत्पन्न होगा। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा- ज्ञान पुरुष, दर्शन पुरुष और चारित्रपुरुष। ये तीन भाव पुरुष हैं। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - वेदपुरुष, जो पुरुष वेद का अनुभव करता है। चिह्न पुरुष यानी दाढी मूंछ आदि को धारण करने वाला, अभिलाप पुरुष यानी जो शब्द व्याकरण की दृष्टि से पुल्लिङ्ग हो, यथा - घड़ा, आम आदि । तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष। उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - धर्मपुरुष यानी क्षायिक चारित्र आदि को उपार्जन करने वाले, भोग पुरुष यानी मनोहर शब्द आदि विषय भोगों में आसक्त रहने वाले और कर्मपुरुष यानी महारम्भ करके नरक का आयुष्य बांधने वाले। धर्म पुरुष अरिहन्त हैं। भोग पुरुष चक्रवर्ती और कर्म पुरुष वासुदेव होते हैं। मध्यम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - उग्र अर्थात् भगवान् ऋषभदेव के

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

समय में जो रक्षा करने वाले पुरुष थे वे जो गुरुस्थानीय पुरुष थे वे भोगकुल वाले और क्षत्रिय वंश में स्थापित किये हुए पुरुष राजन्य पुरुष कहलाते हैं। जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा- दासी के पुत्र को दास, भृतक यानी पैसे लेकर काम करने वाले और भागीदार यानी सम्पत्ति का हिस्सा बंटाने वाले पुरुष। ये जघन्य पुरुष के तीन भेद हैं।

विवेचन - नाम मात्र से जो पुरुष है वह नाम पुरुष, पुरुष की प्रतिमा आदि स्थापना पुरुष और पुरुष रूप में भविष्य में उत्पन्न होगा अथवा भूतकाल में जो उत्पन्न हुआ है वह द्रव्य पुरुष कहलाता है। जिसमें ज्ञान लक्षण रूप भाव प्रधान है वह ज्ञान पुरुष, समकित की प्रधानता वाला दर्शन पुरुष और चारित्र की प्रधानता वाला चारित्र पुरुष कहलाता है। क्षायिक चारित्र आदि धर्म को उत्पन्न करने में तत्पर पुरुष धर्म पुरुष कहलाता है। कहा है - **'धम्मपुरिसो तयज्जण - वावारपरो जह सुसाहू'** धर्म उत्पन्न करने में जो तत्पर हो वह धर्म पुरुष कहलाता है जैसे साधु। मनोज्ञ शब्दादि विषय भोग है और जो पुरुष भोग में तत्पर है वह भोग पुरुष कहलाता है कहा है - **'भोगपुरिसो समज्जिय विसयसुहो चक्कवट्टिव्व'** - अच्छी तरह से प्राप्त हैं विषय सुख जिन्हें ऐसे चक्रवर्ती के समान भोगपुरुष जानना। महारंभ आदि करके नरकायुष्य बांधने वाले पुरुष कर्मपुरुष कहलाते हैं। भगवान् ऋषभदेव के राज्यकाल में जो आरक्षक कोतवाल थे वे उग्रपुरुष, जो गुरु स्थानीय (माननीय पद पर) थे वे भोगपुरुष और राज्य काल में जो मित्र थे वे राजन्य पुरुष कहलाते थे। उनके वंशज उग्रकुल वाले, भोगकुल वाले और राजन्य कुल वाले कहलाते हैं।

तिविहा मच्छा पण्णत्ता तंजहा - अंडया पोयया सम्मुच्छिमा। अंडया मच्छा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। पोयया मच्छा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। तिविहा पक्खी पण्णत्ता तंजहा - अंडया पोयया सम्मुच्छिमा। अंडया पक्खी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा। पोयया पक्खी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा। एवं एएणं अहिलावेणं उरपरिसप्पा वि भाणियव्वा। भुजपरिसप्पा वि भाणियव्वा। एवं चेव तिविहा इत्थीओ पण्णत्ताओ तंजहा - तिरिक्खजोणित्थिओ मणुस्सित्थीओ देवित्थीओ। तिरिक्खजोणीओ इत्थिओ तिविहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - जलयरीओ थलयरीओ खहयरीओ। मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ तंजहा-कम्मभूमियाओ अकम्मभूमियाओ अंतरदीवियाओ। तिविहा पुरिसा पण्णत्ता तंजहा- तिरिक्खजोणियपुरिसा मणुस्सपुरिसा देवपुरिसा। तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता तंजहा - जलयरा थलयरा खेयरा (खहयरा)। मणुस्सपुरिसा तिविहा पण्णत्ता तंजहा- कम्मभूमिया अकम्मभूमिया अंतरदीविया। तिविहा णपुंसगा पण्णत्ता तंजहा- णेरइय णपुंसगा तिरिक्खजोणिय णपुंसगा मणुस्स णपुंसगा। तिरिक्खजोणिय णपुंसगा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - जलयरा थलयरा खहयरा। मणुस्स णपुंसगा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - कम्मभूमिया अकम्मभूमिया अंतरदीविया। तिविहा तिरिक्खजोणिया पण्णत्ता तंजहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा॥ ६३॥

कठिन शब्दार्थ - **मच्छा** - मच्छ, **अंडया** - अण्डज, **पोयया** - पोतज, **सम्मुच्छिमा** - सम्मूर्च्छिम, **इत्थी** - स्त्री, **पुरिसा** - पुरुष, **णपुंसगा** - नपुंसक, **पक्खी** - पक्षी **उरपरिसप्पा** - उरपरिसर्प, **भुयपरिसप्पा** - भुज परिसर्प, **जलयरीओ** - जलचरी, **थलचरीओ** - स्थलचरी, **खहयरीओ**- खेचरी, **कम्मभूमिया** - कर्मभूमिज, **अकम्मभूमिया** - अकर्म भूमिज, **अंतरदीविया** - अन्तर्द्वीपिक ।

भावार्थ - जल में रहने वाला मच्छ तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - अण्डज यानी अण्डे से उत्पन्न होने वाले, पोतज यानी थैली से उत्पन्न होने वाले और सम्मूर्च्छिम यानी बिना माता पिता के पैदा होने वाले। अण्डज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। पोतज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - अण्डज हंस आदि, पोतज चिमगादड़ आदि और सम्मूर्च्छिम खञ्जन आदि। अण्डज पक्षी तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। पोतज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। इसी प्रकार इस अभिलापक के अनुसार उरपरिसर्प यानी छाती के बल रेंगने वाले सर्प आदि के भी स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन भेद कह देने चाहिए। इसी प्रकार के भुजपरिसर्प यानी भुजा के बल रेंगने वाले चूहा, नौलिया आदि के भी स्त्री, पुरुष, नपुंसक ये तीन भेद कह देने चाहिए। इसी प्रकार तीन प्रकार की स्त्रियाँ कही गई हैं। यथा - तिर्यञ्च योनि की स्त्रियाँ, मनुष्यगति की स्त्रियाँ और देवयोनि की स्त्रियाँ। तिर्यञ्च योनि की स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई हैं। यथा - जलचरी, स्थलचरी और खेचरी। मनुष्य गति की स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई हैं। यथा - कर्म भूमि के मनुष्यों की स्त्रियाँ, अकर्म भूमि के मनुष्यों की स्त्रियाँ और अन्तरद्वीप के मनुष्यों की स्त्रियाँ। पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - तिर्यञ्च योनि के पुरुष, मनुष्य गति के पुरुष और देवगति के पुरुष। तिर्यञ्च योनि के पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - जलचर, स्थलचर और खेचर। मनुष्यगति के पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - भरतक्षेत्र आदि पन्द्रह कर्म भूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य, देवकुरु आदि तीस अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य और छप्पन अन्तरद्वीपों में उत्पन्न हुए मनुष्य। नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिक नपुंसक, तिर्यञ्च योनि के नपुंसक और मनुष्य गति के नपुंसक। तिर्यञ्च योनि के जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा – स्त्री, पुरुष और नपुंसक।

विवेचन – अण्डे से उत्पन्न होने वाले जीव 'अंडज' कहलाते हैं। **पोतज** – जो जरायु वर्जित होने से वस्त्र की थैली सहित उत्पन्न होते हैं वे 'पोतज' कहलाते हैं और जो गर्भ रहित उत्पन्न होते हैं वे 'सम्मूर्च्छिम' कहलाते हैं।

उरपरिसर्प – उरस अर्थात् छाती के बल से चलने वाले 'उरपरिसर्प' कहलाते हैं जैसे सर्प आदि। और जो दोनों बाहु (भुजा) के बल से चलने वाले हैं वे 'भुजपरिसर्प' कहलाते हैं जैसे चूहा, नौलिया (नेवला) आदि।

मनुष्य गति के पुरुष तीन प्रकार के कहे हैं – १. कर्म भूमिज २. अकर्म भूमिज और ३. अन्तरद्वीपिक।

१. कर्म भूमिज – कृषि (खेती) वाणिज्य, तप, संयम, अनुष्ठान आदि कर्म प्रधान भूमि को कर्म भूमि कहते हैं। पांच भरत, पांच ऐरावत, पांच महाविदेह क्षेत्र ये १५ क्षेत्र कर्मभूमि हैं। कर्म भूमि में उत्पन्न मनुष्य कर्म भूमिज कहलाते हैं। ये असि (तलवार आदि शस्त्र) मसि (स्याही आदि से लेखन आदि कार्य) और कृषि (खेती) इन तीन कर्मों द्वारा निर्वाह करते हैं

२. अकर्म भूमिज – कृषि (खेती) वाणिज्य, तप, संयम अनुष्ठान आदि कर्म (कार्य) जहां नहीं होते हैं उसे अकर्म भूमि कहते हैं। पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु, ये तीस क्षेत्र अकर्म भूमि हैं। इन क्षेत्रों में उत्पन्न मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं। यहाँ असि, मसि और कृषि का व्यापार नहीं होता। दस प्रकार के वृक्षों से अकर्म भूमिज मनुष्य अपना जीवन निर्वाह करते हैं। कर्म न करने से एवं वृक्षों से निर्वाह करने से इन क्षेत्रों को अकर्म भूमि (भोग भूमि) और यहाँ के मनुष्यों को अकर्मभूमिज (भोग भूमिज) कहते हैं। यहाँ स्त्री पुरुष जोड़े (युगल) से जन्म लेते हैं जिन्हें युगलिया (युगलिक) कहते हैं।

३. अन्तर द्वीपिक – लवण समुद्र के बीच में होने से अथवा परस्पर द्वीप में अन्तर होने से इन्हें अन्तरद्वीप कहते हैं। अन्तद्वीपों में रहने वाले मनुष्य अन्तर द्वीपिक कहलाते हैं। अकर्म भूमि की तरह इन अन्तरद्वीपों में भी कृषि, वाणिज्य आदि किसी तरह के कर्म (कार्य) नहीं होते। ये भी दस वृक्षों से अपना निर्वाह करते है। यहाँ भी स्त्री पुरुष जोडे से उत्पन्न होते हैं।

सम्मूर्च्छिम नपुंसक ही होते हैं। इसलिए सूत्र में इनके स्त्री आदि तीन भेद नहीं बतलाये गये हैं। इसी ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में '**मतंगा, भृतांगा**' आदि के लिए '**दसविहा रुक्खा**' शब्द दिया है जिसका अर्थ है दस प्रकार के वृक्ष। इसलिए इन्हें कल्पवृक्ष कहना उचित नहीं है। अकर्मभूमि और अन्तरद्वीप के युगलिकों का जीवन निर्वाह इन दस प्रकार के वृक्षों से होता है। इनका विस्तृत विवेचन दसवें ठाणे में किया जाएगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयाणं तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हलेस्सा णीललेस्सा काउलेस्सा। असुरकुमाराणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हलेस्सा णीललेस्सा काउलेस्सा एवं जाव थणियकुमाराणं। एवं पुढविकाइयाणं, आउवणस्सइकाइयाण वि। तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं वि तओ लेस्सा जहा णेरइयाणं। पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हलेस्सा णीललेस्सा काउलेस्सा। पंचिंदियतिरिक्ख जोणियाणं तओ लेस्साओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ तंजहा - तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा। एवं मणुस्साण वि। वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं। वेमाणियाणं तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ तंजहा - तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा॥ ६४॥

कठिन शब्दार्थ - संकिलिट्ठाओ - संक्लिष्ट, **असंकिलिट्ठाओ -** असंक्लिष्ट।

भावार्थ - नैरयिकों में तीन लेश्याएं कही गई हैं। यथा - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या। असुरकुमारों में तीन संक्लिष्ट लेश्याएं कही गई हैं। यथा - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमारों तक दस ही भवनपति देवों में तीन संक्लिष्ट लेश्याएं पाई जाती हैं। इसी प्रकार पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तीन संक्लिष्ट लेश्याएं पाई जाती हैं क्योंकि इनमें देव भी उत्पन्न हो सकते हैं इसलिए तेजोलेश्या भी पाई जाती है।

तेउकाय, वायुकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवों में नैरयिक जीवों के समान कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं पाई जाती हैं। इन में देव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसलिए संक्लिष्ट विशेषण नहीं लगाया गया है। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों में तीन संक्लिष्ट लेश्याएं कही गई हैं। यथा - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों में तीन असंक्लिष्ट लेश्याएं कही गई हैं। यथा - तेजो लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या। इसी प्रकार मनुष्यों में भी तीन संक्लिष्ट और तीन असंक्लिष्ट ये छहों लेश्याएं पाई जाती हैं। वाणव्यन्तर देवों में असुरकुमारों की तरह तीन संक्लिष्ट लेश्याएं पाई जाती हैं। वैमानिक देवों में तीन लेश्याएं कही गई हैं। यथा - तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या।

विवेचन - असुरकुमारों में तीन संक्लिष्ट लेश्याएं कही है जबकि असुरकुमार आदि में चार लेश्याएं होती है। चौथी तेजो लेश्या संक्लिष्ट नहीं होती है इसलिये यहाँ उसका ग्रहण नहीं किया गया है।

तिहिं ठाणेहिं तारारूवे चलिज्जा तंजहा - विकुव्वमाणे वा परियारेमाणे वा ठाणाओ वा ठाणं संकममाणे तारारूवे चलिज्जा। तिहिं ठाणेहिं देवे विज्जुयारं करेज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा - विकुव्वमाणे वा परियारेमाणे वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढिं जुइं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कार परक्कमं उवदंसेमाणे देवे विज्जुयारं करेज्जा। तिहिं ठाणेहिं देवे थणियसद्दं करेज्जा तंजहा - विकुव्वमाणे, एवं जहा विज्जुयार तहेव थणियसद्दं वि॥ ६५॥

कठिन शब्दार्थ - **तारारूवे** - तारे, **चलिज्जा** - चलते हैं, **विकुव्वमाणे** - वैक्रिय रूप बनाते समय, **परियारेमाणे** - परिचारणा (मैथुन सेवन) करते समय, **संकममाणे** - जाते समय, **विज्जुयारं** - बिजली सरीखा रूप, **इड्ढिं** - ऋद्धि, **जुइं** - द्युति, **जसं** - यश, **बलं** - बल, **वीरियं** - वीर्य, **पुरिसकारपरक्कमं**- पुरुषकार पराक्रम को, **उवदंसेमाणे** - दिखलाते हुए, **थणियसद्दं** - स्तनित शब्द।

भावार्थ - तीन कारणों से तारे चलते हैं यथा - वैक्रिय रूप बनाते समय तथा परिचारणा यानी मैथुन सेवन करते समय और एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते समय तारे चलित होते हैं। तीन कारणों से देव बिजली सरीखा रूप करते हैं। यथा - वैक्रिय रूप बनाते समय तथा मैथुन सेवन करते समय और तथारूप यानी साधु के गुणों से युक्त साधुमहात्मा को अपनी ऋद्धि यानी विमान और परिवार की सम्पत्ति, द्युति यानी अपने शरीर और आभूषणों की शोभा, यश, शारीरिक बल, वीर्य यानी जीव का सामर्थ्य और पुरुषकार पराक्रम को दिखलाते समय देव बिजली सरीखा उद्योत करते हैं। तीन कारणों से देव स्तनित शब्द यानी मेघ की गर्जना के समान शब्द करते हैं। यथा - वैक्रिय करते समय इस तरह जिस प्रकार बिजली सरीखा उद्योत करने का कथन किया है उसी प्रकार मेघगर्जना के लिए भी कह देना चाहिए।

विवेचन - तारों का अपने स्थान को छोड़ना चलित कहलाता है। तीन कारण से तारे चलित होते हैं - १. वैक्रिय करते हुए २. परिचारणा करते हुए और ३. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए। एक तारे से दूसरे तारे के बीच जो अंतर होता है उसके लिए कहा है - '**तत्थणं जे से वाघाइए अंतरे से जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठे जोयणसए उक्कोसेणं बारसजोयणसहस्साइं**' - दो प्रकार का अंतर होता है - व्याघात रहित और व्याघात सहित। व्याघात रहित (निर्व्याघातिक) अन्तर जघन्य ५०० धनुष उत्कृष्ट दो गाऊ का और व्याघात सहित अंतर जघन्य दो सौ छासठ योजन उत्कृष्ट बारह हजार योजन का है। इन दोनों अंतर में व्याघातिक अंतर महर्द्धिक देव को मार्ग देने से होता है। तारों के चलन आदि तीन सूत्र उत्पात से सूचक है।

वैक्रिय आदि करना अहंकार वाले को ही होता है। वैक्रिय आदि क्रिया में प्रवृत्त और अहंकार के उल्लास वाले को चलन, बिजली और गर्जन आदि भी होता है अतः चलन, बिजली का करना आदि वैक्रिय करने को कारणपणा से कहा हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया तंजहा - अरिहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरिहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे। तिहिं ठाणेहिं लोगुज्जोए सिया तंजहा - अरिहंतेहिं जायमाणेहिं अरिहंतेसु पव्वयमाणेसु अरिहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। तिहिं ठाणेहिं देवंधयारे सिया तंजहा - अरिहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरिहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे। तिहिं ठाणेहिं देवुज्जोए सिया तंजहा - अरिहंतेहिं जायमाणेहिं अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरिहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। तिहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाए सिया तंजहा- अरिहंतेहिं जायमाणेहिं, अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरिहंताणं णाणुप्पाय महिमासु। एवं देवुक्कलिया देव कहकहए। तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छंति तं जहा - अरिहंतेहिं जायमाणेहिं, अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं अरिहंताणं णाणुप्पाय महिमासु। एवं सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छंति। तिहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा तंजहा- अरिहंतेहिं जायमाणेहिं जाव तं चेव। एवं आसणाइं चलेज्जा, सीहणायं करेज्जा, चेलुक्खेवं करेज्जा। तिहिं ठाणेहिं देवाणं चेइयरुक्खा चलेज्जा तंजहा - अरिहंतेहिं जायमाणेहिं जाव तं चेव। तिहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छिज्जा तंजहा-अरिहंतेहिं जायमाणेहिं अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरिहंताणं णाणुप्पायमहिमासु॥ ६६॥

कठिन शब्दार्थ - **लोगंधयारे** - लोक में अन्धकार, **अरिहंतेहिं** - अरिहंत भगवान् के, **वोच्छिज्जमाणेहिं**- मोक्ष जाते समय, **अरिहंत पण्णत्ते** - अरिहंत प्रज्ञप्त, **वोच्छिज्जमाणे** - विच्छेद जाते समय, **पुव्वगए** - पूर्वगत, **लोगुज्जोए** - लोक में उद्योत, **जायमाणेहिं** - उत्पन्न होते समय, **पव्वयमाणेसु**- प्रव्रज्या (दीक्षा) लेते समय, **णाणुप्पवायमहिमासु** - केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय, **देवंधयारे** - देवलोक में अंधकार, **देवुज्जोए** - देवलोक में उद्योत, **देवसण्णिवाए** - देव सन्निपात, **देवुक्कलिया** - देवों का एक जगह एकत्रित होना, **देवकहकहए** - देव हर्षनाद करते हैं, **हव्वं** - शीघ्र, **आगच्छंति** - आते हैं, **सामाणिया** - सामानिक, **तायत्तीसगा** - त्रायत्रिंशक, **लोगपाला**- लोकपाल, **अग्गमहिसीओ** - अग्रमहिषी, **परिसोववण्णगा** - परिषद् में उत्पन्न, **अणियाहिवई** - अनीकाधिपति, **आयरक्खा** - आत्म रक्षक, **अब्भुट्ठिज्जा** - सिंहासन से उठ कर खड़े हो जाते हैं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसणाइं - आसन, **सीहणायं** - सिंहनाद, **चेलुक्खेवं** - वस्त्र का उत्क्षेप, **चेइयरुक्खा** - चैत्य वृक्ष, **लोगंतिया** - लोकान्तिक।

भावार्थ - तीन कारणों से लोक में अन्धकार हो जाता है। यथा - अरिहंत भगवान् मोक्ष में जाते हैं तब, अरिहंत भगवान् द्वारा फरमाया हुआ धर्म विच्छेद जाता है तब और पूर्वगत यानी पूर्वों में रहा हुआ दृष्टिवाद सूत्र विच्छेद जाता है तब, इन तीन बातों के होने पर लोक में अन्धकार हो जाता है। तीन कारणों से लोक में उद्योत यानी प्रकाश होता है। यथा - अरिहन्त भगवान् का जन्म होता है तब, अरिहन्त भगवान् दीक्षा लेते हैं तब, और अरिहंत भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होता है तब, देवकृत महोत्सव के समय लोक में उद्योत होता है। तीन कारणों से देवलोक में भी अन्धकार हो जाता है। यथा - अरिहन्त भगवान् मोक्ष जाते हैं तब, अरिहन्त भगवान् का फरमाया हुआ धर्म विच्छेद जाता है तब और पूर्वगत दृष्टिवाद विच्छेद जाता है तब देवलोक में भी अन्धकार हो जाता है। तीन कारणों से देवलोक में उद्योत होता है। यथा - अरिहन्त भगवान् का जन्म होता है तब, अरिहन्त भगवान् दीक्षा लेते हैं तब और अरिहन्त भगवान् को केवल ज्ञान होता है तब देवकृत महोत्सव के समय देवलोक में प्रकाश हो जाता है। तीन कारणों से देवसन्निपात अर्थात् इस लोक में देवों का आगमन होता है। यथा - अरिहन्त भगवान् जन्म लेते हैं तब, अरिहन्त भगवान् दीक्षा लेते हैं तब और अरिहन्त भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब देवकृत महोत्सव के समय देव इस पृथ्वी पर आते हैं। इसी प्रकार उपरोक्त तीन कारणों से देव एक जगह एकत्रित होते हैं और देव हर्षनाद करते हैं। तीन कारणों से देवेन्द्र मनुष्य लोक में शीघ्र आते हैं। यथा - अरिहन्त भगवान् जन्म लेते हैं तब, अरिहंत भगवान् दीक्षा लेते हैं तब और अरिहन्त भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब महोत्सव मनाते समय इन्द्र इस लोक में आते हैं। इसी तरह सामानिक अर्थात् इन्द्र के समान ऋद्धि वाले देव, त्रायस्त्रिंशक यानी देवों में गुरु तुल्य देव, लोकपाल यानी दिशाओं में नियुक्त सोम आदि देव, अग्रमहिषी यानी इन्द्र की प्रधान भार्या रूप देवियाँ, इन्द्र की परिषद् में उत्पन्न देव, अनीकाधिपति अर्थात् सेना के स्वामी देव और आत्मरक्षक अर्थात् इन्द्र के अङ्गरक्षक देव उक्त तीनों अवसरों पर शीघ्र ही मनुष्य लोक में आते हैं। तीन कारणों से देव अपने सिंहासन से उठ कर खड़े हो जाते हैं। यथा - अरिहन्त भगवान् जन्म लेते हैं तब यावत् दीक्षा लेते हैं और उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब। इसी प्रकार उक्त तीनों अवसरों पर देवों के आसन चलित होते हैं। वे सिंहनाद करते हैं और वे वस्त्र का उत्क्षेप करते हैं अर्थात् ध्वजाएँ फहराते हैं। तीन कारणों से देवों के सुधर्मा सभा आदि के प्रत्येक द्वार पर रहे हुए चैत्य वृक्ष चलित होते हैं। यथा-अरिहन्त भगवान् जन्म लेते हैं तब यावत् दीक्षा लेते हैं तब और उन्हें केवलज्ञान होता है। तब तीन कारणों से लोकान्तिक देव मनुष्य लोक में शीघ्र आते हैं। यथा अरिहन्त भगवान् जन्म लेते हैं तब, अरिहन्त भगवान् दीक्षा लेते हैं तब और अरिहन्त भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होता है तब देवकृत महोत्सव के समय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - क्षेत्र लोक में जो अंधकार होता है उसे 'लोकांधकार' कहते हैं। लोकान्धकार द्रव्य से लोकानुभाव से (जगत् स्वभाव से) अथवा भाव से प्रकाशक स्वभाव वाले ज्ञान के अभाव से होता है।

उत्कृष्ट भक्ति हेतु तत्पर सुर और असुरों के विशेष समूह से रचित, अशोकवृक्ष आदि अष्ट प्रकार के विशिष्ट महा प्रातिहार्य रूप पूजा और सर्व रागादि शत्रु के क्षय से मुक्ति महल के शिखर ऊपर चढ़ने में जो योग्य हैं वे अर्हन्त कहलाते हैं। कहा है -

अरिहंति वंदणं णमंसणाणि, अरिहंति पूय सक्कारं।
सिद्धिगमणं च अरिहा, अरिहंता तेण वुच्चंति॥

अर्ह् धातु पूजा के अर्थ में है और पचादि गण में 'अच्' प्रत्यय करने से बहुवचन में **अर्हा** - वंदन और नमस्कार करने के तथा पूजा और सत्कार करने के योग्य है और सिद्धि गमन में योग्य हैं इस कारण से अर्हंत कहे जाते हैं। अर्हन्तों के निर्वाण प्राप्त होने, अर्हन्तों द्वारा प्ररूपित धर्म का विच्छेद होने पर यानी धर्म तीर्थ का विच्छेद होते समय तथा दृष्टिवाद के विच्छेद होने पर लोक में अन्धकार होता है। इससे विपरीत तीन कारण लोक में उद्योत के बताये हैं।

तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो ! तंजहा - अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स। संपाओ वि य णं केइ पुरिसे अम्मापियरं सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगित्ता सुरभिणा गंधट्टएणं उव्वट्टित्ता तिहिं उदगेहिं मजावित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं भोयणं भोयावित्ता जावजीवं पिट्ठिवडिंसियाए परिवहेज्जा, तेणा वि तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ, अहे णं से तं अम्मापियरं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवित्ता परूवित्ता ठावित्ता भवइ, तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवइ। समणाउओ ! केइ महच्चे दरिहं समुक्कसेज्जा, तए णं से दरिद्दे समुक्किट्ठे समाणे पच्छा पुरं च णं विउल-भोगसमिइसमण्णागए यावि विहरेज्जा, तएणं से महच्चे अण्णया कयाइ दरिहीहूए समाणे तस्स दरिहस्स अंतिए हव्वमागच्छेज्जा, तएणं से दरिहे तस्स भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणा वि तस्स दुप्पडियारं भवइ, अहे णं से तं भट्टिं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवइ, तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवइ। केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे, तए णं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिक्खाओ वा देसाओ सुभिक्खं देसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहरेज्जा, कंताराओ वा णिक्कंतारं करेज्जा, दीहकालिएणं वा रोगायंकेणं अभिभूयं समाणं विमोएज्जा, तेणा वि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवइ, अहे णं से तं धम्मायरियं केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भट्ठं समाणं भुज्जो वि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता जाव ठावइत्ता भवइ तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियारं भवइ। ६७।

कठिन शब्दार्थ - **अम्मापिउणो** - माता पिता का, **भट्टिस्स** - स्वामी का, **धम्मायरियस्स** - धर्माचार्य का, **दुप्पडियारं** - प्रत्युपकार करना कठिन है, **संपाओ वि** - सम्प्रात: अर्थात्-सूर्योदय के समय, **सयपागसहस्सपोगेहिं** - शतपाक सहस्रपाक, **तिल्लेहिं** - तेल से, **अब्भंगित्ता** - मर्दन करके, **सुरभिणा**-सुगंधित, **गंधट्टएणं** - गंध वाले द्रव्यों से, **उव्वट्टित्ता** - उबटन करके, **मज्जावित्ता** - स्नान करा कर, **सव्वालंकार विभूसियं** - सब प्रकार के बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत, **थालीपागसुद्धं** - मिट्टी के बर्तन में शुद्धता पूर्वक पकाया हुआ, **अठारसवंजणाउलं** - अठारह प्रकार के शाक आदि से युक्त, **भोयावित्ता** - जीमा कर, **पिट्ठिवडिंसियाए** - पृष्ठयवतंसिका से अर्थात्-अपनी पीठ पर, **परिवहेज्जा** - उठाये फिरे, **आघवइत्ता** - कह कर, **पण्णवित्ता** - बोध दे कर, **परूवित्ता** - भेद प्रभेद समझा कर, **ठावित्ता** - धर्म में स्थिर कर, **सुप्पडियारं** - प्रत्युपकार कर सकता है, **समुक्कसेज्जा** - उन्नत और धनवान बना दे, **विउलभोगसमिइ समण्णागमए** - विपुल भोग सामग्री से युक्त हो कर, **सव्वस्समवि** - सर्वस्व, **दलयमाणे** - दे देवे, **सुवयणं**- सुवचन , **सोच्चा** - सुन कर, **णिसम्म** - हृदय में धारण कर, **दुभिक्खाओ** - दुर्भिक्ष वाले स्थान से, **सुभिक्खं** - सुभिक्ष वाले स्थान पर, **साहरिज्जा** - ला कर रख दे, **कंताराओ** - कान्तार से अर्थात् जंगल से, **णिक्कंतारं** - निष्कान्तार स्थान पर, **रोगायंकेणं** - रोग और आतंक से, **विमोएज्जा** - निवारण कर दे।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि हे आयुष्मन् श्रमणो ! माता-पिता का, पालन पोषण करने वाले स्वामी का और धर्माचार्य का इन तीन पुरुषों का प्रत्युपकार करना यानी इनके उपकार का बदला चुकाना बड़ा कठिन है। जैसे कोई कुलीन पुरुष सदा सूर्योदय के समय प्रात:काल में अपने माता-पिता को शतपाक, सहस्रपाक तेल से मर्दन करके, सुगन्धित गन्ध वाले द्रव्यों से उबटन करके सुगन्धित जल गर्मजल और ठण्डा जल इन तीन प्रकार के जलों से स्नान करा कर सब प्रकार के बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से उनके शरीर को अलंकृत करके, मिट्टी के बर्तन में शुद्धता पूर्वक पकाया हुआ अठारह प्रकार के शाक आदि से युक्त मनोज्ञ भोजन जीमा कर यावज्जीवन यानी जीवन पर्यन्त पृष्ठयवतंसिका से (पीठ पर बैठा कर या कावड़ में बिठाकर कन्धे से) अपनी पीठ पर उठाये फिरे, तो भी यानी इतना करने पर भी उन माता-पिताओं का प्रत्युपकार करना कठिन है अर्थात् वह माता-पिता के ऋण से उऋण (मुक्त) नहीं हो सकता है, परन्तु यदि वह पुत्र उन माता-पिता को केवलिभाषित धर्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कह कर, धर्म का बोध देकर तथा धर्म के भेद प्रभेद समझा कर उनको धर्म में स्थिर कर दे तो वह माता-पिता का प्रत्युपकार कर सकता है अर्थात् माता-पिता के ऋण से उऋण हो सकता है। हे आयुष्मन् श्रमणो ! कोई बड़ा धनवान् सेठ किसी दरिद्री पुरुष को खूब द्रव्य देकर उसे उन्नत और धनवान् बना देवे। इसके बाद उन्नत दशा को प्राप्त हुआ वह दरिद्री पुरुष उसी समय अथवा पीछे विपुल भोग सामग्री से युक्त होकर विचरे। इसके बाद वह सेठ किसी समय लाभान्तराय कर्म के उदय से दरिद्री बन कर उस दरिद्री पुरुष के पास जिसको कि उसने धनवान् बनाया है, शीघ्र आवे। तब वह दरिद्री पुरुष उस पालन पोषण कर धनवान् बनाने वाले पुरुष को सर्वस्व यानी अपने पास का सारा धन दे देवे तो भी वह उसके उपकार का बदला नहीं चुका सकता है। किन्तु यदि वह उस अपने स्वामी को केवलि-भाषित धर्म कह कर, धर्म का बोध देकर तथा धर्म के भेद प्रभेद समझा कर उसे धर्म में स्थापित कर दे तो वह उस स्वामी का प्रत्युपकार कर सकता है अर्थात् उसके ऋण से उऋण हो सकता है। कोई पुरुष तथारूप अर्थात् साधु के वेष और गुणों से युक्त श्रमण माहन यानी साधु महात्मा के पास आर्य धर्म सम्बन्धी एक भी सुवचन सुन कर और हृदय में धारण करके यहाँ का आयुष्य पूर्ण करके काल के समय काल करके किसी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होवे। इसके बाद वह देव, अपने धर्माचार्य का प्रत्युपकार करने की भावना से उस धर्माचार्य को दुर्भिक्ष वाले देश से सुभिक्ष वाले देश में लाकर रख देवें, यदि जङ्गल में होवे तो जङ्गल से निष्कान्तार कर देवे यानी वसति (गाँव-नगर) में लाकर रख देवे अथवा दीर्घ काल तक रहने वाले रोग और आतङ्क से उनका शरीर पीड़ित हो तो उस रोग का निवारण कर दे तो भी वह उस धर्माचार्य के ऋण से मुक्त नहीं हो सकता है किन्तु यदि कदाचित् कर्मोदय से वे धर्म से पतित हो गये हों तो केवलि-भाषित धर्म से भ्रष्ट बने हुए उस धर्माचार्य को केवलि-भाषित धर्म कह कर यावत् धर्म का बोध देकर फिर से धर्म में स्थापित कर दे तो वह उस धर्माचार्य का प्रत्युपकार कर सकता है अर्थात् ऋण से मुक्त हो सकता है।

विवेचन - तीन का प्रत्युपकार दुःशक्य है - १. माता-पिता २. भर्त्ता (स्वामी)और ३. धर्माचार्य, इन तीनों का प्रत्युपकार अर्थात् उपकार का बदला चुकाना दुःशक्य है। इसका स्पष्टीकरण भावार्थ में उदाहरण सहित कर दिया गया है। शरीर में लम्बे समय तक रहने वाले कोढ आदि 'रोग' कहलाते हैं और तत्काल प्राण विनाश कर देने वाले शूल आदि 'आतङ्क' कहलाते हैं।

तिहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अणाइयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसार कंतारं वीइवएज्जा तंजहा - अणियाणयाए दिट्ठिसंपण्णयाए जोगवाहियाए। तिविहा ओसप्पिणी पण्णत्ता तंजहा - उक्कोसा मज्झिमा जहण्णा एवं छप्पि समाओ भाणियव्वाओ जाव दुसमदुसमा। तिविहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता तंजहा - उक्कोसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मज्झिमा जहण्णा एवं छप्पि समाओ भाणियव्वाओ जाव सुसमसुसमा। तिहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा तंजहा - आहारिज्जमाणे वा पोग्गले चलेज्जा विकुव्वमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, ठाणाओ वा ठाणं संकामिज्जमाणे पोग्गले चलेज्जा। तिविहा उवही पण्णत्ता तंजहा - कम्मोवही सरीरोवही बाहिरभंडमत्तोवही, एवं असुरकुमाराणं भाणियव्वं। एवं एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं। अहवा तिविहा उवही पण्णत्ता तंजहा - सचित्ते, अचित्ते, मीसए, एवं णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं। तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते तंजहा - कम्मपरिग्गहे, सरीर परिग्गहे, बाहिरभंडमत्तपरिग्गहे, एवं असुरकुमाराणं एवं एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं। अहवा तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते तंजहा-सचित्ते अचित्ते मीसए, एवं णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।६८।

कठिन शब्दार्थ - अणियाणयाए - अनिदानता-नियाणा न करने से, **दिट्ठिसंपण्णयाए** - दृष्टि सम्पन्नता से, **जोगवाहियाए** - योगवाहिता से, **संपण्णे** - धर्म क्रिया से संपन्न (युक्त), **अणाइयं** - अनादि, **अणवयग्गं** - अनन्त, **दीहमद्धं** - दीर्घ मार्ग वाले, **चाउरंतं** - चतुर्गति रूप, **संसारकंतारं** - संसार रूपी महान् अटवी का, **वीइवएज्जा** - उल्लंघन कर जाता है, **अच्छिण्णे** - अच्छिन्न, **संकामिज्जमाणे** - संक्रमण किया जाता हुआ, **कम्मोवही** - कर्मोपधि, **सरीरोवही** - शरीरोपधि **बाहिरभंडमत्तपरिग्गहे** - बाहरी बर्तन वस्त्र आदि परिग्रह।

भावार्थ - अनिदानता अर्थात् कामभोगों का तथा ऋद्धि आदि का नियाणा न करने से दृष्टि सम्पन्नता अर्थात् शत्रु मित्र पर समदृष्टि रखने से और योगवाहिता अर्थात् शास्त्र पढने के लिए शास्त्रोक्त तप की आराधना से अथवा चित्त को समाधिस्थ रखने से इन तीन कारणों से धर्म क्रिया से युक्त साधु इस अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार रूपी महान् अटवी का उल्लङ्घन कर जाता है । तीन प्रकार का अवसर्पिणी काल कहा गया है। यथा - उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। इस प्रकार यावत् दुष्षमा दुष्षम तक छहों आरों के प्रत्येक के उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ये तीन तीन भेद कह देने चाहिए। उत्सर्पिणी काल तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। इस प्रकार यावत् सुषमासुषम तक छहों आरों के प्रत्येक के उत्कृष्ट, मध्यम और अधम ये तीन तीन भेद कह देने चाहिएं। तीन कारणों से अच्छिन्न यानी तलवार आदि से बिना काटा हुआ पुद्गल चलित होता है। यथा - जीव के द्वारा आहार रूप से ग्रहण किया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है । देव और मनुष्य वैक्रिय करे तब पुद्गल चलित होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान में संक्रमण किया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है। उपधि यानी परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - कर्म रूप उपधि, शरीरोपधि और बाहर के बर्तन वस्त्र आदि इस प्रकार असुरकुमारों तक के कह देना चाहिए। इसी प्रकार एकेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और नैरयिकों को छोड़ कर यावत् वैमानिक देवों तक कहना चाहिए। नैरयिकों में और एकेन्द्रिय जीवों में बाहरी उपकरण नहीं होता है। इसलिए उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया है। अथवा उपधि तीन प्रकार की कही गई है। यथा - सचित्त, अचित्त और मिश्र। इस प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिक देवों तक निरन्तर सभी दण्डकों में कह देना चाहिए। परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - कर्म रूप परिग्रह, शरीर रूप परिग्रह और बाहरी बर्तन वस्त्र आदि परिग्रह। इस प्रकार असुरकुमारों से यावत् वैमानिक तक कह देना चाहिए किन्तु एकेन्द्रिय और नैरयिकों को छोड़ देना चाहिए क्योंकि उनमें बाहरी उपकरण रूप परिग्रह नहीं होता है। अथवा परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - सचित्त, अचित्त और मिश्र। इस प्रकार नैरयिकों से यावत् वैमानिकों तक निरन्तर सभी दण्डकों में कह देना चाहिए।

विवेचन - अवसर्पिणी काल का पहला आरा उत्कृष्ट, दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवाँ मध्यम और छठा आरा जघन्य कहलाता है।

उत्सर्पिणी काल का पहला आरा जघन्य और दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवाँ मध्यम तथा छठा आरा उत्कृष्ट कहलाता है।

खड्ग (तलवार) आदि से बिना छेदे हुए पुद्गल समुदाय से चलित होते हैं इस कारण से **अच्छिन्न पुद्गल** ऐसा कहा है। आहार रूप से जीव द्वारा ग्रहण किये जाते हुए अर्थात् जीव द्वारा आकर्षित करने से पुद्गल स्वस्थान से चलित होते हैं। इसी प्रकार **वैक्रियमाण** - वैक्रिय करण की अधीनता से पुद्गल चलित होते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर हाथ आदि से संक्रमण किये जाते हुए पुद्गल चलित होते हैं।

उपधि - जिसके द्वारा जीव पोषा जाता है वह उपधि है। उपधि तीन प्रकार की कही है - १. कर्म की उपधि - कर्मोपधि २. शरीरोपधि ३. बाह्य - शरीर से बाहर के भांड मिट्टी के भाजन (पात्र) मात्र - कांसा आदि धातु के भाजन भांड मात्रोपधि है। दंडक की अपेक्षा असुरकुमार आदि के तीन उपधि कही गई है। परन्तु नैरयिक और एकेन्द्रिय का वर्जन किया है क्योंकि उनके उपकरणों का अभाव होता है। कितने ही बेइन्द्रिय आदि के उपधि दिखाई देती है इस कारण से उपधि तीन प्रकार की कही है- १. सचित्त उपधि - जैसे पत्थर आदि का भाजन, २. अचित्त उपधि - वस्त्र आदि और ३. मिश्र उपधि - प्रायः (शस्त्रादि से) परिणत पत्थर का भाजन। नैरयिकों में सचित्त उपधि शरीर है। अचित्त उपधि - उत्पत्ति का स्थान है और मिश्र उपधि उच्छ्वास आदि के पुद्गल सहित शरीर है।

परिग्रह - स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह अथवा मूर्च्छा परिग्रह है। उपधि की तरह परिग्रह भी तीन प्रकार का है। नैरयिक और एकेन्द्रिय जीवों में भांडादि परिग्रह संभव नहीं है।

तिविहे पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणपणिहाणे वयपणिहाणे कायपणिहाणे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं। तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणसुप्पणिहाणे वयसुप्पणिहाणे कायसुप्पणिहाणे। संजयमणुस्साणं तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणसुप्पणिहाणे वयसुप्पणिहाणे कायसुप्पणिहाणे। तिविहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे एवं पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं। तिविहा जोणी पण्णत्ता तंजहा सीया उसिणा सीओसिणा, एवं एगिंदियाणं विगलिंदियाणं तेउकाइय वज्जाणं सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं सम्मुच्छिम मणुस्साण य । तिविहा जोणी पण्णत्ता तंजहा - सचित्ता अचित्ता मीसिया, एवं एगिंदियाणं विगलिंदियाणं सम्मुच्छिमपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिम मणुस्साण य। तिविहा जोणी पण्णत्ता तंजहा - संवुडा वियडा संवुडवियडा। तिविहा जोणी पण्णत्ता तंजहा - कुम्मुण्णया संखावत्ता वंसीपत्तिया। कुमुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं कुम्मुण्णयाए णं जोणीए तिविहा उत्तम पुरिसा गब्भं वक्कमंति तंजहा - अरिहंता चक्कवट्टी बलदेववासुदेवा। संखावत्ता जोणी इत्थीरयणस्स, संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति णो चेव णं णिप्फज्जंति। वंसीपत्तिया णं जोणी पिहज्जणस्स, वंसीपत्तियाए णं जोणीए बहवे पिहज्जणे गब्भं वक्कमंति॥ ६९ ॥

कठिन शब्दार्थ - पणिहाणे - प्रणिधान, **सुप्पणिहाणे** - सुप्रणिधान, **दुप्पणिहाणे** - दुष्प्रणिधान, **सीया** - शीत, **उसिण** - उष्ण, **सीओसिणा** - शीतोष्ण, **तेउकाइयवज्जाणं** - तेउकाय को छोड़ कर, **जोणी** - योनि, **सचित्ता** - सचित्त, **अचित्ता** - अचित्त, **मीसिया** - मिश्र, **संवुडा** - संवृत्त, **वियडा** - विवृत्त, **संवुडवियडा** - संवृत्त विवृत्त, **कुम्मुण्णया** - कूर्मोन्नता, **संखावत्ता** - शंखावर्त्ता, **वंसीपत्तिया** - वंशीपत्रिका, **उत्तम पुरिसमाऊणं** - उत्तम पुरुषों की माताओं के, **इत्थीरयणस्स** - स्त्री रत्न के, **वक्कमंति**- उत्पन्न होते हैं, **विउक्कमंति** - नष्ट होते हैं, **चयंति** - चवते हैं, **उववज्जंति** - उत्पन्न होते हैं, **णिप्फज्जंति**- निपजते हैं, **पिहज्जणे** - सामान्य मनुष्य।

भावार्थ - तीन प्रकार का प्रणिधान कहा गया है। यथा - मनःप्रणिधान, वचनप्रणिधान और कायप्रणिधान। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक सब पञ्चेन्द्रिय जीवों के होते हैं क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों के सिर्फ काया और विकलेन्द्रिय जीवों के काया और वचन ये दो योग ही पाये जाते हैं। तीन प्रकार का सुप्रणिधान कहा गया है। यथा - मनःसुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान कायसुप्रणिधान। संयत मनुष्यों के तीन सुप्रणिधान कहे गये हैं। यथा - मनःसुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान, कायसुप्रणिधान। तीन प्रकार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुष्प्रणिधान कहा गया है। यथा - मनोदुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक सब पञ्चेन्द्रिय जीवों के होते हैं। तीन प्रकार की संसारी जीवों के उत्पन्न होने की योनि कही गई है। यथा - शीत, उष्ण और शीतोष्ण यानी मिश्र। इस प्रकार तेउकाय को छोड़ कर शेष एकेन्द्रिय जीवों के और विकलेन्द्रिय जीवों के तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय जीवों के और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के उपरोक्त तीनों योनि पाई जाती हैं। अथवा दूसरी तरह से तीन प्रकार की योनि कही गई है। यथा - सचित्त, अचित्त और मिश्र। इस प्रकार एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के ये तीनों योनि पाई जाती हैं। अथवा दूसरी तरह से तीन प्रकार की योनि कही गई है। यथा - संवृत्त यानी ढकी हुई, विवृत्त यानी बिना ढकी हुई उघाड़ी और संवृत्त विवृत्त यानी मिश्र। अथवा दूसरी तरह से तीन प्रकार की योनि कही गई है। यथा- कूर्मोन्नता, शंखावर्त्ता और वंशीपत्रिका। कूर्मोन्नता योनि उत्तम पुरुषों की माताओं के होती हैं। कूर्मोन्नता योनि में तीन उत्तम पुरुष गर्भ में आते हैं। यथा - अरिहन्त यानी तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव। शंखावर्त्ता योनि चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न यानी श्री देवी के होती है। शंखावर्त्ता योनि में बहुत से जीव और पुद्गल उत्पन्न होते हैं नष्ट होते हैं चवते हैं फिर उत्पन्न होते हैं किन्तु निपजते नहीं है। वंशीपत्रिका योनि सामान्य मनुष्यों की माताओं के होती हैं। वंशीपत्रिका योनि में बहुत से सामान्य मनुष्य गर्भ में आकर उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - मन आदि की एकाग्रता को 'प्रणिधान' कहते हैं। सुप्रणिधान यानी शुभ प्रवृत्ति की एकाग्रता और दुप्रणिधान यानी दुष्ट प्रवृति रूप एकाग्रता।

योनि - योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान अथवा जिस स्थान में जीव अपने कार्मण शरीर को औदारिक आदि स्थूल शरीर के लिए ग्रहण किये हुए पुद्गलों के साथ एकमेक कर देता है उसे 'योनि' कहते हैं। योनि के तीन-तीन भेद इस प्रकार हैं -

१. **शीत योनि** - जिस उत्पत्ति स्थान में शीत स्पर्श हो उसे शीत योनि कहते हैं।

२. **उष्ण योनि** - जिस उत्पत्ति स्थान में उष्ण स्पर्श हो वह उष्ण योनि है।

३. **शीतोष्ण योनि** - जिस उत्पत्ति स्थान में कुछ शीत और कुछ उष्ण स्पर्श हो उसे शीतोष्ण योनि कहते हैं।

देवता और गर्भज जीवों के शीतोष्ण योनि, तेजस्काय के उष्ण योनि, नैरयिक जीवों के शीत और उष्ण योनि तथा शेष जीवों के तीनों प्रकार की योनियां होती हैं। अथवा योनि तीन प्रकार की कही गई है -

१. **सचित्त योनि** - जो योनि जीव प्रदेशों से व्याप्त हो उसे सचित्त योनि कहते हैं।

२. **अचित्त योनि** - जो योनि जीव प्रदेशों से व्याप्त न हो उसे अचित्त योनि कहते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. सचित्ताचित्त योनि – योनि किसी भाग में जीव युक्त हो और किसी भाग में जीव रहित हो उसे सचित्ताचित योनि कहते हैं।

देव और नैरयिकों की अचित योनि होती है। गर्भज जीवों की मिश्र योनि (सचित्ताचित्त योनि) और शेष जीवों की तीनों प्रकार की योनियाँ होती हैं। अथवा योनि के तीन भेद इस प्रकार हैं –

१. संवृत्त योनि – जो उत्पत्ति स्थान ढंका हुआ या दबा हुआ हो उसे संवृत्त योनि कहते हैं।

२. विवृत्त योनि – जो उत्पत्ति स्थान खुला हुआ हो उसे विवृत्त योनि कहते हैं

३. संवृत्त विवृत्त योनि – जो उत्पत्ति स्थान कुछ ढंका हुआ और कुछ खुला हुआ हो उसे संवृत्त विवृत्त योनि कहते हैं।

नैरयिक देव और एकेन्द्रिय जीवों के संवृत्त, गर्भज जीवों के संवृत्तविवृत्त और शेष जीवों के विवृत्त योनि होती है। अथवा योनि के तीन भेद इस प्रकार हैं –

१. कूर्मोन्नता – कूर्म अर्थात् कछुए की पीठ के समान उठी हुई योनि

२. शंखावर्त्ता – शंख के समान आवर्त्त वाली योनि और

३. वंशीपत्रिका – बांस के दो पत्ते की तरह संपुट मिली हुई योनि

कूर्मोन्नता योनि ५४ उत्तम पुरुषों (६३ श्लाघनीय पुरुषों में से ९ प्रतिवासुदेव को छोड़ कर) की माता के होती है। शंखावर्त्ता योनि चक्रवर्ती के स्त्री रत्न श्री देवी के होती है जिसमें जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं किन्तु सन्तान के रूप में जन्म नहीं लेते। वंशी पत्रिका योनि सभी संसारी जीवों की माताओं के होती है जिसमें जीव जन्म लेते भी हैं और नहीं भी लेते।

तिविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता तंजहा – संखेज्जजीविया असंखेज्जजीविया अणंतजीविया। जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे तओ तित्था पण्णत्ता तंजहा – मागहे वरदामे पभासे, एवं एरवए वि। जंबूद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजए तओ तित्था पण्णत्ता तंजहा – मागहे वरदामे पभासे, एवं धायइखंडे दीवे पुरच्छिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि, पुक्खरवरदीवद्धपुरच्छिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि॥ ७०॥

कठिन शब्दार्थ – **तणवणस्सइकाइया** – तृण वनस्पतिकाय, **संखेजजीविया** – संख्यात जीव वाली, **असंखेजजीविया** – असंख्यात जीव वाली, **अणंतजीविया** – अनंत जीव वाली, **तित्था** – तीर्थ, **पुरच्छिमद्धे** – पूर्वार्द्ध में, **पच्चत्थिमद्दे** – पश्चिमार्द्ध में, **पुक्खरवरदीवद्ध पुरच्छिमद्धे** – पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्वार्द्ध में।

भावार्थ – बादर तृण वनस्पतिकाय तीन प्रकार की कही गई है यथा – संख्यात जीव वाली असंख्यात जीव वाली और अनन्त जीव वाली। इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में तीन तीर्थ कहे गये हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा - मागध, वरदाम और प्रभास। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र में भी ये तीन तीर्थ हैं। इस जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में चक्रवर्ती के प्रत्येक विजय में तीन तीर्थ कहे गये हैं यथा - मागध, वरदाम और प्रभास। इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में और पश्चिमार्द्ध में तथा पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्वार्द्ध में और पश्चिमार्द्ध में, प्रत्येक में अलग अलग मागध, वरदाम और प्रभास ये तीन तीर्थ होते हैं।

विवेचन - वनस्पति के तीन भेद हैं - १. संख्यात जीविक २. असंख्यात जीविक और ३. अनन्त जीविक।

१. संख्यात जीविक - जिस वनस्पति में संख्यात जीव हों उसे संख्यात जीविक वनस्पति कहते हैं। जैसे - नालि से लगा हुआ फूल।

२. असंख्यात जीविक - जिस वनस्पति में असंख्यात जीव हों उसे असंख्यात जीविक वनस्पति कहते हैं। जैसे - नीम, आम आदि के मूल कन्द स्कन्ध, छाल, शाखा, अंकुर आदि।

३. अनन्त जीविक - जिस वनस्पति में अनन्त जीव हों उसे अनन्त जीविक वनस्पति कहते हैं। जैसे - जमीकंद आलू आदि।

मागध आदि जम्बूद्वीप की खाड़ी के तीर पर होने के कारण 'तीर्थ' कहे जाते हैं। ये देवों के निवास स्थान हैं। चक्रवर्ती बाण फेंक कर इनको साधते हैं। इनका विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में हैं। बीज बोने के बाद जो जड़े जमीन के अन्दर उंडी जाती हैं उसे मूल कहते हैं और बीज का फूला हुआ मोटा भाग जब तक जमीन से बाहर नहीं निकलता तब उसे कन्द कहते हैं और वहीं कन्द का भाग जमीन से बाहर आ जाता है, उसे स्कन्ध कहते हैं।

जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवम कोडाकोडीओ कालो होत्था। एवं ओसप्पिणीए णवरं पण्णत्ते। आगमिस्साए उस्सप्पिणीए भविस्सइ। एवं धायइखंडे पुरच्छिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि। एवं पुक्खरवरदीवद्धपुरच्छिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि कालो भाणियव्वो। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था। एवं इमीसे ओसप्पिणीए, आगमिस्साए उस्सप्पिणीए। जंबूद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालयंति, एवं जाव पुक्खरवर दीवद्धपच्चत्थिमद्धे। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी उस्सप्पिणीए ओ वंसाओ उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा तंजहा - अरिहंतवंसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्कवट्टिवंसे दसारवंसे, एवं जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी उस्सप्पिणीए तओ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा तंजहा - अरिहंता चक्कवट्टी बलदेव वासुदेवा। एवं जाव पुक्खरवर दीवद्धपच्चत्थिमद्धे। तओ अहाउयं पालयंति तंजहा - अरिहंता चक्कवट्टी बलदेव वासुदेवा। तओ मज्झिममाउयं पालयंति तंजहा - अरिहंता चक्कवट्टी बलदेव वासुदेवा॥ ७१ ॥

कठिन शब्दार्थ - परमाउं - उत्कृष्ट आयु का, **पालइत्था** - पालन करते थे, **वंसाओ** - वंश, **अहाउयं** - पूर्ण आयु, **मज्झिमआउयं** - मध्यम आयु का।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी काल के सुषम (सुखम) नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम का था। इसी प्रकार अवसर्पिणी का सुषम (सुखम) आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम का कहा गया है। इसी प्रकार आगामी उत्सर्पिणी काल का सुषम (सुखम) आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम का होगा। इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में तथा अर्द्ध पुष्करद्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में भी इसी प्रकार सुषम (सुखम) आरे का काल कहना चाहिए। इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी काल के सुषमसुषमा (सुखमासुखम) आरे में मनुष्यों का शरीर तीन कोस की ऊंचाई वाला होता था और वे तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु का पालन करते थे। इसी प्रकार इस अवसर्पिणी काल में और आगामी उत्सर्पिणी काल में तीन कोस का शरीर और तीन पल्योपम का आयुष्य होता है। इस जम्बूद्वीप के देवकुरु और उत्तरकुरु में यावत् अर्द्ध पुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्द्ध तक सब द्वीपों में मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई तीन कोस की कही गई है और मनुष्य तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु का पालन करते हैं। इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में यावत् अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध तक सब द्वीपों में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे यथा - अरिहंतों का वंश, चक्रवर्ती का वंश और दशारवंश यानी बलदेव वासुदेव का वंश। इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में यावत् अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध तक सब द्वीपों में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे यथा - अरिहंत, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव। तीन पुरुष पूर्ण आयु का पालन करते हैं यथा - अरिहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव। इसी प्रकार अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव ये तीन पुरुष मध्यम आयु का पालन करते हैं अर्थात् इन्हें वृद्धावस्था नहीं आती किन्तु सदा युवावस्था बनी रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बायर तेउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं ठिई पण्णत्ता। बायर वाउ काइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। अह भंते ! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं एएसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं, तेण परं जोणी पमिलाइ, तेण परं जोणी पविद्धंसेइ, तेण परं जोणी विद्धंसइ, तेण परं बीए अबीए भवइ, तेण परं जोणी वोच्छेओ पण्णत्तो। दोच्चाए णं सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता॥ ७२॥

कठिन शब्दार्थ - बायरतेउकाइयाणं - बादर तेउकायिक जीवों की, **राइंदियाइं** - रात दिन की, **वाससहस्साइं** - हजार वर्ष की, **सालीणं** - शालि, **वीहीणं** - व्रीहि, **गोधूमाणं** - गेहूँ, **जवाणं** - जौ, **जवजवाणं** - विशिष्ट प्रकार के जौ अथवा ज्वार, **धण्णाणं** - धान्यों को, **कोट्ठाउत्ताणं** - कोठे में रखे हुए, **पल्लाउत्ताणं** - पल्य में रखे हुए, **मंचाउत्ताणं** - मचान पर रखे हुए, **मालाउत्ताणं** - माले में रखे हुए, **ओलित्ताणं** - लीपे हुए, **लंछियाणं** - लांछन अर्थात चिह्न लगाये हुए, **मुद्दियाणं** - मिट्टी का छांदण लगाये हुए, **पिहियाणं** - ढंके हुए, **संचिट्ठइ** - सचित्त रहती है।

भावार्थ - बादर तेउकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन रातदिन की कही गई है। बादर वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की कही गई है।

अहो भगवन् ! शालि, व्रीहि, गेहूँ, जौ विशिष्ट प्रकार के जौ अथवा ज्वार, इन धान्यों को कोठे में रख कर, पल्य में यानी बांस की बनी हुई छाबड़ी में रख कर, मचान पर रख कर, माले में यानी घर के ऊपरी भाग मेंमेड़ी में रख कर, लीप दिया जाय, चारों तरफ से लीप दिया जाय, लीप कर उन पर रेखा आदि खींच कर निशान लगा दिया जाय, मिट्टी का छांदण लगा दिया जाय और खूब अच्छी तरह ढंक दिया जाय तो उनकी योनि कितने काल तक सचित्त रहती है अर्थात् कितने काल तक उगने की शक्ति रहती है ?

भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक उनकी योनि सचित्त रहती है। इसके पश्चात् उनकी योनि अर्थात् अङ्कुर उत्पन्न होने की शक्ति म्लान यानी वर्णादि से हीन हो जाती है, नष्ट हो जाती है, विध्वंस हो जाती है, बीज अबीज अर्थात् अङ्कुर उत्पन्न करने की शक्ति रहित हो जाता है अर्थात् जमीन में बोने पर भी अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता है, इसके बाद उनकी योनि का विच्छेद - विनाश हो जाता है ऐसा कहा गया है। दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी यानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरक के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा नरक के नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है।

पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि णिरयवाससयसहस्सा पण्णत्ता। तिसु णं पुढवीसु णेरइयाणं उसिण वेयणा पण्णत्ता तंजहा - पढमाए दोच्चाए तच्चाए। तिसु णं पुढवीसु णेरइया उसिण वेयणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा - पढमाए दोच्चाए तच्चाए। तओ लोए सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता तंजहा - अपइट्ठाणे णरए, जंबूद्दीवे दीवे सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे। तओ लोए समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता तंजहा- सीमंतए णं णरए, समयक्खेत्ते ईसिपब्भारा पुढवी। तओ समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ता तंजहा - कालोदे, पुक्खरोदे, सयंभुरमणे। तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता तंजहा - लवणे, कालोदे, सयंभुरमणे॥ ७३॥

कठिन शब्दार्थ - **पच्चणुब्भवमाणा** - अनुभव करते हुए, **समा** - समान, **सपक्खिं** - दोनों पसवाडों में समान, **सपडिदिसिं** - सभी दिशाओं में समान, **सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे** - सर्वार्थसिद्ध नाम का महाविमान, **सीमंतए णरए** - सीमंतक नरकावास, **समयखेत्ते** - समय क्षेत्र, **ईसिपब्भारा पुढवी** - ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, **पगईए** - स्वभाव से ही, **उदगरसेणं** - उदग रस वाले, **बहुमच्छकच्छभाइण्णा** - बहुत से मच्छ कच्छपों से भरे हुए।

भावार्थ - पांचवीं धूमप्रभा नरक में तीन लाख नरकावास कहे गये हैं। पहली, दूसरी और तीसरी इन तीन नरकों में नैरयिकों को उष्ण वेदना कही गई है और पहली दूसरी और तीसरी इन तीन नरकों में नैरयिक उष्ण वेदना का अनुभव करते हैं। लोक में तीन स्थान समान यानी एक के ऊपर एक समश्रेणी में रहे हुए दोनों पसवाड़ों में समान तथा सब दिशाओं में समान कहे गये हैं यथा - सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकावास, जम्बूद्वीप और सर्वार्थसिद्ध नाम का महाविमान। इन तीनों की लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजन की है। इसी तरह लोक में तीन एक के ऊपर एक समश्रेणी में रहे हुए दोनों पसवाड़ों में समान तथा सब दिशाओं में समान कहे गये हैं यथा - पहली नरक का सीमन्तक नामक नरकावास, समय क्षेत्र यानी अढाई द्वीप परिमाण मनुष्य लोक और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी यानी सिद्ध शिला। ये तीनों पैंतालीस लाख योजन हैं। तीन समुद्र स्वभाव से ही उदगरस वाले हैं अर्थात् तीन समुद्रों के पानी का स्वाद स्वभाव से ही पानी जैसा कहा गया है यथा - कालोदधि, पुष्कर समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्र। तीन समुद्र बहुत से मच्छ कच्छपों से भरे हुए कहे गये हैं यथा - लवणसमुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्र।

विवेचन - पहली, दूसरी, तीसरी पृथ्वी का उष्ण स्वभाव होने से तीनों नरकों के नैरयिक उष्ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदना वाले हैं अर्थात् ये नैरयिक उष्ण वेदना का अनुभव करते हुए विचरते हैं। नारकी की उष्णता का वर्णन करते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के १९वें अध्ययन की गाथा ४८ में कहा गया है -

'जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तोऽणंतगुणो तहिं''

- यहाँ मनुष्य लोक में अग्नि में जितनी उष्णता है उससे भी अनन्तगुणी उष्ण वेदना नरक भूमि में पाई जाती है।

लोक में तीन वस्तु एक लाख योजन के प्रमाण से तुल्य है। केवल प्रमाण से ही यहां समानपना नहीं कहा परन्तु '**सपक्खिं**' - सपक्ष- उत्तर और दक्षिण पसवाड़ों में भी समान है तथा '**सपडिदिसिं**'- सप्रतिदिक् - विदिशाओं में भी समान है। वे ये हैं - १. सातवीं नरक के पांच नरकावासों के बीच में अप्रतिष्ठान नरकावास है २. सब द्वीपों के मध्य में जम्बूद्वीप और ३. पांच अनुत्तर विमानों के मध्य में सर्वार्थसिद्ध विमान है। सीमंतक नाम का नरकावास पहली नरक में पहले पाथडे (प्रस्तट) में ४५ लाख योजन परिमाण वाला है। समय-काल की सत्ता से पहिचाने जाने वाला क्षेत्र समय क्षेत्र-मनुष्य लोक है। वह ४५ लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। ईषत्प्राग्भारा-ईषत्-अल्प, आठ योजन की मोटाई और ४५ लाख योजन की लम्बाई चौड़ाई से प्रागभार-पुद्गलों का समूह है जिसका ऐसी ईषत्प्राग्भारा आठवीं पृथ्वी है। शेष - अन्य पृथ्वियाँ रत्नप्रभा आदि महा प्राग्भारा है क्योंकि पहली पृथ्वी की १ लाख ८० हजार योजन की मोटाई है। दूसरी १ लाख ३२ हजार योजन की, तीसरी १ लाख २८ हजार योजन की, चौथी १ लाख २० हजार योजन की, पांचवीं १ लाख १८ हजार योजन की, छठी एक लाख १६ हजार योजन की और सातवीं पृथ्वी १ लाख आठ हजार योजन की जाड़ी (मोटी) है। विष्कंभ यानी लम्बाई चौड़ाई नरक पृथ्वियों के क्रम से १ राजू से प्रारंभ हो कर ७ राजू परिमाण है अथवा थोड़ी नीचे झुकी हुई होने से ईषत् प्राग्भारा नाम है।

पगईए - प्रकृति से - स्वभाव से उदकरस से युक्त समुद्र क्रम से दूसरा (कालोद) तीसरा (पुष्करवर) और अंतिम (स्वयंभूरमण) है। इन तीनों समुद्रों के पानी का स्वाद साधारण पानी सरीखा है। पहला (लवण), दूसरा (कालोद) और अन्तिम समुद्र (स्वयंभूरमण) जलचर जीवों की बहुलता वाला है। जब कि शेष समुद्र अल्प जलचर जीवों वाले हैं।

तओ लोए णिस्सीला णिव्वया णिग्गुणा णिम्मेरा णिपच्चक्खाण पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववज्जंति तंजहा - रायाणो मंडलिया जे य महारंभा कोडुंबी। तओ लोए सुसीला सुव्वया सग्गुणा समेरा सपच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवंति तंजहा - रायाणो परिचत्तकामभोगा सेणावई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थारो। बंभलोग लंतएसु णं कप्पेसु विमाणा तिवण्णा पण्णत्ता तंजहा - किण्हा णीला लोहिया। आणयपाणयारणच्चुएसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जसरीरा उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। तओ पण्णत्तीओ कालेणं अहिज्जंति तंजहा - चंदपण्णत्ती सूरपण्णत्ती दीवसागरपण्णत्ती॥ ७४॥

॥ तिट्ठाणस्स पढमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - णिस्सीला - निःशील-अच्छे स्वभाव से रहित, **णिव्वया** - निर्व्रता-व्रत रहित, **णिग्गुणा** - निर्गुणा-गुणों से रहित, **णिम्मेरा** - निर्मर्याद-मर्यादा रहित, **णिपच्चक्खाण पोसहोववासा**- पच्चक्खाणों तथा पौषधोपवास से रहित, **रायाणो** - राजा, **मंडलीया** - माण्डलिक राजा, **कोडुंबी** - कुटुम्बी, **सुसीला** - सुशील, **सुव्वया** - सुव्रत-श्रेष्ठ व्रतों का पालन करने वाले, **सग्गुणा** - उत्तम गुणों से युक्त, **समेरा** - मर्यादा युक्त, **परिचत्तकामभोगा** - कामभोगों को छोड़ने वाले, **पसत्थारो** - प्रशास्ता, **भवधारणिज्जा** - भवधारणीय शरीर, **दीवसागरपण्णत्ती** - द्वीप सागर प्रज्ञप्ति, **अहिज्जंति**- पढी जाती हैं।

भावार्थ - इस लोक में अच्छे स्वभाव से रहित यानी दुष्ट स्वभाव वाले प्राणातिपात आदि से अनिवृत्त अर्थात् व्रत रहित, क्षमा आदि उत्तरगुणों से रहित, मर्यादा रहित यानी स्वीकृत व्रत का पालन न करने वाले, नवकारसी, पौरिसी आदि पच्चक्खाणों से तथा पौषधोपवास से रहित तीन पुरुष काल के अवसर में काल करके नीचे सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं यथा - राजा यानी चक्रवर्ती और वासुदेव, माण्डलिक राजा और जो पञ्चेन्द्रियादि जीवों को मारने रूप महा-आरम्भ करने वाले कुटुम्बी यानी विस्तृत परिवार वाले पुरुष हैं। वे इस लोक में सुशील यानी श्रेष्ठ स्वभाव वाले, श्रेष्ठ व्रतों का पालन करने वाले, क्षमा आदि उत्तरगुणों से युक्त, मर्यादा युक्त अर्थात् स्वीकार किये हुए व्रतों का पालन करने वाले, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास करने वाले तीन पुरुष काल के समय काल करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव रूप से उत्पन्न होते हैं यथा - कामभोगों को छोड़ने वाले चक्रवर्ती आदि सेनापति और प्रशास्ता यानी धर्म शास्त्रों की शिक्षा देने वाले और धर्मशास्त्रों को पढ़ने वाले आचार्य आदि। ब्रह्मलोक और लान्तक इन दो देवलोकों में काला नीला और लाल इन तीन रंग वाले विमान कहे गये हैं। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत इन देवलोकों में देवों की भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई तीन रत्नि यानी तीन हाथ की कही गई है। चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति ये तीन प्रज्ञप्तियाँ काल से अर्थात् विशिष्ट योग्यतानुसार समय पर पढ़ाई जाती है।

विवेचन - जो जीव निःशील-दुष्ट स्वभाव वाले, निर्व्रत-व्रत रहित, निर्गुण-क्षमा आदि गुणों से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहित निर्मर्याद-मर्यादा रहित और नवकारसी आदि प्रत्याख्यानों एवं पौषधोपवास से रहित हैं वे काल के समय काल करके अधोगति-सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में उत्पन्न होते हैं जैसे - चक्रवर्ती, मांडलिक राजा एवं पंचेन्द्रिय जीवों की घात करने वाले आदि। इससे विपरीत जो जीव सुशील, सुव्रती सद्‌गुणी मर्यादावान् एवं प्रत्याख्यान पौषधोपवास आदि करने वाले हैं वे सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होते हैं जैसे - काम भोगों का त्याग करने वाले चक्रवर्ती आदि।

जो चक्रवर्ती और उनके सेनापति प्राप्त काम भोगों को छोड़कर दीक्षा अंगीकार करते हैं। वे देवलोक अथवा मोक्ष में जाते हैं। प्रशास्ता अर्थात् धर्माचार्य तो कामभोगों का त्याग करते हैं, और दीक्षा लेते हैं तभी वे धर्माचार्य कहलाते हैं। उनकी गति भी देवलोक अथवा मोक्ष है।

यहाँ तीन प्रज्ञप्तियों (चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति) के लिए जो **'कालेणं अहिज्जंति'** कहा है उसका अर्थ यह है कि ये तीन प्रज्ञप्तियां विशिष्ट योग्यता के अनुसार समय पर ही पढ़ाई जाती है। यहाँ पर कालिक उत्कालिक के विषय में कथन नहीं समझना चाहिये।

।। इति तीसरे स्थान का प्रथम उद्देशक समाप्त।।

तीसरे स्थान का दूसरा उद्देशक

तिविहे लोए पण्णत्ते तंजहा - णामलोए ठवणालोए दव्वलोए। तिविहे लोए पण्णत्ते तंजहा - णाणलोए दंसणलोए चरित्तलोए। तिविहे लोए पण्णत्ते तंजहा - उड्ढलोए अहोलोए तिरियलोए॥ ७५॥

कठिन शब्दार्थ - **दव्वलोक** - द्रव्य लोक।

भावार्थ - तीन प्रकार के लोक कहे गये हैं यथा - नाम लोक, स्थापना लोक और पञ्चास्तिकाय पिण्डरूप सो द्रव्य लोक। तीन प्रकार का लोक कहा गया है यथा - ज्ञान लोक, दर्शन लोक और चारित्र लोक। क्षायिक और क्षायोपशमिक रूप होने से ये तीनों भावलोक हैं। तीन प्रकार का लोक कहा गया है यथा - ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक।

विवेचन - ऊर्ध्वलोक देशोन सात रज्जू परिमाण है और अधोलोक सात रज्जू झाझेरा है तथा तिर्च्छा लोक अठारह सौ योजन परिमाण है।

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा - समिया चंडा जाया, अब्भंतरिया समिया, मज्झिमा चंडा, बाहिरया जाया। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सामाणियाणं देवाणं तओ परिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समिया जहेव चमरस्स, एवं तायत्तीसगाणं वि। लोगपालाणं तुंबा तुडिया पव्वा, एवं अग्गमहिसीणं वि, बलिस्स वि एवं चेव, जाव अग्गमहिसीणं। धरणस्स य सामाणिय तायत्तीसगाणं य समिया चंडा जाया। लोगपालाणं अग्गमहिसीणं ईसा तुडिया दढरहा। जहा धरणस्स तहा सेसाणं भवणवासीणं। कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा - ईसा तुडिया दढरहा, एवं सामाणिय अग्गमहिसीणं, एवं जाव गीयरइ गीयजसाणं। चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा - तुंबा तुडिया पव्वा, एवं सामाणिय अग्गमहिसीणं एवं सूरस्स वि। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा-समिया चंडा जाया, एवं जहा चमरस्स जाव अग्गमहिसीणं, एवं जाव अच्चुयस्स लोगपालाणं ॥७६॥

भावार्थ - असुरकुमारों के राजा, असुरकुमारों के इन्द्र चमर की तीन परिषदाएं कही गई हैं यथा- समिता, चण्डा और जाया। समिता आभ्यन्तर परिषदा है। इस परिषदा वाले देव देवी प्रयोजन होने पर बुलाने से आते हैं। चण्डा मध्यम परिषदा है। इसके देव देवी बुलाने पर अथवा बिना बुलाये भी आते हैं। जाया बाहरी परिषदा है। इसके देव देवी बिना बुलाये ही आते हैं। असुरकुमारों के राजा, असुरकुमारों के इन्द्र चमर के सामानिक देवों की तीन परिषदाएं कही गई हैं यथा - समिता, चण्डा और जाया। जैसी कि चमरेन्द्र की कही गई है वैसी ही जानना चाहिए। चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों के भी इसी प्रकार की तीन परिषदाएं हैं। चमरेन्द्र के लोकपाल देवों की तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा, ये तीन परिषदाएं हैं और चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों की भी इसी प्रकार तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा ये तीन परिषदाएं हैं। इसी प्रकार बलीन्द्र की, उसके सामानिक और त्रायस्त्रिंशक देवों के समिता, चण्डा और जाया ये तीन परिषदाएं हैं और उनके लोकपाल देवों की यावत् अग्रमहिषियों की तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा ये तीन परिषदाएं हैं। धरणेन्द्र उसके सामानिक और त्रायस्त्रिंशक देवों की समिता, चण्डा और जाया ये तीन परिषदाएं हैं। इनके लोकपाल और अग्रमहिषियों की ईशा, त्रुटिता और दृढ़रथा, ये तीन परिषदाएं हैं। **जैसा धरणेन्द्र का अधिकार कहा है वैसा शेष भवनपति देवों का अधिकार जान लेना चाहिए।**

पिशाचों के राजा, पिशाचों के इन्द्र की तीन परिषदाएं कही गई हैं यथा - ईशा, त्रुटिता और दृढरथा। इसके सामानिक और अग्रमहिषियों की इसी प्रकार तीन तीन परिषदाएं होती हैं। इसी प्रकार यावत् गीतरति और गीतयश तक सोलह जाति के व्यन्तर देवों के बत्तीस ही इन्द्रों का अधिकार जान लेना चाहिए। ज्योतिषी देवों के राजा, ज्योतिषी देवों के इन्द्र चन्द्रमा की तीन परिषदाएं कही गई हैं यथा - तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा। इसी प्रकार इनके सामानिक और अग्रमहिषियों तक तीन तीन परिषदाएं हैं। इसी प्रकार सूर्य का भी सारा अधिकार चन्द्रमा के समान जान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेना चाहिए। देवों के राजा, देवों के इन्द्र शक्र की तीन परिषदाएं कही गई हैं यथा - समिता, चण्डा और जाया। इस प्रकार जैसा चमरेन्द्र का अधिकार कहा वैसा ही शक्रेन्द्र के लोकपाल त्रायस्त्रिंशक यावत् अग्रमहिषियों तक जानना चाहिए और इसी प्रकार अच्युतेन्द्र, उसके सामानिक यावत् लोकपाल देवों तक सारा अधिकार कह देना चाहिए।

तओ जामा पण्णत्ता तंजहा - पढमे जामे मज्झिमे जामे पच्छिमे जामे। तिहिं जामेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए तंजहा - पढमे जामे मज्झिमे जामे पच्छिमे जामे। एवं जाव केवलणाणं उप्पाडेज्जा पढमे जामे मज्झिमे जामे पच्छिमे जामे। तओ वया पण्णत्ता तंजहा - पढमे वए मज्झिमे वए पच्छिमे वए। तिहिं वएहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए तंजहा - पढमे वए मज्झिमे वए पच्छिमे वए, एसो चेव गमो णेयव्वो जाव केवलणाणं ति॥ ७७॥

कठिन शब्दार्थ - जामा - याम (पहर), **पच्छिमे** - अंतिम, **वया** - वय (उम्र), **वएहिं** - अवस्थाओं में।

भावार्थ - तीन याम यानी पहर कहे गये हैं यथा - प्रथम याम, मध्यम याम और अन्तिम याम। प्रथम याम, मध्यम याम और अन्तिम याम इन तीन यामों में आत्मा केवलिभाषित धर्म को श्रवण कर सकता है और यावत् केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है। तीन वय यानी उम्र कही गई है यथा - प्रथम वय यानी बाल्यावस्था, मध्यम वय यानी युवावस्था और अन्तिम वय यानी वृद्धावस्था। इसी तरह प्रथम वय, मध्यम वय और अन्तिम वय इन तीनों अवस्थाओं में आत्मा केवलिभाषित धर्म श्रवण कर सकता है यावत् केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है, यह सारा अधिकार जान लेना चाहिए।

विवेचन - दिन और रात के चार चार प्रहर होते हैं किन्तु यहाँ प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या तथा पूर्व रात्रि, मध्यम रात्रि और अंतिम रात्रि, इन तीन की विवक्षा की गयी है।

तिविहा बोही पण्णत्ता तंजहा - णाण बोही दंसण बोही चरित्त बोही। तिविहा बुद्धा पण्णत्ता तंजहा - णाणबुद्धा, दंसणबुद्धा चरित्तबुद्धा, एवं मोहे मूढा। तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - इहलोग पडिबद्धा, परलोग पडिबद्धा, दुहओ पडिबद्धा। तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - पुरओ पडिबद्धा, मग्गओ पडिबद्धा, दुहओ पडिबद्धा। तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा-तुयावइत्ता पुयावइत्ता बुयावइत्ता। तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - ओवायपव्वज्जा अक्खायपव्वज्जा संगारपव्वज्जा। ७८।

कठिन शब्दार्थ - बोही - बोधि, **पव्वज्जा** - प्रव्रज्या, **इहलोगपडिबद्धा** - इहलोक प्रतिबद्धा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परलोगपडिबुद्धा - परलोक प्रतिबद्धा, **दुहओपडिबद्धा** - उभय प्रतिबद्धा, **पुरओ** - पुरतः, **मग्गओ** - मार्गतः, **तुयावइत्ता** - पीड़ा उत्पन्न करके, **पुयावइत्ता** - एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा कर, **बुयावइत्ता** - बातचीत करके, **ओवायपव्वज्जा** - अवपात प्रव्रज्या, **अक्खाय पव्वएज्जा** - आख्यात प्रव्रज्या, **संगारपव्वज्जा** - संकेत प्रव्रज्या।

भावार्थ - तीन प्रकार की बोधि कही गई है यथा - ज्ञान बोधि, दर्शन बोधि और चारित्र बोधि। तीन प्रकार के बुद्ध कहे गये हैं यथा - ज्ञान बुद्ध, दर्शन बुद्ध और चारित्र बुद्ध। इसी प्रकार मोह तीन प्रकार का कहा गया है यथा - ज्ञान मोह, दर्शन मोह और चारित्र मोह। इसी प्रकार मूढ भी तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा - ज्ञान मूढ, दर्शन मूढ और चारित्र मूढ। तीन प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है यथा- इस लोक के सुख के लिए प्रव्रज्या यानी दीक्षा लेना सो इहलोक प्रतिबद्धा, परलोक में देवादि के कामभोगों की प्राप्ति के लिए प्रव्रज्या लेना सो परलोक प्रतिबद्धा और इस लोक और परलोक दोनों के सुख की प्राप्ति की इच्छा से दीक्षा लेना सो उभय लोक प्रतिबद्धा प्रव्रज्या कहलाती है। तीन प्रकार की प्रव्रज्या कही गई हैं यथा - पुरतः प्रतिबद्धा यानी दीक्षा लेकर शिष्यादि के मोह में बंधा रहना, मार्गतः प्रतिबद्धा यानी दीक्षा लेकर अपने पूर्व कुटुम्बीजन एवं स्वजन आदि के मोह में बंधा रहना और उभय प्रतिबद्धा यानी शिष्य और स्वजनादि दोनों के मोह में बंधे रहना। तीन प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है यथा - किसी को शारीरिक मानसिक पीड़ा उत्पन्न करके दीक्षा ग्रहण करवाना जैसे मेतार्य को देव ने पीड़ा उत्पन्न करके दीक्षा ग्रहण करवाई थी। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर दीक्षा देना, जैसे कि आर्यरक्षित को दी गई। उसके साथ बातचीत करके दीक्षा देना, जैसे कि गौतमस्वामी ने किसान को दीक्षा दी थी। तीन प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है यथा - अवपात प्रव्रज्या यानी दीक्षा लेकर मैं गुरु की सेवा करूँगा, इस विचार से दीक्षा लेना, आख्यात प्रव्रज्या यानी धर्मदेशना देकर फिर दीक्षा लेना, जैसे कि फल्गुरक्षित ने अपने कुटुम्बी जनों को धर्मदेशना देकर फिर दीक्षा ली थी और संकेत प्रव्रज्या यानी पहले किये संकेत के अनुसार दीक्षा लेना अथवा यदि तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी दीक्षा लूँगा।

विवेचन - बोधि अर्थात् - सम्यग् बोध, यथार्थ बोध। यहां चारित्र बोधि का फल होने से बोधि कहा गया है। अथवा जीव का उपयोग रूप होने से चारित्र बोधिरूप है। बोधि विशिष्ट पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं - ज्ञान बुद्ध, दर्शन बुद्ध, चारित्र बुद्ध। इसी प्रकार से मोक्ष और मूढ भी तीन प्रकार के कहे हैं।

प्रव्रज्या - प्रव्रजन-गमन यानी पाप से (पाप को छोड़कर) चारित्र व्यापारों की ओर जाना प्रव्रज्या है। इहलोक प्रतिबद्ध दीक्षा ऐहिक भोजन आदि कार्य के अर्थियों को होती है। परलोक प्रतिबद्ध दीक्षा आगामी आने वाले जन्म में काम आदि की इच्छा वाले को होती है और द्विधा प्रतिबद्ध-इहलोक और परलोक प्रतिबद्ध दीक्षा उभयार्थी को होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ णियंठा णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता तंजहा - पुलाए णियंठे सिणाए। तओ णियंठा सण्ण णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता तंजहा - बउसे पडिसेवणा कुसीले कसायकुसीले। तओ सेह भूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - उक्कोसा मज्झिमा जहण्णा, उक्कोसा छम्मासा, मज्झिमा चउमासा, जहण्णा सत्तराइंदिया। तओ थेरभूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - जाइथेरे, सुयथेरे, परियायथेरे। सट्ठिवास जाए समणे णिग्गंथे जाइथेरे, ठाणंगसमवायधरे णं समणे णिग्गंथे सुयथेरे, वीसवासपरियाए णं समणे णिग्गंथे परियाय थेरे॥ ७१॥

कठिन शब्दार्थ - णियंठा - निर्ग्रन्थ, **णोसण्णोवउत्ता** - नो संज्ञोपयुक्त, **पुलाए** - पुलाक, **सिणाए**- स्नातक, **सण्ण णोसण्णोवउत्ता** - संज्ञा नो संज्ञोपयुक्त, **बउसे** - बकुश, **पडिसेवणाकुसीले**- प्रतिसेवना कुशील, **कसायकुसीले** - कषाय कुशील, **सेहभूमिओ** - शैक्ष भूमियाँ, **सत्तराइंदिया** - सात दिन रात, **थेरभूमीओ** - स्थविर भूमियाँ, **जाइथेरे** - जाति स्थविर, **सुयथेरे** - श्रुत स्थविर, **परियायथेरे** - पर्याय स्थविर, **सट्ठिवास जाए** - साठ वर्ष की उम्र वाले, **ठाणंगसमवायधरे** - ठाणांग समवायांग के अर्थ को धारण करने वाले, **वीसवास परियाए** - बीस वर्ष की दीक्षा वाले।

भावार्थ - तीन निर्ग्रन्थ नोसंज्ञोपयुक्त कहे गये हैं अर्थात् वे पहले भोगे हुए आहार आदि का स्मरण और आगामी आहार आदि की चिन्ता नहीं करते हैं। वे ये हैं - पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक। तीन निर्ग्रन्थ संज्ञानोसंज्ञोपयुक्त कहे गये हैं यथा - बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। तीन शैक्षभूमियाँ कही गई हैं यथा - उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उत्कृष्ट छह महीने, मध्यम चार महीने और जघन्य सात दिन रात। तीन स्थविर भूमियाँ यानी स्थविर पदवियाँ कही गई है यथा - जाति स्थविर, श्रुत स्थविर और पर्याय स्थविर यानी प्रव्रज्या स्थविर। साठ वर्ष की उम्र वाले श्रमण निर्ग्रन्थ जाति स्थविर कहलाते हैं और ठाणाङ्ग और समवायाङ्ग सूत्र के अर्थ को धारण करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थ श्रुत स्थविर कहलाते हैं और बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या स्थविर कहलाते हैं।

विवेचन - ग्रंथ दो प्रकार का है - आभ्यन्तर और बाह्य। मिथ्यात्व आदि आभ्यन्तर ग्रन्थ है और धर्मोपकरण के सिवाय शेष धन धान्यादि बाह्य ग्रन्थ है। इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ से जो मुक्त है वह 'निर्ग्रन्थ' कहा जाता है

संज्ञा में - आहारादि की इच्छा में, पूर्व अनुभव किये हुए (भोगे हुए) आहारादि का स्मरण तथा भविष्य के आहार आदि की चिंता से रहित जीव 'नो संज्ञोपयुक्त' कहलाते हैं। पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक नो संज्ञोपयुक्त होते हैं। पुलाक आदि का अर्थ इस प्रकार है -

पुलाक - दाने से रहित धान्य की भूसी को पुलाक कहते हैं। वह निःसार होती है। तप और श्रुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के प्रभाव से प्राप्त संघादि के प्रयोजन से बल (सेना) वाहन सहित चक्रवर्ती आदि के मान को मर्दन करने वाली लब्धि के प्रयोग और ज्ञानादि के अतिचारों के सेवन द्वारा संयम को पुलाक की तरह निस्सार करने वाला साधु पुलाक कहा जाता है।

निर्ग्रन्थ – ग्रन्थ का अर्थ मोह है। मोह से रहित साधु निर्ग्रन्थ कहलाता है। उपशान्त मोह और क्षीण मोह के भेद से निर्ग्रन्थ के दो भेद हैं।

स्नातक – शुक्ल ध्यान द्वारा सम्पूर्ण घाती कर्मों के समूह को क्षय करके जो शुद्ध हुए हैं वे स्नातक कहलाते हैं।

सण्ण णो सण्णोवउत्त (संज्ञा नो संज्ञोपयुक्त) – संज्ञा यानी आहारादि की इच्छा और नो संज्ञा यानी आहार आदि की इच्छा से रहित। संज्ञा और नो संज्ञा के उपयोग वाले जीव संज्ञा नो संज्ञोपयुक्त कहलाते हैं। बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील संज्ञा नो संज्ञोपयुक्त कहे गये हैं।

बकुश – बकुश शब्द का अर्थ है शबल अर्थात् चित्र वर्ण (चितकबरा)। शरीर और उपकरण की शोभा करने से जिसका चारित्र शुद्धि और दोषों से मिला हुआ अतएव अनेक प्रकार का है वह बकुश कहा जाता है।

प्रतिसेवनाकुशील – चारित्र के प्रति अभिमुख होते हुए भी अजितेन्द्रिय एवं किसी तरह पिण्ड विशुद्धि, समिति, भावना, तप, प्रतिमा आदि उत्तरगुणों की विराधना करने से सर्वज्ञ की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला प्रतिसेवना कुशील कहलाता है।

कषाय कुशील – संज्वलन कषाय के उदय से सकषाय चारित्र वाला साधु कषाय कुशील कहा जाता है।

शैक्ष भूमि – दीक्षा देने के बाद महाव्रत आरोपण करना यानी बड़ी दीक्षा देना '**शैक्षभूमि**' कहलाती है। जघन्य सात दिन-रात, मध्यम चार महीने और उत्कृष्ट छह महीने, ये क्रमशः तीन प्रकार की शैक्ष भूमियाँ कही गयी हैं।

स्थविर – जो संयम से डिगते हुए को संयम में स्थिर करे उसे '**स्थविर**' कहते हैं। स्थविर के तीन भेद इस प्रकार हैं –

१. वयः स्थविर (जाति स्थविर) – साठ वर्ष की अवस्था के साधु वयः स्थविर कहलाते हैं। इनको जाति स्थविर या जन्म स्थविर भी कहते हैं।

२. श्रुत स्थविर – श्री स्थानांग (ठाणांग) सूत्र और समवायांग सूत्र के ज्ञाता साधु श्रुत स्थविर कहलाते हैं।

३. प्रव्रज्या स्थविर – बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले साधु प्रव्रज्या स्थविर कहलाते हैं। इनको दीक्षा स्थविर भी कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा – सुमणे दुम्मणे णोसुमणे णोदुमणे। तओ पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा – गंता णामेगे सुमणे भवइ, गंता णामेगे दुम्मणे भवइ, गंता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवइ। तओ पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा – जामि एगे सुमणे भवइ, जामि एगे दुम्मणे भवइ, जामि एगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवइ। एवं जाइस्सामि एगे सुमणे भवइ। तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – अगंता णामेगे सुमणे भवइ। तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – ण जामि एगे सुमणे भवइ। तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – ण जाइस्सामि एगे सुमणे भवइ। एवं आगंता णामेगे सुमणे भवइ। एमि एगे सुमणे भवइ। एस्सामि एगे सुमणे भवइ, एवं एएणं अहिलावेणं

गंता य अगंता य, आगंता खलु तहा अणागंता।
चिट्ठित्तमचिट्ठित्ता, णिसिइत्ता चेव णो चेव।। १ ॥
हंता य अहंता य, छिंदित्ता खलु तहा अच्छिंदित्ता।
बूइत्ता अबूइत्ता य, भासित्ता चेव णो चेव।। २ ॥
दच्चा य अदच्चा य, भुंजित्ता खलु तहा अभुंजित्ता।
लंभित्ता अलंभित्ता य, पिइत्ता चेव णो चेव।। ३ ॥
सुइत्ता असुइत्ता य, जुज्झित्ता खलु तहा अजुज्झित्ता।
जइत्ता अजइत्ता य, पराजिणित्ता चेव णो चेव।। ४ ।।
सद्दा रूवा गंधा रसा य, फासा तहेव ठाणा य।
णिस्सीलस्स गरहिया, पसत्था पुण सीलवंतस्स।। ५ ॥

एवमिक्केक्के तिण्णि उ तिण्णि उ आलावगा भाणियव्वा। सद्दं सुणित्ता णामेगे सुमणे भवइ, एवं सुणेमीति, सुणिस्सामीति। एवं असुणित्ता णामेगे सुमणे भवइ, ण सुणेमीति, ण सुणिस्सामीति। एवं रूवाइं, गंधाइं, रसाइं, फासाइं, एक्केक्के छ छ आलावगा भाणियव्वा। १२७ आलावगा भवंति। तओ ठाणा णिस्सीलस्स णिव्वयस्स णिग्गुणस्स णिम्मेरस्स णिपच्चक्खाण पोसहोववासस्स गरहिया भवंति तंजहा – अस्सिं लोए गरहिए भवइ, उववाए गरहिए भवइ, आयाई गरहिया भवइ । तओ ठाणा सुसीलस्स सुव्वयस्स सुगुणस्स सम्मेरस्स सपच्चक्खाण पोसहोववासस्स पसत्था भवंति तंजहा – अस्सिं लोए पसत्थे भवइ, उववाए पसत्थे भवइ, आजाई पसत्था भवइ।८०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सुमणे - सुमन (हर्षवान्), **दुम्मणे** - दुर्मन-बुरे मन वाला, **णो सुमणे णो दुम्मणे** - नो सुमन नो दुर्मन-मध्यस्थभाव वाला, **गंता** - जाकर, **जामि** - जाता हूँ, **जाइस्सामि** - जाऊँगा, **आगंता** - आ कर, **चिट्ठित्तं** - ठहर कर, **णिसिइत्ता** - बैठ कर, **हंता** - नष्ट कर, **छिंदित्ता** - छेदन कर, **बुइत्ता** - बोल कर, **दच्चा** - दे कर, **भुंजित्ता** - खा कर, **लंभित्ता** - मिल कर, **पिइत्ता** - पी कर, **सुइत्ता** - सो कर, **जुज्झित्ता** - लड़ कर, **जइत्ता** - जीत कर, **पराजिणित्ता** - पराजित कर, **गरहिया** - गर्हित, **पसत्था** - प्रशस्त, **आजाई** - आजाति- जन्म।

भावार्थ - तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - सुमन अर्थात् हर्षवान्, दुर्मन अर्थात् बुरे मन वाला और नोसुमन नोदुर्मन अर्थात् मध्यस्थ भाव वाला। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई पुरुष विहार क्षेत्र आदि में जाकर सुमन होता है अर्थात् हर्षित होता है, कोई पुरुष विहार क्षेत्र आदि में जाकर दुर्मन होता है अर्थात् शोक करता है और कोई पुरुष विहार क्षेत्र आदि में जाकर नोसुमन नोदुर्मन होता है अर्थात् न हर्ष करता है न शोक करता है किन्तु मध्यस्थ रहता है। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - विहार क्षेत्र आदि में जाता हूँ ऐसा विचार कर कोई पुरुष सुमन वाला होता है, कोई पुरुष दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। इसी प्रकार 'जाऊँगा' ऐसा विचार कर कोई सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई पुरुष विहार क्षेत्रादि में न जाकर सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - मैं विहारक्षेत्र आदि में नहीं जाता हूँ ऐसा विचार कर कोई पुरुष सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - मैं विहार क्षेत्र आदि में नहीं जाऊँगा ऐसा सोच कर कोई सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। इसी प्रकार विहार-क्षेत्र आदि में आकर कोई सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। इस प्रकार इस अभिलापक के समान प्रत्येक में तीन तीन आलापक कह देने चाहिए। जैसे कि जाना, न जाना, आना, न आना, ठहरना, न ठहरना, बैठना, न बैठना, किसी वस्तु को नष्ट करना, किसी वस्तु को नष्ट न करना, छेदन करना, छेदन न करना, बोलना, न बोलना, संभाषण करना, सम्भाषण न करना, देना न देना, खाना न खाना, मिलना न मिलना, पीना न पीना, सोना न सोना, लड़ना न लड़ना, जीतना न जीतना, पराजित करना पराजित न करना। इस प्रकार इन प्रत्येक पर भूतकाल, भविष्यत् काल और वर्तमान काल की अपेक्षा तीन तीन आलापक कह देने चाहिए। शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श ये पांच स्थान शुभ भाव रहित पुरुष के लिए गर्हित होते हैं और शुभ भाव युक्त पुरुष के लिए प्रशस्त होते हैं। इन पर तीन तीन आलापक इस प्रकार होते हैं। यथा - शब्द सुनकर कोई सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। इसी प्रकार मैं शब्द सुनता हूँ ऐसा विचार कर कोई सुमन वाला होता है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। मैं शब्द सुनूँगा ऐसा विचार कर कोई सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। इसी प्रकार न सुन करके, नहीं सुनता हूँ ऐसा विचार करके और न सुनूँगा ऐसा विचार करके कोई सुमन वाला होता है, कोई दुर्मन वाला होता है और कोई मध्यस्थ रहता है। इसी प्रकार रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन प्रत्येक में छह छह आलापक कह देने चाहिए। कुल १२७ आलापक होते हैं।

शीलरहित, व्रतरहित यानी प्राणातिपात आदि से अनिवृत्त, निर्गुण यानी उत्तरगुणों से रहित, मर्यादा से रहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित पुरुष के लिए तीन स्थान गर्हित होते हैं यथा - यह लोक यानी जन्म गर्हित यानी निन्दित होता है, गर्हित स्थान में यानी नरक में अथवा किल्विषी देवादि में उपपात - जन्म होता है और आजाति यानी वहां से चलने के बाद मनुष्यों में नीचकुल में और तिर्यञ्चों में जन्म गर्हित होता है। शीलसहित, व्रत सहित, उत्तरगुण सहित, मर्यादा सहित और प्रत्याख्यान पौषधोपवास सहित पुरुष के लिए तीन स्थान प्रशस्त होते हैं यथा - यह लोक यानी जन्म प्रशस्त होता है, उपपात प्रशस्त होता है अर्थात् उत्तम देवलोकों में जन्म होता है और वहाँ से चवने के बाद उत्तम मनुष्य कुल में जन्म होता है।

तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा। तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी य, अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - पज्जत्तगा अपज्जत्तगा णोपज्जत्तगा णोअपज्जत्तगा। एवं सम्मदिट्ठी, परित्ता पज्जत्तग, सुहुम, सण्णि, भविया य॥ ८१॥

कठिन शब्दार्थ - संसारसमावण्णगा - संसार समापन्नक-संसारी, **सव्वजीवा** - सब जीव, **णोपज्जत्तगा णो अपज्जत्तगा** - नो पर्याप्तक नो अपर्याप्तक।

भावार्थ - संसारी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। सब जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सममिथ्यादृष्टि यानी मिश्रदृष्टि। अथवा सब जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक नोअपर्याप्तक अर्थात् सिद्ध भगवान्। इस प्रकार समदृष्टि, परित्त यानी प्रत्येक शरीरी, पर्याप्तक, सूक्ष्म, संज्ञी और भव्य। इन छह की अपेक्षा सब जीवों के तीन तीन भेद कहने चाहिए। इन सब में तीसरे भेद में सिद्ध जीव कहने चाहिए।

विवेचन - वेदमोहनीय के उदय से जीवों में तीन प्रकार की कामनायें उत्पन्न होती है। स्त्री वेद के उदय से स्त्री, पुरुष वेद के उदय से पुरुष और नपुंसक वेद के उदय से जीव नपुंसक बनता है। यहाँ परित्त शब्द का अर्थ प्रत्येक शरीर किया है जबकि प्रज्ञापना सूत्र की टीका में परित्त शब्द का अर्थ परित्त संसारी किया है। इस तरह परित्त के दो अर्थ होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिविहा लोगठिई पण्णत्ता तंजहा - आगासपइट्ठिए वाए, वायपइट्ठिए उदही, उदहिपइट्ठिया पुढवी। तओ दिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा - उड्ढा, अहो, तिरिया। तिहिं दिसाहिं जीवाणं गई पवत्तइ - उड्ढाए अहोए तिरियाए। एवं आगई, वक्कंती, आहारे, वुड्ढी, णिवुड्ढी, गइपरियाए, समुग्घाए, कालसंजोगे, दंसणाभिगमे, णाणाभिगमे, जीवाभिगमे। तिहिं दिसाहिं जीवाणं अजीवाभिगमे पण्णत्ते तंजहा - उड्ढाए अहोए तिरियाए। एवं पंचिंदियतिरक्खजोणियाणं, एवं मणुस्साणं वि॥ ८२॥

कठिन शब्दार्थ - लोगठिई - लोक स्थिति, **वाए** - वायु, **आगासपइट्ठिए** - आकाश प्रतिष्ठित, **उदही** - पानी, **वायपइट्ठिए** - वायु प्रतिष्ठित, **पुढवी** - पृथ्वी, **उदहिपइट्ठिया** - समुद्र प्रतिष्ठित, **दिसाओ**- दिशाएँ, **उड्ढो** - ऊर्ध्व, **अहो** - अधो, **तिरियाए** - तिर्यक्, **वक्कंती** - उत्पत्ति, **वुड्ढी** - वृद्धि, **णिवुड्ढी** - निवृद्धि-हानि, **गइपरियाए** - गति पर्याय, **कालसंजोगे** - काल संयोग (मरण), **दंसणाभिगमे** - दर्शनाभिगम, **णाणाभिगमे** - ज्ञानाभिगम, **जीवाभिगमे** - जीवाभिगम-जीवों का ज्ञान, **अजीवाभिगमे** - अजीवाभिगम-अजीवों का ज्ञान।

भावार्थ - तीन प्रकार की लोकस्थिति यानी लोक व्यवस्था कही गई है यथा - वायु, आकाश प्रतिष्ठित-आकाश के आधार पर रही हुई है, पानी वायु प्रतिष्ठित है और पृथ्वी समुद्र प्रतिष्ठित है। तीन दिशाएं कही गई हैं यथा - ऊर्ध्व दिशा, अधो दिशा और तिर्यक् दिशा। ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् इन तीन दिशाओं में जीवों की गति होती है। इसी प्रकार आगति, उत्पत्ति, आहार, वृद्धि, निवृद्धि यानी हानि, गतिपर्याय यानी हलन चलन, समुद्घात, कालसंयोग यानी मरण, दर्शनाभिगम यानी अवधिदर्शन आदि द्वारा बोध होना, ज्ञानाभिगम और जीवाभिगम यानी जीवों का ज्ञान होना। ये सब बातें उपरोक्त तीन दिशाओं में होती है। इसी प्रकार ऊर्ध्व दिशा, अधो दिशा और तिर्यक् दिशा इन तीन दिशाओं में जीवों को अजीवों का ज्ञान होता हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को उपरोक्त तीन दिशाओं में रहे हुए पदार्थों का ज्ञान होता है।

विवेचन - तीसरा स्थान होने से सूत्रकार ने यहां लोक स्थिति तीन प्रकार की कही है। भगवती सूत्र के शतक १ उद्देशक ६ में लोक स्थिति आठ प्रकार की कही है। विशेष जानकारी के लिये जिज्ञासुओं को वहां देखना चाहिये।

दिशा का स्वरूप बताते हुए टीकाकार ने कहा है - **'दिश्यते - व्यपदिश्यते पूर्वादितया वस्त्वनयेति दिक्'** - जिसके द्वारा पूर्व आदि रूपों से वस्तु व्यवहार (निर्देश) किया जाता है वह दिशा है।

तिर्यक् लोक के मध्य में रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर मेरु पर्वत के बहुमध्य देश भाग में सबसे छोटे दो प्रतर हैं। उसके ऊपर के प्रतर के चार प्रदेश गोस्तनाकार है और नीचे के प्रतर के भी चार प्रदेश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोस्तनाकार है इस प्रकार आठ प्रदेशात्मक चौरस रुचक है वहाँ से दिशा और विदिशा की उत्पत्ति होती है जिसकी स्थापना इस प्रकार है -

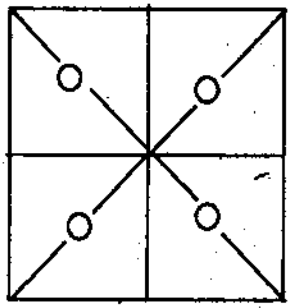

इसमें पूर्व आदि चारों महादिशाएं द्वि प्रदेश 0 वाली आदि में और फिर दो प्रदेश की वृद्धि से होती है और अनदिशा (विदिशा) तो एक प्रदेश वाली और अनुत्तर यानी प्रदेश की वृद्धि से रहित एक प्रदेश वाली है। ऊर्ध्व दिशा और अधोदिशा प्रारंभ में चार प्रदेश युक्त होती है।

पूर्व आदि चार महादिशाएं शकट-गाड़ी के उर्द्धि (ऊंध) के आकार से संस्थित है ईशानादि चार विदिशाएं मुक्तावली-मोती के हार की तरह संस्थित-रही हुई है और ऊर्ध्व तथा अधोदिशा ये दो दिशाएं रुचकाकार संस्थित है। इन दश दिशाओं के नाम इस प्रकार हैं-

१. ऐन्द्री (पूर्व) २. आग्नेयी (पूर्व दक्षिण कोण) ३. यमा (दक्षिण) ४. नैऋती (दक्षिण पश्चिम कोण) ५. वारुणी (पश्चिम) ६. वायव्य (पश्चिम उत्तर कोण) ७. सोमा (उत्तर) ८. ईशान (उत्तर पूर्व कोण) ९. विमला (ऊर्ध्व) १०. तमा (अधो)।

भाव दिशाएं अठारह प्रकार की होती है - १. पृथ्वी २. जल ३. अग्नि ४. वायु ५. मूलबीज ६. स्कंध बीज ७. अग्रबीज ८. पर्वबीज ९. बेइन्द्रिय १०. तेइन्द्रिय ११. चउरेन्द्रिय १२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच १३. नारकी १४. देव १५. सम्मूर्च्छिमा मनुष्य १६. कर्म भूमिज मनुष्य १७. अकर्म भूमिज मनुष्य १८. अन्तरद्वीपज मनुष्य। ये १८ संसारी जीवों की भावदिशाएं कही है जिनमें जीवों का गमनागमन होता है।

तिविहा तसा पण्णत्ता तंजहा - तेउकाइया, वाउकाइया, उराला तसा पाणा, तिविहा थावरा पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया आउकाइया वणस्सइकाइया। तओ अच्छेज्जा पण्णत्ता तंजहा - समए पएसे परमाणू। एवं अभेज्जा अडज्झा अगिज्झा अणड्डा अमज्झा अपएसा। तओ अविभाइया पण्णत्ता तंजहा - समए पएसे परमाणू।। ८३ ।।

कठिन शब्दार्थ - **उराला** - स्थूल, **पएसे** - प्रदेश, **अच्छेजा** - अच्छेदय, **अभेज्जा** - अभेदय, **अडज्झा** - अदाह्य, **अगिज्झा** - अग्राह्य, **अणड्डा** - अनर्द्धा, **अमज्झा** - अमध्य, **अपएसा** - अप्रदेश, **अविभाइया** - अविभाज्य।

भावार्थ - त्रस जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - अग्निकायिक जीव वायुकायिक जीव और स्थूल त्रस प्राणी बेइन्द्रिय आदि। स्थावर तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक। समय, प्रदेश और परमाणु ये तीन शस्त्र आदि द्वारा अच्छेदय यानी दो टुकड़े न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने योग्य, अभेद्य यानी अनेक टुकड़े न करने योग्य है। अदाह्य हैं यानी जलाए नहीं जा सकते हैं। अग्राह्य यानी हाथ आदि द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं अनर्द्धा यानी इनके आधे भाग नहीं किये जा सकते हैं। ये अमध्य हैं यानी इनके तीन विभाग नहीं हो सकते हैं और ये अप्रदेशी हैं। इसीलिए समय, प्रदेश और परमाणु ये तीनों अविभाज्य हैं अर्थात् इनका विभाग नहीं किया जा सकता है।

विवेचन - अग्निकायिक और वायुकायिक जीव गति की अपेक्षा त्रस कहे गये हैं और बेइन्द्रिय आदि त्रस नामकर्म के उदय से त्रस कहे गये हैं।

तीन अच्छेद्य कहे हैं - १. समय २. प्रदेश और ३. परमाणु।

१. समय - काल के अत्यंत सूक्ष्म अंश को जिसका विभाग न हो सके, समय कहते हैं।

२. प्रदेश - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के स्कन्ध या देश से मिले हुए अति सूक्ष्म निरवयव अंश को प्रदेश कहते हैं।

३. परमाणु - स्कन्ध के देश से अलग हुए निरंश पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

इन तीनों का छेदन, भेदन, दहन, ग्रहण नहीं हो सकता । दो विभाग न होने से ये अविभागी हैं । तीन विभाग न हो सकने से ये मध्य रहित हैं । ये निरवयव हैं इसलिए इनका विभाग भी संभव नहीं है।

अज्जो त्ति समणे भगवं महावीरे गोयमाई समणे णिग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी- किंभया पाणा ? समणाउसो ! गोयमाई समणा णिग्गंथा समणं भगवं महावीरं उवसंकमंति, उवसंकमित्ता वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - णो खलु वयं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो वा पासामो वा, तं जइ णं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं णो गिलायंति परिकहित्तए तं इच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए। अज्जो त्ति समणे भगवं महावीरे गोयमाई समणे णिग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी - दुक्खभया पाणा समणाउसो ! से णं भंते ! दुक्खे केण कडे ? जीवेणं कडे पमाएण। से णं भंते ! दुक्खे कहं वेइज्जइ ? अपमाएणं॥ ८४॥

कठिन शब्दार्थ - **आमंतेत्ता** - आमंत्रित करके, **उवसंकमंति** - आये, **किंभया** - किसका भय है ?, **परिकहित्तए** - फरमाने में, **गिलायंति** - कष्ट होता हो, **अंतिए** - पास से, **जाणित्तए** - जानना, **केण** - किसने, **कडे** - पैदा किया है, **पमाएण** - प्रमाद से, **वेइज्जइ** - दूर किया जाता है।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमंत्रित करके इस प्रकार कहा कि हे आर्यो ! हे आयुष्मन् ! श्रमणो ! प्राणियों को किसका भय है ? भगवान् के इन वचनों को सुन कर गौतम स्वामी आदि श्रमण निर्ग्रन्थ, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के पास आये, आकर उन्होंने वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि हे देवानुप्रिय ! हम लोग आपके प्रश्न का यथार्थ उत्तर नहीं जानते हैं और नहीं देखते हैं। इसलिए हे देवानुप्रिय ! यदि इस प्रश्न का उत्तर फरमाने में आपको कष्ट न होता हो तो हम लोग इस प्रश्न का उत्तर आपके पास से जानना चाहते हैं।

तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को सम्बोधित करके इस प्रकार फरमाया कि हे आर्यो ! हे आयुष्मन् श्रमणो ! प्राणियों को मरण आदि रूप दुःख से भय लगता है। फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! दुःख को किसने पैदा किया है ? भगवान् ने फरमाया कि अज्ञान आदि प्रमाद के वशीभूत होकर इस जीव ने ही दुःख को पैदा किया है। तब गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! दुःख कैसे दूर किया जाता है ? भगवान् ने फरमाया कि अप्रमाद से यानी प्रमाद का त्याग करके कर्मों का क्षय करने से दुःख दूर होता है।

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दुःख का मूल कारण प्रमाद कहा है। आचार्यों ने प्रमाद के आठ भेद इस प्रकार बताये हैं -

पमाओ य मुणिंदेहिं भणिओ अट्ठ भेयओ,
अण्णाणं संसओ चेव, मिच्छाणाणं तहेव य।
रागो दोसो मइब्भंसो धम्मंमि य अणायरो,
जोगाणं दुप्पणीहाणं, अट्ठहा वज्जियव्वओ।।

अर्थात् मुनिवृन्दों ने प्रमाद के आठ रूप माने हैं - १. अज्ञान २. संशय ३. मिथ्याज्ञान ४. राग ५. द्वेष ६. मति भ्रंश (बुद्धि का विनाश, विपरीत मति) ७. धर्म में अनादर (अरुचि) और ८. योगों का दुष्प्रणिधान-मन, वचन और काय रूप योग की दुष्प्रवृत्ति। इन आठ प्रकार के प्रमादों का त्याग करने से दुःख का नाश होता है अर्थात् अप्रमाद सेवन से सुख की प्राप्ति होती है।

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति कहण्णं समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जइ ? तत्थ जा सा कडा कज्जइ णो तं पुच्छंति, तत्थ जा सा कडा णो कज्जइ णो तं पुच्छंति, तत्थ जा सा अकडा णो कज्जइ णो तं पुच्छंति, तत्थ जा सा अकडा कज्जइ तं पुच्छंति, से एवं वत्तव्वं सिया ? अकिच्चं दुक्खं अफुसं दुक्खं अकज्जमाणकडं दुक्खं अकट्टु अकट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयणं वेदेंति त्ति वत्तव्वं। जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु। अहं पुण एवं आइक्खामि एवं भासामि एवं पण्णवेमि एवं परूवेमि - किच्चं दुक्खं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फुसं दुक्खं कज्जमाणकडं दुक्खं कट्टु कट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयणं वेयंति त्ति वत्तव्वं सिया॥ ८५॥

।। तइय ठाणस्स बीओ उद्देसओ समत्तो ।।

कठिन शब्दार्थ - **अण्णउत्थिया** - अन्यतीर्थिक, **आइक्खंति** - कहते हैं, **भासंति** - बोलते हैं, **पण्णवेंति** - प्रकट करते हैं, **परूवेंति** - प्ररूपणा करते हैं, **किरिया** - क्रिया, **कहण्णं** - कैसे, **कज्जइ**- की जाती है, **जा** - जो, **कडा** - किया हुआ, **पुच्छंति** - पूछते हैं, **अकडा** - अकृत, **वत्तव्वं** - कहना चाहिये, **अकज्जमाण कडं** - अतीत में किया हुआ और वर्तमान में किया जाता हुआ, **पाणा** - प्राण, **भूया**- भूत, **जीवा** - जीव, **सत्ता** - सत्त्व, **आहंसु** - कहते हैं।

भावार्थ - हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, बोलते हैं, प्रकट करते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि श्रमण निर्ग्रन्थों के मत में क्रिया कैसे की जाती है अर्थात् कर्म दुःखरूप कैसे होते हैं ? इस विषय में चार भङ्ग होते हैं यथा - १. क्या किया हुआ कर्म दुःख रूप होता है ? २. क्या किया हुआ कर्म दुःख रूप नहीं होता है ? ३. क्या नहीं किया हुआ कर्म दुःख रूप होता है ? ४. क्या अकृत कर्म दुःख रूप नहीं होता है ? इन चारों भङ्गों में जो किया हुआ कर्म दुःख रूप होता है उसके विषय में वे अन्यतीर्थिक नहीं पूछते हैं। जो किये हुए कर्म दुःख रूप होते हैं, उसके विषय में भी वे नहीं पूछते हैं। जो अकृत कर्म दुःख रूप नहीं होते हैं उसके विषय में वे नहीं पूछते हैं किन्तु जो अकृत कर्म है वह दुःख रूप होता है उसके विषय में वे पूछते हैं कि क्या आप भी ऐसा ही कहते हैं ? वे अन्यतीर्थिक लोग उपरोक्त चार भङ्गों में से तीसरे भङ्ग को मानते हैं। इसलिए वे इसी के विषय में पूछते हैं कि यदि श्रमण निर्ग्रन्थ भी ऐसा ही मानें तो अच्छा हो। क्योंकि हमारी और उनकी मान्यता एक हो जाय। इसलिए इस प्रकार कहना चाहिए कि भविष्यत् काल में किया जाने वाला और भविष्यत् काल में स्पर्श करने वाला तथा अतीत काल में किया हुआ और वर्तमान में किया जाता हुआ दुःख बिना किये ही प्राण भूत जीव सत्त्व उसकी वेदना को वेदते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि वे अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं। मैं इस प्रकार कहता हूँ बोलता हूँ प्रकट करता हूँ और प्ररूपणा करता हूँ कि भविष्यत् काल में करने योग्य और स्पर्श करने योग्य और किया जाता हुआ तथा किया हुआ दुःख करके प्राण भूत जीव सत्त्व उसकी वेदना को वेदते हैं इस प्रकार कहना चाहिए।

विवेचन - यहां अन्यतीर्थिक से आशय है-विभंगज्ञान वाले तापस। '**आइक्खंति**' आदि एकार्थक शब्दों का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है -

आख्यान्ति - थोड़ा कहते हैं **भाषन्ते** - स्पष्ट वाणी से बोलते हैं **प्रज्ञापयन्ति** - युक्तियों से समझाते हैं **प्ररूपयन्ति** - भेद आदि कथन से प्ररूपणा करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. प्राण – विकलेन्द्रिय अर्थात् बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय जीवों को प्राण कहते हैं।

२. भूत – वनस्पतिकाय को भूत कहते हैं।

३. जीव – पञ्चेन्द्रिय प्राणियों को जीव कहते हैं और

४. सत्त्व – पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय इन चार स्थावर जीवों को सत्त्व कहते हैं जैसा कि संस्कृत में कहा है –

प्राणाः द्वित्रि चतुः प्रोक्ता, भूतास्तु तरवः स्मृताः।
जीवाः पञ्चेन्द्रियाः प्रोक्ताः, शेषाः सत्वा उदीरिताः॥

।।इति तीसरे ठाणे का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

तीसरे स्थान का तृतीय उद्देशक

तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा णो पडिक्कमिज्जा णो णिंदिज्जा णो गरहिज्जा णो विउट्टेज्जा णो विसोहेज्जा णो अकरणाए अब्भुट्टेज्जा णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिज्जा तंजहा – अकरिंसु वाहं, करेमि वाहं, करिस्सामि वाहं। तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा णो पडिक्कमिज्जा जाव णो पडिवज्जिज्जा तंजहा – अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अविणए वा मे सिया। तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा जाव णो पडिवज्जिज्जा तंजहा – कित्ती वा मे परिहाइस्सइ, जसो वा मे परिहाइस्सइ, पूयासक्कारे वा मे परिहाइस्सइ। तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा पडिक्कमिज्जा जाव पडिवज्जिज्जा तंजहा – मायिस्स णं अस्सिं लोए गरहिए भवइ, उववाए गरहिए भवइ, आयाई गरहिया भवइ। तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जिज्जा तंजहा – अमायिस्स णं अस्सिं लोए पसत्थे भवइ, उववाए पसत्थे भवइ, आयाई पसत्था भवइ। तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तंजहा – णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए॥ ८६॥

कठिन शब्दार्थ – **मायी** – मायावी पुरुष, **आलोएज्जा** – आलोचना करता है, **विउट्टेज्जा** – निवृत्त होता है, **विसोहेज्जा** – विशुद्धि करता है, **अब्भुट्टेज्जा** – तैयार होता (निश्चय करता) है, **अहारिहं**–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा योग्य, **पायच्छित्तं** - प्रायश्चित्त, **तवोकम्मं** - तप कर्म, **पडिवज्जिज्जा** - अंगीकार करता है, **अकित्ती**- अपकीर्ति, **अवण्णे** - अवर्णवाद (अपयश), **अविणए** - अविनय, **परिहाइस्सइ** - कम हो जायगा, **णाणट्ठयाए** - ज्ञान के लिए, **दंसणट्ठयाए** - दर्शन के लिए, **चरित्तट्ठयाए** - चारित्र के लिए।

भावार्थ - तीन कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोयणा (आलोचना) नहीं करता, उसका प्रतिक्रमण नहीं करता, आत्म साक्षी से निन्दा नहीं करता, गुरु के समक्ष गर्हा नहीं करता, उससे निवृत्त नहीं होता, उसकी विशुद्धि नहीं करता, फिर दुबारा न करने के लिए तय्यार नहीं होता अर्थात् निश्चय नहीं करता, उस दोष के लिए यथा योग्य उचित प्रायश्चित्त रूप तप अङ्गीकार नहीं करता है। वे तीन कारण ये हैं - वह सोचता है कि मैंने दोष का सेवन कर लिया है तो अब उस पर पश्चात्ताप क्या करना ? अथवा मैं अब भी उसी दोष का सेवन कर रहा हूँ, उससे निवृत्त हुए बिना आलोचना कैसे हो सकती है ? अथवा मैं उस दोष का फिर सेवन करूँगा। इसलिए आलोचना कैसे करूँ। तीन कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोचना नहीं करता, उसका प्रतिक्रमण नहीं करता यावत् उसके लिए उचित प्रायश्चित्त अङ्गीकार नहीं करता है यथा - वह सोचता है कि आलोचना आदि करने से मेरी अपकीर्ति होगी। अथवा मेरा अवर्णवाद यानी अपयश होगा अथवा मेरा अविनय होगा अर्थात् साधु लोग मेरा अविनय करेंगे। तीन कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोचना नहीं करता यावत् उस दोष के योग्य प्रायश्चित्त अङ्गीकार नहीं करता है यथा - वह सोचता है कि मेरी कीर्ति कम हो जायगी। अथवा मेरा यश कम हो जायगा। अथवा मेरा पूजासत्कार कम हो जायगा। तीन कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोचना करता है यावत् उस दोष की शुद्धि के लिए उचित प्रायश्चित्त रूप तप अङ्गीकार करता है। यथा - वह सोचता है कि मायावी पुरुष का यह लोक गर्हित होता है यानी मायावी पुरुष इस लोक में निन्दित तथा अपमानित होता है। मायावी का उपपात यानी देवलोक में जन्म भी गर्हित होता है क्योंकि वह तुच्छ जाति के देवों में उत्पन्न होता है और सभी उसका अपमान करते हैं। देवलोक से चवने के बाद मनुष्य जन्म भी गर्हित होता है क्योंकि वह नीच कुल में उत्पन्न होता है। वहाँ भी उसका कोई आदर नहीं करता है। तीन कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोचना करता है यावत् उसके लिए उचित प्रायश्चित्त रूप तप अङ्गीकार करता है यथा - वह सोचता है कि अमायावी पुरुष का यह जन्म प्रशस्त होता है। उपपात यानी देवलोक में जन्म भी प्रशस्त होता है और देवलोक से चवने के बाद मनुष्य जन्म भी प्रशस्त होता है। तीन कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोचना कर लेता है यावत् उसके योग्य उचित प्रायश्चित्त रूप तप अङ्गीकार करता है यथा - ज्ञान प्राप्ति के लिए, दर्शन प्राप्ति के लिए और चारित्र प्राप्ति के लिए अर्थात् वह सोचता है कि आलोचना करने से मुझे ज्ञान दर्शन चारित्र की प्राप्ति होगी। इसलिए वह आलोचना आदि कर लेता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - तीसरे स्थानक के दूसरे उद्देशक के अंतिम सूत्र में मिथ्या दर्शन वालों की असमंजसता-अज्ञानता बतायी है तो इस तीसरे उद्देशक के प्रथम सूत्र में कषाय वालों-मायी व्यक्ति की असमंजसता प्रकट करते हैं। इस तरह इस सूत्र का पूर्व सूत्र के साथ संबंध है। उपरोक्त सूत्र में आये विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार समझना -

आलोचनं - गुरु को निवेदन करना, **प्रतिक्रमणं** - मिथ्या दुष्कृत देना, **निंदा** - आत्म साक्षी से निन्दा करना, **गर्हा** - गुरु की साक्षी से गर्हा करना, **विउट्टनं** - पाप का विचार दूर करना, **विशोधनं** - आत्मा के अथवा चारित्र के अतिचार रूप मल को धोना-शुद्ध करना । **अकरणताभ्युत्थानं** - पुनः यह पाप नहीं करूँगा, ऐसा स्वीकार करना । **पायच्छित्तं** - प्रायश्चित्त-पाप का छेदन करने वाला अथवा प्रायः चित्त को विशुद्ध करने वाला।

किसी एक दिशा में फैलने वाली प्रसिद्धि (ख्याति) को कीर्ति कहते हैं और चारों तरफ सर्वदिशाओं में फैलने वाली प्रसिद्धि को यश कहते हैं। वर्ण यश का पर्यायवाचक शब्द है। अथवा दान और पुण्य के फल रूप कीर्ति होती है और पराक्रम से यश होता है दोनों का निषेध अकीर्ति और अवर्ण (अयश) कहलाता है।

तओ पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - सुत्तधरे अत्थधरे तदुभयधरे। कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तंजहा - जंगिए भंगिए खोमिए। कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ पायाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तंजहा - लाउयपाए वा दारुपाए वा मट्टियापाए वा। तिहिं ठाणेहिं वत्थं धरेज्जा तंजहा - हिरिवत्तियं दुगुंछावत्तियं परिसहवत्तियं। तओ आयरक्खा पण्णत्ता तंजहा - धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइत्ता भवइ, तुसिणीओ वा सिया, उट्ठित्ता वा आयाए एगंतमंतमवक्कमेज्जा। णिग्गंथस्स णं गिलायमाणस्स कप्पंति तओ वियडदत्तीओ पडिग्गाहित्तए तंजहा - उक्कोसा मज्झिमा जहण्णा॥ ८७॥

कठिन शब्दार्थ - **धारित्तए** - धारण करना, **परिहरित्तए** - पहनना, **कप्पइ** - कल्पता है, **जंगिए**-जांगिक-ऊन के बने हुए, **भंगिए** - भाङ्गिक-अलसी-सण आदि के बने हुए, **खोमिए** - क्षोमिक-कपास के बने हुए, **पायाइ** - पात्र, **लाउयपाए** - तुम्बी का पात्र, **दारुपाए** - लकड़ी का पात्र, **मट्टियापाए** - मिट्टी का पात्र, **धरेज्जा** - धारण करते हैं, **हिरिवत्तियं** - लज्जा और संयम की रक्षा के लिए, **दुगुंछावत्तियं**-प्रवचन की निन्दा से बचने के लिए, **परिसहवत्तियं** - परीषह सहन करने के लिए, **आयरक्खा** - आत्मरक्षक, **पडिचोयणाए** - प्रेरणा से उपदेश से, **तुसिणीओ** - मौन, **अवक्कमेज्जा** - चला जाय, **गिलायमाणस्स** - ग्लानि को प्राप्त होते हुए, **वियडदत्तीओ** - अचित्त जल की दत्तियाँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तीन प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - सूत्र को धारण करने वाले, अर्थ को धारण करने वाले, सूत्र और अर्थ दोनों को धारण करने वाले। साधु साध्वियों को तीन प्रकार के वस्त्र धारण करना और पहनना अर्थात् उपभोग परिभोग में लाना कल्पता है यथा - जाङ्गिक यानी ऊन के बने हुए, भाङ्गिक यानी अलसी सण आदि के बने हुए और क्षोमिक यानी कपास के बने हुए। साधु साध्वियों को तीन प्रकार के पात्र रखना और काम में लाना कल्पता है यथा - तुम्बी का पात्र, लकड़ी का पात्र और मिट्टी का पात्र। तीन कारणों से साधु साध्वी वस्त्र धारण करते हैं यथा - लज्जा और संयम की रक्षा के लिए, प्रवचन की निन्दा से बचने के लिए और डांस मच्छर आदि के परीषह से बचने के लिए। तीन आत्मरक्षक कहे गये हैं यथा - धार्मिक उपदेश से प्रेरणा करने वाला अर्थात् अकार्य में प्रवृत्ति करने वाले को धर्मोपदेश देकर कहे कि तुम्हारे सरीखे पुरुष को यह अकार्य करना उचित नहीं है अथवा अपने में समझाने की शक्ति न हो तो मौन रहे। अथवा उपदेश देने का सामर्थ्य न हो और मौन भी न रहा जा सके तो आप स्वयं वहाँ से उठ कर एकान्त स्थान में चला जाय। प्यास से ग्लानि को प्राप्त होते हुए साधु के लिए अचित्त जल की तीन दत्तियाँ लेना कल्पता है यथा - उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने साधु साध्वियों के लिये तीन प्रकार के वस्त्र और तीन प्रकार के पात्रों को रखना बतलाया है। बृहत्कल्प सूत्र आदि में पात्रों की संख्या ४ से अधिक नहीं बतलाई गई है अर्थात् अधिक से अधिक चार पात्र रखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त पानी ठंडा रखने के लिए मटकी आदि रखने का निषेध किया गया है। इनके अतिरिक्त शेष सभी प्रकार के वस्त्र और पात्र रखने का स्वतः निषेध हो जाता है अर्थात् प्लास्टिक आदि के पात्र रखना आगम सम्मत नहीं हैं। इसमें चार की संख्या का अतिक्रमण भी हो जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में **धारित्तए वा परिहरित्तए वा** ये दो क्रिया पद दिये हैं। **धारित्तए** स्वीकार करने के अर्थ में है और **परिहरित्तए**-परिहरण करने -काम में लेने के अर्थ में है। कहा है - **'धारणया उवभोगो, परिहरणे होइ परिभोग'** - धारण करना उपभोग और परिहरण-काम में लेना परिभोग कहलाता है।

आत्मरक्षक - राग द्वेष से, अकृत्य से अथवा भव रूप कुएं से जो आत्मा की रक्षा करता है वह आत्म-रक्षक कहलाता है।

दत्ति - अविच्छिन्न धारा के रूप में जल आदि पदार्थ जितना एक बार पात्र में डाला जाय उसे दत्ति कहते हैं।

पदार्थ के गुणों की दृष्टि से दाख आदि का धोवन उत्कृष्ट, चावल का पानी या कांजी का पानी मध्यम और गर्म पानी जघन्य कहलाता है।

नोट :- मूल सूत्र में 'तीन विकट दत्तियों' का लेने का कहा है। टीकाकार ने इसकी टीका भी लिखी है किन्तु टीका से मूल सूत्र का आशय स्पष्ट नहीं होता है क्योंकि मूल सूत्र गम्भीर अर्थ वाला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। आगम में दूसरी जगह तो इस प्रकार बतलाया गया है कि बीमार साधु के लिए बहुमूल्य औषधि (हेमगर्भ का घासा, कस्तूरी, दीवालमुश्क) की तीन दत्ति अर्थात् तीन खुराक से अधिक एक साथ नहीं लानी चाहिए। क्योंकि यदि वह काल धर्म को प्राप्त हो जाय तो बाकी की बची हुई औषधि निरर्थक, बेकार चली जाती हैं।

तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोगियं विसंभोगियं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा - सयं वा दट्टुं, सड्डस्स वा णिसम्म, तच्चं मोसं आउट्टइ चउत्थं णो आउट्टइ। तिविहा अणुण्णा पण्णत्ता तंजहा - आयरियत्ताए उवज्झायत्ताए गणित्ताए। एवं उवसंपया, एवं विजहणा॥ ८८॥

कठिन शब्दार्थ - साहम्मियं - साधर्मिक को, **संभोगियं** - सम्भोगिक को, **विसंभोगियं** - विसम्भोगिक, **ण** - नहीं, **अइक्कमइ** - आज्ञा का उल्लंघन करता है, **दट्टु** - देख कर, **सड्डस्स** - श्रद्धावान् अर्थात् साधु और श्रावक के, **आउट्टइ** - प्रायश्चित्त आदि देता हैं, **अणुण्णा** - अनुज्ञा, **गणित्ताए**- गणी रूप से, **उवसंपया** - उपसम्पदा, **विजहणा** - विजहना-त्यागना।

भावार्थ - तीन कारणों से अपने साधर्मिक सम्भोगिक साधु को विसम्भोगिक करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है यथा - किसी साधु ने अकल्पनीय ग्रहण आदि दोष का सेवन किया हो, उस दोष को स्वयं अपनी आंखों से देख कर अथवा किसी साधु एवं श्रद्धावान श्रावक के मुख से सुन कर, उस साधु से पूछे। यदि पूछने पर वह इन्कार कर जाय तो उसका निर्णय करके उसे उचित प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करे। इस प्रकार तीन बार झूठ बोलने तक उसे आलोचना आदि प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करे किन्तु चौथी बार उसको आलोचना आदि प्रायश्चित्त न दे किन्तु उसे विसम्भोगिक कर दे यानी गच्छ से बाहर निकाल दे। तीन प्रकार की अनुज्ञा - अधिकार देना यानी पदवियाँ कही गई है यथा - आचार्य, उपाध्याय और गणी। इसी प्रकार उपसम्पदा भी तीन प्रकार की है और इसी प्रकार विजहना भी तीन प्रकार की है।

विवेचन - साहम्मियं - साधर्मिक-जो समान धर्म से चलते हैं-वर्तते हैं वे 'साधर्मिक' कहलाते हैं। सम् यानी एकत्रित, भोग अर्थात् भोजन, एक साथ भोजन करना संभोग है। जिन साधुओं में समान समाचारी होने के कारण परस्पर उपधि आदि देने लेने रूप संव्यवहार है वे सम्भोगिक कहलाते हैं। जिनमें देने लेने का परस्पर व्यवहार नहीं है वे विसंभोगिक कहलाते हैं।

आचार्य - ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और वीर्य इन पांच प्रकार के आचार का स्वयं पालन करने वाले एवं अन्य साधुओं से पालन कराने वाले गच्छ के नायक आचार्य कहलाते हैं।

उपाध्याय - शास्त्रों को स्वयं पढ़ने एवं दूसरों को पढ़ाने वाले मुनिराज उपाध्याय कहलाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणी - साधुओं के समुदाय को 'गण' कहते हैं। गण के नायक 'गणी' कहलाते हैं। सूत्र और अर्थ में निष्णात, शुभ क्रिया में कुशल, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, जाति और कुल संपन्न, क्रिया के अभ्यासी आदि अनेक गुणों के धारक अनगार "गणी" पद के योग्य होते हैं।

उपसम्पदा - ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्राप्ति के लिये अपना गच्छ छोड़ कर किसी विशेष ज्ञान वाले आचार्य, उपाध्याय और गणी का आश्रय लेना उपसम्पदा कहलाती है। उपसम्पदा तीन प्रकार की होती है।

विजहना - अपने गच्छ के आचार्य, उपाध्याय और गणी ज्ञान, दर्शन, चारित्र में प्रमाद करते हों तो उस गच्छ को छोड़ देना विजहना (त्याग) कहलाती है। विजहना भी तीन प्रकार की कही है।

तिविहे वयणे पण्णत्ते तंजहा - तव्वयणे तयण्णवयणे णोअवयणे। तिविहे अवयणे पण्णत्ते तंजहा - णोतव्वयणे णोतयण्णवयणे अवयणे। तिविहे मणे पण्णत्ते तंजहा - तम्मणे तयण्णमणे णो अमणे। तिविहे अमणे पण्णत्ते तंजहा - णोतम्मणे णोतयण्णमणे अमणे॥ ८९॥

कठिन शब्दार्थ - तव्वयणे - तद्वचन, **तयण्णवयणे** - तदन्य वचन, **अमणे** - अमन।

भावार्थ - तीन प्रकार का वचन कहा गया है यथा - तद्वचन यानी घड़े को घड़ा कहना। तदन्यवचन यानी घट (घड़ा) को पट (कपड़ा) कहना और नोअवचन यानी निरर्थक शब्द कहना। तीन प्रकार के अवचन कहे गये हैं यथा - नो तद्वचन यानी घट को घट न कहना, नो तदन्यवचन यानी घट से अन्य पट को पट न कहना और अवचन यानी कुछ न कहना। इसी प्रकार तीन प्रकार का मन कहा गया है यथा - तन्मन यानी उस विषय में - घटादि में मन का लगना, तदन्य मन घट के सिवाय पट आदि में मन का लगना और नोअमन यानी किसी भी विषय में मन का न लगना। तीन प्रकार का अमन कहा गया है यथा - नोतन्मन, नो तदन्यमन और अमन।

तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठिकाए सिया तंजहा - तंसि य णं देसंसि वा पएसंसि वा णो बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति, देवा णागा जक्खा भूया णो सम्ममाराहिया भवंति, तत्थ समुट्ठियं उदगपोग्गलं परिणयं वासिउकामं अण्णं देसं साहरंति, अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठियं परिणयं वासिउकामं वाउकाए विहुणेइ, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठिकाए सिया। तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठिकाए सिया तंजहा - तंसि य णं देसंसि वा पएसंसि वा बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उववज्जंति,देवा जक्खा णागा भूया सम्ममाराहिया भवंति, अण्णत्थ समुट्ठियं उदगपोग्गलं परिणयं वासिउकामं तं देसं साहरंति, अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठियं परिणयं वासिउकामं णो वाउयाओ विहुणेइ, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठिकाए सिया। ९०।

कठिन शब्दार्थ - **अप्पवुट्ठिकाए** - अल्पवृष्टि (अवृष्टि), **देसंसि** - देश में, **पएसंसि** - प्रदेश में, **उदगजोणिया** - उदक योनि के, **उदगत्ताए** - अप्कायपने, **वक्कमंति**- उत्पन्न होते हैं, **विउक्कमंति**- चवते हैं, **सम्ममाराहिया** - सम्यग् प्रकार से आराधना की हो, **समुट्ठियं** - समुत्थित-उठे हुए, **वासिउकामं**- बरसने योग्य, **उदगपोग्गलं** - उदक पुद्गल-मेघ को, **परिणयं** - परिणत-उदक अवस्था को प्राप्त, **अब्भवद्दलगं** - बादलों को, **विहुणेइ** - नष्ट कर देती है, **महावुट्ठिकाए** - महावृष्टि।

भावार्थ - तीन कारणों से अल्प वृष्टि या अवृष्टि होती है यथा उस देश अथवा प्रदेश में बहुत से उदक योनि के जीव यानी पानी के जीव और पुद्गल अप्कायपने उत्पन्न नहीं होते हैं और नहीं चवते हैं। इसी बात को सूत्रकार दूसरी तरह से कहते हैं कि अप्काय में उत्पन्न होने के लिए दूसरी योनि में से चवते नहीं हैं और अप्काय में उत्पन्न नहीं होते हैं। देव नागकुमार आदि भवनपति देव यक्ष और भूत, इनकी सम्यक् प्रकार से आराधना न की गई हो, इससे रुष्ट होकर वे उस देश में उठे हुए उदक अवस्था को प्राप्त हुए बरसने योग्य मेघ को दूसरे देश में ले जाते हैं और उठे हुए उदक अवस्था को प्राप्त हुए बरसने योग्य बादलों को प्रचण्ड वायु नष्ट कर देती है या इधर उधर बिखेर देती है। इन तीन कारणों से अल्पवृष्टि या अवृष्टि होती है। तीन कारणों से महावृष्टि होती है यथा - उस देश या प्रदेश में बहुत से अप्काय के जीव और पुद्गल-अप्कायपने उत्पन्न होते हैं और चवते हैं तथा चवते हैं और उत्पन्न होते हैं। वैमानिक और ज्योतिषी आदि देव, यक्ष नागकुमार आदि भवनपति देव और भूत यानी वाणव्यन्तर देव, इनकी सम्यक् प्रकार से आराधना की हुई होती है तो वे खुश होकर दूसरी जगह उठे हुए उदक अवस्था को प्राप्त हुए बरसने योग्य मेघ को उस देश में ले आते हैं और उसी देश में उठे हुए उदक अवस्था को प्राप्त बरसने योग्य बादल वायु से नष्ट नहीं किये जाते हैं एवं इधर उधर बिखेरे नहीं जाते हैं। इन तीन कारणों से महावृष्टि होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अल्पवृष्टि और महावृष्टि के तीन-तीन कारण बताये हैं। अल्प वृष्टि काय का अर्थ है - अल्प यानी थोडा अथवा नहीं बरसना, वृष्टि यानी पानी का नीचे गिरना, काय यानी जीव का समुदाय अर्थात् आकाश से गिरती अप्काय अथवा बरसने के स्वभाव युक्त जो उदक है वह वृष्टि, उसका समुदाय वह वृष्टिकाय कहलाता है।

उदक योनिक - उदक रूप परिणाम की कारण भूत योनियां, उदक योनिक अर्थात् पानी उत्पन्न करने के स्वभाव रूप जीव और पुद्गल।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदक पौद्गल – उदक प्रधान पौद्गल-पुद्गलों का समूह-मेघ, उदक पौद्गल कहलाते हैं।

तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तंजहा - अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे से णं माणुस्सए कामभोए णो आढाइ, णो परियाणाइ, णो अट्ठं बंधइ, णो णियाणं पगरेइ, णो ठिइपकप्पं पगरेइ, अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे तस्स णं माणुस्सए पेम्मे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवइ, अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ, इयण्हिं ण गच्छं मुहुत्तं गच्छं, तेण कालेणं अप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, तंजहा - अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम माणुस्सए भवे आयरिए इ वा, उवज्झाए इ वा, पवत्ते इ वा, थेरे इ वा, गणी इ वा, गणहरे इ वा, गणावच्छेए इ वा, जेसिं पभावेणं मए इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवजुई, दिव्वे देवाणुभावे, लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि, अहुणोववण्णे देव देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ, एस णं माणुस्सए भवे णाणी इ वा, तवस्सी इ वा, अइदुक्करदुक्करकारए तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि णमंसामि जाव पज्जुवासामि, अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि पासंतु ता मे इमं एयारूवं दिव्वं देविड्ढी, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं, लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए संचाएइ हव्वमागच्छित्तए॥ ९१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अहुणोववण्णे** - तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ, **माणुस्सं** - मनुष्य, **लोगं** - लोक में, **हव्वं** - शीघ्र, **आगच्छित्तए** - आने की, **इच्छेज्ज** - इच्छा करता है, **दिव्वेसु** - दिव्य, **कामभोगेसु**- कामभोगों में **मुच्छिए** - मूर्च्छित, **गिद्धे** - गृद्ध, **गढिए** - स्नेह बंधन में बंधा हुआ, **अज्झोववण्णे** - अत्यन्त आसक्त, **आढाइ** - आदर करता है, **परियाणाइ** - वस्तु रूप जानता, **ठिइपकप्पं**- स्थिति प्रकल्प, **वोच्छिण्णे** - टूट जाता है, **संकंते** - आसक्ति, **कालधम्मुणा** - काल धर्म से, **पवत्ते** - प्रवर्त्तक, **थेरे** - स्थविर, **गणी** - गणी, **गणहरे** - गणधर, **गणावच्छेए** - गणावच्छेदक, **पभावेणं** - प्रभाव से, **देविड्डी** - देव ऋद्धि, **देवजुई** - देवद्युति, **देवाणुभावे** - देवानुभाव, **लद्धे** - उपार्जित किया है, **पत्ते** - प्राप्त हुआ है, **अभिसमण्णागए** - सन्मुख उपस्थित हुआ है **चेइयं** - ज्ञान रूप, **अइदुक्करदुक्करकारए** - अति दुष्कर दुष्कर क्रिया करने वाले, **अणज्झोववण्णे** - काम भोगों में अनासक्त, **सुण्हा** - पुत्रवधू, **पाउब्भवामि** - प्रकट होऊं, **संचाएइ** - समर्थ हो सकता है।

भावार्थ - देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है किन्तु तीन कारणों से शीघ्र नहीं आ सकता है। यथा - देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, उनके स्नेह बन्धन में बंधा हुआ और उनमें अत्यन्त आसक्त बना हुआ वह देव मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का आदर नहीं करता, इनको वस्तुरूप भी नहीं जानता, इन से मुझे प्रयोजन है इस प्रकार इनके बन्धन में नहीं पड़ता। इनका नियाणा भी नहीं करता और स्थिति प्रकल्प भी नहीं करता है अर्थात् ये मेरे बहुत समय तक रहें ऐसा विचार भी नहीं करता है। देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुए देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, स्नेह बन्धन में बंधा हुआ और आसक्त बने हुए उस देव का मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का प्रेम टूट जाता है और देव सम्बन्धी कामभोगों में आसक्ति हो जाती है। देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् आसक्त हो जाता है। इसलिए उसको ऐसा विचार होता है कि मैं अपने परिवार के लोगों से मिलने के लिए इस समय मैं मनुष्य लोक में न जाऊँ किन्तु एक मुहूर्त्त यानी दो घड़ी बाद जाऊँगा। उस समय में यानी देवों की दो घड़ी बीतने में मनुष्य लोक का बहुत समय व्यतीत हो जाता है इसलिए यहाँ के अल्प आयु वाले मनुष्य काल धर्म से संयुक्त हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं, फिर किनसे मिलने के लिए आवे ? इन तीन कारणों से देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है किन्तु शीघ्र आ नहीं सकता है।

देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है वह तीन कारणों से शीघ्र आ सकता है। यथा - देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, उनके बन्धन में न बंधे हुए और उनमें आसक्त न बने हुए उस देव को ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्य भव में उपदेश देने वाले मेरे आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर गणी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणधर यानी गण को धारण करने वाला और गणावच्छेदक हैं। जिनके प्रभाव से यह इस प्रकार की दिव्य देव ऋद्धि दिव्य देवकान्ति दिव्य देवानुभाव उपार्जित किया है, प्राप्त हुआ है और मेरे सन्मुख उपस्थित हुआ है इसलिए मैं मनुष्य लोक में जाऊँ और उन कल्याणकारी, मङ्गलकारी, देवस्वरूप, ज्ञान रूप, पूज्य आचार्य आदि को वन्दना करूँ, नमस्कार करूँ, उनका सत्कार करूँ, सन्मान करूँ और उनकी पर्युपासना यानी सेवा भक्ति करूँ। देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में अमूर्च्छित यावत् अनासक्त बने हुए उस देव को ऐसा विचार होता है कि मनुष्य लोक में ये ज्ञानी, तपस्वी, स्थूलभद्र मुनि की तरह अति दुष्कर दुष्कर ब्रह्मचर्य पालन रूप क्रिया के करने वाले मुनि हैं अतः मनुष्य लोक में जाकर उन पूज्य मुनियों को वन्दना करूँ, नमस्कार करूँ यावत् उनकी सेवा भक्ति करूँ। ऐसा विचार कर मनुष्य लोक में आता है। देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में अनासक्त होता है उसको ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्य लोक में मेरी माता, पिता, पुत्र यावत् पूत्रवधू आदि हैं इसलिए जाऊं और उनके सामने प्रकट होऊँ। जिससे वे मेरी ऐसी यह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवानुभाव जो कि मुझे मिला है, प्राप्त हुआ है तथा मेरे सामने उपस्थित हुआ है उसे देखें। इन उपरोक्त तीन कारणों से देवलोक में तत्काल नवीन उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है तो शीघ्र आने के लिए समर्थ हो सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवलोक में उत्पन्न देव के मनुष्य लोक में आ सकने और नहीं आ सकने के तीन तीन कारण बताये हैं। जो इस प्रकार है -

१. देवलोक में उत्पन्न होते ही देव दिव्य कामभोगों में लीन हो जाता है वह मनुष्य संबंधी कामभोगों का आदर नहीं करता, अच्छा नहीं समझता, उन्हें पाने के लिये निदान भी नहीं करता इस कारण वह मनुष्य लोक में नहीं आता।

२. देवलोक के दिव्य सुखों में आसक्त होने के कारण मनुष्य संबंधी कामभोगों का प्रेम टूट जाता है अतः वह मनुष्य लोक में नहीं आता।

३. देवलोक में उत्पन्न देव सोचता है कि मैं कुछ समय इन दिव्य सुखों को भोग लूं तत्पश्चात् मनुष्य लोक में जाऊंगा। इतने में तो मनुष्य लोक का काफी समय व्यतीत हो जाता है और तब तक अल्प आयुष्य वाले उसके संबंधी मनुष्य काल कर जाते हैं अतः वह देवलोक को छोड़कर मनुष्य लोक में नहीं आता। इससे विपरीत देवलोक में नवीन उत्पन्न हुआ देवता तीन कारणों से दिव्य कामभोगों में मूर्छा, गृद्धि एवं आसक्ति नहीं करता हुआ शीघ्र मनुष्य लोक में आने की इच्छा करता है और आ सकता है -

१. वह देवता यह सोचता है कि मनुष्य भव में मेरे आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर गणी, गणधर ऐवं गणावच्छेदक हैं। जिनके प्रभाव से यह दिव्य देव ऋद्धि दिव्य देव द्युति और दिव्य देव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शक्ति मुझे इस भव में प्राप्त हुई है। इसलिए मैं मनुष्य लोक में जाऊं और उन पूज्य आचार्य भगवन्त आदि को वन्दना नमस्कार करूँ, सत्कार सन्मान दूँ एवं कल्याण तथा मंगल रूप यावत् उनकी उपासना करूँ।

२. नवीन उत्पन्न देवता यह सोचता है कि सिंह की गुफा में कायोत्सर्ग करना दुष्कर कार्य है किन्तु पूर्व उपभुक्त, अनुरक्त तथा प्रार्थना करने वाली वेश्या के घर में रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना उससे भी अति दुष्कर कार्य है। स्थूलभद्र मुनि की तरह ऐसी कठिन से कठिन क्रिया करने वाले ज्ञानी, तपस्वी मनुष्य लोक में दिखाई पडते हैं। इसलिये मैं मनुष्य लोक में जाऊँ और उन पूज्य मुनीश्वरों को वन्दना नमस्कार करूँ यावत् उनकी उपासना करूँ।

३. वह देवता यह सोचता है कि मनुष्य भव में मेरे माता पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू आदि हैं। मैं वहां जाऊँ और उनके सम्मुख प्रकट होऊँ । वे मेरी इस दिव्य देव संबंधी ऋद्धि, द्युति और शक्ति को देखें।

तओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा तंजहा - माणुस्सं भवं, आरिए खेत्ते जम्मं, सुकुलपच्चायाइं। तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा तंजहा - अहो णं मए संते बले, संते वीरिए, संते पुरिसक्कारपरक्कमे, खेमंसि, सुभिक्खंसि, आयरियउवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेणं णो बहुए सुए अहीए, अहो णं मए इहलोगपडिबद्धेणं परलोगपरंमुहेणं विसयतिसिएणं णो दीहे सामण्ण परियाए अणुपालिए, णो विसुद्धे चरित्ते फासिए। अहो णं मए इड्ढिरस सायगुरुएणं भोगामिस गिद्धेणं इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देव परितप्पेज्जा। तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामि त्ति जाणाइ तंजहा - विमाणाभरणाइं णिप्पभाइं पासित्ता, कप्परुक्खगं मिलायमाणं पासित्ता, अप्पणो तेयलेस्सं परिहायमाणिं जाणित्ता। इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देव चइस्सामित्ति जाणाइ। तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेग मागच्छेज्जा तंजहा - अहो णं मए इमाओ एयारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढिओ दिव्वाओ देवजुईओ दिव्वाओ देवाणुभावाओ पत्ताओ लद्धाओ अभिसमण्णागयाओ चइयव्वं भविस्सइ। अहो णं मए माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं तप्पढमयाए आहारो आहारेयव्वो भविस्सइ। अहो णं मए कलमलजंबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्वं भविस्सइ, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा। तिसंठिया विमाणा पण्णत्ता तंजहा - वट्टा तंसा चउरंसा। तत्थ णं जे ते वट्टा विमाणा ते णं पुक्खरकण्णिया संठाण संठिया सव्वओ समंता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पागारपरिरक्खिया एगदुवारा पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते तंसा विमाणा ते णं सिंघाडग संठाणसंठिया दुहओपागारपरिरक्खिया एगओ वेइया परिरक्खिया तिदुवारा पण्णत्ता। तत्थ णं जे ते चउरंसविमाणा ते णं अक्खाडग संठाणसंठिया, सव्वओ समंता वेइया परिरक्खिया चउदुवारा पण्णत्ता। तिपइट्ठिया विमाणा पण्णत्ता तंजहा - घणोदहि पइट्ठिया घणवायपइट्ठिया ओवासंतरपइट्ठिया। तिविहा विमाणा पण्णत्ता तंजहा - अवट्ठिया वेउव्विया परिजाणिया॥ ९२॥

कठिन शब्दार्थ - **पीहेज्जा** - इच्छा करता है, **माणुसं भवं** - मनुष्य भव, **आरिए** - आर्य, **खेत्ते**- क्षेत्र में, **सुकुलपच्चायाइं** - उत्तम कुल में जन्म, **परितप्पेज्जा** - पश्चात्ताप करता है, **बले** - शारीरिक बल, **वीरिए** - वीर्य, **पुरिसक्कारपरक्कमे** - पुरुषकार पराक्रम के, **संते** - होने पर, **खेमंसि** - उपद्रव रहित, **सुभिक्खंसि** - सुकाल में, **विज्जमाणेहिं** - संयोग मिलने पर, **कल्लसरीरेणं** - नीरोग शरीर होते हुए भी, **सुए** - सूत्रों का, **अहीए** - अध्ययन किया, **विसयतिसिएणं** - विषय भोगों की तृष्णा से, **परलोगपरंमुहेणं** - पर लोक से पराङ्मुख रह कर, **दीहे** - दीर्घ काल तक, **सामण्णपरियाए** - श्रमण पर्याय का, **अणुपालिए** - अनुपालन, **इड्डिरससायगुरुएणं** - ऋद्धि, रस सुख के अभिमान से, **भोगामिसगिद्धेणं** - कामभोग रूपी मांस में गृद्ध बन कर, **जाणाइ** - जान लेता है कि, **चइस्सामि** - चलूँगा, **णिप्पभाइं** - निष्प्रभ, **कप्परुक्खयं** - कल्पवृक्ष को, **मिलायमाणं** - म्लान होते हुए, **तेयलेस्सं**- तेजोलेश्या-शरीर की दीप्ति को, **उव्वेगं** - उद्वेग को, **आगच्छेज्जा** - प्राप्त होता है, **माउओयं** - माता का रज **पिउसुक्कं** - पिता का वीर्य, **तदुभयसंसिट्ठं** - दोनों परस्पर मिला हुआ, **कलमलजंबालाए** - पेट में रहे हुए पदार्थ रूपी कीचड़ युक्त, **असुईए** - अशूचि के भण्डार, **उव्वेयणियाए** - उद्वेगकारी, **भीमाए** - भयंकर **गब्भवसहीए** - गर्भवास में, **तिसंठिया** - तीन संस्थान वाले, **पुक्खरकण्णिया** - पुष्कर कर्णिका, **पागारपरिरक्खिया** - कोट से घिरे हुए, **एगदुवारा** - एक द्वार वाले, **सिंघाडगसंठाण संठिया** - सिंघाडे के समान आकार वाले, **ओवासंतरपइट्ठिया** - आकाश के आधार पर रहे हुए, **अवट्ठिया** - अवस्थित।

भावार्थ - देव तीन बातों की इच्छा करता है। यथा - मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र में जन्म और उत्तम कुल में जन्म। तीन कारणों से देव पश्चात्ताप करता है। यथा - अहो ! मेरे में शारीरिक बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम के होने पर और उपद्रव रहित सुकाल में आचार्य उपाध्याय का संयोग मिलने पर भी तथा मेरा नीरोग शरीर होते हुए भी मैंने बहुत सूत्रों का-शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया। अहो ! इस लोक सम्बन्धी विषयभोगों की तृष्णा से परलोक से पराङ्मुख रह कर मैंने बहुत समय तक श्रमण पर्याय का पालन नहीं किया। अहो ! ऋद्धि, रस और सुख अभिमान से तथा कामभोग रूपी मांस में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृद्ध बन कर मैंने चारित्र का विशुद्ध रूप से यानी अतिचार रहित पालन नहीं किया। इन तीन कारणों से देव पश्चात्ताप करता है। तीन कारणों से देव इस बात को जान लेता है कि अब मैं यहाँ से चवूँगा। यथा- अपने विमान और आभूषणों को निष्प्रभ यानी कान्तिहीन देख कर, कल्पवृक्ष को म्लान देख कर और अपनी तेजो लेश्या यानी शरीर की दीप्ति को हीन जान कर, इन तीन कारणों से देव यह जान जाता है कि अब मैं यहाँ से चवूँगा। अपने च्यवन को नजदीक आया जान कर देव तीन कारणों से उद्वेग को प्राप्त होता है। यथा - अहो ! मुझे यह ऐसी दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव प्राप्त हुआ है, मिला है, सन्मुख उपस्थित हुआ है, इन सब को छोड़ कर मुझे यहाँ से चवना पड़ेगा। अहो ! यहाँ से चवने के बाद गर्भवास में जाते ही सब से पहले माता का रज और पिता का वीर्य इन दोनों का परस्पर मिला हुआ आहार लेना पड़ेगा। अहो ! पेट में रहे हुए पदार्थ रूप कीचड़ युक्त अशुचि के भण्डार उद्वेगकारी भयङ्कर गर्भावास में मुझे रहना पड़ेगा। इन तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है। विमान तीन संस्थान वाले कहे गये हैं। यथा - वृत्त यानी गोल, त्र्यस्र-त्रिकोण यानी तीन कोनों वाले और चतुरस्र-चतुष्कोण यानी चार कोनों वाले। उनमें जो विमान गोल हैं वे पुष्करकर्णिका यानी कमल के मध्यभाग के समान आकार वाले हैं और चारों तरफ तथा चारों विदिशाओं में कोट से घिरे हुए हैं तथा एक द्वार वाले हैं। ऐसा कहा गया है। उनमें जो त्रिकोण विमान हैं वे सिंघाड़े के समान आकार वाले दो तरफ कोट से घिरे हुए एक तरफ वेदिका से घिरे हुए और तीन द्वार वाले कहे गये हैं। उनमें जो चतुष्कोण विमान हैं वे अखाड़े के समान आकार वाले चारों तरफ तथा चारों विदिशाओं में वेदिका से घिरे हुए और चार द्वार वाले कहे गये हैं। विमान तीन वस्तुओं के आधार पर रहे हुए हैं। ऐसा कहा गया है। यथा - पहले, दूसरे देवलोक के विमान घनोदधि पर रहे हुए हैं तीसरे, चौथे और पांचवें देवलोक के विमान घनवात पर रहे हुए हैं और छठे, सातवें और आठवें देवलोक के विमान घनोदधि घनवात पर रहे हुए हैं और इनसे ऊपर के सब देवलोकों के विमान आकाश के आधार पर रहे हुए हैं। विमान तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अवस्थित, वैक्रियक और परियानक।

विवेचन - देवता के पश्चात्ताप करने के तीन कारण हैं -

१. मैं बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम से युक्त था। मुझे पठनोपयोगी सुकाल प्राप्त था। कोई उपद्रव भी नहीं था। शास्त्र ज्ञान के दाता आचार्य, उपाध्याय महाराज़ विद्यमान थे। मेरा शरीर भी नीरोग था। इस प्रकार सभी सामग्री के प्राप्त होते हुए भी मुझे खेद है कि मैंने बहुत शास्त्र नहीं पढ़े।

२. खेद है कि परलोक से विमुख होकर ऐहिक सुखों में आसक्त हो, विषय पिपासु बन मैंने चिरकाल तक श्रमण (साधु) पर्याय का पालन नहीं किया।

३. खेद है कि मैंने ऋद्धि, रस और साता गारव (गौरव) का अभिमान किया। प्राप्त भोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामग्री में मूर्च्छित रहा एवं अप्राप्त भोग सामग्री की इच्छा करता रहा। इस प्रकार मैं शुद्ध चारित्र का पालन न कर सका।

उपरोक्त तीन बोलों का विचार करता हुआ देवता पश्चात्ताप करता है।

देवता के च्यवन-ज्ञान के तीन बोल हैं - १. विमान के आभूषणों की कान्ति को फीकी देखकर २. कल्पवृक्ष को मुरझाते हुए देखकर ३. तेज अर्थात् अपने शरीर की कान्ति को घटते हुए देख कर देवता को अपने च्यवन (मरण) के काल का ज्ञान हो जाता है।

१. घनोदधि २. घनवाय और ३. आकाश-इन तीन के आधार से विमान रहे हुए हैं। प्रथम दो कल्प-सौधर्म और ईशान देवलोक में विमान घनोदधि पर रहे हुए हैं। सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में विमान घनवाय पर रहे हुए हैं। लान्तक, शुक्र और सहस्रार देवलोक में विमान घनोदधि और घनवाय दोनों पर रहे हुए हैं। इनके ऊपर आर्णत, प्राणत, आरण, अच्युत नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में विमान सिर्फ आकाश पर स्थित है।

रहने के लिए जो शार्श्वत विमान हैं वे 'अवस्थित' कहलाते हैं और परिचारणा करने के लिए जो विमान बनाये जाते हैं वे 'वैक्रियक' और तिर्छालोक में आने जाने के लिए प्रयोजन से जो विमान बनाये जाते हैं वे 'परियानक' कहलाते हैं।

तिविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं। तओ दुग्गईओ पण्णत्ताओ तंजहा - णेरइय दुग्गई, तिरिक्ख जोणिय दुग्गई, मणुस्स दुग्गई। तओ सुगईओ पण्णत्ताओ तंजहा - सिद्धिसुगई, देवसुगई, मणुस्ससुगई। तओ दुग्गया पण्णत्ता तंजहा - णेरइयदुग्गया, तिरिक्ख जोणियदुग्गया, मणुस्सदुग्गया। तओ सुगया पण्णत्ता तंजहा - सिद्धसुगया,देवसुगया, मणुस्ससुगया॥ ९३॥

कठिन शब्दार्थ - दुग्गईओ - दुर्गतियाँ, **सुगईओ** - सुगतियाँ, **दुग्गया** - दुर्गत, **सुगया** - सुगत-सुगति वाले।

भावार्थ - तीन प्रकार के नैरयिक कहे गये हैं। यथा - समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि और समिथ्यादृष्टि यानी मिश्र दृष्टि। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय इनको छोड़ कर यावत् वैमानिक देवों तक इसी प्रकार तीन दृष्टि जाननी चाहिए। तीन दुर्गतियाँ कही गई हैं। यथा - नरक दुर्गति, तिर्यञ्च योनि दुर्गति और नीच कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य की अपेक्षा मनुष्यदुर्गति। तीन सुगतियाँ कही गई हैं। यथा - सिद्धि सुगति, देवसुगति और मनुष्य सुगति। तीन दुर्गत कहे गये हैं। यथा - नैरयिक दुर्गति वाले,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यञ्च योनि के दुर्गति वाले और नीच कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य की अपेक्षा मनुष्य दुर्गति वाले। तीन सुगति वाले कहे गये हैं। यथा - सिद्ध सुगति वाले, देव सुगति वाले और मनुष्य सुगति वाले।

विवेचन - एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरेन्द्रिय जीवों को मिश्रदृष्टि नहीं होती है। इनको छोड़ कर नैरयिक की तरह वैमानिक पर्यन्त सभी जीव तीन दृष्टि वाले हैं। तीन प्रकार के दर्शन वाले जीव दुर्गति एवं सुगति के योग से दुर्गत-दुर्गति वाले और सुगत-सुगति वाले कहे गये हैं। अपेक्षा से मनुष्य गति दुर्गति भी है और सुगति भी है। मनुष्य गति में चांडाल आदि के रूप में उत्पन्न होना दुर्गति है और सेठ आदि के रूप में उत्पन्न होना सुगति है।

चउत्थभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तंजहा - उस्सेइमे, संसेइमे, चाउलधोवणे। छट्ठभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तंजहा - तिलोदए तुसोदए जवोदए। अट्ठमभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तंजहा - आयामए सोवीरए सुद्धवियडे। तिविहे उवहडे पण्णत्ते तंजहा - फलिहोवहडे, सुद्धोवहडे, संसट्ठोवहडे। तिविहे उग्गहिए पण्णत्ते तंजहा - जं च ओगिण्हइ, जं च साहरइ, जं च आसगंसि पक्खिवइ। तिविहा ओमोयरिया पण्णत्ता तंजहा - उवगरणोमोयरिया, भत्तपाणोमोयरिया, भावोमोयरिया। उवगरणोमोयरिया तिविहा पण्णत्ता तंजहा - एगे वत्थे, एगे पाए, चियत्तोवहिसाइज्जणया तओ ठाणा णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अहियाए असुहाए अक्खमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - कूयणया कक्करणया अवज्झाणया। तओ ठाणा णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए अणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - अकूयणया अकक्करणया अणवज्झाणया। तओ सल्ला पण्णत्ता तंजहा - मायासल्ले णियाणसल्ले मिच्छादंसणसल्ले। तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संखित्तविउलतेउलेस्से भवइ तंजहा - आयावणयाए, खंतिखमाए, अपाणगेणं तवोकम्मेणं। तिमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति तओ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए तओ पाणगस्स। एगराइयं भिक्खुपडिमं सम्मं अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहियाए असुहाए अखमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - उम्मायं वा लभिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं पाउणेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। एगराइयं भिक्खुपडिमं सम्मं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुपालेमाणस्स अणगारस्स तओ ठाणा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए अणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - ओहिणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा, मणपज्जवणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा, केवलणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा॥ १४॥

कठिन शब्दार्थ - चउत्थभत्तियस्स - चतुर्थ भक्त (उपवास) करने वाले, **पाणगाइं** - पानी, **पडिगाहित्तए** - लेना, **कप्पंति** - कल्पता है, **उस्सेइमे** - उत्स्वेदिम-कठौती आदि का धोया हुआ धोवन, **संसेइमे** - संस्वेदिम, **चाउलधोवणे** - तंदुल धावन-चावलों का धोया हुआ पानी, **छठ भत्तियस्स** - षष्ठ भक्त (बेला) करने वाले, **तिलोदए** - तिलों का धोवन, **तुसोदए** - तुसों का धोवन, **जवोदए** - यवों का धोवन, **अट्ठमभत्तियस्स** - अष्टम भक्त (तेला) करने वाले, **आयामए** - आयामक, **ओसामण**- चावल आदि का मांड, **सोवीरए** - कांजी का पानी, **सुद्धवियडे** - शुद्धविकट-उष्णोदक, **उवहडे** - उपहृत-लाया हुआ, **फलिहोवहडे** - फलिकोपहृत, **सुद्धोवहडे** - शुद्धोपहृत, **संसट्ठोवहडे** - संसृष्टोपहृत, **उग्गहिए** - अवग्रह, **ओमोयरिया** - अवमोदरिका ऊनोदरी तप, **उवगरणोमोयरिया** - उपकरण ऊनोदरी, **भत्तपाणोमोयरिया** - भक्त पान ऊनोदरी, **भावोमोयरिया** - भाव ऊनोदरी, **चियत्तोवहि साइज्जणया**- संयम के उपकारक मलिन एवं जीर्ण वस्त्र आदि उपकरण रखना, **कूयणया** - कूजनता, **कक्करणया** - कर्करणता-शय्या और उपधि के दोष बताना, **अवज्झाणया**- अपध्यानता, **अणिस्सेयसाए** - अनिःश्रेयस (अकल्याण) के लिए, **अणाणुगामियत्ताए** - अशुभानुबंध के लिए, **आयावणयाए** - आतापना लेने से, **खंतिखमाए** - क्षमा करने से **संखित्तविउलतेउलेस्से** - संक्षिप्त की हुई विपुल तेजो लेश्या, **पडिवण्णस्स**- धारण करने वाले, **एगराइयं** - एक रात्रि की, **भिक्खुपडिमे** - भिक्षु प्रतिमा, **अणणुपालेमाणस्स** - पालन न करने वाले, **उम्मायं** - उन्माद को, **भंसेज्जा** - भ्रष्ट हो जाय।

भावार्थ - चतुर्थभक्त यानी उपवास करने वाले साधु को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है। यथा - उत्स्वेदिम यानी कठौती आदि का धोवन, संस्वेदिम यानी शाकभाजी को बाफ कर जो पानी निकाला जाता है और तन्दुलधावन यानी चावलों का धोया हुआ पानी। षष्ठभक्त यानी बेला करने वाले साधु को तीन प्रकार का पानी ग्रहण करना कल्पता है। यथा - तिलों का धोवन, तुसों का धोवन और यवों का धोवन। अष्टमभक्त यानी तेला करने वाले साधु को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है। यथा-आयामक यानी ओसामण-चावल आदि का मांड, काञ्जी का पानी और उष्णोदक यानी गर्म पानी। तीन प्रकार का उपहृत कहा गया है। यथा - फलिकोपहृत यानी फली आदि जिसको कि वह खाने की इच्छा करता है। उसे लेना शुद्धोपहृत यानी लेप रहित शुद्ध आहार को लेना और संसष्टोपहृत यानी खाने के लिए जिस आहार में हाथ डाला गया है किन्तु अभी मुख में नहीं डाला गया है ऐसे आहार को लेना। तीन प्रकार का अवग्रह कहा गया है। यथा - जो आहार गृहस्थ ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खाने के लिए लिया है उसमें से लेना, जो आहार अपने स्थान से इधर उधर न चलते हुए दाता अपने बर्तन में से आहार दे उसे लेना और जो आहार पकने के बर्तन में से निकाल कर ठंडा करने के लिए थाली आदि चौडे बर्तन में डाला गया हो और उसमें से वापिस उसी बर्तन में डाला जाता हो उस आहार में से लेना। ऊनोदरी तप तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - उपकरण ऊनोदरी अर्थात् मर्यादा से कम वस्त्र पात्र रखना। भक्तपान ऊनोदरी अर्थात् शास्त्र में जो आहार का परिमाण बतलाया है उससे कम आहार करना। भावोनोदरता यानी क्रोध आदि कषायों को घटाना भाव ऊनोदरी है। उपकरण ऊनोदरी के तीन भेद कहे गये हैं। यथा - एक वस्त्र, एक पात्र और संयम के उपकारक रजोहरण आदि उपकरण रखना। कूजनता यानी आर्त्तस्वर से रुदन करना, कक्कर्करणता यानी शय्या उपधि आदि के दोष बताना अर्थात् यह खराब है, अमुक खराब है इत्यादि वचन बोलना और अपध्यानता यानी आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करना ये तीन बातें साधु और साध्वियों के लिये अहित अशुभ एवं असुख अक्षमा अर्थात् अयुक्त अनिःश्रेयस अर्थात् अकल्याण और अशुभानुबन्ध के लिए होती है। अकूजनता यानी आर्तस्वर से रुदन न करना अकक्कर्करणता यानी यह खराब है अमुक खराब है, इत्यादि वचन न बोलना और अनपध्यानता यानी आर्तध्यान रौद्रध्यान न करना ये तीन बातें साधु साध्वियों के लिए हित सुख एवं शुभ क्षमा निःश्रेयस यानी कल्याण और शुभानुबन्ध के लिए होती हैं। तीन शल्य कहे गये हैं। यथा - माया शल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शन शल्य। आतापना लेने से, क्रोध का निग्रह कर क्षमा करने से और पानी रहित यानी चौविहार बेले बेले की तपस्या करने से इन तीन बातों से श्रमण निर्ग्रन्थ को संक्षिप्त की हुई तेजोलेश्या की प्राप्ति होती है। तीन मास की तीसरी भिक्षुपडिमा को धारण करने वाले साधु को भोजन की तीन दत्तियाँ और पानी की तीन दत्तियाँ लेना कल्पती हैं। एक रात्रिकी भिक्षुपडिमा का सम्यक् रूप से पालन न करने वाले साधु के लिए ये आगे कहे जाने वाले तीन स्थान अहित अशुभ एवं असुख अक्षमा अनिःश्रेयस यानी अकल्याण और अशुभानुबन्ध के लिए हो जाते हैं। यथा - उन्माद को प्राप्त होवे यानी चित्तविभ्रम होवे अथवा लम्बे समय तक रहने वाले कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न हो जाय अथवा केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाय। एकरात्रिकी भिक्षुपडिमा को सम्यक् रूप से पालन करने वाले साधु के लिए तीन स्थान हित शुभ एवं सुख क्षमा निःश्रेयस और शुभानुबन्ध के लिए होते हैं। यथा - उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाय अथवा मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हो जाय अथवा केवलज्ञान उत्पन्न हो जाय।

विवेचन - 'चतुर्थ भक्त' शब्द का कोई ऐसा अर्थ करते हैं कि उपवास के पहले दिन एक भक्त और पारणे के दिन एक भक्त और उपवास के दिन दो भक्त, इस प्रकार चार भक्तों का (चार वक्त भोजन का अर्थात् चार टंक का) त्याग करना चतुर्थ भक्त कहलाता है। किन्तु यह अर्थ आगम सम्मत नहीं हैं। क्योंकि गुणरत्न संवत्सर तप और कालीआदिक दस रानियों के तप में चतुर्थ भक्त शब्द की इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार की व्याख्या मिलती नहीं हैं। इसलिए अन्तगड और भगवती सूत्र में बतलाया गया है कि **'चतुर्थभक्त इति उपवासस्य संज्ञा'** अर्थात् चतुर्थ भक्त यह उपवास की संज्ञा है। इसी प्रकार षष्ठ भक्त बेले की संज्ञा है और अष्टम भक्त तेले की संज्ञा है। संज्ञा किसी पदार्थ में रूढ़ होती है उसका वहाँ शब्दार्थ नहीं लिया जाता है। उपवास के पहले दिन में एक भक्त, पारणे के दिन एक भक्त और उपवास के दिन दो भक्त इस प्रकार चार भक्त चतुर्थभक्त कहलाता है।

भोजन करने के स्थान में लाकर रखा हुआ आहार 'उपहृत' कहलाता है।

ऊनोदरी - भोजन आदि के परिमाण और क्रोध आदि के आवेग को कम करना ऊनोदरी है। यहां ऊनोदरी तप तीन प्रकार का कहा है -

१. उपकरण ऊनोदरी - मर्यादा से कम वस्त्र पात्र रखना। उपकरण के लिये टीकाकार ने कहा है - शास्त्र में बतायी हुई उपधि के अभाव में तो संयम का अभाव हो जाता है। अतः मर्यादा से अधिक न रखना ऊनोदरी है। जो उपकरण ज्ञानादि के उपकार में साधु के लिये आवश्यक हैं वे ही उपकरण है। जो मर्यादा से अधिक उपकरण रखता है वह अधिकरण रूप है क्योंकि वहां मूर्च्छा का कारण बनता है। अयत्ना वाले के द्वारा अयतना से धारण किये जाने वाले जो उपकरण हैं वे ही उसके लिए अधिकरण रूप है। यथा -

जं वट्टइ उवगारे, उवकरणं तं सि (तेसि) होइ उवगरणं।
अइरेगं अहिगरणं अजओ अजयं परिहरंतो॥

यहाँ पर 'एक वस्त्र और एक पात्र' का जो कथन किया गया है उसके लिए टीकाकार ने स्पष्ट लिखा है कि यह विधान जिनकल्पी मुनि के लिए लागू होता है। स्थविर कल्पी मुनि के लिए नहीं क्योंकि स्थविर कल्पी मुनि तो अपनी मर्यादा के अनुसार वस्त्र-पात्र रख सकता हैं।

२. भक्तपान ऊनोदरी - शास्त्र में आहार पानी का जो परिमाण बतलाया गया है उसमें कमी करना।

बत्तीसं किर कवला, आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ।
पुरिसस्स महिलियाए, अट्ठावीसं भवे कवला।।

- पुरुष के लिये बत्तीस कवल (कोलिया) आहार कुक्षिपूरक (उदरपूरक) कहा है और स्त्री का आहार २८ कवल का होता है।

कवलाण य परिमाणं कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्तं तु ।
जो वा अविगियवयणो, वयणंमि छुहेज्ज वीसत्थो ।।११९ ।।

- कवल का परिमाण तो कुर्कटी (कूकडी) के अंडे के प्रमाण जितना है अथवा अविकृत रूप से-सुखपूर्वक मुख में प्रवेश हो सके उतने प्रमाण आहार का एक कवल जानना। आहार की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊनोदरी १ आठ २ बारह ३ सोलह ४ चौबीस और ५ एकतीस कवल तक क्रम से अल्प आहार आदि संज्ञा वाली पांच प्रकार की है। कहा है -

अप्पाहार १ अवड्ढा २ दुभाग ३ पत्ता ४ तहेव किं चूणा ५।

अट्ठ १ दुवालस २ सोलह ३, चउवीस ४ तहेक्कतीसा य ५।। १२० ।।

- १. एक से आठ कवल पर्यंत अल्पाहार २. नौ से बारह कवल पर्यंत अपार्द्ध ३. तेरह से सोलह पर्यंत द्विभाग ४. सतरह से चौबीस कवल तक प्राप्त और ५. पच्चीस कवल से इकत्तीस कवल तक किंचित् न्यून ऊनोदरी जाननी। आहार की तरह पानी की भी ऊनोदरी समझनी चाहिये।

भगवती सूत्र में भी कहा है - **"बत्तीसं कुक्कुडिअंडगपमाणभेत्ते कवले आहारमाहारे माणे पमाणपत्तेति वत्तव्वं सिया, एत्तो एक्केण वि कवलेण ऊणगं आहारमाहारेमाणे समणे णिग्गंथे णो पगाम रस भोइत्ति वत्तव्वं सिय"** - कुकडी के अंडक प्रमाण वाला अर्थात् मुख में जो आसानी से रखा जा सके ऐसे बत्तीस कवल आहार करता हुआ प्रमाण प्राप्त ऐसी वक्तव्यता होती है इससे एक कवल भी न्यून आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रंथ प्रकाम (अत्यंत) रस भोजी नहीं कहलाता है।

३. भाव ऊनोदरी - कषायों को घटाना भाव ऊनोदरी कहलाता है।

शल्य - शल्यते-जिससे बाधा (पीडा) हो उसे शल्य कहते हैं। कांटा भाला आदि द्रव्य शल्य है। भावशल्य के तीन भेद हैं - १. माया शल्य २. निदान (नियाणा) शल्य और ३. मिथ्या दर्शन शल्य।

१. माया शल्य - कपट भाव रखना माया शल्य है। अतिचार लगा कर माया से उसकी आलोचना न करना अथवा गुरु के समक्ष अन्य रूप से निवेदन करना अथवा दूसरे पर झूठा आरोप लगाना माया शल्य है।

२. निदान शल्य - राजा, देवता आदि की ऋद्धि को देख कर या सुन कर मन में यह अध्यवसाय करना कि मेरे द्वारा आचरण किये हुए ब्रह्मचर्य, तप आदि अनुष्ठानों के फलस्वरूप मुझे भी ये ऋद्धियाँ प्राप्त हों । यह निदान (नियाणा) शल्य है।

३. मिथ्यादर्शन शल्य - विपरीत श्रद्धा का होना मिथ्यादर्शन शल्य है।

भिक्षु प्रतिमा - भिक्षु प्रतिमा यानी साधुओं का अभिग्रह विशेष + इसके बारह भेद हैं जिसमें एक मासिकी आदि मासोत्तरा (एक एक मास की वृद्धि वाली) सात हैं, तीन (आठ से दस) प्रत्येक सात-सात अहोरात्रि के परिमाण वाली हैं, एक (ग्यारहवीं) अहोरात्रिकी परिमाण वाली है और एक (बारहवीं) एक रात्रिकी परिमाण है। कहा है -

मासाई सत्तंता पढमा १ बिइ २ तइय ३ सत्त राइंदिणा १० ।

अहराई ११ एगराई १२, भिक्खू पडिमाण बारसमं ।। १२२ ।।

- पहली भिक्षु पडिमा एक मास की, दूसरी दो मास की यावत् सातवीं सात मास की है आठवीं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवमी और दसवी भिक्षुप्रतिमा सात सात अहोरात्रिकी परिमाण वाली है। ग्यारहवीं भिक्षु पडिमा एक अहोरात्रिकी और बारहवीं मात्र एक रात्रिकी है। इस प्रकार भिक्षु की १२ प्रतिमाएं हैं।

जंबूद्दीवे दीवे तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - भरहे एरवए महाविदेहे एवं धायइखंडे दीवे पुरच्छिमद्धे जाव पुक्खर वर दीवड्ढपच्चत्थिमद्धे। तिविहे दंसणे पण्णत्ते तंजहा - सम्मदंसणे मिच्छदंसणे सम्मामिच्छदंसणे। तिविहा रुई पण्णत्ता तंजहा - सम्मरुई मिच्छरुई सम्मामिच्छरुई। तिविहे पओगे पण्णत्ते तंजहा - सम्मपओगे मिच्छपओगे सम्मामिच्छपओगे। तिविहे ववसाए पण्णत्ते तंजहा - धम्मिए ववसाए अधम्मिए ववसाए धम्मियाधम्मिए ववसाए। अहवा तिविहे ववसाए पण्णत्ते तंजहा - पच्चक्खे पच्चइए अणुगामिए। अहवा तिविहे ववसाए पण्णत्ते तंजहा-इहलोइए परलोइए इहलोइयपरलोइए। इहलोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते तंजहा - लोइए वेइए सामइए। लोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते तंजहा - अत्थे धम्मे कामे। वेइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते तंजहा - रिउव्वेए जउव्वेए सामवेए। सामइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते तंजहा- णाणे दंसणे चरित्ते। तिविहा अत्थजोणी पण्णत्ता तंजहा - सामे दंडे भेए॥ ९५॥

कठिन शब्दार्थ - पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे - अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध और पूर्वार्द्ध, **दंसणे** - दर्शन, **रुई** - रुचि, **पओगे** - प्रयोग, **ववसाए** - व्यवसाय, **धम्माधम्मिए** - धार्मिक अधार्मिक, **पच्चइए** - प्रात्ययिक, **अणुगामिए** - आनुगामिक, **लोइए** - लौकिक, **वेइए** - वैदिक, **सामइए** - सामयिक, **अत्थे** - अर्थ, **धम्मे** - धर्म, **कामे** - काम, **रिउव्वेए** - ऋग्वेद, **जउव्वेए** - यजुर्वेद, **सामवेए**- सामवेद, **अत्थजोणी** - अर्थ योनि।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में तीन कर्म भूमियाँ कही गई हैं। यथा - भरत, ऐरवत और महाविदेह। इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में तथा अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध और पूर्वार्द्ध में तीन तीन कर्म भूमियाँ कहीं गई हैं। तीन प्रकार का दर्शन कहा गया है। यथा - सम्यग्-दर्शन, मिथ्यादर्शन और सममिथ्यादर्शन यानी मिश्रदर्शन। तीन प्रकार की रुचि कही गई हैं। यथा - सम्यग् रुचि, मिथ्यारुचि और सममिथ्यारुचि यानी मिश्ररुचि। तीन प्रकार का प्रयोग कहा गया है। यथा - सम्यक् प्रयोग, मिथ्याप्रयोग और सममिथ्या प्रयोग यानी मिश्र प्रयोग। तीन प्रकार का व्यवसाय कहा गया है। यथा - धार्मिक व्यवसाय, अधार्मिक व्यवसाय और धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय यानी मिश्र व्यवसाय। अथवा व्यवसाय यानी निश्चय तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - प्रत्यक्ष यानी अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान, प्रात्ययिक यानी इन्द्रिय और मन के निमित्त से पैदा होने वाला ज्ञान अथवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आप्त के वचन से पैदा होने वाला ज्ञान और आनुगामिक यानी धूम आदि हेतु से अग्नि आदि साध्य का ज्ञान करना। अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - इहलौकिक, पारलौकिक और इहलौकिक पारलौकिक। इहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - लौकिक यानी सामान्य लोकाश्रित, वैदिक यानी वेद सम्बन्धी और सामयिक यानी सांख्य आदि के सिद्धान्त सम्बन्धी। लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - अर्थ, धर्म और काम। वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया हैं। यथा - ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद। सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - ज्ञान दर्शन और चारित्र। अर्थ योनि तीन प्रकार की कही गई है। यथा - प्रियवचन आदि बोलना सो साम, दूसरे का वध बन्धन आदि करना सो दंड और शत्रुवर्ग में फूट डालना सो भेद।

विवेचन - कृषि (खेती), वाणिज्य, तप, संयम, अनुष्ठान आदि कर्मप्रधान भूमि को कर्मभूमि कहते हैं। पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह ये १५ क्षेत्र कर्मभूमि है। कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य कर्मभूमिज कहलाते हैं जो असि, मसि और कृषि इन तीन कर्मों द्वारा निर्वाह करते हैं।

दर्शन के तीन भेद कहे हैं - १. सम्यग्दर्शन २. मिथ्यादर्शन और ३. मिश्रदर्शन।

१. सम्यग् दर्शन - मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से आत्मा में जो परिणाम होता है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन हो जाने पर मति आदि अज्ञान भी सम्यग् ज्ञान रूप में परिणत हो जाते हैं।

२. मिथ्या दर्शन - मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से अदेव में देव बुद्धि और अधर्म में धर्म बुद्धि तथा गुरु के लक्षण एवं गुणों से रहित व्यक्ति को गुरु मानना रूप आत्मा के विपरीत श्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहते हैं।

३. मिश्र दर्शन - मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में कुछ अयथार्थ तत्त्व श्रद्धान होने को मिश्र दर्शन कहते हैं।

सम्यक्त्व पूर्वक मन का व्यापार 'प्रयोग' कहलाता है।

वस्तु स्वरूप के निश्चय को **व्यवसाय** कहते हैं। व्यवसाय के तीन भेद हैं - १. प्रत्यक्ष २. प्रात्ययिक ३. आनुगमिक (अनुमान)

१. प्रत्यक्ष व्यवसाय - अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष व्यवसाय कहते हैं अथवा वस्तु के स्वरूप को स्वयं जानना प्रत्यक्ष व्यवसाय है।

२. प्रात्ययिक व्यवसाय - इन्द्रिय एवं मन रूप निमित्त से होने वाला वस्तु स्वरूप का निर्णय प्रात्ययिक व्यवसाय कहलाता है। अथवा आप्त (वीतराग) के वचन द्वारा होने वाला वस्तु स्वरूप का निर्णय प्रात्ययिक व्यवसाय है।

३. आनुगमिक व्यवसाय - साध्य का अनुसरण करने वाला एवं साध्य के बिना न होने वाला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हेतु अनुगामी कहलाता है। उस हेतु से होने वाला वस्तु स्वरूप का निर्णय आनुगमिक व्यवसाय है। लौकिक व्यवसाय के तीन भेदों के विषय में टीकाकार ने लिखा है -

अर्थस्य मूलं निकृतिः क्षमा च, धर्मस्य दानं च दया दमश्च ।

कामस्य वित्तं च वपुर्वयश्च, मोक्षस्य सर्वोपरमः क्रियासु ॥

- धन का मूल कपट है और धर्म का मूल क्षमा, दान, दया और दम (इन्द्रिय निग्रह) है। काम का मूल द्रव्य, वपु-नीरोगी देह और वय-युवावस्था है और मोक्ष का मूल सभी क्रियाओं से उपरम-निवृत्ति रूप है। अर्थादि के लिये अनुष्ठान करना अर्थादि व्यवसाय कहलाते हैं।

तिविहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा - पओगपरिणया मीसापरिणया वीससापरिणया। तिपइट्ठिया णरगा पण्णत्ता तंजहा - पुढवीपइट्ठिया आगासपइट्ठिया आयपइट्ठिया। णेगमसंगहववहाराणं पुढवी पइट्ठिया, उज्जुसुयस्स आगासपइट्ठिया, तिण्ह सद्दणयाणं आयपइट्ठिया॥ ९६ ॥

भावार्थ - तीन प्रकार के पुद्गल कहे गये हैं। यथा - प्रयोगपरिणत यानी जीव के व्यापार से बने हुए, मिश्रपरिणत यानी प्रयोग और स्वभाव से बने हुए और विस्रसा परिणत यानी स्वभाव से बने हुए। नरकें तीन वस्तुओं के आधार पर रही हुई हैं। यथा - पृथ्वीप्रतिष्ठित, आकाशप्रतिष्ठित और आत्मप्रतिष्ठित। नैगम संग्रह और व्यवहार नय वाले मानते हैं कि नरकें पृथ्वी के आधार पर रही हुई हैं और ऋजुसूत्र नय वाले मानते हैं कि नरकें आकाश प्रतिष्ठित हैं और शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन तीन शब्द नय वाले मानते हैं कि नरकें आत्मप्रतिष्ठित यानी जीवों के आधार पर रही हुई हैं।

विवेचन - पुद्गल तीन प्रकार के कहे हैं - १. प्रयोग परिणत - जो जीव के व्यापार से बने हुए हैं जैसे वस्त्र आदि। २. मिश्र परिणत - प्रयोग और स्वभाव से बने हुए जैसे वस्त्र के पुद्गल ही प्रयोग परिणाम से वस्त्र रूप में और विस्रसा परिणाम से नहीं भोगने (उपयोग में लेने) पर भी पुराना होता है वह मिश्र परिणत पुद्गल है ३. विस्रसा - जो बादल और इन्द्र धनुष आदि की तरह स्वभाव से परिणत हुए हैं।

तिविहे मिच्छत्ते पण्णत्ते तंजहा - अकिरिया, अविणए, अण्णाणे। अकिरिया तिविहा पण्णत्ता तंजहा - पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, अण्णाणकिरिया। पओगकिरिया तिविहा पण्णत्ता तंजहा - मणपओगकिरिया वयपओगकिरिया, कायपओगकिरिया। समुदाणकिरिया तिविहा पण्णत्ता तंजहा - अणंतरसमुदाणकिरिया परंपरसमुदाणकिरिया, तदुभयसमुदाणकिरिया। अण्णाणकिरिया तिविहा पण्णत्ता तंजहा - मइअण्णाणकिरिया, सुयअण्णाणकिरिया, विभंगअण्णाणकिरिया। अविणए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिविहे पण्णत्ते तंजहा - देसच्चाई, णिरालंबणया, णाणापेज्जदोसे। अण्णाणे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - देस अण्णाणे सव्वअण्णाणे भाव अण्णाणे॥ १७॥

कठिन शब्दार्थ - मिच्छत्ते - मिथ्यात्व, **अकिरिया** - अक्रिया, **अविणए** - अविनय, **अण्णाणे**- अज्ञान, **पओगकिरिया** - प्रयोग क्रिया, **समुदाण किरिया** - समुदान क्रिया, **मइअण्णाणकिरिया** - मतिअज्ञान क्रिया, **सुय अण्णाणकिरिया** - श्रुत अज्ञान क्रिया, **विभंग अण्णाण किरिया** - विभंग अज्ञान क्रिया, **देसच्चाई** - देश त्यागी, **णिरालंबणया** - निरालम्बनता, **अण्णाणे** - अज्ञान।

भावार्थ - तीन प्रकार का मिथ्यात्व कहा गया हैं। यथा - अक्रिया, अविनय और अज्ञान। अक्रिया यानी अशोभन क्रिया तीन प्रकार की कही गई है। यथा - प्रयोग क्रिया, समुदान क्रिया और अज्ञान क्रिया। प्रयोग क्रिया तीन प्रकार की कही गई हैं। यथा - मनप्रयोग क्रिया, वचन प्रयोग क्रिया कायप्रयोग क्रिया। समुदान क्रिया तीन प्रकार की कही गई है। यथा - अनन्तरसमुदान क्रिया, परम्परा समुदान क्रिया और तदुभयसमुदान क्रिया यानी अनन्तरपरम्पर समुदान क्रिया। अज्ञान क्रिया तीन प्रकार की कही गई है। यथा - मतिअज्ञान क्रिया, श्रुतअज्ञान क्रिया और विभङ्ग अज्ञान क्रिया। अविनय तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - देशत्यागी यानी जन्मक्षेत्र को छोड़ कर वहाँ के स्वामी को गाली आदि देना। निरालम्बनता यानी आश्रय देने वाले की अपेक्षा न करना और नाना प्रकार के राग द्वेष के वश होकर अविनय करना। अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - देश अज्ञान यानी विवक्षित द्रव्य के देश को न जानना, सर्वथा न जानना सो सर्व-अज्ञान और पर्याय रूप से न जानना भावअज्ञान।

विवेचन - मोहवश तत्त्वार्थ में श्रद्धा न होना या विपरीत श्रद्धा होना मिथ्यात्व है। जैसा कि कहा है-

अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरौ च या।

अधर्मे धर्म बुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद् विपर्ययात्॥ (मिथ्यात्वं तन्निगद्यते)

अर्थ - देव अर्थात् ईश्वर राग द्वेष रहित होता है किन्तु रागी-द्वेषी को देव (ईश्वर) मानना, पाँच महाव्रतधारी एवं पाँच समिति तीन गुप्ति से युक्त गुरु होता है किन्तु इन गुणों से रहित को गुरु मानना, अहिंसा, संयम और तप धर्म है किन्तु हिंसादि में धर्म मानना। इस प्रकार अदेव में देव, अगुरु में गुरु और अधर्म में धर्म बुद्धि रखना मिथ्यात्व हैं। विपरीतता के कारण यह मिथ्यात्व कहलाता है।

यहाँ तीन अज्ञान क्रियाओं में विभंग अज्ञान क्रिया कही हैं। अवधिज्ञान का विपरीत विभंग शब्द है। इसलिए "अवधि अज्ञान" के स्थान पर "विभंग ज्ञान" शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। विभंग द्वार की गयी क्रिया अज्ञान क्रिया कहलाती है। प्रस्तुत सूत्र में अज्ञान क्रिया का वर्णन होने से यहाँ पर अज्ञान शब्द क्रिया का विशेषण है। अतः विभंग अज्ञान क्रिया कहा है।

तिविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा-सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे। तिविहे उवक्कमे पण्णत्ते तंजहा - धम्मिए उवक्कमे, अधम्मिए उवक्कमे, धम्मियाधम्मिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवक्कमे। अहवा तिविहे उवक्कमे पण्णत्ते तंजहा - आओवक्कमे, परोवक्कमे, तदुभयोवक्कमे एवं वेयावच्चे अणुग्गहे, अणुसट्ठी, उवालंभं, एवमेक्केक्के तिण्णि तिण्णि आलावगा जहेव उवक्कमे॥ ९८॥

कठिन शब्दार्थ - अत्थिकायधम्मे - अस्तिकाय धर्म, **उवक्कमे** - उपक्रम (उद्यम), **धम्मियाधम्मिए उवक्कमे** - धार्मिकाधार्मिक उपक्रम, **आओवक्कमे** - आत्मोपक्रम, **परोवक्कमे** - परोपक्रम, **तदुभयोवक्कमे** - तदुभयोपक्रम, **वेयावच्चे** - वैयावृत्य, **अणुग्गहे** - अनुग्रह, **अणुसट्ठी** - अनुशिष्टि - शिक्षा, **उवालंभं** - उपालम्भ।

भावार्थ - तीन प्रकार का धर्म कहा गया है। यथा - सिद्धान्त का पठन-पाठन एवं मनन करना सो श्रुत धर्म, क्षमा आदि दस प्रकार का यतिधर्म सो चारित्र धर्म और धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य का स्वभाव सो अस्तिकाय धर्म। श्रुत धर्म और चारित्र धर्म ये दो भाव धर्म हैं और धर्मास्तिकाय द्रव्य धर्म है। तीन प्रकार का उपक्रम यानी उद्यम कहा गया है। यथा - श्रुत चारित्र रूप धर्म का पालन करना सो धार्मिक उपक्रम, पापारम्भ करना सो अधार्मिक उपक्रम और देशविरति श्रावकपने का पालन करना का आरम्भ सो धार्मिकाधार्मिक उपक्रम। अथवा तीन प्रकार का उपक्रम कहा गया है। यथा - अनुकूल उपसर्ग आदि होने पर शील की रक्षा के लिए वैहानस आदि मरण करना सो आत्मोपक्रम, पर के लिए मरना सो परोपक्रम और स्व और पर दोनों के लिए उपक्रम करना सो तदुभयोपक्रम। इस प्रकार जैसे उपक्रम के तीन भेद कहे हैं वैसे ही वैयावृत्य, अनुग्रह यानी ज्ञानादि का उपकार, अनुशिष्टि यानी शिक्षा और उपालम्भ। इन सब में प्रत्येक के तीन तीन आलापक यानी भेद कह देने चाहिए।

विवेचन - धर्म के तीन भेद कहे हैं - १. श्रुतधर्म २. चारित्र धर्म और ३. अस्तिकाय धर्म।

१. श्रुतधर्म - अंग उपांग रूप वाणी को श्रुत धर्म कहते हैं। वाचना, पृच्छना आदि स्वाध्याय के भेद भी श्रुत धर्म कहलाते हैं।

२. चारित्र धर्म - कर्मों के नाश करने की चेष्टा चारित्र धर्म है। अथवा मूल गुण और उत्तर गुणों के समूह को चारित्र धर्म कहते हैं । अर्थात् क्रिया रूप धर्म ही चारित्र धर्म है।

३. अस्तिकाय धर्म - धर्मास्तिकाय आदि को अस्तिकाय धर्म कहते हैं।

तिविहा कहा पण्णत्ता तंजहा - अत्थकहा धम्मकहा कामकहा। तिविहे विणिच्छए पण्णत्ते तंजहा - अत्थविणिच्छए, धम्मविणिच्छए, कामविणिच्छए॥ ९९॥

कठिन शब्दार्थ - कहा - कथा, **अत्थकहा** - अर्थ कथा, **धम्मकहा** - धर्म कथा, **कामकहा** - काम कथा, **विणिच्छए** - विनिश्चय, **अत्थविणिच्छए** - अर्थ विनिश्चय, **धम्मविणिच्छए** - धर्म विनिश्चय, **कामविणिच्छए** - काम विनिश्चय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तीन प्रकार की कथा कही गई है। यथा - धन उपार्जन सम्बन्धी कथा सो अर्थकथा, दया दान आदि की कथा सो धर्म कथा और काम शास्त्र की कथा सो काम कथा। तीन प्रकार का विनिश्चय कहा गया है। यथा - धन के स्वरूप का वर्णन करना सो अर्थ विनिश्चय, धर्म ही मोक्ष को देने वाला है इत्यादि वर्णन करना सो धर्म विनिश्चय और काम भोगों के दुःखदायी फल का वर्णन करना सो काम विनिश्चय।

विवेचन - कथा तीन प्रकार की कही है - १. अर्थ कथा २. धर्म कथा ३. काम कथा।

१. अर्थ कथा - अर्थ का स्वरूप एवं उपार्जन के उपायों को बतलाने वाली वाक्य पद्धति अर्थ कथा है । जैसे - कामन्दकादि शास्त्र।

२. धर्म कथा - धर्म का स्वरूप एवं उपायों को बतलाने वाली वाक्य पद्धति धर्मकथा है। जैसे- उत्तराध्ययन सूत्र आदि।

३. काम कथा - काम एवं उसके उपायों का वर्णन करने वाली वाक्य पद्धति काम कथा है जैसे- वात्सायन काम सूत्र आदि।

तहारूवं णं भंते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणया? सवणफला। से णं भंते सवणे किंफले ? णाणफले। से णं भंते णाणे किंफले ? विण्णाणफले। एवमेएणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा -

सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिय णिव्वाणे॥

जाव से णं भंते अकिरिया किं फला ? णिव्वाणफला। से णं भंते णिव्वाणे किंफले ? सिद्धिगइगमणपज्जवसाणफले पण्णत्ते समणाउसो!॥ १००॥

।। तइयट्ठाणस्स तइयउद्देसो समत्तो ।।

कठिन शब्दार्थ - पज्जुवासमाणस्स - पर्युपासना-सेवा का, **किंफला** - क्या फल, **सवणफला**- श्रवणफल-शास्त्र श्रवण का फल, **विण्णाणफले** - विज्ञान फल, **अणुगंतव्वा** - जाननी चाहिये, **अणण्हए**- अनास्रव-नवीन कर्मों का बंध न होना, **वोदाणे** - व्यवदान-पूर्वकृत कर्मों का क्षय, **अकिरिय**- अक्रिया-योगों का निरोध, **णिव्वाणे** - निर्वाण, **सिद्धिगइगमण पज्जवसाण फले** - सब कार्यों की सिद्धि रूप मोक्ष की प्राप्ति होना, यह अंतिम फल, **पण्णत्ते** - कहा गया है।

भावार्थ - गौतम स्वामी पूछते हैं कि हे भगवन् ! तथारूप यानी साधु के गुणों से युक्त श्रमण माहन यानी साधु महात्माओं की पर्युपासना यानी सेवा करने वाले पुरुष को उस सेवा का क्या फल होता है ? भगवान् फरमाते हैं कि शास्त्रश्रवण का फल होता है। गौतम स्वामी फिर पूछते हैं कि हे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् ! श्रवण का क्या फल होता है ? भगवान् फरमाते हैं कि श्रवण से ज्ञान प्राप्त होता है। गौतम स्वामी फिर पूछते हैं कि हे भगवन् ! ज्ञान का क्या फल होता है ? भगवान् फरमाते हैं कि ज्ञान से विज्ञान यानी पदार्थों की हेय उपादेयता का निश्चय होता है। इस प्रकार इस अभिलापक के अनुसार यह गाथा जाननी चाहिए -

साधु के गुणों से युक्त तथारूप के साधु की पर्युपासना के क्रमशः उत्तरोत्तर ये फल हैं। यथा - शास्त्रश्रवण, ज्ञान, विज्ञान, प्रत्याख्यान यानी हेय पदार्थों का त्याग, संयम यानी प्राणातिपात आदि से निवृत्त होना, अनास्रव यानी नवीन कर्मों का बंध न होना, तप, व्यवदान यानी पूर्वकृत कर्मों का क्षय, अक्रिया यानी योगों का निरोध और निर्वाण।

इसी विषय में गौतम स्वामी पूछते हैं कि हे भगवन् ! अक्रिया यानी योग निरोध का क्या फल होता है ? भगवान् फरमाते हैं कि योगनिरोध का फल निर्वाण है। गौतम स्वामी फिर पूछते हैं कि भगवन् ! निर्वाण का क्या फल होता है ? भगवान् गौतमादिक शिष्यपरिवार को सम्बोधित करके फरमाते हैं कि हे आयुष्मन श्रमणो ! सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके सब कार्यों की सिद्धि रूप मोक्ष की प्राप्ति होना, यही अन्तिम फल कहा गया है।

विवेचन - साधु के गुणों से युक्त साधु के दर्शन करने का क्या फल होता है ? इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया है कि शास्त्र श्रवण का फल होता है इसका तात्पर्य यह है कि दर्शन करने वाले व्यक्ति का जीवन धार्मिक बने ऐसा कुछ उसको धर्मोपदेश देना चाहिए। यदि इस प्रकार का अवसर न हो तो कम से कम उसे **'चत्तारि मंगलं'** का पाठ तो कह ही देना चाहिए क्योंकि यह आवश्यक सूत्र का पाठ है, इसमें बतलाया गया है कि अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ये चार इस लोक में मंगल, उत्तम और शरण रूप हैं इसीलिए 'चत्तारि मंगलं' का पाठ कह कर संक्षेप में उसको हिन्दी में यह कह देना चाहिए -

"ये चार मंगल चार उत्तम चार शरण है और न दूजा कोय।
जे भवी प्राणी आदरे तो अक्षय अमर पद होय॥"

कितनेक संत महात्मा ऐसा कह देते हैं कि "बार-बार मांगलिक क्या कहना साधु के दर्शन ही मांगलिक है" किन्तु ऐसा कहना इस आगम पाठ के अनुकूल नहीं है क्योंकि दर्शनार्थी को शास्त्र श्रवण का फल मिलना चाहिए तथा मांगलिक कहने वाले के तो बार-बार स्वाध्याय हो जाता है अतः दर्शनार्थी जब भी मांगलिक मांगे उसे मांगलिक सुनाना इस शास्त्र पाठ के अनुकूल है। मांगलिक सुनाने के लिये समय निश्चित करना भी आगमानुकूल नहीं है। 'इतने समय ही मांगलिक सुनाया जाएगा' ऐसा कहना अनुचित है।

।। तीसरे स्थान का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे स्थान का चौथा उद्देशक

पडिमा पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया पडिलेहित्तए तंजहा - अहे आगमण गिहंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलगिहंसि वा, एवमणुण्णवित्तए, उवाइणित्तए। पडिमापडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा पडिलेहित्तए तंजहा - पुढविसिला कट्ठसिला अहासंथडमेव य। एवमणुण्णवित्तए उवाइणित्तए॥ १०१॥

कठिन शब्दार्थ - पडिमा पडिवण्णस्स - पडिमा का धारण करने वाले, **उवस्सया** - उपाश्रय, **पडिलेहित्तए** - पडिलेहणा (प्रतिलेखना) करना, **आगमणगिहंसि** - आने जाने वाले पथिकों के लिए बना हुआ घर, **वियडगिहंसि** - चारों तरफ से खुला हुआ मकान, **रुक्खमूलगिहंसि** - वृक्ष का मूल भाग, **अणुण्णवित्तए** - आज्ञा लेना, **उवाइणित्तए** - ठहरना, **संथारगा** - संस्तारक की, **पुढविसिला**- पृथ्वीशिला, **कट्ठसिला** - काष्ठ शिला, **अहासंथडं** - तृणादि का संथारा जो पहले से बिछा हुआ हो।

भावार्थ - पडिमा को धारण करने वाले साधु के लिए तीन प्रकार के उपाश्रयों में रहने के लिए उनकी पडिलेहणा करना कल्पता है। यथा - आने जाने वाले पथिकों के लिए बना हुआ घर, चारों तरफ से खुला हुआ मकान और वृक्ष का मूल भाग। इसी प्रकार उपरोक्त तीन प्रकार के उपाश्रयों की गृहस्थ से आज्ञा लेना और वहाँ पर ठहरना कल्पता है। पडिमा धारण करने वाले साधु को तीन प्रकार के संस्तारक की पडिलेहणा करना कल्पता है। यथा-पृथ्वीशिला, काष्ठशिला और तृणादि का संथारा। इसी प्रकार इन तीन संस्तारकों के लिए गृहस्थ की आज्ञा लेना और इन्हें ग्रहण करना कल्पता है।

विवेचन - उपाश्रय - "उपाश्रीयन्ते-भज्यन्ते शीतादित्राणार्थं ये ते उपाश्रयाः-वसतयः" शीत आदि की रक्षा के लिये जिसका आश्रय लिया जाता है उसे उपाश्रय कहते हैं। पडिमा को धारण करने वाले साधु के लिये तीन प्रकार के उपाश्रयों की गृहस्थ से आज्ञा लेना और वहाँ पर ठहरना कल्पता है - १. आने जाने वाले पथिकों के लिए बना हुआ घर, गृहस्थजन आ कर के जहां रहते हैं अथवा जिनके आगमन के लिये जो गृह है वह सभा, प्रपा, आगंतुक गृह आदि। २. वियड - नहीं ढंका हुआ, उसके दो भेद हैं - १ अधो और २. ऊर्ध्व। जो एक आदि दिशा से खुला है वह; अधोविवृत्त गृह और माल (मजला) आदि का घर अथवा चारों तरफ से नहीं ढका हुआ किन्तु केवल ऊपर से ढका हुआ है, ऊर्ध्व विवृत्त गृह कहलाता है। ३. वृक्ष का मूल भाग।

तिविहे काले पण्णत्ते तंजहा - तीए पडुप्पण्णे अणागए। तिविहे समए पण्णत्ते तंजहा - तीए पडुप्पण्णे अणागए एवं आवलिया आणपाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव वाससयसहस्से पुव्वंगे पुव्वे जाव ओसप्पिणी। तिविहे पोग्गल परियट्टे पण्णत्ते तंजहा - तीए पडुप्पण्णे अणागए। तिविहे वयणे पण्णत्ते तंजहा - एगवयणे दुवयणे बहुवयणे, अहवा तिविहे वयणे पण्णत्ते तंजहा - इत्थिवयणे पुंवयणे णपुंसगवयणे अहवा तिविहे वयणे पण्णत्ते तंजहा-तीयवयणे पडुप्पण्णवयणे अणागयवयणे।१०२।

कठिन शब्दार्थ - तीए - अतीत, **पडुप्पण्णे** - प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) **अणागए** - अनागत (भविष्य)

भावार्थ - तीन प्रकार का काल कहा गया है। यथा - अतीत काल, वर्तमान काल और अनागत काल यानी भविष्यत् काल। तीन प्रकार का समय कहा गया है। यथा - अतीत, वर्तमान और अनागत। इसी प्रकार आवलिका, श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्रि यावत् लाख वर्ष, पूर्वाङ्ग पूर्व यावत् अवसर्पिणी तक सब के अतीत वर्तमान और अनागत ये तीन तीन भेद हैं। तीन प्रकार का पुद्गल परिवर्तन कहा गया है। यथा - अतीत, वर्तमान और अनागत। तीन प्रकार के वचन कहे गये हैं। यथा - एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। अथवा तीन प्रकार का वचन कहा गया है। यथा - स्त्री वचन, पुरुष वचन और नपुंसक वचन। अथवा तीन प्रकार का वचन कहा गया है। यथा - अतीत वचन, वर्तमान वचन, अनागत वचन।

विवेचन - काल तीन प्रकार का कहा है - १. अतीत - भूतकाल २. प्रत्युत्पन्न - अभी जो उत्पन्न हुआ है वह प्रत्युत्पन्न-वर्तमान। ३. अनागत - जो नहीं आगत (आया हुआ) वह अनागत, वर्तमान पन को नहीं प्राप्त अर्थात् भविष्य ऐसा अर्थ होता है।

पोग्गलपरियट्टे - पुद्गल यानी आहारक को छोड़ कर शेष रूपी द्रव्यों के औदारिक आदि (सात वर्गणा) प्रकार से ग्रहण करने से एक जीव की अपेक्षा **परिवर्त्तनं** - समस्त रूप से स्पर्श करना पुद्गल परिवर्त्त हैं। यह जितने काल से होता है वह काल पुद्गल परावर्त्त कहलाता है जो अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप है। पुद्गल परावर्त्त का वर्णन भगवती सूत्र में इस प्रकार किया है-

कइविहे णं भंते ! पोग्गल परियट्टे पण्णत्ते ? गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, तंजहा- ओरालिय पोग्गल परियट्टे वेउव्विय पोग्गल परियट्टे एवं तेयाकम्माभणवइ आणा पाणू पोग्गल परियट्टे।.

प्रश्न - हे भगवन् ! पुद्गल परावर्त्त कितने प्रकार का कहा है ?

उत्तर - हे गौतम ! सात प्रकार का पुद्गल परावर्त्त कहा है यथा - १. औदारिक पुद्गल परावर्त्त २. वैक्रिय पुद्गल परावर्त्त ३. तैजस ४. कर्म (कार्मण) ५. मन ६. वचन (भाषा) ७. आनप्राण श्वासोच्छ्वास पुद्गल परावर्त्त।

'से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-ओरालिय पोग्गल परियट्टे ? गोयमा ! जे णं जीवेणं ओरालिय सरीरे वट्टमाणेणं ओरालिय सरीर पाउग्गाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए गहियाइं जाव णिसट्ठाइं भवंति, से तेणऽट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-ओरालिय पोग्गल परियट्टे ओ० २ ।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन् ! किस कारण से औदारिक पुद्गल परावर्त्त ऐसा कहा जाता है ?

उत्तर - हे गौतम ! जिस कारण से औदारिक शरीर में रहते हुए जीव से औदारिक शरीर योग्य द्रव्यों को औदारिक शरीर रूप से ग्रहण किये हुए और छोड़े हुए होते हैं अतः हे गौतम ! औदारिक पुद्गल परावर्त्त ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार शेष ६ पुद्गल परावर्त्त कहना।

"ओरालिय पोग्गल परियट्टे णं भंते ! केवइ कालस्स णिव्वट्टिजइ ? गोयमा ! अणंताहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं" -

प्रश्न - हे भगवन् ! औदारिक पुद्गल परावर्त्त कितने काल से पूर्ण होता है ?

उत्तर - हे गौतम ! अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल से पूर्ण होता है। इसी प्रकार दूसरे पुद्गल परावर्त्त के लिये भी समझना चाहिये।

अन्यत्र इस प्रकार भी कहा है -

ओराल १ विउव्वा २ तेय ३ कम्म ४ भासा ५ ऽऽणुपाणु ६ मणगेहिं ७ ।

फासेवि सव्व पोग्गल, मुक्का अह बायर परट्टो।। १४६ ।।

- १ औदारिक २ वैक्रिय ३ तैजस ४ कर्म (कार्मण) ५ भाषा ६ आनप्राण और ७ मन-इन सात वर्गणा रूप सभी पुद्गलों को स्पर्श कर-ग्रहण कर छोड़े हो उसे बादर पुद्गल परावर्त्त कहा जाता है।

दव्वे सुहुमपरियट्टो, जाहे एगेण अह सरीरेणं ।

लोगंमि सव्वपोग्गल, परिणामेऊण तो मुक्का ।। १४७ ।।

- जब एक औदारिक आदि शरीर से सर्व लोक संबंधी परमाणुओं को भोग कर छोड़ा हुआ हो तब सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त्त होता है। द्रव्य पुद्गल परावर्त्त की तरह ही क्षेत्र, काल और भाव पुद्गल परावर्त्त होते हैं जिनका विस्तृत वर्णन पांचवें कर्मग्रंथ आदि में दिया गया है।

सम्पूर्ण संसार परिभ्रमण काल में एक जीव को आहारक शरीर की प्राप्ति उत्कृष्ट चार बार ही होती है इसलिए आहारक पुद्गल परावर्तन नहीं बनता है।

तिविहा पण्णवणा पण्णत्ता तंजहा - णाणपण्णवणा दंसणपण्णवणा चरित्तपण्णवणा। तिविहे सम्मे पण्णत्ते तंजहा - णाणसम्मे दंसणसम्मे चरित्तसम्मे। तिविहे उवघाए पण्णत्ते तंजहा - उग्गमोवघाए उप्पायणोवघाए एसणोवघाए। एवं विसोही। तिविहा आराहणा पण्णत्ता तंजहा - णाणाराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा। णाणाराहणा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - उक्कोसा मज्झिमा जहण्णा। एवं दंसणाराहणा वि, चरित्ताराहणा वि। तिविहे संकिलेसे पण्णत्ते तंजहा - णाणसंकिलेसे दंसणसंकिलेसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरित्तसंकिलेसे। एवं असंकिलेसे वि एवं अइक्कमे वि। वइक्कमे वि अइयारे वि अणायारे वि। तिण्हं अइक्कमाणं आलोएज्जा पडिक्कमेज्जा णिंदिज्जा गरहिज्जा जाव पडिवज्जिज्जा, तंजहा - णाणाइक्कमस्स दंसणाइक्कमस्स चरित्ताइक्कमस्स एवं वइक्कमाण वि अइयाराणं अणायाराणं। तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - आलोयणारिहे पडिक्कमणारिहे तदुभयारिहे॥ १०३॥

कठिन शब्दार्थ - पण्णवणा - प्रज्ञापना, **सम्मे** - सम्यक्, **उवघाए** - उपघात, **उग्गमोवघाए** - उद्गमोपघात, **उप्पायणोवघाए** - उत्पादनोपघात, **एसणोवघाए** - एषणोपघात, **विसोही** - विशुद्धि, **आराहणा** - आराधना, **संकिलेसे** - संक्लेश, **अइक्कमे** - अतिक्रम, **वइक्कमे** - व्यतिक्रम, **अइयारे** - अतिचार, **अणायारे** - अनाचार, **अइक्कमाणं** - अतिक्रमों की, **पडिक्कमेज्जा** - प्रतिक्रमण, **पडिवज्जिज्जा** - अंगीकार करना चाहिये, **आलोयणारिहे** - आलोचनार्ह-आलोचना के योग्य, **पडिक्कमणारिहे** - प्रतिक्रमण के योग्य।

भावार्थ - तीन प्रकार की प्रज्ञापना कही गई है। यथा - ज्ञान प्रज्ञापना, दर्शन प्रज्ञापना, चारित्र प्रज्ञापना। तीन प्रकार का सम्यक् कहा गया है। यथा - ज्ञान सम्यक्, दर्शन सम्यक्, चारित्र सम्यक्। तीन प्रकार के उपघात कहे गये हैं। यथा - उद्गमोपघात यानी गृहस्थ की तरफ से लगने वाले आधाकर्म आदि सोलह उद्गम दोष, उत्पादनोपघात यानी साधु की तरफ से लगने वाले धाई दूई आदि सोलह उत्पादना दोष और एषणोपघात यानी गृहस्थ और साधु दोनों की तरफ से लगने वाले शंका आदि दस एषणा दोष। इसी प्रकार उपरोक्त दोषों को टाल कर आहारादि लेना सो विशुद्धि भी तीन प्रकार की है। यथा - उद्गम विशुद्धि, उत्पादना विशुद्धि और एषणा विशुद्धि। तीन प्रकार की आराधना कही गई है। यथा - ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र आराधना। ज्ञान आराधना तीन प्रकार की कही गई है। यथा - उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य। इस प्रकार दर्शन आराधना और चारित्र आराधना के भी उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ये तीन तीन भेद जानने चाहिए। ज्ञान आदि से गिरना रूप संक्लेश तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - ज्ञान संक्लेश, दर्शन संक्लेश, चारित्र संक्लेश। इसी प्रकार असंक्लेश अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार इन सब के ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अपेक्षा तीन तीन भेद जानने चाहिए। ज्ञान अतिक्रम, दर्शन अतिक्रम और चारित्र अतिक्रम इन तीन अतिक्रमों की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा करनी चाहिए। यावत् उसके योग्य प्रायश्चित्त रूप तप अङ्गीकार करना चाहिए। इसी प्रकार ज्ञान दर्शन चारित्र के व्यतिक्रम अतिचार और अनाचार, इन सब के लिए आलोचना आदि करना चाहिए। तीन प्रकार का प्रायश्चित्त कहा है। यथा - आलोचना के योग्य, प्रतिक्रमण के योग्य और तदुभय यानी आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पदार्थ के भेद आदि का कथन करके प्ररूपणा करना प्रज्ञापना कहलाती है। प्रज्ञापना तीन प्रकार की कही है - १. ज्ञान प्रज्ञापना - आभिनिबोधिक (मति) आदि ज्ञान पांच प्रकार का है। २. दर्शन प्रज्ञापना - दर्शन (सम्यक्त्व) क्षायिक आदि तीन प्रकार की है यथा-औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। सास्वादन समकित उपशम समकित का भेद है तथा वेदक समकित क्षयोपशम का ही भेद है इसलिए यहाँ पर इन दोनों का ग्रहण नहीं किया गया है। ३. चारित्र प्रज्ञापना - चारित्र के सामायिक आदि पांच भेद हैं।

सम्यक् अर्थात् अविपरीत, मोक्ष सिद्धि के आश्रय के अनुरूप जो अर्थ है वह सम्यक् अर्थ है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद से तीन प्रकार का सम्यक् कहा है।

जिस अकल्पनीय आहारादि के सेवन से संयम का विनाश हो जाय, उसे उपघात कहते हैं।

उद्गम के १६ दोष इस प्रकार है -

आहाकम्मु १ देसिय २, पूइकम्मे य मीस जाए ४ य।
ठवणा ५ पाहुडियाए ६, पाओयर ७ कीय ८ पामिच्चे ९।।
परियट्टिए १० अभिहडे ११ उब्भिण्णे १२ मालोहडे ३ य।
अच्छेज्जे १४ अणिसट्ठे १५, अज्झोयरए य सोलसमे।।

१. आधाकर्म - किसी साधु के निमित्त से आहारादि बनाना। आधाकर्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

"आधया साधु प्रणिधानेन यत् सचेतनं अचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, व्यूह्यते वस्त्रादिकं, विरच्यते गृहादिकं तत् आधाकर्म"

अर्थ - साधु के निमित्त सचित्त वस्तु को अचित्त करना अर्थात् फलादि को काट कर रखना, अचित्त वस्तु को पकाना अर्थात् रोटी, ओदन आदि भात बनाना तथा वस्त्र बुनना और मकान अर्थात् स्थानक, उपाश्रय आदि बनाना ये सब साधु के लिए बनाना आधा कर्म दोष से दूषित होता है।

२. औद्देशिक - जिस साधु के लिए आहारादि बना है, उसके लिए तो वह आधाकर्मी है, किन्तु ऐसे आहार को दूसरे साधु लें। तो उन के लिए वह औद्देशिक है।

३. पूतिकर्म - शुद्ध आहार में आधाकर्मी आदि दूषित आहार का कुछ अंश मिलाना।

४. मिश्रजात - अपने और साधुओं के लिए एक साथ बनाया हुआ आहार। अर्थात् आज सर्दी का मौसम है इसलिए दाल का सीरा और बड़े बना लो अपन भी खाएंगे और साधु जी को भी बहरा देंगे। इसको मिश्र जात दोष कहते हैं।

५. स्थापना - साधु को देने के लिये अलग रख छोड़ना। अर्थात् यह वस्तु उसी साधु साध्वी को देना दूसरों को न देना स्थापना दोष है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. पाहुडिया - साधु को अच्छा आहार देने के लिए मेहमान अथवा मेहमानदारी के समय को आगे पीछे करना।

७. प्रादुष्करण - अंधेरे में रखी हुई वस्तु को प्रकाश में ला कर देना।

८. क्रीत - साधु के लिए खरीद कर देना।

९. प्रामीत्य - उधार लेकर साधु को देवे।

१०. परिवर्तित - साधु के लिए अदल-बदल करके ली हुई वस्तु।

११. अभिहृत - साधु के लिए वस्तु को अन्यत्र अथवा साधु के सामने ले जाकर देना।

१२. उद्भिन्न - बरतन का लेप, छाँदा आदि खोल कर देना।

१३. मालापहृत - ऊँचे माला आदि पर, नीचे भूमिगृह में अथवा तिरछे ऐसी जगह वस्तु रखी हो कि जहां से निसरणी आदि पर चढ़ना पड़े वहाँ से उतार कर देना।

१४. अच्छेद्य - निर्बल से छीन कर देना।

१५. अनिसृष्ट - भागीदारी की वस्तु, किसी भागीदार की बिना इच्छा के दी जाय।

१६. अध्यवपूरक - साधुओं का ग्राम में आगमन सुन कर बनते हुए भोजन में कुछ सामग्री बढ़ाना।

उद्गम के ये सोलह दोष, गृहस्थ-दाता-से लगते हैं।

उत्पादना के १६ दोष इस प्रकार है -

धाई १ दूइ २ णिमित्ते ३, आजीव ४ वणीमगे ५ तिगिच्छा य ६ ।
कोहे ७ माणे ८ माया, ९ लोभे य हवंति दस एए ।।
पुव्विं पच्छा संथव ११, विज्जा १२ मंते य १३ चुण्ण १४ जोगे य १५ ।
उप्पायणा य दोसा, सोलसमे मूलकम्मे १६ य ।।

१. धात्रीकर्म - बच्चे की साल-संभाल करके अथवा धाय की नियुक्ति करवा कर आहारादि लेना।

२. दूतीकर्म - एक का संदेश दूसरे को पहुँचा कर आहार लेना।

३. निमित्त - भूत, भविष्य और वर्तमान के शुभाशुभ निमित्त बता कर लेना।

४. आजीव - अपनी जाति अथवा कुल आदि बता कर लेना।

५. वनीपक - दीनता प्रकट करके लेना।

६. चिकित्सा - औषधि करके या बता कर लेना।

७. क्रोध - क्रोध करके लेना।

८. मान - अभिमान पूर्वक लेना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. **माया** - कपट का सेवन कर के लेना।

१०. **लोभ** - लोलुपता से अच्छी वस्तु अधिक लेना।

११. **पूर्व पश्चात् संस्तव** - आहारादि लेने के पूर्व या बाद में दाता की प्रशंसा करना।

१२. **विद्या** - चमत्कारिक विद्या का प्रयोग करके लेना।

१३. **मन्त्र** - मन्त्र प्रयोग से आश्चर्य उत्पन्न करके लेना।

१४. **चूर्ण** - चमत्कारिक चूर्ण का प्रयोग कर के लेना।

१५. **योग** - योग के चमत्कार बता कर लेना।

१६. **मूल कर्म** - गर्भ स्तंभन, गर्भाधान अथवा गर्भपात जैसे पापकारी औषधादि बता कर प्राप्त करना।

ये सोलह दोष साधु से लगते हैं।

एषणा के १० दोष की गाथा इस प्रकार है -

संकिय १ मक्खिय २ णिक्खित्त ३ पिहिय ४ साहरिय ५ दायगु ६ म्मीसे ७ ।

अपरिणय ८ लित्त ९ छड्डिय १० एसणदोसा, दस हवंति ।।

१. **संकित** - दोष की शंका होने पर लेना।

२. **म्रक्षित** - देते समय हाथ, आहार या भाजन का सचित्त पानी आदि से युक्त होना।

३. **निक्षिप्त** - सचित्त वस्तु पर रखी हुई अचित्त वस्तु देना।

४. **पिहित** - सचित्त वस्तु से ढकी हुई अचित्त वस्तु देना।

५. **साहरिय** - जिस पात्र में दूषित वस्तु पड़ी हो, उसे अलग करके उसी बरतन से देना और साधु का लेना।

६. **दायग** - जो दान देने के लिए अयोग्य है, ऐसे बालक, अंधे, गर्भवती (गर्भवती अगर खड़ी हो वह बैठ कर देवे या बैठी हो, वह खड़ी हो कर देवे तो नहीं कल्पता है। जिस स्थिति में हो, उस स्थिति में देवे तो कल्पता है) आदि के हाथ से लेना।

७. **उन्मिश्र** - मिश्र-कुछ कच्चा और कुछ पका आहारादि लेना।

८. **अपरिणत** - जिसमें पूर्ण रूप से शस्त्र परिणत न हुआ हो उसे देना व लेना।

९. **लिप्त** - जिस वस्तु के लेने से हाथ या पात्र में लेप लगे अथवा तुरन्त की लीपी हुई गीली भूमि को लांघते हुए देना और लेना।

१०. **छर्दित** - नीचे गिराते हुए देना या लेना।

उद्गम के १६ दोष गृहस्थों से लगते हैं । उत्पादना के १६ दोष साधुओं से लगते हैं और एषणा के दस दोष गृहस्थ और साधु दोनों की ओर से लगते हैं । इस प्रकार उद्गम आदि के दोषों से रहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशुद्धि अथवा पिंड और चारित्र आदि की निर्दोषता को उद्‌गमादि की विशुद्धि अथवा उद्‌गमादि दोषों की जो विशुद्धि है वह उद्‌गमादि विशुद्धि कहलाती है।

आराधना - अतिचार न लगाते हुए शुद्ध आचार का पालन करना आराधना है। आराधना के तीन भेद हैं - १. ज्ञानाराधना २. दर्शनाराधना ३. चारित्राराधना।

ज्ञानाराधना - ज्ञान के काल, विनय, बहुमान आदि आठ आचारों का निर्दोष रीति से पालन करना ज्ञानाराधना है।

दर्शनाराधना - शंका, कांक्षा आदि समकित के अतिचारों को न लगाते हुए निःशंकित आदि समकित के आचारों का शुद्धता पूर्वक पालन करना दर्शनाराधना है।

चारित्राराधना - सामायिक आदि चारित्र में अतिचार नहीं लगाते हुए निर्मलता पूर्वक उसका पालन करना चारित्राराधना है । जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट से प्रत्येक के तीन तीन भेद होते हैं।

ज्ञानादि के पतन रूप लक्षण वाला और संक्लिश्यमान परिणाम वाला होने से ज्ञानादि संक्लेश कहा है । इससे विपरीत ज्ञानादि की शुद्धि रूप लक्षण वाला और विशुद्ध्यमान परिणाम करने वाला असंक्लेश कहलाता है।

प्रायश्चित्त के दस भेद होते हैं परंतु यहां तीसरा स्थानक होने से तीन भेद ही कहे गए हैं।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा- हेमवए, हरिवासे, देवकुरा। जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तओ अकम्म-भूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - उत्तरकुरा, रम्मगवासे, एरण्णवए। जंबूमंदरस्स दाहिणेणं तओ वासा पण्णत्ता तंजहा - भरहे, हेमवए, हरिवासे। जंबूमंदरस्स उत्तरेणं तओ वासा पण्णत्ता तंजहा - रम्मगवासे, हेरण्णवए, एरवए। जंबूमंदरदाहिणेणं तओ वासहर पव्वया पण्णत्ता तंजहा - चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे। जंबूमंदरउत्तरेणं तओ वासहर पव्वया पण्णत्ता तंजहा - णीलवंते, रुप्पी, सिहरी। जंबूमंदरदाहिणेणं तओ महादहा पण्णत्ता तंजहा - पउमदहे, महापउमदहे, तिगिंछदहे। तत्थ णं तओ देवियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमठिईयाओ परिवसंति तंजहा - सिरी हिरी धिई, एवं उत्तरेण वि णवरं केसरिदहे महापोंडरीयदहे पोंडरीयदहे, देवियाओ कित्ती बुद्धी लच्छी। जंबूमंदरदाहिणेणं चुल्लहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ पउमदहाओ महादहाओ तओ महाणईओ पवहंति तंजहा - गंगा सिंधु रोहितंसा। जंबूमंदरउत्तरेणं सिहरीओ वासहरपव्वयाओ पोंडरीयदहाओ महादहाओ तओ महाणईओ पवहंति तंजहा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुवण्णकूला, रत्ता, रत्तवई। जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ तंजहा - गाहावई, दहवई, पंकवई। जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ तंजहा - तत्तजला मत्तजला उम्मत्तजला। जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ तंजहा- खीराओ सीयसोउरा अंतोवाहिणी। जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरेणं तओ अंतरणईओ पण्णत्ताओ तंजहा उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी। एवं धायइखंडे दीवे पुरच्छिमद्धे वि अकम्मभूमीओ आढवेत्ता जाव अंतरणईओ त्ति णिरवसेसं भाणियव्वं, जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं॥ १०४॥

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं यथा - हैमवत हरिवर्ष देवकुरु। इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं यथा - उत्तरकुरु रम्यग्वर्ष ऐरण्यवत। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन क्षेत्र कहे गये हैं यथा - भरत हेमवत और हरिवर्ष। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में तीन क्षेत्र कहे गये हैं यथा - रम्यग्वर्ष हैरण्यवत और ऐरवत। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन वर्षधर पर्वत कहे गये हैं यथा - चुल्लहिमवान् महाहिमवान् और निषध। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर में तीन वर्षधर पर्वत कहे गये हैं यथा - नीलवान् रुक्मी और शिखरी। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में तीन महाद्रह कहे गये हैं यथा - पद्मद्रह महापद्मद्रह और तिगिच्छ द्रह। वहाँ पर महर्द्धिक यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली तीन देवियाँ रहती हैं यथा - श्री, ह्री और धृति। इसी तरह उत्तर में भी तीन महाद्रह कहे गये हैं। यथा - केसरी द्रह महापुण्डरीक द्रह और पुण्डरीक द्रह। वहाँ पर कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी ये तीन देवियाँ रहती है। इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत के पद्म महाद्रह से तीन महानदियाँ बहती है यथा - गङ्गा सिन्धु और रोहितंसा। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पुण्डरीक महाद्रह से तीन महानदियाँ बहती हैं यथा - सुवर्णकूला रक्ता और रक्तवती। जम्बुद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर में तीन अन्तरनदियाँ कही गई हैं यथा - ग्राहवती द्रहवती और पङ्कवती। जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण में तीन अन्तरनदियाँ कही गई है यथा - तप्ताजला, मत्तजला और उन्मत्तजला। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दक्षिण में तीन अन्तरनदियाँ कही गई हैं। यथा - क्षीरोदा शीतश्रोता-सिंहस्रोता और अन्तोवाहिनी। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के उत्तर में तीन अन्तरनदियाँ कही गई हैं यथा - उर्मिमालिनी, फेनमालिनी गम्भीरमालिनी। इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में भी अकर्मभूमियों से लेकर यावत् अन्तरनदियाँ तक सारा वर्णन कह देना चाहिए। यावत् अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध तक इसी तरह से सारा वर्णन कह देना चाहिए।

तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा तंजहा - अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवत्तेज्जा, तए णं ते उराला पोग्गला णिवत्तमाणा देसं पुढवीए चलेज्जा। महोरए वा महिड्डिए जाव महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्जणिमज्जियं करेमाणे देसं पुढवीए चलेज्जा, णागसुवण्णाण वा संगामंसि वट्टमाणंसि देसं पुढवीए चलेज्जा। इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा। तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा तंजहा - अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए गुप्पेज्जा, तएणं से घणवाए गुविए समाणे घणोदहिमेएज्जा, तए णं से घणोदही एइए समाणे केवलकप्पं पुढवीं चलेज्जा, देवे वा महिड्डीए जाव महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढिं जुइं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे केवलकप्पं पुढवीं चलेज्जा, देवासुरसंगामंसि वा वट्टमाणंसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा॥ १०५॥

कठिन शब्दार्थ - **देसे** - देशत: अर्थात् कुछ अंश से, **चलेज्जा** - चलित होता है, **अहे** - नीचे, **उराला** - उदार-बादर, **णिवत्तेज्जा** - गिरे, अलग होवे या लगे, **उम्मज्ज णिम्मज्जियं** - उछल कूद, **संगामंसि** - संग्राम में, **केवलकप्पा** - सम्पूर्ण, **गुप्पेज्जा** - क्षुब्ध हो जाती है, **गुविए** - क्षुब्ध होती हुई, **एएज्जा** - कम्पित करता है।

भावार्थ - तीन कारणों से पृथ्वी का एक देश चलित होता है यथा - इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे उदार-बादर पुद्गल स्वाभाविक परिणाम से आकर गिरें या एक दूसरे से अलग होवें या दूसरी जगह से आकर वहाँ लगें तब वहाँ गिरते हुए, अलग होते हुए या लगते हुए वे उदार पुद्गल पृथ्वी का एक देश चलित-कम्पित करते हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे महाऋद्धि सम्पन्न यावत् महाशक्तिशाली महान् सुख वाला महोरग व्यन्तर जाति का एक देव दर्पोन्मत्त होकर उछल कूद करता हुआ पृथ्वी का एक देश चलित करता है तथा नागकुमार और सुवर्णकुमार जाति के भवनपति देवों का संग्राम हो रहा हो तो पृथ्वी का एक देश चलित होता है, इन तीन कारणों से पृथ्वी का एक देश-भाग चलित होता है।

तीन कारणों से सम्पूर्ण पृथ्वी चलित होती है यथा - इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे घनवात क्षुब्ध हो जाती है तब क्षुब्ध होती हुई वह घनवात घनोदधि को कम्पित करता है तब कम्पित होता हुआ वह घनोदधि सम्पूर्ण पृथ्वी को चलित-कम्पित करता है। महाऋद्धि सम्पन्न यावत् महाशक्तिशाली महान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुख वाला देव तथारूप के श्रमण माहन को यानी साधु महात्मा को अपनी परिवार आदि रूप ऋद्धि शरीर की द्युति-कान्ति यश यानी पराक्रम जनित ख्याति शारीरिक बल, वीर्य यानी जीव की शक्ति विशेष पुरुषकार और पराक्रम दिखलाता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को चलित करता है। वैमानिक देव और असुर यानी भवनपति देवों में परस्पर संग्राम हो रहा हो तो सम्पूर्ण पृथ्वी चलित-कम्पित हो जाती है। इन तीन कारणों से सम्पूर्ण पृथ्वी चलित-कम्पित हो जाती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वी के देशतः और सम्पूर्ण रूप से धूजने के तीन तीन बोल बताये हैं। तीन कारणों से पृथ्वी देशतः धूजती है अर्थात् पृथ्वी का एक भाग विचलित हो जाता है -

१. रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे बादर पुद्गलों का स्वाभाविक जोर से अलग होना या दूसरे पुद्गलों का आकर जोर से टकराना पृथ्वी को देशतः विचलित कर देता है।

२. महाऋद्धिशाली यावत् महान् सुख वाला महोरग जाति का व्यन्तर देव दर्पोन्मत्त होकर उछल कूद मचाता हुआ पृथ्वी को देशतः विचलित कर देता है।

३. नागकुमार और सुपर्णकुमार जाति के भवनपति देवताओं के परस्पर संग्राम होने पर पृथ्वी का एक देश विचलित हो जाता है। तीन कारणों से संपूर्ण पृथ्वी धूजती (विचलित होती) है -

१. रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे जब घनवाय क्षुब्ध हो जाती है तब उससे घनोदधि कम्पित होती है और उससे सारी पृथ्वी विचलित हो जाती है।

२. महाऋद्धि सम्पन्न यावत् महा शक्तिशाली महान् सुख वाला देव तथारूप के श्रमण माहण को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम दिखलाता हुआ सारी पृथ्वी को विचलित कर देता है।

३. देवों और असुरों में संग्राम होने पर सारी पृथ्वी चलित होती है।

देवों और असुरों में संग्राम होने का कारण उनका भवप्रत्यय वैर ही है। भगवती सूत्र में कहा है-

"किं पत्तियण्णं भंते ! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य ? गोयमा ! तेसि णं देवाणं भवपच्चइए वेराणुबंधे।"

प्रश्न - हे भगवन् ! किस कारण से असुरकुमार देव सौधर्म देवलोक में गये और जाएंगे ?

उत्तर - हे गौतम ! उन देवों का भवप्रत्ययिक वैरानुबंध है जिससे संग्राम होता है और संग्राम होते हुए पृथ्वी चलित होती है क्योंकि उस संग्राम में उनका महाव्यायाम (मेहनत) से उत्पात और निपात का संभव होता है।

तिविहा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता तंजहा - तिपलिओवमठिईया, तिसागरोवमठिईया, तेरससागरोवमठिईया। कहिं णं भंते ! तिपलिओवमठिईया देवकिब्बिसिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिवसंति ? उप्पिं जोइसियाणं हेट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु एत्थ णं तिपलिओवमठिईया देवा किव्विसिया परिवसंति। कहिं णं भंते ! तिसागरोवमठिईया देवा किव्विसया परिवसंति ? उप्पिं सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं हेट्ठिं सणंकुमार माहिंदेसु कप्पेसु एत्थ णं तिसागरोवम ठिईया देवा किव्विसिया परिवसंति। कहि णं भंते ! तेरससागरोवमठिईया देवा किव्विसिया परिवसंति ? उप्पिं बंभलोगस्स कप्पस्स हेट्ठिं लंतगे कप्पे एत्थ णं तेरससागरोवमठिईया देवा किव्विसिया परिवसंति॥ १०६ ॥

कठिन शब्दार्थ – **देव किव्विसिया** – किल्विषी देव, **तिपलिओवमठिईया** – तीन पल्योपम की स्थिति वाले, **तिसागरोवमठिईया** – तीन सागरोपम की स्थिति वाले, **तेरससागरोवम ठिईया** – तेरह सागरोपम की स्थिति वाले, **उप्पिं** – ऊपर, **परिवसंति** – रहते हैं।

भावार्थ – तीन प्रकार के किल्विषी देव कहे गये हैं यथा – तीन पल्योपम की स्थिति वाले, तीन सागरोपम की स्थिति वाले और तेरह सागरोपम की स्थिति वाले। गौतम स्वामी पूछते हैं कि हे भगवन्! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषी देव कहाँ पर रहते हैं ? भगवान् फरमाते हैं कि ज्योतिषी देवों के ऊपर और सौधर्म और ईशान देवलोकों के नीचे के प्रथम प्रतर में तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषी देव रहते हैं। हे भगवन्! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषी देव कहाँ पर रहते हैं ? सौधर्म और ईशान देवलोकों के ऊपर और सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकों के नीचे के प्रथम प्रतर में तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषी देव रहते हैं। हे भगवन् ! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषी देव कहाँ पर रहते हैं ? ब्रह्मलोक देवलोक के ऊपर और लान्तक देवलोक के नीचे तीसरे प्रतर में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषी देव रहते हैं।

विवेचन – किल्विषिक देवों के लिए टीकाकार ने कहा है –

णाणस्स केवलीणं धम्मायरियस्स संघ साहूणं।

माई अवण्णवाई किव्विसियं भावणं कुणइ।।

ज्ञान का, केवली का, धर्माचार्य का, संघ का और साधुओं का अवर्णवाद बोलने वाला तथा जो मायावी होता है वह किल्विषी भावना करता है। ऐसी भावना से उत्पन्न किल्विषी (पाप) जिसके उदय में हो, वे किल्विषिक कहलाते हैं।

मनुष्यों में जैसे चाण्डाल अस्पृश्य और अधम माना जाता है वैसे ही देवों में किल्विषी देव चाण्डाल के समान अस्पृश्य और अधम माने जाते हैं।

इसी ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों जाति के देवों में इन्द्र सामानिक यावत् किल्विषिक इस प्रकार दस-दस भेद बताये हैं। इस अपेक्षा से चारों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाति के देवों में किल्विषिक देव होते हैं। परन्तु उन सब का स्थान और स्थिति आदि एक समान नहीं होती है। इसलिए उनका अलग कथन नहीं किया गया है। यहाँ पर तीसरा ठाणा चलता है इसलिए सिर्फ वैमानिक जाति के किल्विषिक तीन प्रकार के प्रकार के देवों का कथन किया गया है। इनका स्थान और स्थिति एक समान होती है। ये वैमानिक जाति के किल्विषी देव हैं।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिर परिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता॥ १०७॥

कठिन शब्दार्थ - **देवरण्णो** - देवों के राजा के, **देविंदस्स** - देवों के इन्द्र के, **सक्कस्स** - शक्रेन्द्र की, **बाहिर परिसाए** - बाहर की परिषदा के, **अब्भिंतर परिसाए** - आभ्यन्तर परिषदा के।

भावार्थ - देवों के राजा, देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र की बाहर की परिषदा के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र की आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र की बाहरी परिषदा की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है।

तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते, चरित्त पायच्छित्ते। तओ अणुग्घाइमा पण्णत्ता तंजहा - हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं सेवेमाणे, राइभोयणं भुंजेमाणे। तओ पारंचिया पण्णत्ता तंजहा - दुट्ठपारंचिए, पमत्तपारंचिए, अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिए। तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता तंजहा - साहम्मियाणं तेणं करेमाणे, अण्णधम्मियाणं तेणं करेमाणे, हत्थातालं दलयमाणे॥ १०८॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुग्घाइमा** - अनुद्घातिम, **हत्थकम्मं** - हस्त कर्म, **करेमाणे** - करने वाला, **पारंचिया** - पाराञ्चिक, **दुट्ठपारंचिए** - दुष्ट पाराञ्चिक, **पमत्त पारंचिए** - प्रमाद पाराञ्चिक, **अणवट्ठप्पा**- अनवस्थाप्य, **साहम्मियाणं** - साधर्मिकों के, **अण्णधम्मियाणं** - अन्य धार्मिकों के।

भावार्थ - तीन प्रकार का प्रायश्चित्त कहा गया है। यथा - ज्ञान प्रायश्चित्त यानी ज्ञान के अतिचार आदि दोषों की शुद्धि के लिए किया जाने वाला प्रायश्चित्त, दर्शन के शङ्कित आदि दोषों की शुद्धि के लिए लिया जाने वाला प्रायश्चित्त सो दर्शन प्रायश्चित्त और चारित्र में लगे हुए दोषों की शुद्धि के लिए लिया जाने वाला प्रायश्चित्त सो चारित्र प्रायश्चित्त। तीन प्रकार के अनुद्घातिम कहे गये हैं। यथा - हस्तकर्म करने वाला, मैथुन सेवन करने वाला और रात्रिभोजन करने वाला। तीन प्रकार का पाराञ्चिक कहा गया है। यथा - दुष्ट पाराञ्चिक यानी गुरु की घात करने का इच्छुक तथा साध्वी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ मैथुन सेवन की इच्छा करने वाला, प्रमाद पाराञ्चिक यानी स्त्यानगृद्धि निद्रा लेने वाला, बहुत प्रमादी और परस्पर मैथुन सेवन करने वाला पाराञ्चिक।

तीन अनवस्थाप्य कहे गये हैं। यथा - साधर्मिक साधुओं के उपकरण आदि या शिष्य आदि की चोरी करने वाला, अन्यधार्मिक अर्थात् परमतावलम्बियों के उपकरण आदि की चोरी करने वाला और लकड़ी आदि या चपेटा आदि से ताड़ना करने वाला।

विवेचन - अनुद्घातिम-लघु मास आदि तप से जिस दोष की शुद्धि न हो सके वह अनुद्घातिम कहलाता है। उस दोष को सेवन करने वाला भी अनुद्घातिम कहलाता है।

पाराञ्चिक - जिस दोष की शुद्धि तपस्या द्वारा करके फिर नई दीक्षा दी जाय वह पाराञ्चिक नामक दसवां प्रायश्चित्त है।

अनवस्थाप्य नववाँ प्रायश्चित्त है। इसमें दोषों का सेवन करके उनकी शुद्धि के लिए तप विशेष न करने वाले को नई दीक्षा नहीं दी जा सकती है।

तओ णो कप्पंति पव्वावित्तए तंजहा - पंडए, वाइए, कीवे। एवं मुंडावित्तए, सिक्खावित्तए, उवट्ठावित्तए, संभुंजित्तए, संवासित्तए॥ १०९॥

कठिन शब्दार्थ - पव्वावित्तए - प्रव्रज्या-दीक्षा देना, **पंडए** - पंडक-जन्म नपुंसक, **वाइए** - वातिक-वायु से जिसका शरीर बहुत स्थूल हो गया है (रोगी), **कीवे** - क्लीव-वेद जनित बाधा को रोकने में असमर्थ, **मुंडावित्तए** - मुण्डित करना, **सिक्खावित्तए** - शिक्षा देना, **उवट्ठावित्तए** - बड़ी दीक्षा देना, **संभुंजित्तए** - सम्भोग करना, **संवासित्तए** - साथ रहना।

भावार्थ - तीन पुरुषों को प्रव्रज्या - दीक्षा देना नहीं कल्पता है। यथा जन्म-नपुंसक, वायु से जिसका शरीर बहुत स्थूल हो गया है अथवा रोगी और क्लीव यानी वेदजनित बाधा को रोकने में असमर्थ। इसी प्रकार उपरोक्त तीन को मुण्डित करना, समाचारी आदि की शिक्षा देना, महाव्रतों की स्थापना करना यानी बड़ी दीक्षा देना, उपधि आहार आदि का सम्भोग करना और साथ रहना नहीं कल्पता है।

तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता तंजहा - अविणीए विगइपडिबद्धे, अविओसियपाहुडे। तओ कप्पंति वाइत्तए तंजहा - विणीए अविगइपडिबद्धे विउसियपाहुडे। तओ दुसण्णप्पा पण्णत्ता तंजहा - दुट्ठे, मूढे वुग्गाहिए। तओ सुसण्णप्पा पण्णत्ता तंजहा - अदुट्ठे, अमूढे, अवुग्गाहिए॥ ११०॥

कठिन शब्दार्थ - अवायणिज्जा - अवाचनीय-वाचना के अयोग्य, **विगइ पडिबद्धे** - विगय प्रतिबद्ध-विगयों में गृद्धिभाव रखने वाला, **अविओसिय पाहुडे** - अव्यवसितप्राभृत-क्रोध को उपशांत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न करने वाला, **वाइत्तए** - वाचना देना, **विउसिय पाहुडे** - व्यवसित प्राभृत-क्रोध को उपशांत करने वाला, **दुसण्णप्पा** - दुःसंज्ञाप्य, **दुट्ठे** - दुष्ट, **मूढे** - मूढ, **वुग्गाहिए** - व्युदग्राहित-कुगुरुओं द्वारा भ्रमित, **सुसण्णप्पा** - सुसंज्ञाप्य-सरलता से समझाने योग्य।

भावार्थ - तीन पुरुष वाचना के अयोग्य हैं। यथा - अविनीत, घृत आदि विगयों में गृद्धि भाव रखने वाला और क्रोध को उपशान्त न करने वाला अर्थात् अत्यन्त क्रोधी। तीन पुरुषों को वाचना देना कल्पता है। यथा - विनीत, विगयों में गृद्धिभाव न रखने वाला और क्रोध को उपशान्त करने वाला। तीन पुरुष दुःसंज्ञाप्य कहे गये हैं अर्थात् इनको समझाना बहुत मुश्किल होता है। यथा - दुष्ट यानी तत्त्व समझाने वाले पुरुष के साथ द्वेष रखने वाला, मूर्ख यानी गुण दोषों को न जानने वाला, व्युद्ग्राहित यानी कुगुरुओं द्वारा भरमाया हुआ। तीन पुरुष सुसंज्ञाप्य अर्थात् सरलता से समझाने योग्य कहे गये हैं। यथा - अदुष्ट यानी तत्त्वों के प्रति रुचि रखने वाला और तत्त्वप्ररूपक के प्रति द्वेष न रखने वाला, अमूर्ख यानी गुण दोषों को जानने वाला और अव्युद्ग्राहित यानी कुगुरुओं के द्वारा न भरमाया हुआ। इन तीन को तत्त्व समझाना सरल होता है।.

विवेचन - अवायणिज्जा अर्थात् न वाचनीयाः - सूत्र पढ़ाने के योग्य नहीं, इसी कारण से अर्थ को भी सुनाने में योग्य नहीं क्योंकि सूत्र से अर्थ का महत्त्व है उसमें अविनीत व्यक्ति सूत्र और अर्थ के दाता का वंदन आदि विनय रहित होता है अतः उसको वाचना देना दोष ही है। कहा भी है -

इहरहवि ताव थब्भइ, अविणीओ लंभिओ किमु सुएणं ?
माणट्ठी णासिहिई, खए व खारोवसेगो उ ।।
गोजूहस्स पडागा, सयं पलायस्स वड्ढइ य वेगं ।
दोसोदए य समणं ण होइ ण णियाणतुल्लं च ।।

अर्थात् - श्रुत के अभ्यास के बिना भी अविनीत स्तब्ध (अभिमानी) होता है तो फिर श्रुत के लाभ से स्तंभित अधिक अभिमानी हो इसमें कहना ही क्या ? जैसे घाव में नमक छिडकने की तरह अविनीत व्यक्ति श्रुत को पाकर स्वयं नाश को प्राप्त हुआ क्या दूसरों का नाश नहीं करता है ? जैसे ग्वाला गायों के आगे होकर पताका दिखाता है तब गायें वेग से चलती है उसी प्रकार अविनीत प्राणी को पढाया हुआ श्रुत भी दुर्विनय को बढाने वाला है। उदाहरणार्थ-रोगों के उदय में शमन औषध नहीं दी जाती है क्योंकि निदान-मूल कारण से उत्पन्न हुई व्याधि को शमन औषध से रोग वृद्धि का भय रहता है।

विणया हीया विज्जा, देइ फलं इह परे य लोयंमि ।
न फलंतऽविणयगहिया, सस्साणिव तोयहीणाइं।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

- विनय से पढी हुई विद्या इस लोक तथा पर लोक में फल को देती है और अविनय से ग्रहण की हुई विद्या जल से हीन शस्य (धान्य) की तरह फल को नहीं देती।

तओ मंडलिया पव्वया पण्णत्ता तंजहा - माणुसुत्तरे, कुंडलवरे, रुयगवरे। तओ महतिमहालया पण्णत्ता तंजहा - जंबूद्दीवे मंदरे मंदरेसु, सयंभुरमणे समुद्दे समुद्देसु, बंभलोए कप्पे कप्पेसु॥ १११॥

कठिन शब्दार्थ - मंडलिया - माण्डलिक-गोल, **पव्वया** - पर्वत, **माणुसुत्तरे** - मानुष्योत्तर पर्वत, **कुंडलवरे** - कुण्डलवर, **रुयगवरे** - रुचकवर, **महतिमहालया** - महति महालय-अति महान्

भावार्थ - तीन पर्वत माण्डलिक यानी गोल कहे गये हैं यथा - पुष्करवर द्वीप में मानुष्योत्तर पर्वत, ग्यारहवें कुण्डल द्वीप में रहा हुआ कुण्डलवर पर्वत और तेरहवें रुचक द्वीप में रहा हुआ रुचकवर पर्वत।

तीन पदार्थ अति महान् कहे गये हैं यथा - सब मेरु पर्वतों में जम्बूद्वीप का मेरु पर्वत बड़ा है क्योंकि दूसरे सभी मेरु पर्वत ८५ हजार से कुछ अधिक ऊंचे हैं और जम्बूद्वीप का चूलिका सहित मेरु पर्वत एक लाख योजन से कुछ अधिक ऊंचा हैं। अर्थात् मेरु पर्वत धरती में एक हजार योजन ऊंडा (गहरा) है। ९९ हजार योजन का ऊंचा है और चालीस योजन की उसकी चूलिका है। इस प्रकार सम्पूर्ण मेरु पर्वत एक लाख और चालीस योजन का ऊंचा है। धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत हैं और अर्ध पुष्करवर द्वीप में भी दो मेरु पर्वत हैं। इस प्रकार ये चार मेरु पर्वत ८५ हजार योजन के हैं अर्थात् एक हजार योजन धरती में ऊण्डें हैं और ८४ हजार योजन धरती के ऊपर ऊंचे हैं। इन चारों के भी चूलिकाएँ हैं। इस प्रकार ये चारों मेरु पर्वत ८५ हजार योजन से कुछ अधिक ऊंचे हैं।

सब समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र बड़ा है क्योंकि जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण आदि किसी एक दिशा में सब समुद्र पाव राजू से कुछ कम परिमाण वाले हैं और स्वयम्भूरमण समुद्र पाव राजू से कुछ अधिक परिमाण वाला है। सब देवलोकों में पांचवां ब्रह्मदेवलोक बड़ा है क्योंकि उसके पास में लोक का विस्तार पांच राजू परिमाण है।

विवेचन - मानुष्योत्तर पर्वत अर्द्ध पुष्करवर द्वीप को चारों तरफ से घेरा हुआ है। यह मनुष्य क्षेत्र की मर्यादा करता है। इसके आगे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं किन्तु किसी में भी मनुष्य नहीं हैं। **महतिमहालया** - यह जैन सूत्रों का पारिभाषिक शब्द है, जो अति महान् अर्थ को बतलाने में आता है।

तिविहा कप्पठिई पण्णत्ता तंजहा - सामाइय कप्पठिई, छेओवट्ठावणिय कप्पठिई, णिव्विसमाणकप्पठिई, अहवा तिविहा कप्पठिई पण्णत्ता तंजहा - णिव्विट्ठ कप्पठिई, जिणकप्पठिई, थेरकप्पठिई॥ ११२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **कप्पठिई** - कल्पस्थिति, **सामाइय** - सामायिक, **छेओवट्ठावणिय** - छेदोपस्थापनीय, **णिव्विसमाण** - निर्विशमान-आचरण किया जाता हुआ, **णिव्विट्ठ** - निर्विष्ट-आचरण कर लिया गया।

भावार्थ - तीन प्रकार की कल्पस्थिति कही गई है यथा - सामान्य कल्पस्थिति यानी सामायिक चारित्र, छेदोपस्थानीय कल्पस्थिति और निर्विशमान कल्पस्थिति। अथवा तीन प्रकार की कल्पस्थिति कही गई है यथा - निर्विष्ट कल्पस्थिति, जिनकल्प स्थिति और स्थविरकल्प स्थिति।

विवेचन - प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय सामायिक चारित्र अल्पकाल के लिए होता है क्योंकि उनमें छेदोपस्थानीय चारित्र पाया जाता है और शेष बाईस तीर्थंकरों के समय में तथा महाविदेह क्षेत्र में छेदोपस्थानीय चारित्र नहीं होता है इसलिए सामायिक चारित्र यावज्जीवन के लिए होता है।

जिस चारित्र में पहले का दीक्षा पर्याय का छेदन करके फिर महाव्रत दिये जाते हैं अर्थात् महाव्रत आरोपित किये जाते हैं वह छेदोपस्थापनीय चारित्र है। उस चारित्र का पालन करना '**छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति**' कहलाती है।

नौ साधु मिल कर परिहारविशुद्धि तप करते हैं वह परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है और उस चारित्र में स्थित रहना 'परिहार विशुद्धि कल्पस्थिति' है।

जिन नौ साधुओं के गण ने परिहारविशुद्धि तप का आचरण कर लिया है वे निर्विष्ट कल्पस्थिति वाले कहलाते हैं।

गच्छ में न रह कर, अकेले विचरने वाले वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले कम से कम नवमें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु के ज्ञाता साधुओं का चारित्र 'जिनकल्प स्थिति' कहलाता है।

गच्छ में रह कर संयम का पालन करने वाले साधुओं का चारित्र 'स्थविरकल्प स्थिति' कहलाता है।

णेरइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - वेउव्विए तेयए कम्मए। असुरकुमाराणं तओ सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - एवं चेव। एवं सव्वेसिं देवाणं।

पुढवीकाइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - ओरालिए तेयए कम्मए एवं वाउकाइयवज्जाणं जाव चउरिंदियाणं। गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तंजहा- आयरिय पडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए। गइं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तंजहा - इहलोगपडिणीए, परलोग पडिणीए, दुहओ लोगपडिणीए। समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तंजहा - कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए। अणुकंपं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तंजहा - तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेहपडिणीए। भावं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तंजहा - णाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए। सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता तंजहा - सुयपडिणीए अत्थपडिणीए तदुभयपडिणीए॥ ११३॥

कठिन शब्दार्थ - वेउव्विए - वैक्रियक, **तेयए** - तैजस, **कम्मए** - कार्मण, **गुरुं** - गुरु को, **पडुच्च** - अपेक्षा, **पडिणीया** - प्रत्यनीक-शत्रु के समान प्रतिकूल, **थेर पडिणीए** - स्थविर का प्रत्यनीक, **गिलाण पडिणीए** - ग्लान प्रत्यनीक, **सेह पडिणीए** - शैक्ष (नवदीक्षित) प्रत्यनीक।

भावार्थ - नैरयिक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं यथा - वैक्रियक, तैजस, कार्मण। इसी प्रकार असुरकुमारों के भी तीन शरीर कहे गये हैं और इसी प्रकार नागकुमार आदि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक सभी देवों के वैक्रियक, तैजस और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं। पृथ्वीकायिक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं यथा - औदारिक, तैजस और कार्मण। वायुकायिक जीवों को छोड़कर चौरिन्द्रिय जीवों तक सभी के औदारिक, तैजस और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं।

गुरु की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक यानी शत्रु के समान प्रतिकूल कहे गये हैं यथा - आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, स्थविर का प्रत्यनीक। गति की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं यथा - इहलोक प्रत्यनीक यानी अज्ञान तप करके शरीर को कष्ट देने वाला, परलोक प्रत्यनीक यानी विषय कषाय में रक्त रहने वाला, उभयलोक प्रत्यनीक। समूह की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं यथा - कुल प्रत्यनीक यानी एक आचार्य के शिष्य समुदाय का प्रत्यनीक, गण का प्रत्यनीक, साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ का प्रत्यनीक। अनुकम्पा की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं यथा - तपस्वी प्रत्यनीक, ग्लान प्रत्यनीक, शैक्ष प्रत्यनीक यानी नवदीक्षित प्रत्यनीक।

भाव की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं यथा - ज्ञान प्रत्यनीक, दर्शन प्रत्यनीक और चारित्र प्रत्यनीक।

विवेचन - वायुकायिक जीवों में औदारिक, वैक्रियक, तैजस और कार्मण ये चार शरीर होते हैं। तथा तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों में भी उपरोक्त चार शरीर होते हैं। मनुष्यों में पांचों शरीर होते हैं। यह तीसरा स्थानक होने से उनका कथन यहाँ नहीं किया गया है।

तपस्वी, रोगी और नवदीक्षित ये अनुकम्पा के योग्य हैं इन पर अनुकम्पा न करने और न कराने से इनका प्रत्यनीकपना होता है।

उत्सूत्र प्ररूपणा करना ज्ञान की प्रत्यनीकता है। शंका कांक्षा आदि करना दर्शन की प्रत्यनीकता है और चारित्र के विरुद्ध प्ररूपणा करना एवं आचरण करना चारित्र प्रत्यनीकता है।

तओ पिइयंगा पण्णत्ता तंजहा - अट्ठी, अट्ठिमिंजा, केसमंसुरोमणहे। तओ माउयंगा पण्णत्ता तंजहा - मंसे, सोणिए, मत्थुलिंगे॥ ११४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - पिइयंगा - पिता के अंग, **अट्ठी** - हड्डी, **अट्ठिमिंजा** - अस्थि मिंजा, **केसमंसुरोम णहे** - केश, दाढी, मूंछ, रोम, नख, **माउयंगा** - माता के अंग, **मंसे** - मांस, **सोणिए** - शोणित, **मत्थुलिंगे**- मस्तक लिंग-मस्तक के बीच में रहने वाली भेजी।

भावार्थ - पिता के तीन अङ्ग कहे गये हैं यथा - हड्डी, अस्थिमिंजा यानी हड्डियों के बीच का रस केश, दाढी, मूछ, रोम और नख। तीन माता के अङ्ग कहे गये हैं यथा - मांस, शोणित यानी खून और मस्तक के बीच में रहने वाली भेजी तथा मेद फिप्फिस आदि।

विवेचन - संतान में पिता के तीन अंग होते हैं अर्थात् ये तीन अंग प्रायः पिता के शुक्र (वीर्य) के परिणाम स्वरूप होते हैं - १. अस्थि (हड्डी) २. अस्थि के अन्दर का रस ३. सिर, दाढ़ी, मूंछ, नख और कक्षा (काख) आदि के बाल।

संतान में माता के तीन अंग होते हैं अर्थात् ये तीन अंग प्रायः माता के रज के परिणाम स्वरूप होते हैं - १. मांस २. रक्त ३. मस्तुलिंग (मस्तिष्क)।

तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ तंजहा - कया णं अहं अप्पं वा बहुयं वा सुयं अहिज्जिस्सामि, कया णं अहं एगल्ल विहारपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरिस्सामि, कया णं अहं अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा झूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि। एवं समणसा, सवयसा, सकायसा, पागडेमाणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ। तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ, तंजहा - कया णं अहं अप्पं वा बहुयं वा परिग्गहं परिच्चइस्सामि, कया णं अहं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि, कया णं अहं अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा झूसिए भत्तपाण पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवंकखमाणे विहरिस्सामि। एवं समणसा, सवयसा, सकायसा पागडेमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ।११५।

कठिन शब्दार्थ - महाणिज्जरे - महा निर्जरा वाला, **महापज्जवसाणे** - महापर्यवसान वाला, **अहिज्जिस्सामि**- पढूँगा, **एगल्लविहारपडिमं** - एकल विहार पडिमा को, **अपच्छिम मारणंतिय** - सब के पश्चात् मृत्यु के समय होने वाली, **संलेहणा** - संलेखना, **झूसणा झूसिए** - शरीर और कषायों को कृश करके, **भत्तपाणपडियाइक्खिए** - आहार पानी का त्याग करके, **अणवकंखमाणे** - इच्छा न करता हुआ, **पागडेमाणे** - चिन्तन करता हुआ।

भावार्थ - तीन कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है अर्थात् इन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीन मनोरथों का चिन्तन करता हुआ साधु महानिर्जरा और महापर्यवसान (प्रशस्त अन्त) वाला होता है यथा - पहले मनोरथ में साधुजी ऐसा विचार करे कि कब मैं थोड़ा या बहुत श्रुत यानी शास्त्रज्ञान पढ़ूँगा। दूसरे मनोरथ में साधुजी यह विचार करे कि कब मैं एकलविहारपडिमा को अङ्गीकार कर विचरूँगा। तीसरे मनोरथ में साधुजी यह चिन्तन करे कि सब के पश्चात् मृत्यु के समय होने वाली संलेखना के द्वारा शरीर और कषायों को कृश करके आहार पानी का त्याग करके पादपोपगमन मरण अङ्गीकार करके जीवन-मरण की इच्छा न करता हुआ संयम का पालन करूँगा। इस प्रकार मन वचन काया से चिन्तन करता हुआ साधु महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है।

तीन कारणों से श्रमणोपासक महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है यथा - पहले मनोरथ में श्रावकजी यह भावना भावे कि कब मैं अल्प या बहुत परिग्रह का त्याग करूँगा। दूसरे मनोरथ में श्रावकजी यह चिन्तन करे कि कब मैं मुण्डित होकर गृहस्थवास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करूँगा। तीसरे मनोरथ में श्रावकजी यह विचार करे कि कब मैं सब से पीछे मृत्यु के समय होने वाली संलेखना के द्वारा शरीर और कषायों को कृश करके आहार पानी का त्याग करके पादपोपगमन मरण अङ्गीकार करके जीवन मरण की इच्छा न करता हुआ श्रावक व्रत में दृढ़ रहूँगा। इस प्रकार मन वचन काया से चिन्तन करता हुआ श्रमणोपासक महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु और श्रमणोपासक के तीन-तीन मनोरथ बताये हैं। जिसका वर्णन भावार्थ में कर दिया गया है। जो साधक इन तीन मनोरथों का मन, वचन, काया से चिंतन करता है वह महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है। सूत्र में दो शब्द आये हैं - **महाणिज्जरे, महापज्जवसाणे**।

महाणिज्जरे शब्द का अर्थ है - महती निर्जरा (कर्म क्षपण) जिसके कर्मों की अधिक निर्जरा होती है वह महानिर्जरा वाला कहा जाता है।

महापज्जवसाणे का अर्थ है - महा पर्यवसान अर्थात् महत्-प्रशस्त अथवा अत्यंत पर्यवसान-अंतिम अर्थात् समाधिमरण से यानी कि पुनः मरण नहीं करने से अंतिम है जीवन जिसका, वह महापर्यवसान कहलाता है।

संलेखना - जिससे शरीर और कषाय कृश यानी दुर्बल-पतले किये जाते हैं ऐसे तप विशेष को संलेखना कहते हैं।

पादपोपगमन - जैसे कटी हुई वृक्ष की डाली स्वतः कुछ भी हलन चलन नहीं करती इसी प्रकार शरीर की सम्पूर्ण हलन चलन की क्रिया को रोककर कटी हुई वृक्ष की डाली के समान अडोल और अकम्प होकर निश्चल रहना पादपोपगमन संथारा कहलाता है।

तिविहे पोग्गल पडिघाए पण्णत्ते तंजहा - परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलं पप्प पडिहणिज्जा, लुक्खत्ताए वा पडिहणिज्जा, लोगंते वा पडिहणिज्जा। तिविहे चक्खू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते तंजहा - एगचक्खू, बिचक्खू, तिचक्खू। छउमत्थे णं मणुस्से एगचक्खू, देवे बिचक्खू, तहारूवे समणे वा माहणे वा उप्पण्णणाण दंसणधरे से णं तिचक्खू त्ति वत्तव्वं सिया। तिविहे अभिसमागमे पण्णत्ते तंजहा-उड्ढं, अहं, तिरियं, जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अइसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जइ से णं तप्पढमयाए उड्ढमभिमेइ तओ तिरियं, तओ पच्छा अहे, अहो लोए णं दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो॥ ११६॥

कठिन शब्दार्थ - **पोग्गल पडिघाए** - पुद्गल प्रतिघात, **पप्प** - प्राप्त होने से, **पडिहणिज्जा** - प्रतिघात हो जाता है, **लोगंते** - लोक के अंत में, **चक्खू** - आंख, **छउमत्थे** - छद्मस्थ, **मणुस्से** - मनुष्य, **उप्पण्ण णाणदंसणधरे** - उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक-जिनको अवधिज्ञान अवधिदर्शन उत्पन्न हो गया है, **अभिसमागमे** - अभिसमागम-पदार्थों का सम्यग्ज्ञान, **समुप्पज्जइ** - उत्पन्न होता है, **तप्पढमयाए** - सब से पहले, **दुरभिगमे** - देखना बडा कठिन है।

भावार्थ - तीन प्रकार के पुद्गल प्रतिघात कहे गये हैं यथा - एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल को प्राप्त होने से उसकी गति का प्रतिघात (रुकावट) हो जाता है, अत्यन्त रूक्ष हो जाने से उसकी गति का प्रतिघात हो जाता है और लोक के अन्त में जाने पर आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से उसकी गति का प्रतिघात हो जाता है। तीन प्रकार की आंख कही गई है यथा - एक चक्षु, दो चक्षु और तीन चक्षु। विशिष्ट श्रुतज्ञान रहित छद्मस्थ मनुष्य के चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा एक आंख होती है, देव के चक्षुइन्द्रिय और अवधिज्ञान होने से दो आंख होती है और जिसको अवधिज्ञान, अवधिदर्शन उत्पन्न हो गया है ऐसे तथारूप के श्रमण माहण के चक्षुइन्द्रिय, परमश्रुत और परम अवधिज्ञान ये तीन आंखें होती हैं ऐसा कहना चाहिये। तीन प्रकार का अभिसमागम यानी पदार्थों का सम्यग्ज्ञान कहा गया है यथा - ऊर्ध्व, अधः (नीचे) और तिर्च्छा। जब तथारूप के श्रमण माहन को मति श्रुत से अतिरिक्त परम अवधि ज्ञान दर्शन उत्पन्न होता है तब वह सब से पहले ऊपर देखता है इसके बाद तिर्च्छा देखता है और इसके बाद अधोलोक को देखता है। भगवान् फरमाते हैं कि हे आयुष्मन् श्रमणो ! अधोलोक को देखना बड़ा कठिन है क्योंकि वह महा अन्धकार मय है।

विवेचन - पुद्गल प्रतिघात - परमाणु आदि पुद्गलों का प्रतिघात यानी गति की स्खलना पुद्गल प्रतिघात कहलाता है। पुद्गल प्रतिघात तीन प्रकार का कहा है - १. सूक्ष्म अणु रूप पुद्गल परमाणु पुद्गल है। एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल को प्राप्त होने से अटकता है - गति की स्खलना होती है २. रूक्षपन से अथवा तथाविध अन्य परिणाम द्वारा गति की स्खलना होती है ३. लोक के अंत में पुद्गल प्रतिघात होता है क्योंकि उसके आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है।

चक्षु यानी नेत्र। जो द्रव्य से आंख और भाव से ज्ञान युक्त है वह चक्षुष-चक्षु वाला कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्षु के संख्या के भेद से तीन प्रकार कहे हैं - जिसके एक आंख है वह एक चक्षु इसी प्रकार द्वि चक्षु और त्रिचक्षु भी समझना। एक चक्षु चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा है। देव, चक्षुरिन्द्रिय और अवधिज्ञान से युक्त होने के कारण द्विचक्षु वाले हैं। आवरण के क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ है श्रुत और अवधिरूप ज्ञान, ऐसे ज्ञान और अवधिदर्शन को जो धारण करते हैं वे उत्पन्न ज्ञान दर्शन धर कहलाते हैं ऐसे जो मुनि हैं वे त्रिचक्षु वाले अर्थात् १. चक्षुरिन्द्रिय २. परमश्रुत और ३. परमावधिज्ञान से युक्त हैं।

तिविहा इड्ढी पण्णत्ता तंजहा - देविड्ढी, राइड्ढी, गणिड्ढी। देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - विमाणिड्ढी, विगुव्वणिड्ढी, परियारणिड्ढी, अहवा देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - सचित्ता, अचित्ता, मीसिया। राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - रण्णो अइयाणिड्ढी, रण्णो णिज्जाणिड्ढी, रण्णो बलवाहणकोस कोठागारिड्ढी, अहवा राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - सचित्ता, अचित्ता, मीसिया। गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा - णाणिड्ढी, दंसणिड्ढी, चरित्तिड्ढी। अहवा गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा सचित्ता, अचित्ता, मीसिया॥ ११७॥

कठिन शब्दार्थ - इड्ढी - ऋद्धि, **देविड्ढी** - देव ऋद्धि, **राइड्ढी**- राजऋद्धि, **गणिड्ढी** - गण ऋद्धि, **विमाणिड्ढी** - विमानों की ऋद्धि, **विगुव्वणिड्ढी** - वैक्रिय करने की ऋद्धि, **परियारणिड्ढी** - परिचारण ऋद्धि, **अइयाणिड्ढी** - अतियान ऋद्धि, **णिज्जाणिड्ढी** - निर्यान ऋद्धि, **बल-वाहणकोस कोठागारिड्ढी**- चतुरंगिनी सेना, रथ पालखी, खजाना, कोष्ठागार-धान्य घर आदि की ऋद्धि।

भावार्थ - तीन प्रकार की ऋद्धि कही गई है यथा - देव ऋद्धि, राज ऋद्धि और गण ऋद्धि । देव ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है यथा - विमानों की ऋद्धि, वैक्रिय करने की ऋद्धि और परिचारण ऋद्धि यानी देवियों के साथ भोग भोगने की ऋद्धि। अथवा देव ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है यथा - सचित्त यानी अपना शरीर, अग्रमहिषी आदि सचित्त पदार्थों की ऋद्धि, अचित्त यानी वस्त्र आभूषण आदि की अचित्त ऋद्धि और मिश्र यानी वस्त्राभूषणों से अलंकृ देवी आदि की ऋद्धि। राज ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है यथा - राजा की अतियान ऋद्धि यानी जब राजा नगर में प्रवेश करे तब दूकानों को और बाजार आदि को सजाने की ऋद्धि, राजा की निर्यान ऋद्धि यानी जब राजा नगर से बाहर निकले तब हाथी, घोड़े, सामन्त आदि की ऋद्धि और राजा की चतुरंगिनी सेना, रथ पालखी, खजाना, कोष्ठागार-धान्य घर आदि की ऋद्धि । अथवा राजऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है यथा - सचित्त, अचित्त और मिश्र। गण ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है यथा - विशिष्ट श्रुतादि रूप ज्ञान ऋद्धि, प्रवचन में शङ्का आदि दोष रहित होना एवं प्रवचन की प्रभावना करने वाला विशिष्ट शास्त्र का अभ्यास होना सो दर्शन ऋद्धि और अतिचार रहित चारित्र का पालन करना सो चारित्र ऋद्धि। अथवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गण ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है यथा - शिष्यादि सो सचित्त ऋद्धि, वस्त्र पात्र आदि सो अचित्त ऋद्धि और दोनों मिली हुई सो मिश्र ऋद्धि।

विवेचन - ऋद्धि के तीन भेद हैं - १. देवता की ऋद्धि २. राजा की ऋद्धि और ३. गणि - गच्छ के अधिपति आचार्य की ऋद्धि।

देवता की ऋद्धि के तीन भेद हैं -१. विमानों की ऋद्धि २. विक्रिया करने की ऋद्धि ३. परिचारणा (काम सेवन) की ऋद्धि। अथवा १. सचित्त ऋद्धि - अग्रमहिषी आदि सचित्त वस्तुओं की सम्पत्ति २. अचित्त ऋद्धि-वस्त्र आभूषण की ऋद्धि ३. मिश्र ऋद्धि - वस्त्राभूषणों से अलंकृत देवी आदि की ऋद्धि.

राजा की ऋद्धि के तीन भेद हैं - १. अतियान ऋद्धि-नगर प्रवेश में तोरण बाजार आदि की शोभा लोगों की भीड़ आदि रूप ऋद्धि अर्थात् नगर प्रवेश, महोत्सव की शोभा २. निर्याण ऋद्धि - नगर से बाहर जाने में हाथियों की सजावट सामन्त आदि की ऋद्धि ३. राजा के सैन्य वाहन, खजाना और कोठार की ऋद्धि अथवा सचित्त, अचित्त, मिश्र के भेद से भी राजा की ऋद्धि के तीन भेद हैं।

गणि (आचार्य) की ऋद्धि के तीन भेद हैं - १. ज्ञान ऋद्धि - विशिष्ट श्रुत की सम्पदा २. दर्शन ऋद्धि - आगम में शंका आदि से रहित होना तथा प्रवचन की प्रभावना करने वाले शास्त्रों का ज्ञान ३. चारित्र ऋद्धि - अतिचार रहित शुद्ध उत्कृष्ट चारित्र का पालन करना।

सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से भी आचार्य की ऋद्धि तीन प्रकार की है - १. सचित्त ऋद्धि-शिष्य आदि २. अचित्त ऋद्धि - वस्त्र आदि ३. मिश्र ऋद्धि - वस्त्र पहने हुए शिष्य आदि।

तओ गारवा पण्णत्ता तंजहा - इड्ढीगारवे रसगारवे सायागारवे। तिविहे करणे पण्णत्ते तंजहा - धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे, धम्मियाधम्मिया करणे। तिविहे भगवया धम्मे पण्णत्ते तंजहा - सुअहिज्झिए, सुज्झाइए, सुतवस्सिए, जया सुअहिज्झियं भवइ तया सुज्झाइयं भवइ, जया सुज्झाइयं भवइ तया सुतवस्सियं भवइ। से सुअहिज्झे सुज्झाइए सुतवस्सिए सुयक्खाए णं भगवया धम्मे पण्णत्ते॥ ११८॥

कठिन शब्दार्थ - **इड्ढी गारवे** - ऋद्धि गारव, **रसगारवे** - रस गारव, **सायागारवे** - साता गारव, **सुअहिज्झिए** - सुअधीत (अच्छा अध्ययन किया हुआ), **सुज्झाइए** - सुध्यात (अच्छा ध्यान किया हुआ), **सुतवस्सिए** - सुतप (श्रेष्ठ तप का आचरण किया हुआ)।

भावार्थ - तीन गारव यानी गुरुपना (भारीपना) कहे गये हैं यथा - ऋद्धि गारव, रस गारव और साता गारव। तीन प्रकार के करण कहे गये हैं यथा - साधु की क्रिया सो धार्मिक करण, असंयति की क्रिया सो अधार्मिक करण और देशविरति श्रावक की क्रिया सो धार्मिकाधार्मिक करण। भगवान् ने तीन प्रकार का धर्म फरमाया है यथा - सुअधीत यानी गुरु के पास विनयपूर्वक पढा हुआ ज्ञान, सुध्यात यानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भली प्रकार चिन्तन किया गया ज्ञान और सुतप यानी इहलोकादि की आशंसा रहित भली प्रकार किया गया तप। जब शास्त्रों का भली प्रकार अध्ययन किया जाता है तब सुध्यान होता है अर्थात् उनका भली प्रकार चिन्तन किया जाता है और जब भली प्रकार चिन्तन किया जाता है तब सुतप होता है। सुअधीत सुध्यात और सुतप यह तीन प्रकार का धर्म भगवान् ने अच्छा फरमाया है क्योंकि यह सम्यग् ज्ञान क्रिया रूप होने से मोक्ष का देने वाला है।

विवेचन - गारव (गौरव) - गुरु अर्थात् भारीपन का भाव अथवा कार्य गौरव कहलाता है। द्रव्य और भाव भेद से गौरव दो प्रकार का है। वज्रादि की गुरुता द्रव्य गौरव है। अभिमान एवं लोभ से होने वाला आत्मा का अशुभ भाव भाव गौरव (भाव गारव) है। यह संसार चक्र में परिभ्रमण कराने वाले कर्मों का कारण है। गारव (गौरव) के तीन भेद हैं - १. ऋद्धि गौरव २. रस गौरव और ३. साता गौरव।

१. ऋद्धि गौरव - राजा महाराजाओं से पूज्य आचार्यता आदि की ऋद्धि का अभिमान करना एवं उनकी प्राप्ति की इच्छा करना ऋद्धि गौरव है।

२. रस गौरव - रसना इन्द्रिय के विषय मधुर आदि रसों की प्राप्ति से अभिमान करना या उनकी इच्छा करना रस गौरव है।

३. साता गौरव - साता-स्वस्थता आदि शारीरिक सुखों की प्राप्ति होने से अभिमान करना या उनकी इच्छा करना साता गौरव है।

तिविहा वावत्ती पण्णत्ता तंजहा - जाणू अजाणू विइगिच्छा एवं अज्झोववज्जणा परियावज्जणा। तिविहे अंते पण्णत्ते तंजहा - लोयंते वेयंते समयंते। तओ जिणा पण्णत्ता तंजहा - ओहिणाण जिणे, मणपज्जवणाण जिणे, केवलणाण जिणे। तओ केवली पण्णत्ता तंजहा - ओहिणाण केवली, मणपज्जवणाण केवली, केवलणाण केवली। तओ अरहा पण्णत्ता तंजहा - ओहिणाण अरहा, मणपज्जवणाण अरहा, केवलणाण अरहा॥ ११९॥

कठिन शब्दार्थ - वावत्ती - व्यावृत्ति विरति, **अज्झोववज्जणा** - अध्युपपादन-इन्द्रिय विषयों में आसक्ति, **परियावज्जणा** - पर्यापदन-इन्द्रिय विषयों का सेवन, **लोयंते** - लोकान्त, **वेयंते** - वेदान्त-वेदों का अन्त, **समयंते** - समयांत-जैन सिद्धान्तों का अंत।

भावार्थ - तीन प्रकार की व्यावृत्ति यानी हिंसा पापों से निवृत्ति कही गई है यथा - हिंसा आदि के स्वरूप को जान कर ज्ञान पूर्वक हिंसा आदि से निवृत्त होना, हिंसादि के स्वरूप को जाने बिना ही अज्ञान पूर्वक हिंसादि से निवृत्त होना और हिंसा आदि में पाप है या नहीं है इस प्रकार शंका पूर्वक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा आदि से निवृत्त होना। इसी प्रकार अध्युपपत्ति (अध्युपपादन) यानी इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति और इन्द्रियों के विषयों का सेवन करना, इन दोनों से निवृत्त होने के भी जाणू, अजाणू और विचिकित्सा ये तीन तीन भेद हैं। तीन प्रकार का अन्त कहा गया है यथा - लोक का अन्त, वेदों का अन्त और जैन सिद्धान्तों का अन्त। तीन जिन कहे गये हैं यथा - अवधिज्ञानी जिन, मनःपर्यवज्ञानी जिन और केवलज्ञानी जिन। तीन केवली कहे गये हैं यथा - अवधि ज्ञानी केवली, मनःपर्यवज्ञानी केवली, केवलज्ञानी केवली। तीन अरिहन्त कहे गये हैं यथा - अवधिज्ञानी अरिहन्त, मनःपर्यवज्ञानी अरिहन्त और केवलज्ञानी अरिहन्त।

विवेचन - व्यावृत्ति (विरति) तीन प्रकार की कही गयी है - १. हिंसादि के हेतु स्वरूप और फल को जानने वाले की ज्ञानपूर्वक जो विरति होती है वह ज्ञाता के साथ अभेद होने से "जाणू" कही गयी है। २. अज्ञ - अजाण की ज्ञान के बिना जो विरति है वह "अजाणू" और ३. विचिकित्सा - संशय से जो विरति होती है वह विचिकित्सा व्यावृत्ति कहलाती है। व्यावृत्ति की तरह ही अध्युपपादन- इन्द्रिय विषयों में आसक्ति और पर्यापदन - इन्द्रिय विषयों के सेवन के भी तीन-तीन भेद होते हैं।

रागद्वेष को जीतने वाले जिन कहलाते हैं। केवलज्ञानी तो सर्वथा राग द्वेष को जीतने वाले एवं पूर्ण निश्चय-प्रत्यक्ष ज्ञानशाली होने से साक्षात् (उपचार रहित) जिन हैं। अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी उपचार से यानी गौण रूप से जिन, केवली, अरिहन्त कहे गये हैं। मुख्य रूप से तो केवलज्ञानी ही जिन, केवली, और अरिहन्त हैं।

यहाँ लोकान्त शब्द का अर्थ यह किया गया है कि लौकिक शास्त्रों से किसी वस्तु का अन्त अर्थात् निर्णय करना, इस प्रकार वेदों के द्वारा निर्णय करना तथा जैन सिद्धान्तों के द्वारा निर्णय करना क्रमशः लोकान्त, वेदान्त और समयान्त कहा गया है।

तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा। तओ लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ तंजहा - तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा। एवं दुग्गइगामिणीओ सुगइगामिणीओ, संकिलिट्ठाओ असंकिलिट्ठाओ, अमणुण्णाओ मणुण्णाओ, अविसुद्धाओ विसुद्धाओ, अप्पसत्थाओ पसत्थाओ, सीयलुक्खाओ णिद्धुण्हाओ। तिविहे मरणे पण्णत्ते तंजहा - बालमरणे, पंडियमरणे, बालपंडियमरणे। बालमरणे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - ठिय लेस्से, संकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजायलेस्से। पंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - ठियलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजायलेस्से। बालपंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - ठियलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, अपज्जवजायलेस्से॥ १२०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **दुब्भिगंधाओ** - दुरभिगंध-दुर्गंध वाली, **सुब्भिगंधाओ** - सुरभिगंध-अच्छी गंध वाली, **दुग्गइगामिणीओ** - दुर्गति में ले जाने वाली, **सुगइगामिणीओ** - सुगति में ले जाने वाली, **संकिलिट्ठाओ** - संक्लिष्ट, **असंकिलिट्ठाओ** - असंक्लिष्ट, **अमणुण्णाओ** - अमनोज्ञ, **मणुण्णाओ** - मनोज्ञ, **अविसुद्धाओ** - अविशुद्ध, **विसुद्धाओ** - विशुद्ध, **अप्पसत्थाओ** - अप्रशस्त, **पसत्थाओ** - प्रशस्त, **सीयलुक्खाओ** - शीत रूक्ष, **णिद्धुण्हाओ** - स्निग्ध उष्ण, **मरणे** - मरण, **बालपंडिय मरणे**- बाल पण्डित मरण. **ठियलेस्से** - स्थित लेश्या. **पज्जवजायलेस्से** - पर्यवजात लेश्या।

भावार्थ - तीन लेश्याएं दुरभिगन्ध यानी दुर्गन्ध वाली कही गई है यथा - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोतलेश्या। तीन लेश्याएं अच्छी गन्ध वाली कही गई है यथा - तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या। इसी प्रकार क्रमशः तीन लेश्याएँ दुर्गति में ले जाने वाली और तीन लेश्याएँ सुगति में ले जाने वाली हैं। तीन लेश्याएँ संक्लिष्ट यानी संक्लेश परिणाम वाली और तीन लेश्याएँ असंक्लिष्ट यानी असंक्लेश परिणाम वाली हैं। तीन अमनोज्ञ और तीन मनोज्ञ हैं। तीन अविशुद्ध और तीन विशुद्ध हैं। तीन अप्रशस्त और तीन प्रशस्त हैं। तीन शीत रूक्ष और तीन स्निग्ध उष्ण हैं। ये तीन-तीन भेद लेश्याओं के कहे गये हैं। तीन प्रकार का मरण कहा गया है यथा - बालमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण। बालमरण तीन प्रकार का कहा गया है यथा - स्थित लेश्या यानी मरण के समय जो लेश्या है उसी लेश्या में उत्पन्न होना, संक्लिष्ट लेश्या यानी अशुभ लेश्या में मर कर फिर उससे भी अधिक अशुभ लेश्या में उत्पन्न होना, पर्यवजात लेश्या यानी अशुभ लेश्या में से मर कर क्रमशः विशुद्ध होती हुई लेश्या में उत्पन्न होना। पण्डितमरण तीन प्रकार का कहा गया है यथा - स्थितलेश्या, असंक्लिष्ट लेश्या और पर्यवजात लेश्या। बालपण्डितमरण तीन प्रकार का कहा गया है यथा - स्थित लेश्या, असंक्लिष्ट लेश्या और अपर्यवजात लेश्या।

विवेचन - तीन अप्रशस्त लेश्याओं की दुर्गंध और तीन प्रशस्त लेश्याओं की सुगंध के विषय में उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३४ में निम्न गाथाएं दी हैं -

जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडगस्स।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं॥

- जैसे - गाय के मृत कलेवर की दुर्गंध, मरे हुए कुत्ते की गंध और मरे हुए सर्प की दुर्गंध जैसी होती है उससे भी अनंत गुण दुर्गंध अप्रशस्त कृष्णादि तीन लेश्याओं की होती है।

जह सुरभि कुसुम गंधो, गंधो वासाणं पिस्समाणाणं।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थ लेसाण तिण्हं पि॥

- सुगंधित पुष्पों की गंध और पीस कर चूर्ण किये जाते हुए चन्दन आदि द्रव्यों की जैसी गंध होती है उससे अनंत गुण अधिक गंध प्रशस्त तेजोलेश्या आदि तीन लेश्याओं की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अविरति की अपेक्षा जीव को "बाल" कहा जाता है। उसका मरण "बाल मरण" कहलाता है। लेश्या की अपेक्षा बाल मरण के तीन भेद हैं। जो ज्ञानवान है विवेकी है ऐसा चारित्र संपन्न संयमी पण्डित कहलाता है। कहा भी है **'विरइं पडुच्च पंडिए'** अर्थात् महाव्रती पण्डित कहलाता है। लेश्या की अपेक्षा पण्डित मरण के भी तीन भेद हैं - जो साधक न तो पूर्णतया विरक्त है और न पूर्णतया अविरक्त ऐसे विरताविरत श्रावक को बालपंडित कहते हैं। कहा भी है - **"विरया विरइं पडुच्च बालपंडिए आहिज्जइ"** श्रावक धर्म की पालना करते हुए उसका जो मरण होता है उसे बाल पंडित मरण कहते हैं। लेश्या की अपेक्षा बाल पंडित मरण के भी तीन भेद हैं।

भगवती सूत्र में अन्तिम दो मरण के विषय में इस प्रकार पाठ आया है - **"से णूणं भंते ! कण्हलेसे णीललेसे जाव सुक्कलेसे भवित्ता काउलेसेसु णेरइएसु उववज्जइ ? हंता गोयमा ! से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! लेसाठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा काउलेस्सं परिणमइ परिणमइत्ता काउलेसेसु णेरइएसु उववज्जइ।"**

प्रश्न - हे भगवन् ! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या वाला होकर कापोत लेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उत्तर - हे गौतम ! हाँ होता है। हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है ? हे गौतम ! संक्लिश्यमान अथवा विशुद्धमान लेश्या के स्थान कापोत लेश्या में परिणमते हैं। कापोत लेश्या में परिणत होकर जीव कापोत लेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

पण्डितमरण में संक्लिश्यमान लेश्या नहीं होती हैं, अवस्थित और वर्द्धमान लेश्याएं होती हैं। इसलिए पण्डितमरण के वास्तविक दो ही भेद हैं। तीन भेद तो केवल कथन मात्र हैं। बालपण्डितमरण में संक्लिश्यमान और पर्यवजात लेश्या का निषेध है। सिर्फ अवस्थित लेश्या पाई जाती है। इसलिए बालपण्डितमरण का वास्तव में एक ही भेद है। तीन भेद तो केवल कथन मात्र हैं।

तओ ठाणा अव्ववसियस्स अहियाए असुहाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिए कंखिए विइगिच्छिए भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ तं परीसहा अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवंति, णो से परीसहे अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए पंचहिं महव्वएहिं संकिए जाव कलुससमावण्णे पंच महव्वयाइं णो सद्दहइ जाव णो से परीसहे अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवइ। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं जाव अभिभवइ।

तओ ठाणा ववसियस्स हियाए जाव अणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए जाव णो कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहइ पत्तियइ रोएइ से परीसहे अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवइ, णो तं परीसहा अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवंति, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचहिं महव्वएहिं णिस्संकिए णिक्कंखिए जाव परीसहे अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवइ, णो तं परीसहा अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवंति, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं णिस्संकिए जाव परीसहे अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवइ, णो तं परीसहा अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवंति॥ १२१॥

कठिन शब्दार्थ - अव्ववसियस्स - अव्यवसित-निश्चय रहित अथवा पराक्रम न करने वाले के लिए, **अहियाए** - अहित्र के लिये, **असुहाए** - असुख के लिये, **अखमाए** - अक्षमा के लिये, **अणिस्सेसाए** - अनिःश्रेयस-अकल्याण के लिये, **अणाणुगामियत्ताए** - अशुभानुबंध के लिए, **णिग्गंथे**- निर्ग्रंथ, **पावयणे** - प्रवचनों में, **भेयसमावण्णे** - भेद को प्राप्त, **कलुससमावण्णे** - कलुषता को प्राप्त, **सद्दहइ** - श्रद्धा करता है, **पत्तियइ** - प्रतीति करता है, **रोएइ** - रुचि करता है, **अभिजुंजिय** - प्राप्त हो कर, **अभिभवंति** - अभिभूत (पराजित) कर देते हैं, **णिस्संकिए** - शंका रहित, **णिक्कंखिए**- परमत की वांच्छा रहित।

भावार्थ - अव्यवसित यानी प्रवचनों में निश्चय रहित अथवा पराक्रम न करने वाले साधु के लिए तीन स्थान अहित, असुख अथवा अशुभ, अक्षमा, अनिःश्रेयस यानी अकल्याण और अशुभानुबन्ध के लिए होते हैं यथा - मुण्डित होकर गृहस्थावास से निकल कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करने वाला साधु निर्ग्रन्थ प्रवचनों में शङ्का करे कांक्षा यानी अन्यमत की वांच्छा करे, वितिगिच्छा यानी धर्मक्रिया के फल में सन्देह करे अथवा त्याग वृत्ति के कारण साधु साध्वी के मैले कपड़े और मलिन शरीर को देखकर घृणा करे, भेद को प्राप्त हो अर्थात् यह वस्तु तत्त्व ऐसा है अथवा ऐसा नहीं है इस प्रकार की भेद बुद्धि रखे, कलुषता को प्राप्त हो अर्थात् यह वस्तु तत्त्व ऐसा नहीं हैं इस प्रकार कलुषित बुद्धि रखे तथा निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा न रखे, प्रतीति न रखे, रुचि न रखे ऐसे साधु को परीषह प्राप्त होकर वे परीषह उसे अभिभूत (पराजित) कर देते हैं किन्तु वह साधु प्राप्त हुए परीषहों का अभिभव नहीं कर सकता अर्थात् परीषह उसे पराजित कर देते हैं किन्तु वह परीषहों को पराजित नहीं कर सकता हैं। मुण्डित होकर गृहस्थावास से निकल कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करके पांच महाव्रतों में शंका रखे यावत् कलुषता को प्राप्त हो और पांच महाव्रतों पर श्रद्धा न रखे यावत् रुचि न रखे तो परीषहों को प्राप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होकर वह अभिभूत हो जाता है। मुण्डित होकर गृहस्थवास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करने वाला साधु छह जीव निकाय के विषय में शंका रखे कलुषता को प्राप्त हो और उन पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि न रखे तो वह परीषहों से अभिभूत हो जाता है। अर्थात् वह परीषहों से पराजित हो जाता है।

व्यवसित यानी जिन प्रवचनों में निश्चय रखने वाले एवं पराक्रम करने वाले साधु के लिए तीन स्थान हित सुख अथवा शुभ, क्षमा, कल्याण और शुभानुबन्ध के लिए होते हैं यथा - मुण्डित होकर गृहस्थवास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करने वाला साधु निर्ग्रन्थ प्रवचनों में शंका न रखे, कांक्षा यानी अन्यमत की वांच्छा न रखे यावत् कलुषता को प्राप्त न हो किन्तु निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा रखे तो वह परीषहों को प्राप्त होकर परीषहों का अभिभव कर देता है किन्तु प्राप्त हुए परीषह उसका अभिभव नहीं कर सकते हैं अर्थात् वह परीषहों पर विजय प्राप्त कर लेता हैं किन्तु परीषह उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं। मुण्डित होकर गृहस्थावास से निकल कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करने वाला साधु पांच महाव्रतों में शंका न रखे, परमत की वांच्छा न करे यावत् उन पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि रखे तो वह साधु परीषहों को प्राप्त करके उनका अभिभव कर देता है किन्तु परीषह उसको प्राप्त होकर उसका अभिभव नहीं कर सकते हैं अर्थात् वह परीषहों पर विजय प्राप्त कर लेता है किन्तु परीषह उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं। मुण्डित होकर गृहस्थावास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करने वाला साधु छह जीव निकायों में शंका न रखे यावत् उन पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि रखे तो वह साधु परीषहों को प्राप्त करके उनका अभिभव कर देता है किन्तु परीषह उसे प्राप्त होकर उसका अभिभव नहीं कर सकते हैं अर्थात् वह पुरुष परीषहों को समभाव पूर्वक सहन कर उन पर विजय प्राप्त कर लेता है किन्तु परीषह उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

एगमेगा णं पुढवी तिहिं वलएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता तंजहा - घणोदहिवलएणं घणवायवलएणं तणुवायवलएणं। णेरइया णं उक्कोसेणं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जंति, एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं॥ १२२॥

कठिन शब्दार्थ - **वलएहिं** - वलयों से, **सव्वओ समंता** - चारों तरफ दिशाओं और विदिशाओं में, **संपरिक्खित्ता** - वेष्टित, **तिसमइएणं** - तीन समय की, **विग्गहेणं** - विग्रह गति करके।

भावार्थ - रत्नप्रभा आदि प्रत्येक पृथ्वी चारों तरफ दिशाओं और विदिशाओं में घनोदधि वलय घनवातवलय और तनुवातवलय इन तीन वलयों से वेष्टित हैं। नैरयिक जीव उत्कृष्ट तीन समय की विग्रह गति करके फिर अपने उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर वैमानिक देवों तक सभी दण्डक के जीव उत्कृष्ट तीन समय की विग्रह गति करके अपने उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

विवेचन - एक एक पृथ्वी चारों तरफ दिशा विदिशाओं में तीन वलयों से घिरी हुई है - १. घनोदधि वलय २. घनवात वलय और ३. तनुवात वलय। प्रथम घनोदधि वलय है उसके बाद क्रम से दो वलय घनवात और तनुवात है। घनोदधि अर्थात् घन हिम (बरफ) की शिला की तरह कठिन उदधि, घनवात कठिन वायु का समूह और तनुवात अर्थात् पतली वायु।

मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव ही नैरयिक हो सकते हैं अन्य गति वाले जीव नहीं। जो जीव नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं उनमें कुछ ऋजुगति से उत्पन्न होते हैं और कुछ विग्रह (वक्र) गति से। जो ऋजु गति से उत्पन्न होते हैं वे एक समय में ही जन्म स्थान में पहुँच जाते हैं किन्तु जो विग्रह गति से उत्पन्न होते हैं उन्हें उत्कृष्ट तीन मोड-घुमाव करने पड़ते हैं। एक मोड़ हो तो दो समय लगते हैं दो मोड़ हो तो तीन समय लगते हैं और तीन मोड़ हो तो चार समय लगते हैं। त्रस जीव यदि त्रस नाडी में उत्पन्न होता है तो दो मोड़ (विग्रह होते हैं) जिनमें तीन समय लगते हैं जो इस प्रकार समझना चाहिए- जीव अग्निकोण से नैऋत कोण में एक समय में जाता है दूसरे समय में समश्रेणी से नीचे जाता है और इसके बाद तीसरे समय में समश्रेणी से वायव्य कोण में जाता है। त्रसकाय की उत्पत्ति में त्रस जीवों की इस प्रकार उत्कृष्ट से विग्रह-वक्रगति है। एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियपने उत्पन्न हो तो पांच समय में उत्पन्न होता है क्योंकि त्रसनाडी से बाहर रहे हुए जीव त्रसनाडी से बाहर भी उत्पन्न होते हैं। कहा है -

विदिसाउ दिसं पढमे, बीए पइसरइ लोयनाडीए।

तइए उप्पिं धावइ, चउत्थए नीइ बाहिं तु।।

"पंचमए विदिसीए गंतु उप्पज्जए उ एगिंदि" त्ति -

अर्थ - प्रथम समय में जीव विदिशा से दिशा में जाता है। दूसरे समय त्रस नाडी में आता है, तीसरे समय ऊंचा जाता है चौथे समय त्रस नाडी से बाहर की दिशा में समश्रेणी से जाता है और पांचवें समय में विदिशा में जाकर एकेन्द्रिय रूप से उत्पन्न होता है। यह संभव मात्र है परन्तु होते चार समय ही है क्योंकि भगवती सूत्र में इस प्रकार पाठ आया है -

"अपज्जत्तगसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! अहेलोग खेत्तणालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तणालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा ! तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा।"

- हे भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोक की क्षेत्र नाड़ी से बाहर के क्षेत्र में मारणांतिक समुद्घात से युक्त होकर ऊर्ध्वलोक में क्षेत्र (त्रस) नाड़ी से बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय रूप से उत्पन्न होने योग्य है वह जीव हे भगवन्! कितने समय के विग्रह से उत्पन्न होता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम ! तीन समय अथवा चार समय वाला विग्रह से उत्पन्न होता है। विशेषणवती ग्रंथ में भी कहा है कि -

सुत्ते चउसमयाओ, णत्थि गई उ परा विणिद्दिट्ठा।

जुज्जइ य पंच समया जीवस्स इमा गई लोए॥

- सिद्धान्त में चार समय वाली गति से ऊपर वक्रगति नहीं कही है परन्तु लोक में जीव के इस प्रकार पांच समय वाली वक्रगति भी संभव हो सकती है।

जो तमतम विदिसाए, समोहओ बंभलोगविदिसाए।

उववज्जई गईए, सो नियमा पंच समयाए ॥

जो जीव सातवीं नरक भूमि की विदिशा में मरण समुद्घात से ब्रह्मलोक की विदिशा में उत्पन्न होता है वह पांच समय वाली वक्र गति से उत्पन्न होता है।

उववाया भावाओ न पंचसमयाहवा न संतावि।

भणिया जह चउसमया, महल्लबंधे न संतावि।।

उपरोक्तानुसार जीव के उत्पन्न होने के अभाव से पांच समय नहीं होते अथवा पांच समय होते है। फिर भी (अपवाद भूत होने से) नहीं कहे हैं। जैसे चार समय वाली गति होने पर भी विस्तार वाले शास्त्र में नहीं कही है उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये। अतः एकेन्द्रिय को छोड़ कर यावत् वैमानिक पर्यंत जीवों के उत्कृष्ट तीन समय वाली विग्रह गति होती है।

खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति तंजहा - णाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं अंतरायं। अभिई णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते, एवं सवणे, अस्सिणी, भरणी, मगसिरे, पूसे, जिट्ठा। धम्माओ णं अरहाओ संती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवम ऊणएहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी। मल्ली णं अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए । एवं पासे वि। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिण्णि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-सण्णिवाईणं जिण इव अवितह वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया होत्था। तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था तंजहा - संती, कुंथू, अरो॥ १२३ ॥

कठिन शब्दार्थ - खीण मोहस्स - क्षीण मोहनीय वाले, **कम्मंसा** - कर्मांश अर्थात् कर्मों की प्रकृतियाँ, **जुगवं** - युगपत्-एक साथ, **खिज्जंति** - क्षय होती हैं, **तितारे** - तीन तारों वाला, **तिचउभागपलिओवमऊणएहिं** - पल्योपम का तीन चौथाई कम, **वीइक्कंतेहिं** - बीत जाने पर,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरिसजुगाओ - पुरुष युग-गुरु शिष्य की पाट परम्परा के क्रम से, **जुगंतकरभूमी** - युगांतकरभूमि-मोक्षगामी पुरुष, **अजिणाणं** - जिन नहीं, **जिणसंकासाणं** - जिन सरीखे, **सव्वक्खर सण्णिवाईणं** - सर्वाक्षर सन्निपात वाले, **अवितहं** - अवितथ-यथातथ्य, **वागरमाणाणं** - वचनों का प्रयोग करने वाले, **चउद्दस पुव्वीणं** - चौदह पूर्वधारी साधुओं की।

भावार्थ - क्षीण मोहनीय वाले अरिहंत भगवान् के तीन कर्मों की प्रकृतियाँ एक साथ क्षय होती हैं यथा - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय। अभिजित नक्षत्र तीन तारों वाला कहा गया है। इसी प्रकार श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर, पुष्य और ज्येष्ठा ये सभी नक्षत्र तीन तीन तारों वाले कहे गये हैं। पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ स्वामी मोक्ष गये बाद पल्योपम का तीन चौथाई यानी पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम बीत जाने पर सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ स्वामी पैदा हुए थे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष गये बाद गुरु शिष्य की पाटपरम्परा के क्रम से तीन पाट तक मोक्षगामी पुरुष हुए थे अर्थात् जम्बूस्वामी तक मोक्ष जाने वाले पुरुष हुए थे। जम्बूस्वामी के मोक्ष जाने बाद फिर यहाँ भरत क्षेत्र से मोक्षगमन बन्द हो गया। उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लिनाथ भगवान् ने तीन सौ स्त्रियों के साथ मुण्डित होकर प्रव्रज्या-दीक्षा अङ्गीकार की थी। इसी प्रकार तेइसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भगवान् ने भी तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली थी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जिन नहीं किन्तु जिनसरीखे अर्थात् असर्वज्ञ होते हुए भी सम्पूर्ण संशयों का छेदन करने वाले होने से तीर्थङ्कर के समान सर्वअक्षर सन्निपात वाले अर्थात् वचन सम्बन्धी सम्पूर्ण रहस्यों को जानने वाले तीर्थङ्कर की तरह यथातथ्य वचनों का प्रयोग करने वाले चौदहपूर्वधारी साधुओं की चतुर्दशपूर्वधर संपदा तीन सौ थी अर्थात् भगवान् महावीर स्वामी के पास चौदहपूर्वधारी साधु तीन सौ थे। श्री शान्तिनाथ भगवान्, श्री कुन्थुनाथ भगवान् और श्री अरनाथ भगवान् ये तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती भी थे अर्थात् चक्रवर्ती की पदवी भोग कर फिर तीर्थङ्कर हुए थे। शेष मांडलिक राजा होकर तीर्थङ्कर हुए थे।

विवेचन - क्षीण मोह गुणस्थान के अंतिम समय में जीव पांच प्रकार का ज्ञानावरणीय, चार प्रकार का दर्शनावरणीय और पांच प्रकार का अंतराय कर्म, इन तीन कर्मों की इन चौदह प्रकृतियों का एक साथ क्षय कर केवली होता है

"धम्मजिणाओ संती, तिहि उ तिचउभागपलिय ऊणेहिं अयरेहिं समुप्पण्णो" - पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम व्यतीत होने पर सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ स्वामी उत्पन्न हुए।

पुरिसजुगाओ - पुरुष युग-युग अर्थात् पांच वर्ष प्रमाण काल विशेष अथवा लोक में प्रसिद्ध जो कृत युग आदि है वे युग क्रम से व्यवस्थित है। पुरुष - गुरु शिष्य के क्रम वाला अथवा पिता पुत्र के क्रम वाला। युग की तरह जो पुरुष हैं वे पुरुष युग हैं। तीसरे पुरुष युग अर्थात् जम्बू स्वामी पर्यंत मोक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने वाले पुरुष हुए, उसके बाद भरत क्षेत्र की अपेक्षा मोक्ष गमन बंद हो गया। जम्बूस्वामी के मोक्ष जाने पर दस बोलों का विच्छेद हो गया।

विशेषावश्यक भाष्य गाथा २५९३ में बतलाया गया है कि जम्बू स्वामी के मोक्ष जाने के बाद भरतक्षेत्र में दस बातों का विच्छेद हो गया। वह गाथा इस प्रकार है-

मण परमोहि पुलाए आहारग खवग उवसम कप्पो।

संजम तिय केवली सिज्झणाय जम्बूम्भि वुचिछिण्णा॥

अर्थ - १. मनःपर्यय ज्ञान २. परम अवधिज्ञान ३. पुलाकलब्धि ४. आहारकलब्धि ५. क्षपक श्रेणी ६. उपशम श्रेणी ७. जिनकल्प ८. चारित्र त्रय अर्थात् परिहार विशुद्धि चारित्र, सूक्ष्मसम्पराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र ९. केवलज्ञान १०. सिद्ध होना अर्थात् मोक्ष जाना।

जुगंतकरभूमी - युगांतकर भूमि - पुरुष युग की अपेक्षा अंतकर-भव का अंत करने वालों की अर्थात् मोक्ष गामियों की भूमि-काल वह युगांतकर भूमि कहलाती है। कहने का आशय है कि भगवान् महावीर स्वामी के तीर्थ में उनसे प्रारम्भ कर तीसरे पुरुष जंबूस्वामी पर्यंत मोक्ष मार्ग था, उसके बाद विच्छेद हुआ।

"एगो भगवं वीरो पासो मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं" - भगवान् महावीर स्वामी ने एकाकी-अकेले और पार्श्वनाथ स्वामी तथा मल्लिनाथ स्वामी ने तीन-तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली। यहाँ **पुरिससएहिं** - 'पुरिस' शब्द व्यक्ति अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसलिए यहाँ प्रकरण के अनुसार 'स्त्री' अर्थ लिया गया है क्योंकि मल्लिनाथ भगवान् स्त्री पर्याय में तीर्थङ्कर हुए थे इसलिए उनके साथ तीन सौ स्त्रियों ने दीक्षा ली थी।

श्री शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती थे। जब तक ये तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती नहीं बने तब तक ये मांडलिक राजा थे। शेष १९ तीर्थङ्कर मांडलिक राजा थे जबकि मल्लिनाथ स्वामी और नेमिनाथ स्वामी माडंलिक राजा भी नहीं थे। वासुपूज्य स्वामी, मल्लिनाथ, नेमिनाथ स्वामी, पार्श्वनाथ स्वामी और महावीर स्वामी इन पांच तीर्थंकरों ने राज्य नहीं भोगा।

तओ गेविज्जविमाणपत्थडा पण्णत्ता तंजहा - हिट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे मज्झिमगेविज्ज विमाणपत्थडे उवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे। हिट्ठिमगेविज्ज-विमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे, हिट्ठिममज्झिम-गेविज्जविमाणपत्थडे, हिट्ठिमउवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे। मज्झिमगेविज्ज-विमाणपत्थडे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - मज्झिमहिट्ठिम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गेविज्जविमाणपत्थडे, मज्झिममज्झिम-गेविज्जविमाणपत्थडे, मज्झिम उवरिम गेविज्जविमाणपत्थडे। उवरिमगेविज्जविमाण पत्थडे तिविहे पण्णत्ते तंजहा - उवरिम हिट्ठिम गेविज्जविमाण पत्थडे, उवरिममज्झिम गेविज्जविमाणपत्थडे, उवरिम उवरिम गेविज्जविमाण पत्थडे। जीवा णं तिट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणिंति वा चिणिस्संति वा तंजहा - इत्थीणिव्वत्तिए पुरिसणिव्वत्तिए, णपुंसगणिव्वत्तिए। एवं चिण उवचिण बंध उदीर वेय तह णिज्जरा चेव। तिपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता, एवं जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ १२४॥

।। तिट्ठाणं समत्तं। तइयं अज्झयणं समत्तं।।

कठिनशब्दार्थ - गेविज्ज विमाणपत्थडा - ग्रैवेयक विमान प्रस्तट-ग्रैवेयक विमानों के पाथड़े, **हिट्ठिम** - अधस्तन, **मज्झिम** - मध्यम, **उवरिम** - ऊपरी, **हिट्ठिम मज्झिम** - अधस्तन मध्यम, **हिट्ठिमउवरिम** - अधस्तन उपरिम, **मज्झिम उवरिम** - मध्यम उपरिम **उवरिम हिट्ठिम** - उपरिम अधस्तन, **तिट्ठाणणिव्वत्तिए** - तीन स्थानों से उपार्जन किये गये, **चय** - संचय, **उवचय** - उपचय, **बंध** - बन्ध, **उदीर** - उदीरणा, **वेय** - वेदन, **णिज्जरा** - निर्जरा, **तिपएसिया** - त्रिप्रादेशिक, **तिगुणलुक्खा** - तीन गुण रूक्ष।

भावार्थ - ग्रैवेयक विमानों की रचना तीन प्रकार की कही गई है अर्थात् नौ ग्रैवेयक विमानों की तीन त्रिक हैं यथा - अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी नीचे की त्रिक, मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी बीच की त्रिक और उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी ऊपर की त्रिक। अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी नीचे की त्रिक तीन प्रकार की कही गई है -

यथा - अधस्तन अधस्तन विमान प्रस्तट यानी सब से नीचे का प्रतर जिसका नाम भद्र हैं, अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी नीचे की त्रिक का बीच का प्रतर जिसका नाम सुभद्र है और अधस्तन उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी नीचे की त्रिक का ऊपर का प्रतर। मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी बीच की त्रिक तीन प्रकार की कही गई है यथा - मध्यम अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी बीच वाली त्रिक का सब से नीचे का प्रतर जिसका नाम सुमनस है, मध्यम मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी बीच वाली त्रिक का बीच का प्रतर जिसका नाम सुदर्शन है और मध्यम उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी बीच वाली त्रिक का ऊपर का प्रतर जिसका नाम प्रियदर्शन है। उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी उपर की त्रिक तीन प्रकार की कही गई है यथा - उपरिम अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी ऊपर वाली त्रिक का नीचे का प्रतर, जिसका नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमोहे है। उपरिम मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी ऊपर वाली त्रिक का बीच का प्रतर, जिसका नाम प्रतिभद्र है और उपरिम उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट यानी ऊपर वाली त्रिक का ऊपर का प्रतर, जिसका नाम यशोधर है। इस प्रकार ये नौ ग्रैवेयक एक के ऊपर एक घड़े की तरह रहे हुए हैं।

जीवों ने तीन स्थानों से उपार्जन किये गये कर्म पुद्गलों को पाप कर्म रूप से ग्रहण किये हैं, ग्रहण करते हैं और ग्रहण करेंगे यथा - स्त्रीवेद रूप से उपार्जित, पुरुषवेद रूप से उपार्जित और नपुंसकवेद रूप से उपार्जित कर्मपुद्गलों को गत काल में ग्रहण किया था, वर्तमान काल में ग्रहण करते हैं और भविष्यत् काल में ग्रहण करेंगे। इसी प्रकार कर्मपुद्गलों का संचय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा भूतकाल में की थी, वर्तमान में करते हैं और भविष्यत् काल में करेंगे।

त्रिप्रादेशिक यानी तीन प्रदेश वाले स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। इसी प्रकार यावत् तीन गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं।

विवेचन - लोक रूप पुरुष के ग्रीवा(कंठ) स्थान में रहे हुए देव **'ग्रैवेयक'** कहलाते हैं। इनके विमान ग्रैवेयक विमान कहलाते हैं। प्रस्तट अर्थात् पाथड़ा प्रतर-रचना विशेष वाले समूह। ग्रैवेयक विमानों के तीन त्रिक हैं। एक- एक त्रिक में तीन-तीन प्रतर हैं। पहली त्रिक में भद्र, सुभद्र और सुजात ये तीन प्रतर हैं। दूसरी त्रिक में सुमनस, सुदर्शन और प्रियदर्शन ये तीन प्रतर हैं। तीसरी त्रिक में अमोहे, प्रतिभद्र और यशोधर ये तीन प्रतर हैं। ये नौ ग्रैवेयक एक के ऊपर एक घड़े के आकार से स्थित हैं। सबसे नीचे की त्रिक में १११ विमान हैं, मध्यम त्रिक में १०७ विमान हैं और ऊपर की त्रिक में १०० विमान हैं। इस प्रकार ग्रैवेयक के ३१८ विमान हैं।

॥ इति तीसरे ठाणे का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

॥ इति तीसरा स्थान रूप तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थं ठाणं चौथा स्थान

चतुर्थ स्थान का प्रथम उद्देशक

(चार अन्त क्रियाएं)

चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - तत्थ खलु इमा पढमा अंतकिरिया अप्पकम्मपच्चायाए यावि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी, तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवइ, णो तहप्पगारा वेयणा भवइ, तहप्पगारे पुरिसजाए दीहेणं परियाएणं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी, पढमा अंतकिरिया। अहावरा दोच्चा अंतकिरिया, महाकम्मे पच्चायाए यावि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजम बहुले, संवरबहुले, जाव उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी, तस्स णं तहप्पगारे तवे भवइ, तहप्पगारा वेयणा भवइ, तहप्पगारे पुरिसजाए णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झइ जाव अंतं करेइ, जहा से गयसुमाले अणगारे, दोच्चा अंतकिरिया। अहावरा तच्चा अंतकिरिया, महाकम्मे पच्चायाए यावि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, जहा दोच्चा, णवरं दीहेणं परियाएणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी, तच्चा अंतकिरिया। अहावरा चउत्था अंतकिरिया, अप्पकम्मपच्चायाए यावि भवइ, से णं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए संजमबहुले जाव तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवइ, णो तहप्पगारा वेयणा भवइ, तहप्पगारे पुरिसजाए णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा सा मरुदेवी भगवई, चउत्था अंतकिरिया॥ १२५॥

कठिन शब्दार्थ - चत्तारि - चार, **अंतकिरियाओ** - अन्त क्रियाएं-जन्म मरण से छूट कर इस संसार का अन्त करने वाली क्रियाएं, **अप्पकम्म पच्चायाए** - अल्प कर्म वाला-हलुकर्मी जीव परभव-देवलोकादि से चव कर मनुष्य भव में आता है, **संजमबहुले** - संयम बहुल-संयम युक्त, **संवर बहुले** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवर युक्त, **समाहिबहुले** - समाधि युक्त, **लूहे** - रूक्ष, **तीरट्ठी** - तीरार्थी-संसार समुद्र के पार जाने की इच्छा वाला, **उवहाणवं**- उपधानादि तप युक्त, **दुक्खक्खवे** - दुःख का क्षय करने में उद्यम करने वाला, **दीहेणं** - दीर्घ काल तक, **परियाएणं** - प्रव्रज्या का पालन करके, **महाकम्मे** - बहुकर्मी, **चाउरंतचक्कवट्टी** - चारों दिशाओं का अन्त करने वाला चक्रवर्ती, **णिरुद्धेणं** - निरुद्ध अर्थात् अल्प काल तक।

भावार्थ - चार अन्तक्रियाएं यानी जन्ममरण से छूट कर इस संसार का अन्त करने वाली क्रियाएं कही गई हैं यथा - १. कोई जीव विशिष्ट तप और परीषहादि जनित वेदना सहन नहीं करता किन्तु लम्बे समय तक प्रव्रज्या का पालन कर मोक्ष को प्राप्त होता है। २. कोई जीव विशिष्ट तप और वेदना को सहन करके थोड़े समय तक प्रव्रज्या का पालन करके मोक्ष को प्राप्त होता है। ३. कोई जीव विशिष्ट तप और वेदना को सहन करके और लम्बे समय तक प्रव्रज्या का पालन करके मोक्ष को प्राप्त करता है। ४. कोई जीव विशिष्ट तप और वेदना को सहन न करके और थोड़े समय तक ही प्रव्रज्या का पालन करके मोक्ष को प्राप्त करता है । ये चार प्रकार की अन्तक्रियाएं हैं।

चार अन्तक्रियाओं में यह पहली अन्तक्रिया है। यथा - कोई हलुकर्मी जीव देवलोकादि से चव कर मनुष्य भव में आता है फिर वह मुण्डित होकर गृहस्थावास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करता है और वह संयम युक्त, संवरयुक्त, समाधियुक्त, रूक्ष यानी सांसारिक स्नेह रहित, संसार समुद्र के पार जाने की इच्छा वाला उपधानादि तप युक्त, दुःख के कारणभूत कर्मों का क्षय करने में उद्यम करने वाला और शुभध्यान रूपी आभ्यन्तर तप करने वाला होता है। उस पुरुष को तथाप्रकार का यानी अत्यन्त घोर तप नहीं करना पड़ता है और तथाप्रकार की यानी अत्यन्त घोर वेदना भी सहन नहीं करनी पड़ती है। ऐसा पुरुष लम्बे समय तक प्रव्रज्या का पालन करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, सकल कर्मों का क्षय करके शीतलीभूत हो जाता है और सब दुःखों का अन्त कर देता है, जैसे कि समुद्र पर्यन्त चारों दिशाओं का स्वामी चक्रवर्ती राजा भरत महाराज। ये पूर्वभव में हलुकर्मी होकर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए थे। वहाँ से चव कर राजा ऋषभदेव की रानीसुमंगला के गर्भ में आये और समय पूर्ण होने पर चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुए भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष जाने के बाद पांच लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पद का उपभोग किया चक्रवर्ती पद में रहते हुए भी विरक्ति की ओर झुकाव था। एक वक्त स्नान करके वस्त्र आभूषणों से अलंकृत होकर आदर्श भवन (चक्रवर्ती के सब महलों में सर्वोत्कृष्ट जिसमें हीरा पन्ना आदि जड़े हुए थे इस कारण कांच की तरह जिसमें शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ता था) में गये वहाँ रत्न सिंहासन पर बैठे। बैठे-बैठे शरीर और सर्व पदार्थों की अनित्यता का विचार करने लगे (अनित्य भावना भाई भरतजी) सब पदार्थों की अनित्यता का चिंतन करते हुए परिणामों की विशुद्धता के कारण क्षपक श्रेणी पर चढ़कर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। फिर एक लाख पूर्व तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम का पालन किया। घोर तप और घोर वेदना को सहन किये बिना ही मोक्ष को प्राप्त हुए। यह पहली अन्तक्रिया है यानी यह अन्त क्रिया का पहला भेद है।

इसके बाद अब दूसरी अन्तक्रिया का कथन किया जाता है। यथा - कोई बहुत कर्मों वाला जीव परभव से आकर मनुष्य भव में उत्पन्न होता है। वह मुण्डित होकर गृहस्थावास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करता है और वह संयमयुक्त, संवरयुक्त यावत् उपधानादि तप युक्त दुःखों के कारणभूत कर्मों का क्षय करने में उद्यम करने वाला और शुभध्यानादि रूप आभ्यन्तर तप करने वाला होता है। उस पुरुष को तथाप्रकार का घोर तप और तथाप्रकार की घोर वेदना होती है। ऐसा पुरुष अल्प काल तक प्रव्रज्या का पालन करके सिद्ध हो जाता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है। जैसे कि गजसुकुमाल मुनि ने किया था। श्री कृष्ण वासुदेव के छोटे भाई श्री गजसुकुमाल ने बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अङ्गीकार कर उसी दिन श्मशान में कायोत्सर्ग किया था। पूर्वभव के बैर के कारण सोमिल ब्राह्मण ने उनके सिर पर जाज्वल्यमान अंगारे रख दिये जिससे उन्हें अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। उसे समभाव पूर्वक सहन करके, अल्प समय तक प्रव्रज्या का पालन करके मोक्ष में गये। यह दूसरी अन्तक्रिया है।

इसके पश्चात् अब तीसरी अन्तक्रिया का वर्णन किया जाता है। यथा- कोई बहुकर्मी जीव भवान्तर से आकर मनुष्य भव में उत्पन्न होता है। वह मुण्डित होकर गृहस्थावास छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करता है। सारा वर्णन दूसरी अन्तक्रिया के समान जान लेना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बहुत लम्बे समय तक प्रव्रज्या का पालन करके सिद्ध होता है। यावत् सब दुःखों का अन्त करता है। जैसे कि समुद्र पर्यन्त चार दिशाओं का स्वामी चक्रवर्ती राजा सनत्कुमार। सनत्कुमार चक्रवर्ती का रूप अत्यन्त सुन्दर था। एक वक्त प्रथम देवलोक के स्वामी शक्रेन्द्र ने उनके रूप की प्रशंसा की। इस प्रशंसा को सहन न कर सकने के कारण दो देव परीक्षा करने के लिये मनुष्य लोक में आये और सनत्कुमार चक्रवर्ती के पास पहुँचे और उनके रूप को देखकर प्रशंसा करने लगे उस समय सनत्कुमार चक्रवर्ती वस्त्र आदि उतार कर स्नानागार की ओर स्नान करने के लिये जा रहे थे। इसलिये उन्होंने देवों से कहा कि अभी मेरा रूप क्या देख रहे हो? जब मैं स्नानादि करके वस्त्र आभूषणों से अलंकृत होकर सिंहासन पर बैठूँ तब मेरा रूप देखना। तदनुसार वे स्नानादि करके वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित होकर सिंहासन पर बैठे तब उन दोनों देवों को वापिस बुलाया गया। तब वे चक्रवर्ती के रूप को देखकर सिर हिलाकर माथा धुनने लगे तब चक्रवर्ती ने इसका कारण पूछा तब देवों ने कहा कि जैसा रूप हमनें पहले देखा था अब वैसा नहीं रहा है क्योंकि शरीर में व्याधियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। परीक्षा करने पर चक्रवर्ती को भी वैसा ही भान हुआ। तब शरीर आदि की अनित्यता जानकर उन्होंने तुरन्त दीक्षा अङ्गीकार की। शरीर में सात रोग पैदा हो गये यथा-१. कण्डू(तीव्र खुजली) २. ज्वर ३. खांसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. स्वरभङ्ग ५. आँख की पीड़ा ६. श्वास और ७. उदर व्यथा। उनको वे समभाव से सहन करने लगे यद्यपि उनको आमर्ष औषधि, खेलौषधि आदि अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो गयी थी। वे उन लब्धियों के प्रभाव से उन रोगों को मिटा सकते थे परन्तु उन्होंने उन रोगों को समभाव पूर्वक सहन कर और वेदना भोगकर कर्म क्षय करना चाहते थे। इसलिए समभाव पूर्वक सहन करते रहे। वे व्याधियाँ सात सौ वर्ष तक उनके शरीर में रही। एक लाख वर्ष तक प्रवज्या का पालन करके और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष पधार गये।

४. अब इसके पश्चात् चौथी अन्तक्रिया का वर्णन किया जाता है। कोई जीव अल्पकर्मी होकर भवान्तर से आकर मनुष्य भव में जन्म लेता है। वह मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या अङ्गीकार करता है। वह संयम युक्त यावत् कर्मों का क्षय करने वाला और शुभ ध्यान रूपी आभ्यन्तर तप करने वाला होता है। उसको तथाप्रकार का घोर तप नहीं करना होता है और तथाप्रकार की घोर वेदना भी सहन नहीं करनी होती है। इस तरह का पुरुष अल्प काल तक प्रव्रज्या का पालन करके ही सिद्ध हो जाता है यावत् सब दु:खों अन्त करता है। जैसे भगवती मरुदेवी माता। प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव भगवान् की माता मरुदेवी ने न तो तप ही किया और न वेदना ही सहन की। हाथी के होदे पर केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और वहीं आयु समाप्त हो जाने से मोक्ष प्राप्त किया। यह चौथी अन्तक्रिया है ।

विवेचन - तीसरे अध्ययन के तीसरे उद्देशक के अंतिम सूत्र में कर्म के चय आदि का वर्णन किया गया है। इस चौथे स्थानक के प्रथम उद्देशक के प्रथम सूत्र में भी कर्म और उसके कार्यभूत भव का अंत करने की क्रिया बतायी है। इस तरह दोनों सूत्रों का परस्पर संबंध है।

कर्म अथवा कर्म कारणक भव का अन्त करना अंतक्रिया है। यों तो अन्तक्रिया एक ही स्वरूप वाली है। किन्तु सामग्री के भेद से उपरोक्तानुसार चार प्रकार की बताई गयी है।

नोट - टीकाकार तो लिखते हैं कि सनत्कुमार चक्रवर्ती दीक्षा पर्याय का पालन करके तीसरे देवलोक में गये और फिर वहाँ से मनुष्य भव धारण कर फिर मोक्ष जायेंगे। परन्तु टीकाकर का यह लिखना आगम से मेल नहीं खाता है क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवें अध्ययन में दस चक्रवर्तियों का मोक्ष जाना बतलाया है और ठाणाङ्ग सूत्र के दूसरे ठाणे में सुभूम और ब्रह्मदत्त इन दो चक्रवर्तियों का नरक में जाना बतलाया है यदि तीसरे और चौथे चक्रवर्ती देवलोक में गये होते तो दूसरे ठाणे में उनका देवलोक में जाने का वर्णन कर देते। परन्तु वैसा वर्णन आगमों में किया नहीं है। आगम के आधार को लेकर पूज्य श्री जयमल जी म. सा. ने बड़ी साधु वन्दना में जोड़ा है यथा -

वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य, रमणी, ऋद्धि छोड़।
दशे मुक्ति पहुँत्या, कुल ने शोभा चहोड़॥ १९॥

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि सनत्कुमार चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं। अन्तक्रिया शब्द

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का अर्थ भी यही किया गया है कि वे उसी भव में मोक्ष गये हैं उन्हीं महापुरुषों का दृष्टान्त इन चार अन्तक्रियाओं में दिया गया है। यह तीसरी अन्तक्रिया है।

वृक्ष और मनुष्य

चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णए, उण्णए णामेगे पणए, पणए णामेगे उण्णए, पणए णामेगे पणए । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णए तहेव जाव पणए णामेगे पणए । चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णय परिणए, उण्णए णामेगे पणयपरिणए, पणए णामेगे उण्णयपरिणए, पणए णामेगे पणयपरिणए, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णयपरिणए, चउभंगो । चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णयरूवे तहेव चउभंगो, एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णयरूवे। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उण्णए णामेगे उण्णयमणे, उण्णए णामेगे पणयमणे। एवं संकप्पे, पण्णे, दिट्ठी, सीलायारे, ववहारे, परक्कमे, एगे पुरिसजाए पडिवक्खो णत्थि। चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा - उज्जू णामेगे उज्जू, उज्जू णामेगे वंके, चउभंगो। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उज्जू णामेगे, एवं जहा उण्णयपणएहिं गमो तहा उज्जू वंकेहिं वि भाणियव्वो, जाव परक्कमे॥ १२६ ॥

भावार्थ - चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं। यथा - कोई वृक्ष द्रव्य से उन्नत और भाव से भी उन्नत जैसे चन्दन आदि, कोई द्रव्य से उन्नत किन्तु जाति आदि से हीन जैसे नीम आदि, कोई द्रव्य से हीन किन्तु जाति आदि से उन्नत जैसे अशोक वृक्ष आदि, कोई द्रव्य से हीन और जाति आदि से भी हीन जैसे नीम बेल आदि। अथवा यह चौभङ्गी काल की अपेक्षा से भी जाननी चाहिए। यथा - पहले उन्नत और पीछे भी उन्नत, पहले उन्नत और पीछे हीन, पहले हीन और पीछे उन्नत, पहले हीन और पीछे भी हीन । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई जाति कुल आदि से उन्नत और भाव से लोकोत्तर ज्ञान आदि से उन्नत जैसे साधु श्रावक आदि। कोई जाति आदि से उन्नत और ज्ञान विहार आदि से हीन, जैसे शैलक राजर्षि तथा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के समान। कोई जाति आदि से हीन किन्तु भाव से उन्नत जैसे मेतार्य मुनि तथा हरिकेशी मुनि के समान और कोई जाति आदि से हीन और भाव से भी हीन, यथा - उदायी राजा को मारने वाला वेषधारी साधु विनयरत्न भाट तथा काल शौकरिक कसाई। रस की अपेक्षा चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं। यथा- कोई वृक्ष द्रव्य से उन्नत और रस से भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्नत आम्र आदि, कोई द्रव्य से उन्नत किन्तु रस से हीन जैसे नीम आदि, कोई द्रव्य से हीन किन्तु रस से उन्नत द्राक्षा आदि, कोई द्रव्य से हीन और रस से भी हीन जैसे आक, थूहर आदि। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई पुरुष जाति आदि से उन्नत और दीक्षा लेकर ज्ञानादि सम्पन्न बने सो राजा आदि। वृक्ष की तरह पुरुष की भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए। यथा - जाति आदि उन्नत किन्तु भाव से हीन नीच कर्म करने वाला राजा आदि । जाति आदि से हीन किन्तु भाव से उत्तम हरिकेशी मुनि आदि। जाति आदि से भी हीन और भाव से भी हीन म्लेच्छ अनार्य पुरुष आदि। रूप की अपेक्षा चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं। यथा - कोई द्रव्य से उन्नत और रूप से भी उन्नत आम्र आदि। कोई द्रव्य से उन्नत किन्तु रूप से हीन ताड़ आदि। कोई द्रव्य से हीन किन्तु रूप से उन्नत गुलाब आदि कोई द्रव्य से हीन और रूप से भी हीन केर आदि। इस तरह चौभङ्गी होती है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। कोई जाति आदि से उन्नत और मन से भी उन्नत, कोई जाति आदि से उन्नत किन्तु मन से हीन, कोई जाति आदि से हीन किन्तु मन से उन्नत और कोई जाति से भी हीन और मन से भी हीन। इसी प्रकार संकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, शीलाचार व्यवहार, पराक्रम। मन से लेकर पराक्रम तक सात बातों की चौभङ्गी। एक पुरुष की अपेक्षा ही कहनी चाहिए । इसके दृष्टान्त वृक्ष में ये सात बातें घटित नहीं होती हैं क्योंकि मन, प्रज्ञा आदि पुरुष में ही पाये जाते हैं, वृक्ष में नहीं पाये जाते हैं।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं। यथा - कोई द्रव्य से सरल और भाव से भी सरल, उचित फल देने वाला, कोई द्रव्य से सरल किन्तु भाव से वक्र, विपरीत फल देने वाला। कोई द्रव्य से वक्र किन्तु भाव से सरल और कोई द्रव्य से भी वक्र और भाव से भी वक्र । पहले सरल और पीछे भी सरल, इस प्रकार काल से भी चार भंग हो सकते हैं। यह वृक्ष की अपेक्षा चौभङ्गी है। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई पुरुष बाहर से यानी शरीर और गति आदि से सरल और माया रहित होने से भीतर भी सरल। कोई बाहर से सरल किन्तु भीतर से वक्र । कोई बाहर से वक्र किन्तु भीतर से सरल और कोई बाहर से भी वक्र और भीतर से वक्र। जैसे उन्नत प्रणत यानी ऊँच और हीन का अभिलापक कहा गया है। वैसे ही ऋजुवक्र यानी सरल और वक्र का भी पराक्रम तक अभिलापक कह देना चाहिए। ऋजु, ऋजुपरिणत, ऋजुरूप ये तीन वृक्ष की अपेक्षा और तीन ही पुरुष की अपेक्षा, इस तरह छह चौभङ्गी दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक रूप से कह देनी चाहिए और मन, संकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, शीलाचार, व्यवहार और पराक्रम इन सात की अपेक्षा सात चौभङ्गी केवल पुरुष में ही कहनी चाहिए क्योंकि मन आदि पुरुष में ही पाये जाते हैं, वृक्ष में नहीं पाये जाते हैं। इसलिए इन सात की अपेक्षा वृक्ष का दृष्टान्त नहीं कहना चाहिए।

भिक्षु-भाषा, वस्त्र और मनुष्य

पडिमा पडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति चत्तारि भासाओ भासित्तए तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जायणी, पुच्छणी, अणुण्णवणी, पुट्ठस्स वागरणी। चत्तारि भासाजाया पण्णत्ता तंजहा - सच्चमेगं भासजायं, बीयं मोसं, तइयं सच्चमोसं, चउत्थं असच्चमोसं। चत्तारि वत्था पण्णत्ता तंजहा - सुद्धे णामं एगे सुद्धे, सुद्धे णामं एगे असुद्धे, असुद्धे णामं एगे सुद्धे, असुद्धे णामं एगे असुद्धे। एवामेव चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - सुद्धे णामं एगे सुद्धे चउभंगो, एवं परिणय, रूवे, वत्था, सपडिवक्खा। चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - सुद्धे णामं एगे सुद्धमणे चउभंगो, एवं संकप्पे जाव परक्कमे॥ १२७॥

कठिन शब्दार्थ - पडिमा - प्रतिमा-अभिग्रह विशेष, **पडिवण्णस्स** - धारण करने वाले का, **भासित्तए** - बोलना, **जायणी** - याचनी, **पुच्छणी** - पृच्छनी, **अणुण्णवणी** - अनुज्ञापनी, **पुट्ठस्स वागरणी** - पूछे हुए प्रश्न का उत्तर देने वाली, **सुद्धे** - शुद्ध, **असुद्धे** - अशुद्ध, **परिणयरूवे** - परिणत रूप, **सपडिवक्खा** - सप्रतिपक्ष-दृष्टान्त भूत।

भावार्थ - पडिमाधारी साधु को चार भाषाएं बोलना कल्पता है। यथा - याचनी यानी गृहस्थ के घर से आहार आदि मांगना, पृच्छनी यानी गुरु महाराज से सूत्रार्थ पूछना, अथवा गृहस्थ आदि से मार्ग आदि के विषय में पूछना, अनुज्ञापनी यानी अवग्रह अर्थात् स्थान आदि की आज्ञा लेना। पूछे हुए प्रश्न का उत्तर देना। चार प्रकार की भाषा कही गई है। यथा - पहली सत्य भाषा, दूसरी मृषा भाषा तीसरी सत्यमृषा और चौथी असत्यामृषा यानी व्यवहार भाषा। चार प्रकार के वस्त्र कहे गये हैं। यथा - कोई एक वस्त्र शुद्ध तन्तुओं से बना हुआ और मल रहित शुद्ध। कोई एक वस्त्र शुद्ध तन्तुओं से बना हुआ किन्तु अशुद्ध यानी मलिन, कोई एक वस्त्र अशुद्ध तन्तुओं से बना हुआ किन्तु शुद्ध यानी मलरहित, कोई एक वस्त्र अशुद्ध तन्तुओं से बना हुआ और अशुद्ध यानी मल सहित अथवा काल की अपेक्षा से भी इस सूत्र की व्याख्या की जा सकती है। यथा - कोई वस्त्र पहले भी शुद्ध और पीछे भी शुद्ध, कोई वस्त्र पहले शुद्ध किन्तु पीछे अशुद्ध, कोई वस्त्र पहले अशुद्ध किन्तु पीछे शुद्ध, कोई वस्त्र पहले भी अशुद्ध और पीछे भी अशुद्ध। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई पुरुष जाति आदि से शुद्ध और भाव से भी शुद्ध, कोई पुरुष जाति आदि से शुद्ध और भाव से अशुद्ध, कोई पुरुष जाति आदि से अशुद्ध किन्तु भाव से शुद्ध, कोई पुरुष जाति आदि से भी अशुद्ध और भाव से भी अशुद्ध। इस प्रकार पुरुष की चौभङ्गी बनती है। इसी प्रकार शुद्ध परिणत और शुद्ध रूप इन दो की सप्रतिपक्ष यानी दृष्टान्त भूत वस्त्र और दार्ष्टान्तिक पुरुष की चार चौभङ्गी बन जाती है। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा-कोई पुरुष जाति आदि से शुद्ध और शुद्ध मन वाला, जाति आदि से शुद्ध किन्तु अशुद्ध मन वाला, जाति आदि से अशुद्ध किन्तु शुद्ध मन वाला और जाति आदि से भी अशुद्ध और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अशुद्ध मन वाला। इस प्रकार चौभङ्गी बनती है। इसी प्रकार संकल्प से लेकर पराक्रम तक यानी शुद्ध संकल्प, शुद्ध प्रज्ञा, शुद्ध दृष्टि, शुद्ध शीलाचार और शुद्ध व्यवहार इनकी भी पुरुष की अपेक्षा चौभङ्गियाँ कह देनी चाहिए किन्तु वस्त्र की अपेक्षा ये चौभङ्गियाँ नहीं बनती हैं क्योंकि वस्त्र में मन, संकल्प आदि नहीं पाये जाते हैं ।

विवेचन - प्रतिमाधारी साधु को चार प्रकार की भाषा बोलना कल्पता है - १. याचनी २. पृच्छनी ३. अनुज्ञापनी और ४. व्याकरणी।

भाषा के चार भेद हैं - १. सत्य भाषा २. असत्य भाषा ३. सत्यामृषा भाषा (मिश्र) और ४. असत्यामृषा अर्थात् असत्या अमृषा भाषा (व्यवहार भाषा)।

१. सत्य भाषा - विद्यमान जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप कहना सत्य भाषा है। अथवा सन्त अर्थात् मुनियों के लिए हितकारी निरवद्य भाषा सत्य भाषा कही जाती है।

२. असत्य भाषा - जो पदार्थ जिस स्वरूप में नहीं है। उन्हें उस स्वरूप से कहना असत्य भाषा है। अथवा सन्तों के लिए अहितकारी सावद्य भाषा असत्य भाषा कही जाती है।

३. सत्यामृषा भाषा (मिश्र भाषा)-जो भाषा सत्य है और मृषा भी है। वह सत्यामृषा भाषा है।

४. असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा - जो भाषा न सत्य है और न असत्य है। ऐसी आमन्त्रणा आज्ञापना आदि की व्यवहार भाषा असत्यामृषा भाषा कही जाती है। असत्यामृषा भाषा का दूसरा नाम व्यवहार भाषा है।

पुत्र, वस्त्र, कोरक

चत्तारि सुया पण्णत्ता तंजहा - अइजाए, अणुजाए, अवजाए, कुलिंगाले। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सच्चे णामं एगे सच्चे, सच्चे णामं एगे असच्चे, एवं परिणए जाव परक्कमे। चत्तारि वत्था पण्णत्ता तंजहा - सुई णामं एगे सुई, सुई णामं एगे असुई, चउभंगो। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सुई णामं एगे सुई, चउभंगो, एवं जहेव सुद्धेणं वत्थेणं भणियं तहेव सुइणा वि जाव परक्कमे । चत्तारि कोरवा पण्णत्ता तंजहा - अंबपलंबकोरवे तालपलंबकोरवे वल्लिपलंबकोरवे मेंढविसाणकोरवे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अंबपलंबकोरव समाणे, तालपलंबकोरव समाणे, वल्लिपलंबकोरव समाणे, मेंढविसाणकोरव समाणे॥ १२८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सुया** - सुत अर्थात् पुत्र, **अइजाए** - अतिजात, **अणुजाए** - अनुजात, **अवजाए**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपजात, **कुलिंगाले** - कुलांगार, **सच्चे** - सच्चा, **सुई** - शुचि पवित्र, **असुई** - अपवित्र, **कोरवा** - कोरक-कूंपल, **अंबपलंब कोरवे** - आम्र के फल की कूंपल, **तालपलंबकोरवे** - ताड के फल की कूंपल, **वल्लिपलंबकोरवे** - बेले के फल की कूंपल, **मेंढविसाणकोरवे** - मींढे के सींग के आकार वाले फल देने वाली वनस्पति की कूंपल।

भावार्थ - चार प्रकार के पुत्र कहे गये हैं। यथा - अतिजात अर्थात् जो पिता की अपेक्षा समृद्धि में अधिक हो जैसे भरत चक्रवर्ती। अनुजात अर्थात् पिता के समान समृद्धि वाला, जैसे आदित्य यश का पुत्र महायश अथवा श्रेणिक का पुत्र कोणिक। अपजात अर्थात् पिता की समृद्धि से कुछ कम समृद्धि वाला जैसे भरत चक्रवर्ती का पुत्र आदित्य यश। कुलाङ्गार यानी कुल के लिए अङ्गार के समान, जैसे कण्डरीक, दुर्योधन आदि। सामान्यतया सुत शब्द का अर्थ पुत्र होता है किन्तु शिष्य अर्थ में भी सुत शब्द का प्रयोग होता है, इसलिए शिष्य की अपेक्षा यह चौभङ्गी इस प्रकार समझनी चाहिए-अतिजात शिष्य जैसे - सिंहगिरि की अपेक्षा वैरस्वामी। अनुजात शिष्य, जैसे - शय्यंभव स्वामी की अपेक्षा यशोभद्र स्वामी। अपजात शिष्य जैसे भद्रबाहुस्वामी की अपेक्षा स्थूल भद्र स्वामी। कुलाङ्गार शिष्य जैसे उदायी राजा को मारने वाला कपट वेषधारी साधु विनयरत्न भाट या कूलवालक नदी के प्रवाह को फेर देने वाला साधु।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं - यथा कोई एक पुरुष सच्चा यानी यथावत् वस्तु का कथन करने वाला और सच्चा यानी की हुई प्रतिज्ञा का यथार्थ रूप से पालन करने वाला अर्थात् द्रव्य से सच्चा और भाव से भी सच्चा। कोई एक पुरुष सच्चा यानी यथार्थ वस्तु का कथन करने वाला किन्तु असत्य अर्थात् जैसा कहता है उस तरह से प्रतिज्ञा का पालन न करने वाला यानी द्रव्य से सत्य किन्तु भाव से असत्य। कोई पुरुष द्रव्य से असत्य किन्तु भाव से सत्य। कोई पुरुष द्रव्य से असत्य और भाव से भी असत्य अथवा काल की अपेक्षा भी यह चौभङ्गी कही जा सकती है। यथा - कोई पुरुष पहले भी सच्चा और पीछे भी सच्चा। कोई पुरुष पहले सच्चा किन्तु पीछे सच्चा नहीं। कोई पहले सच्चा नहीं किन्तु पीछे सच्चा और कोई पहले भी सच्चा नहीं और पीछे भी सच्चा नहीं। इसी प्रकार सत्यपरिणत, सत्य रूप, सत्य मन, सत्य संकल्प, सत्य प्रज्ञा, सत्य दृष्टि, सत्य शीलाचार, सत्य व्यवहार यावत् सत्य पराक्रम इन सब की प्रत्येक की चौभङ्गी कह देनी चाहिये।

चार प्रकार के वस्त्र कहे गये हैं यथा - कोई एक वस्त्र द्रव्य से भी पवित्र और संस्कार से भी पवित्र। कोई एक वस्त्र द्रव्य से पवित्र किन्तु संस्कार से अपवित्र। कोई वस्त्र द्रव्य से अपवित्र किन्तु संस्कार से पवित्र और कोई वस्त्र द्रव्य से भी अपवित्र और संस्कार से भी अपवित्र। अथवा कोई एक वस्त्र पहले भी पवित्र और पीछे भी पवित्र, इस प्रकार काल की अपेक्षा भी यह चौभङ्गी जाननी चाहिए। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक पुरुष शुचि यानी शरीर से पवित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और स्वभाव से भी पवित्र। कोई एक पुरुष शरीर से पवित्र किन्तु स्वभाव से अपवित्र। कोई पुरुष शरीर से अपवित्र किन्तु स्वभाव से पवित्र और कोई पुरुष शरीर से भी अपवित्र और स्वभाव से भी अपवित्र। अथवा कोई पुरुष पहले पवित्र और पीछे भी पवित्र । इस तरह काल की अपेक्षा भी चौभङ्गी बनती है। जिस प्रकार वस्त्र के साथ शुद्ध विशेषण लगा कर यानी शुद्ध वस्त्र की चौभङ्गी कही है। उसी प्रकार शुचि शब्द लगा कर पराक्रम तक सब चौभङ्गियाँ कह देनी चाहिएं। शुचि परिणत और शुचि रूप इन दो में दृष्टान्त वस्त्र और दार्ष्टान्तिक पुरुष की अपेक्षा चौभङ्गी कहनी चाहिए। शुचि मन, शुचि संकल्प, शुचि प्रज्ञा, शुचि दृष्टि, शुचि शीलाचार, शुचि व्यवहार और शुचि पराक्रम इन सात में सिर्फ पुरुष की अपेक्षा चौभङ्गी कहनी चाहिए । क्योंकि ये सात बातें पुरुष में ही पाई जाती हैं वस्त्र में नहीं। चार प्रकार के कोरक यानी कूंपलें-मंजरी कही गई हैं। यथा – आम्र के फल की कूंपल, ताड़ के फल की कूंपल, बेल के फल की कूंपल और मींढे के सींग के आकार वाले फल देने वाली वनस्पति की कूंपल। इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं।

यथा – आम्रफल की मञ्जरी के समान यानी जिसकी सेवा करने से उचित समय पर फल मिले। ताड़ फल की मंजरी के समान यानी जिसकी सेवा करने से बहुत समय के पश्चात् कष्ट से फल मिले। बेलफल की मंजरी के समान यानी जिसकी सेवा करने से थोड़े समय में ही सुखपूर्वक फल मिले और मींढश्रृंग नामक वनस्पति यानी आउलि नामक वनस्पति की मंजरी के समान अर्थात् जिस पुरुष की सेवा करने पर भी वह सिर्फ मीठे वचन बोले किन्तु सेवक को कुछ भी फल न दे, उसका कुछ भी उपकार न करे ।

आउलि नामक एक वनस्पति होती है जिसका फल मींढे (भेड़) के सींग के समान होता है। उसका रंग सोने के समान पीला होता है अतएव दिखने में वह बहुत सुन्दर होता है किन्तु वह अखाद्य (खाने के अयोग्य) होता है।

विवेचन – लोक में बहुत प्रकार की कूंपलें होती हैं किन्तु यहाँ चौथा ठाणा होने से चार प्रकार की कूंपलों का कथन किया गया है और उन कूंपलों के समान चार प्रकार के पुरुषों का कथन किया गया हैं।

घुण और भिक्षु

चत्तारि घुणा पण्णत्ता तंजहा - तयक्खाए, छल्लिक्खाए, कट्ठक्खाए, सारक्खाए। एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता तंजहा - तयक्खायसमाणे छल्लिक्खायसमाणे, कट्ठक्खायसमाणे सारक्खायसमाणे, तयक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते, सारक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स तयक्खायसमाणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तवे पण्णत्ते, छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते, कट्ठक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स छल्लिक्खाय समाणे तवे पण्णत्ते॥ १२९॥

कठिन शब्दार्थ - घुणा - घुण-लकडी को खाने वाले कीड़े, **तयक्खाए** - त्वचा-बाहरी वल्कल को खाने वाला, **छल्लिक्खाए** - भीतर की छाल को खाने वाला, **कट्ठक्खाए** - लकडी को खाने वाला, **सारक्खाए** - सार यानी काष्ठ के मध्य भाग को खाने वाला, **भिक्खागा** - भिक्षाचर ।

भावार्थ - चार प्रकार के घुण यानी लकड़ी को खाने वाले कीड़े कहे गये हैं। यथा - त्वचा यानी बाहरी वल्कल को खाने वाला, भीतर की छाल को खाने वाला, काष्ठ को खाने वाला और सार यानी काष्ठ के मध्यभाग को खाने वाला। घुण के समान चार भिक्षाचर (साधु) कहे गये हैं। यथा - बाहरी छाल खाने वाले घुण के समान यानी अल्प तथा असार भोजन करने वाला आयंबिल आदि करने वाला अत्यन्त संतोषी। भीतर की छाल को खाने वाले घुण के समान यानी घृतादि के लेप से रहित आहार करने वाला। काष्ठ खाने वाले घुण के समान यानी विगय रहित आहार करने वाला और काठ के सार भाग को खाने वाले घुण के समान यानी सब विगय सहित आहार करने वाला। बाहरी छाल खाने वाले घुण के समान अल्प और असार आहार करने वाले यानी आयंबिल आदि करने वाले साधु का तप सार भाग खाने वाले घुण के समान कहा गया है। जैसे सार भाग खाने वाले घुण का मुख अति तीक्ष्ण होने से वह काष्ठ को भेद कर सार भाग खाता है उसी तरह आयंबिल आदि करने वाला अन्त प्रान्ताहारी साधु कर्मों को भेदन करने में समर्थ होता है। उसका तप अति प्रधान है। काष्ठ के सार भाग को खाने वाले घुण के समान सब विगय सहित आहार करने वाले साधु का तप बाहरी छाल खाने वाले घुण के समान कहा गया है यानी जैसे बाहरी छाल खाने वाले घुण का मुख अतितीक्ष्ण न होने से वह काठ को भेद कर उसका सार भाग खाने में असमर्थ होता है उसी प्रकार सब विगयसहित आहार करने वाले साधु का तप कर्मों को भेदन करने में असमर्थ होता है। अतएव इस साधु का तप अप्रधानतर यानी अतिजघन्य तप कहा गया है। भीतरी छाल खाने वाले घुण के समान लेप रहित आहार करने वाले साधु का तप काष्ठ खाने वाले घुण के समान कहा गया है अर्थात् इसका तप न तो अति तीव्र है और न अति मन्द है अतएव इसका तप प्रधान है। काष्ठ को खाने वाले घुण के समान विगय रहित आहार करने वाले साधु का तप भीतरी छाल को खाने वाले घुण के समान कहा गया है। इसका तप अप्रधान है। प्रथम घुण के समान असार एवं अन्तप्रान्त आहार करने वाले मुनि का तप प्रधानतर, दूसरे घुण के समान लेप रहित आहार करने वाले मुनि का तप प्रधान, तीसरे घुण के समान विगय रहित आहार करने वाले मुनि का तप अप्रधान और चौथे घुण के समान सब विगय सहित आहार करने वाले मुनि का तप अप्रधानतर यानी सर्वनिकृष्ट कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बादर वनस्पति भेद

चउव्विहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता तंजहा - अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया ।

नैरयिक की मनुष्य लोक में आगमनीच्छा

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोयंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए, अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोयंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोयंसि णिरय पालेहिं भुज्जो भुज्जो अहिट्ठिज्जमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। अहुणोववण्णे णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। अहुणोववण्णे णेरइए णिरयाउयंसि कम्मंसि अक्खीणंसि जाव णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए जाव णो चेव णं संचाएइ।

भिक्षुणी और संघाटिका

कप्पंति णिग्गंथीणं चत्तारि संघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा तंजहा - एगं दुहत्थ वित्थारं, दो तिहत्थ वित्थारा, एगं चउहत्थ वित्थारं॥ १३०॥

कठिन शब्दार्थ - तणवणस्सइकाइया - तृण वनस्पतिकायिक, **अग्गबीया** - अग्रबीज-जिसके अग्रभाग में बीज हो, **मूलबीया** - मूलबीज, **पोरबीया** - पर्व (गांठ)बीज, **खंधबीया** - स्कंधबीज, **णिरयलोयंसि** - नरक लोक में, **अहुणोववण्णे** - तत्काल उत्पन्न हुआ, **समुब्भूयं-सम्मूहभूयं-समहभूयं-सुमहभूयं** - अति प्रबल रूप से उत्पन्न हुई या एकदम सामने आई हुई अथवा अत्यंत महान् अथवा सुमहान्, **णिरयपालेहिं** - नरकपाल-परमाधर्मिक भवनपति देवों द्वारा, **भुज्जो भुज्जो** - बार बार, **अहिट्ठिज्जमाणे** - पीडित किया जाता हुआ, **णिरयवेयणिज्जंसि** - नरक में वेदने योग्य (अत्यंत अशुभ नाम कर्म आदि का), **अक्खीणंसि** - क्षय न होने से, **अवेइयंसि** - उसको न वेदने से, **अणिज्जिण्णंसि** - निर्जरा न होने से, **णिग्गंथीणं** - साध्वियों को, **संघाडीओ** - संघाटिका-साडियाँ-ओढने की पछेवडियाँ, **धारित्तए** - धारण करना, **परिहरित्तए** - पहनना, **दुहत्थ वित्थारं** - दो हाथ विस्तार वाली, **तिहत्थ वित्थारा** - तीन हाथ विस्तार वाली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - चार प्रकार की तृण वनस्पतिकाय कही गई है यथा - जिसके अग्रभाग में बीज होते हैं वह अग्रबीज, जैसे कोरण्टक आदि। जिसके मूल भाग में बीज होते हैं वह मूलबीज जैसे उत्पल कन्द आदि। जिसकी पर्व यानी गांठ में बीज हो जैसे ईख आदि। जिसके स्कन्ध भाग में यानी धड़ में बीज हो वह स्कन्ध बीज जैसे सल्लकी आदि ।

नरक में तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक शीघ्र मनुष्य लोक में आने की इच्छा करता है किन्तु चार कारणों से शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता है। यथा - नरक में अति प्रबल रूप से उत्पन्न हुई अथवा एक दम सामने आई हुई अथवा अत्यन्त महान् वेदना को वेदता हुआ तत्काल उत्पन्न हुआ वह नैरयिक शीघ्र मनुष्य लोक में आने की इच्छा करता है किन्तु आने में समर्थ नहीं होता है। नरक में नरकपाल यानी अम्ब अम्बरीष आदि भवनपति जाति के परमाधार्मिक देवों द्वारा बारम्बार पीड़ित किया जाता हुआ तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है किन्तु आने में समर्थ नहीं होता है। नरक में तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक मनुष्य लोक में आने की इच्छा करता है किन्तु नरक में वेदने योग्य अत्यन्त अशुभ नाम कर्म आदि और असातावेदनीय कर्म का क्षय न होने से उसको न वेदने से और उसकी निर्जरा न होने से नैरयिक मनुष्य लोक में आने में समर्थ नहीं होता है। नरक में तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है किन्तु नरक की जो आयु बन्धी है उस आयुकर्म का क्षय न होने से आने में समर्थ नहीं होता है। इन चार कारणों से तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक मनुष्य लोक में आने में समर्थ नहीं होता है।

साध्वियों को चार साड़ियाँ यानी ओढने की पछेवड़ियाँ धारण करना(पास में रखना) और पहनना कल्पता है। यथा - दो हाथ विस्तार वाली एक, तीन हाथ विस्तार वाली दो और चार हाथ विस्तार वाली एक। उनमें से दो हाथ विस्तार वाली को उपाश्रय में ओढे, तीन हाथ की दो में से एक को गोचरी जाते समय ओढे और एक को बाहर स्थण्डिल भूमि जाते समय ओढे। चार हाथ विस्तार वाली को समवसरण यानी व्याख्यान के समय ओढे ।

विवेचन - वनस्पति ही जिनका काय (शरीर) है वे वनस्पतिकायिक कहलाते हैं। तृण जाति की वनस्पति को तृण वनस्पतिकाय कहते हैं। तृण वनस्पतिकाय चार प्रकार की कही है - **१. अग्रबीज** - ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है जैसे - कोरंट का वृक्ष **२. मूल बीज** - जिसका बीज मूल भाग में होता है जैसे - कंद आदि **३. पर्वबीज** - जिस का बीज पर्व (गांठ) में होता है जैसे गन्ना आदि **४ स्कन्ध बीज** - जिसका बीज स्कन्ध में होता है जैसे बड़ पीपल आदि।

यहां चौथा स्थानक होने से चार प्रकार की तृण वनस्पतिकाय बतलाई गई है किन्तु बीज रूह, सम्मूर्च्छिम आदि और भी वनस्पति के भेद हैं।

चार कारणों से नरक में तत्काल उत्पन्न हुआ नैरायिक जीव मनुष्य लोक में आने की इच्छा करता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है परन्तु आने में समर्थ नहीं होता है। वे चार कारण इस प्रकार हैं - १. नरक में अत्यंत प्रबल रूप से उत्पन्न हुई वेदना के कारण २. नरकपालों - परमाधार्मिक देवों द्वारा बारम्बार पीड़ित किये जाने के कारण ३. नरक में वेदने योग्य कर्मों का क्षय नहीं होने से और ४. नरकायु पूर्ण नहीं होने के कारण नैरयिक मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है परन्तु आने में समर्थ नहीं होता है।

नैरयिक के प्रकरण में मूल पाठ में '**समुब्भूयं**' शब्द आया है। टीकाकार ने इस शब्द की संस्कृत छाया चार तरह से की है और अर्थ भी चार किया हैं यथा - **१. समुद्भूताम्** - एक साथ उत्पन्न वेदना **२. सम्मुखभूताम्** - सामने आयी हुई वेदना **३. समहद्भूताम्** - महानता से युक्त वेदना **४. समुद्भूताम्**- प्रबलता से युक्त महान् वेदना को देखकर नैरयिक घबरा जाता है और वापिस मनुष्य लोक में आना चाहता है परन्तु आ नहीं सकता है। नैरयिकों के जन्म के समय तथा जीवन पर्यन्त और मरण काल ये तीनों काल महा भयङ्कर वेदना से युक्त होते हैं।

ध्यान-विश्लेषण

चत्तारि झाणा पण्णत्ता तंजहा - अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे। अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - अमणुण्णसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ। मणुण्ण संपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओग-सइसमण्णागए यावि भवइ। आयंकसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ। परिजुसियकामभोग संपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ । अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता तंजहा - कंदणया, सोयणया, तिप्पणया, परिदेवणया ।

रोद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - हिंसाणुबंधि, मोसाणुबंधि, तेणाणुबंधि, सारक्खणाणुबंधि। रोद्दस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता तंजहा - ओसण्णदोसे, बहुदोसे, अण्णाणदोसे, आमरणंतदोसे ।

धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते तंजहा - आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, संठाणविजए। धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता तंजहा- आणारुई, णिसग्गरुई, सुत्तरुई, ओगाढरुई। धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता तंजहा - वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा । धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते तंजहा - पुहुत्त वितक्के सवियारी, एगत्तवितक्के अवियारी, सुहुमकिरिए अणियट्टी, समुच्छिण्णकिरिए अप्पडिवाई । सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता तंजहा - अव्वहे, असम्मोहे, विवेगे, विउस्सग्गे। सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता तंजहा - खंती, मुत्ती, मद्दवे, अज्जवे । सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - अणंतवत्तियाणुप्पेहा, विप्परिणामाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा॥ १३१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **झाणा** - ध्यान, **अट्टे** - आर्त्त, **रोद्दे** - रौद्र, **धम्मे** - धर्म, **सुक्के** - शुक्ल, **अमणुण्णसंपओगसंपउत्ते** - अमनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर, **विप्पओगसइसमण्णागए** - वियोग की चिन्ता करना, **मणुण्णसंपओगसंपउत्ते** - मनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर, **आयंकसंपओगसंपउत्ते** - रोग आतंक के होने पर, **परिजुसिय कामभोग संपओगसंपउत्ते** - सेवन किये हुए कामभोगों की प्राप्ति होने पर, **लक्खणा** - लक्षण, **कंदणया** - क्रन्दनता, **सोयणया** - शोचनता, **तिप्पणया** - तेपनता, **परिदेवणया** - परिदेवनता, **हिंसाणुबंधि** - हिंसानुबंधी, **मोसाणुबंधि** - मृषानुबन्धी, **तेणाणुबंधि** - स्तेनानुबन्धी, **सारक्खणाणुबंधि** - संरक्षणानुबन्धी, **ओसण्णदोसे** - ओसन्न दोष, **बहुदोसे** - बहुल दोष, **अण्णाणदोसे** - अज्ञान दोष, **आमरणंतदोसे** - आमरणान्तदोष, **चउप्पडोयारे** - चतुष्पदावतार-चार पदों में समावेश होना, **आणाविजए** - आज्ञा विजय-आज्ञा विचय, **अवायविजए** - अपाय विजय-अपाय विचय, **विवागविजय** - विपाक विजय-विपाक विचय, **आणारुई** - आज्ञा रुचि, **णिसग्गरुई** - निसर्ग रुचि, **सुत्तरुई** - सूत्र रुचि, **ओगाढरुई** - अवगाढ रुचि, **आलंबणा** - आलम्बन, **वायणा** - वाचना, **पडिपुच्छणया** - प्रति पृच्छना, **परियट्टणा** - परिवर्तना, **अणुप्पेहा** - अनुप्रेक्षा, **एगाणुप्पेहा** - एकानुप्रेक्षा, **अणिच्चाणुप्पेहा** - अनित्यानुप्रेक्षा, **असरणाणुप्पेहा** - अशरणानुप्रेक्षा, **संसाराणुप्पेहा** - संसारानुप्रेक्षा, **पुहुत्तवितक्के सवियारी**- पृथक् वितर्क सविचारी, **एगत्तवितक्के अवियारी** - एकत्व वितर्क अविचारी, **सुहुम किरिए अणियट्टी**- सूक्ष्मक्रिया अनिवर्ती, **समुच्छिण्ण किरिए अप्पडिवाई** - समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती, **अव्वहे** - अव्यथ, **असम्मोहे** - असम्मोह, **विवेगे** - विवेक, **विउस्सग्गे** - व्युत्सर्ग, **खंती** - क्षान्ति-क्षमा, **मुत्ती** - मुक्ति-निर्ममत्व, निर्लोभता, **मद्दवे** - मार्दव-मृदुता, **अज्जवे** - आर्जव-सरलता, **अणंतवत्तियाणुप्पेहा** - अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा, **विप्परिणामाणुप्पेहा** - विपरिणामानुप्रेक्षा, **असुभाणुप्पेहा** - अशुभानुप्रेक्षा, **अवायाणुप्पेहा** - अपायानुप्रेक्षा।

भावार्थ - चार प्रकार के ध्यान कहे गये हैं यथा - आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। आर्त्तध्यान चार प्रकार का कहा गया है यथा - अमनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर उसके वियोग की चिन्ता करना। मनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर उसका वियोग न हो इस प्रकार की चिन्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना। शूल, सिरदर्द आदि रोग आतङ्क के होने पर उसका वियोग कब हो इस प्रकार चिन्ता करना। सेवन किये हुए ◎ कामभोगों की प्राप्ति होने पर उनका कभी भी वियोग न हो शरीर में रोग आने से मेरे कामभोग छूट न जाए इस प्रकार की चिन्ता करना ❖।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं यथा - क्रन्दनता यानी उच्च स्वर से रोना और चिल्लाना, शोचनता यानी आंखों में आंसू लाकर दीनभाव धारण करना, तेपनता यानी आंसू गिराना और परिदेवनता यानी बारबार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना।

रौद्रध्यान चार प्रकार का कहा गया है यथा - हिंसानुबन्धी यानी प्राणियों को चाबुक आदि से मारना या हिंसाकारी व्यापारों को करने का चिन्तन करना, मृषानुबन्धी यानी झूठ बोलने का विचार करना और झूठ बोल कर दूसरों को ठगने की प्रवृत्ति करने का विचार करना, स्तेनानुबन्धी यानी चोरी करना एवं दूसरों के द्रव्य को चुराने का चिन्तन करना, संरक्षणानुबन्धी यानी अपने धन की रक्षा के लिए दूसरों की घात विचारना।

रौद्रध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं यथा - ओसन्नदोष अर्थात् हिंसादि पापों में से किसी एक में बहुलतापूर्वक प्रवृत्ति करना, बहुलदोष यानी हिंसा आदि सभी दोषों में प्रवृत्ति करना अज्ञान दोष यानी अज्ञानता के कारण हिंसा आदि दोषों में धर्मबुद्धि से प्रवृत्ति करना। आमरणान्तदोष यानी मरणपर्यन्त हिंसादि क्रूर कार्यों का पश्चात्ताप न करना एवं हिंसा आदि पापों में प्रवृत्ति करते रहना आमरणान्त दोष है। जैसे कालसौकरिक कसाई ।

चतुष्पदावतार अर्थात् स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा इन चार बातों से जिसका विचार किया गया है ऐसा धर्मध्यान चार प्रकार का कहा गया है यथा - आज्ञाविजय अथवा आज्ञाविचय यानी 'जिन भगवान् की फरमाई हुई आज्ञा और तत्त्व सत्य हैं' ऐसा चिन्तन करना। अपायविजय अथवा अपायविचय यानी राग द्वेष से जीवों को इहलौकिक और पारलौकिक दुःखों की प्राप्ति होती है ऐसा विचार करना। विपाकविजय या विपाकविचय अर्थात् 'शुभाशुभ कर्मों के शुभाशुभ फल होते हैं। अपने किये हुए कर्मों से ही आत्मा सुख दुःख भोगता है, ऐसा विचार करना। संस्थानविजय या संस्थानविचय अर्थात् लोक के संस्थान का तथा लोक में रहे हुए धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के स्वरूप का चिन्तन करना। धर्मध्यान के चार लक्षण-लिङ्ग कहे गये हैं यथा - आज्ञारुचि अर्थात् सूत्र में प्रतिपादित अर्थों पर

◎ श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय के विषय शब्द और रूप काम कहलाते हैं । घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के विषय गन्ध, रस और स्पर्श भोग कहलाते हैं । दो इन्द्रियाँ कामी और तीन इन्द्रियाँ भोगी है ।

❖ दूसरी जगह आर्त्तध्यान का चौथा भेद निदान-(नियाणा) बतलाया है । यथा - देवेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि के रूप, लावण्य और ऋद्धि आदि को देख कर या सुन कर उनमें आसक्त होना और यह सोचना कि मैंने जो तप संयम आदि धर्म कार्य किये हैं उनके फलस्वरूप मुझे भी उक्त ऋद्धि आदि प्राप्त हो इस प्रकार नियाणा करना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुचि रखना, निसर्गरुचि अर्थात् किसी के उपदेश के बिना स्वभाव से ही जिनभाषित तत्त्वों पर श्रद्धा करना, सूत्ररुचि अर्थात् आगम द्वारा जिनभाषित द्रव्यादि पदार्थों पर श्रद्धा करना, अवगाढरुचि अर्थात् द्वादशाङ्ग का विस्तारपूर्वक ज्ञान करके जिनभाषित तत्त्वों पर श्रद्धा होना। धर्मध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं यथा - वाचना अर्थात् शिष्य को सूत्र आदि पढाना, प्रतिपृच्छना अर्थात् सूत्र आदि में शंका होने पर उसका निवारण करने के लिए गुरु महाराज से पूछना, परिवर्तना अर्थात् पहले पढे हुए सूत्रादि का विस्मरण न हो जाय इसलिए तथा निर्जरा के लिए उनकी आवृत्ति करना, अनुप्रेक्षा अर्थात् सूत्र अर्थ का चिन्तन एवं मनन करना। धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं कही गई है यथा- एकानुप्रेक्षा अर्थात् 'इस संसार में मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी का हूँ' इत्यादि रूप से आत्मा के एकत्व एवं असहायपन की भावना करना। अनित्यानुप्रेक्षा अर्थात् शरीर, जीवन, ऋद्धि संपत्ति तथा सांसारिक सभी पदार्थ अनित्य हैं, ऐसा विचार करना। अशरणानुप्रेक्षा अर्थात् 'जन्म, जरा, मरण, व्याधि और वेदना से पीड़ित इस आत्मा का रक्षक एवं त्राण-शरण रूप कोई नहीं है। यदि कोई आत्मा के लिए त्राण-शरण रूप है तो जिनेन्द्र भगवान् के प्रवचन ही है' इस प्रकार आत्मा के त्राण-शरण के अभाव का विचार करना। संसारानुप्रेक्षा अर्थात् 'इस संसार में माता बन कर वही जीव पुत्री, बहन और स्त्री बन जाता है तथा पुत्र का जीव पिता, भाई और यहां तक की शत्रु बन जाता है' इस प्रकार संसार के विचित्रतापूर्ण स्वरूप का विचार करना संसारानुप्रेक्षा है।

चतुष्पदावतार यानी स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा इन चार बातों से जिसका विचार किया गया है ऐसा शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है यथा - पृथक्वितर्क सविचारी अर्थात् एक द्रव्य की अनेक पर्यायों का पृथक् पृथक् रूप से विस्तार पूर्वक द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक आदि नयों से चिन्तन करना। एकत्ववितर्क अविचारी अर्थात् हवा रहित घर में रखे हुए दीपक की तरह चित्तविक्षेप रहित स्थिरतापूर्वक किसी एक पदार्थ की पर्यायों का अभेद रूप से चिन्तन करना। सूक्ष्मक्रिया अनिवर्ती अर्थात् योग निरोध के समय परिणामों के विशेष चढे रहने से यहां से केवली भगवान् पीछे नहीं हटते हैं यह सूक्ष्मक्रिया अनिवर्ती शुक्लध्यान है। समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती अर्थात् शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली सभी योगों का निरोध कर लेते हैं। अतएव उसकी सारी क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। इसलिए इसे समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यान कहते हैं। शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं यथा - अव्यथ अर्थात् परीषह उपसर्गों से घबरा कर ध्यान से विचलित न होना, असम्मोह अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म गहन विषयों में अथवा देवादिकृत माया में मोहित न होना। विवेक अर्थात् सांसारिक सब संयोगों से आत्मा को भिन्न समझना। व्युत्सर्ग अर्थात् निःसंग रूप से शरीर और उपाधि का त्याग करना। शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं यथा - क्षान्ति-क्षमा अर्थात् क्रोध न करना और उदय में आये हुए क्रोध को दबाना। मुक्ति अर्थात् लोभ न करना तथा उदय में आये हुए लोभ को विफल करना यानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्ममत्व भाव, मार्दव यानी मान न करना और उदय में आये हुए मान को विफल करना, आर्जव अर्थात् माया न करना और उदय में आई हुई माया को विफल करना। शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं यानी भावनाएं कही गई हैं यथा-अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा अर्थात् 'यह जीव अनादि काल से इस अनन्त संसार में परिभ्रमण कर रहा है' इस प्रकार भवपरम्परा की अनन्तता का विचार करना। विपरिणामानुप्रेक्षा अर्थात् 'सांसारिक पदार्थ, ऋद्धि, सम्पत्ति आदि सब अशाश्वत हैं। शुभ पुद्गल अशुभ और अशुभ पुद्गल शुभ रूप में परिणत हो जाते हैं इस प्रकार पदार्थों के विविध परिणामों पर विचार करना।' अशुभानुप्रेक्षा अर्थात् 'इस संसार को धिक्कार है जिसमें एक सुन्दर रूप वाला अभिमानी पुरुष मर कर अपने ही मृत शरीर में कीड़े रूप से उत्पन्न हो जाता है' इस प्रकार संसार के अशुभ स्वरूप पर विचार करना। अपायानुप्रेक्षा अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों कषाय संसार के मूल को सींचने वाले हैं। इन्हीं से आस्रवों का आगमन होता है और जीव अनेक दुःखों को प्राप्त करता है। इस प्रकार कषाय और आस्रवों से होने वाले विविध अपायों का चिन्तन करना अपायानुप्रेक्षा है।

विवेचन - एक लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करना ध्यान हैं। छद्मस्थों का अन्तुमुहूर्त्त परिमाण एक वस्तु में चित्त को स्थिर रखना ध्यान कहलाता है और केवली भगवान् का तो योगों का निरोध करना ध्यान कहलाता है। ध्यान के चार भेद हैं- १. आर्त्तध्यान २. रौद्रध्यान ३. धर्मध्यान और ४. शुक्लध्यान।

१. आर्त्तध्यान - ऋत अर्थात् दुःख के निमित्त या दुःख में होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है। अथवा आर्त्त अर्थात् दुःखी प्राणी का ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है। अथवा मनोज्ञ वस्तु के वियोग एवं अमनोज्ञ वस्तु के संयोग आदि कारण से चित्त की घबराहट आर्त्तध्यान है। अथवा जीव मोह वश राज्य का उपभोग, शयन, आसन, वाहन, स्त्री, गंध, माला, मणि, रत्न विभूषणों में जो अतिशय इच्छा करता है वह आर्त्तध्यान है

२. रौद्रध्यान - हिंसा, झूठ, चोरी, धन रक्षा में मन को जोड़ना रौद्रध्यान है अथवा हिंसादि विषय का अतिक्रूर परिणाम रौद्रध्यान है। अथवा हिंसोन्मुख आत्मा द्वारा प्राणियों को रुलाने वाले व्यापार का चिन्तन करना रौद्रध्यान है। अथवा छेदना, भेदना, काटना, मारना, वध करना, प्रहार करना, दमन करना, इनमें जो राग करता है और जिसमें अनुकम्पा भाव नहीं है। उस पुरुष का ध्यान रौद्रध्यान कहलाता है।

३. धर्मध्यान - धर्म अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञादि पदार्थ स्वरूप के पर्यालोचन में मन को एकाग्र करना धर्म ध्यान है। अथवा श्रुत और चारित्र धर्म से सहित ध्यान, धर्म ध्यान कहलाता है अथवा सूत्रार्थ की साधना करना, महाव्रतों को धारण करना, बन्ध और मोक्ष तथा गति-आगति के हेतुओं का विचार करना, पांच इन्द्रियों के विषय से निवृत्ति और प्राणियों में दया भाव इन में मन की एकाग्रता का होना धर्मध्यान है। अथवा जिनेन्द्र भगवान् और साधु के गुणों का कथन करने वाला उनकी प्रशंसा करने वाला विनीत श्रुतशील और संयम में अनुरक्त आत्मा धर्मध्यानी है उसका ध्यान धर्मध्यान कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. शुक्लध्यान - पूर्व विषयक श्रुत के आधार से मन की अत्यंत स्थिरता और योग का निरोध शुक्लध्यान कहलाता है। अथवा जो ध्यान आठ प्रकार के कर्ममल को दूर करता है अथवा जो शोक को नष्ट करता है वह ध्यान शुक्लध्यान है। परअवलम्बन बिना शुक्ल-निर्मल आत्म स्वरूप की तन्मयता पूर्वक चिन्तन करना शुक्ल ध्यान कहलाता है। अथवा जिस ध्यान में विषयों का सम्बन्ध होने पर भी वैराग्य बल से चित्त बाहरी विषयों की ओर नहीं जाता तथा शरीर का छेदन भेदन होने पर भी स्थिर हुआ चित्त ध्यान से लेश मात्र भी नहीं डिगता उसे शुक्ल ध्यान कहते हैं।

आर्त्तध्यान के चार भेद -

१. अमनोज्ञ वियोग चिन्ता - अमनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, विषय एवं उनकी साधनभूत वस्तुओं का संयोग होने पर उनके वियोग की चिन्ता करना तथा भविष्य में भी उनका संयोग न हो, ऐसी इच्छा रखना आर्त्तध्यान का प्रथम भेद है। इस आर्त्तध्यान का कारण द्वेष है।

२. रोग चिन्ता - शूल, सिर दर्द आदि रोग आतङ्क के होने पर उनकी चिकित्सा में व्यग्र प्राणी का उनके वियोग के लिए चिन्तन करना तथा रोगादि के अभाव में भविष्य के लिए रोगादि के संयोग न होने की चिन्ता करना आर्त्तध्यान का दूसरा भेद है।

३. मनोज्ञ संयोग चिन्ता - पांचों इन्द्रियों के विषय एवं उनके साधन रूप, स्व, माता, पिता, भाई, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन तथा साता वेदना के वियोग में उनका वियोग न होने का अध्यवसाय करना तथा भविष्य में भी उनके संयोग की इच्छा करना आर्त्तध्यान का तीसरा भेद है। राग इसका मूल कारण है।

४. निदान (नियाणा) - देवेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव के रूप गुण और ऋद्धि को देख या सुन कर उनमें आसक्ति लाना और यह सोचना कि मैंने जो तप संयम आदि धर्म कार्य किये हैं। उनके फल स्वरूप मुझे भी उक्त गुण एवं ऋद्धि प्राप्त हो। इस प्रकार अधम निदान की चिन्ता करना आर्त्त ध्यान का चौथा भेद है। इस आर्त्तध्यान का मूल कारण अज्ञान है। क्योंकि अज्ञानियों के सिवाय औरों को सांसारिक सुखों में आसक्ति नहीं होती। ज्ञानी पुरुषों के चित्त में तो सदा मोक्ष की लगन बनी रहती है।

राग द्वेष और मोह से युक्त प्राणी का यह चार प्रकार का आर्त्त ध्यान संसार को बढ़ाने वाला और सामान्यतः तिर्यञ्च गति में ले जाने वाला होता है।

आर्त्तध्यान के चार लिङ्ग (चिह्न) - १. आक्रन्दन २. शोचन ३. परिवेदन ४. तेपनता ये चार आर्त्तध्यान के चिह्न हैं।

ऊँचे स्वर से रोना और चिल्लाना आक्रन्दन है। आँखों में आसू ला कर दीनभाव धारण करना शोचन है। बार-बार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना परिदेवनता है। आंसू गिराना तेपनता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग और वेदना के निमित्त से ये चार चिह्न आर्त्तध्यानी के होते हैं।

रौद्रध्यान के चार प्रकार - १. हिंसानुबन्धी २. मृषानुबन्धी ३. चौर्य्यानुबन्धी ४. संरक्षणानुबन्धी।

१. हिंसानुबन्धी - प्राणियों को चाबुक, लता आदि से मारना, कील आदि से नाक वगैरह बींधना, रस्सी जंजीर आदि से बांधना, अग्नि में जलाना, डाम लगाना, तलवार आदि से प्राण वध करना अथवा उपरोक्त व्यापार न करते हुए भी क्रोध के वश होकर निर्दयता पूर्वक निरन्तर इन हिंसाकारी व्यापारों को करने का चिन्तन करना हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान है।

२. मृषानुबन्धी - मायावी-दूसरों को ठगने की प्रवृत्ति करने वाले तथा छिप कर पापाचरण करने वाले पुरुषों के अनिष्ट सूचक वचन, असभ्य वचन, असत् अर्थ का प्रकाशन, सत् अर्थ का अपलाप एवं एक के स्थान पर दूसरे पदार्थ आदि का कथन रूप असत्य वचन एवं प्राणियों के उपघात करने वाले वचन कहना या कहने का निरन्तर चिन्तन करना मृषानुबन्धी रौद्रध्यान है।

३. चौर्य्यानुबन्धी - तीव्र क्रोध एवं लोभ से व्यग्र चित्त वाले पुरुष की प्राणियों के उपघात अनार्य काम जैसे - पर द्रव्य हरण आदि में निरन्तर चित्त वृति का होना चौर्य्यानुबन्धी रौद्रध्यान है।

४. संरक्षणानुबन्धी - शब्दादि पांच विषय के साधन रूप धन की रक्षा करने की चिन्ता करना, एवं न मालूम दूसरा क्या करेगा, इस आशंका से दूसरों का उपघात करने की कषायमयी चित्त वृत्ति रखना संरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान है।

हिंसा, मृषा, चौर्य, एवं संरक्षण स्वयं करना दूसरों से कराना, एवं करते हुए की अनुमोदना (प्रशंसा) करना इन तीनों कारण विषयक चिन्तना करना रौद्रध्यान है। रागद्वेष एवं मोह से आकुल जीव के यह चारों प्रकार का रौद्रध्यान होता है। यह ध्यान संसार बढ़ाने वाला एवं नरक गति में ले जाने वाला होता है।

रौद्रध्यान के चार लक्षण - १. ओसन्न दोष २. बहुदोष (बहुलदोष), ३. अज्ञान दोष (नानादोष) ४. आमरणान्त दोष।

१. ओसन्न दोष - रौद्रध्यानी हिंसादि से निवृत्त न होने से बहुलता पूर्वक हिंसादि में से किसी एक में प्रवृत्ति करता है। यह ओसन्न दोष है।

२. बहुल दोष - रौद्रध्यानी सभी हिंसादि दोषों में प्रवृत्ति करता है। यह बहुल दोष है।

३. अज्ञान दोष - अज्ञान से कुशास्त्र के संस्कार से नरकादि के कारण अधर्म स्वरूप हिंसादि में धर्म बुद्धि से उन्नति के लिए प्रवृत्ति करना अज्ञान दोष है। अथवा -

नानादोष - विविध हिंसादि के उपायों में अनेक बार प्रवृत्ति करना नानादोष है।

४. आमरणान्त दोष - मरण पर्यन्त क्रूर हिंसादि कार्यों में अनुताप (पछतावा) न होना एवं हिंसादि में प्रवृत्ति करते रहना आमरणान्त दोष है। जैसे काल सौकरिक कसाई। कठोर एवं संक्लिष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम वाला रौद्रध्यानी दूसरे के दु:ख से प्रसन्न होता है। ऐहिक एवं पारलौकिक भय से रहित होता है। उसके मन में अनुकम्पा भाव लेशमात्र भी नहीं होता। अकार्य करके भी इसे पश्चाताप नहीं होता। पाप करके भी वह प्रसन्न होता है।

धर्मध्यान के चार भेद - १. आज्ञा विचय २. अपाय विचय ३. विपाक विचयं ४. संस्थान विचय।

१. आज्ञा विचय - सूक्ष्म तत्त्वों के उपदर्शक होने से अति निपुण, अनादि अनन्त, प्राणियों के वास्ते हितकारी, अनेकान्त का ज्ञान कराने वाली, अमूल्य, अपरिमित, जैनेतर प्रवचनों से अपराभूत, महान् अर्थवाली, महाप्रभावशाली एवं महान् विषय वाली, निर्दोष, नयभंग एवं प्रमाण से गहन, अतएव अकुशल जनों के लिये दुर्ज्ञेय ऐसी जिनाज्ञा (जिन प्रवचन) को सत्य मान कर उस पर श्रद्धा करे एवं उसमें प्रतिपादित तत्त्व के रहस्य को समझाने वाले, आचार्य्य महाराज के न होने से, ज्ञेय की गहनता से अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से और मति दौर्बल्य से जिन प्रवचन प्रतिपादित तत्त्व सम्यग् रूप से समझ में न आवे अथवा किसी विषय में हेतु उदाहरण के संभव न होने से वह बात समझ में न आवे तो यह विचार करे कि ये वचन वीतराग, सर्वज्ञ भगवान् श्री जिनेश्वर द्वारा कथित हैं। इसलिए सर्व प्रकारेण सत्य ही है। इसमें सन्देह नहीं। अनुपकारी जन के उपकार में तत्पर रहने वाले, जगत् में प्रधान, त्रिलोक एवं त्रिकाल के ज्ञाता, राग द्वेष के विजेता श्री जिनेश्वर देव के वचन सत्य ही होते हैं क्योंकि उनके असत्य कथन का कोई कारण ही नहीं है। इस तरह भगवद् भाषित प्रवचन का चिंतन तथा मनन करना एवं गूढ़ तत्त्वों के विषयों में सन्देह न रखते हुए उन्हें दृढ़ता पूर्वक सत्य समझना और वीतराग के वचनों में मन को एकाग्र करना आज्ञाविचय नामक धर्मध्यान है।

२. अपाय विचय - राग द्वेष, कषाय, मिथ्यात्व, अविरति आदि आस्रव एवं क्रियाओं से होने वाले ऐहिक और पारलौकिक कुफल और हानियों का विचार करना। जैसे कि महाव्याधि से पीड़ित पुरुष को अपथ्य अन्न की इच्छा जिस प्रकार हानिप्रद है। उसी प्रकार प्राप्त हुआ राग भी जीव के लिए दु:खदायी होता है। प्राप्त हुआ द्वेष भी प्राणी को उसी प्रकार सन्तप्त कर देता है। जैसे कोटर (वृक्ष की खोखाल) में रही हुई अग्नि वृक्ष को शीघ्र ही जला डालती है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग देव ने दृष्टि राग आदि भेदों वाले राग का फल परलोक में दीर्घ संसार बतलाया है। द्वेषरूपी अग्नि से संतप्त जीव इस लोक में भी दु:खित रहता है और परलोक में भी वह पापी नरकाग्नि में जलता है। वश में न किये हुए क्रोध और मान एवं बढ़ते हुए माया और लोभ-ये चारों कषाय संसार रूपी वृक्ष के मूल का सिंचन करने वाले हैं। अर्थात् संसार को बढ़ाने वाले हैं। प्रशम आदि गुणों से शून्य एवं मिथ्यात्व से मूढ़ मति वाला पापी जीव इस लोक में ही नरक सदृश दु:खों को भोगता है। क्रोध आदि सभी दोषों की अपेक्षा अज्ञान अधिक दु:खदायी है, क्योंकि अज्ञान से आच्छादित जीव अपने हिताहित को भी नहीं पहिचानता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राणिवध से निवृत्त न होने से जीव यहीं पर अनेक दूषणों का शिकार होता है। उसके परिणाम इतने क्रूर हो जाते हैं कि वह लोक निन्दित स्वपुत्र वध जैसे जघन्य कृत्य भी कर बैठता है।

इसी प्रकार आस्रव से अर्जित पाप कर्मों से जीव चिर काल तक नरकादि नीच गतियों में परिभ्रमण करता हुआ अनेक अपायों (दुःखों) का भाजन होता है।

कायिकी आदि क्रियाओं में वर्तमान जीव इस लोक एवं परलोक में दुःखी होते हैं। ये क्रियाएँ संसार बढ़ाने वाली कही गई है।

इस प्रकार राग द्वेष कषाय आदि के अपायों के चिंतन करने में मन को एकाग्र करना अपाय विचय धर्मध्यान है।

इन दोषों से होने वाले कुफल का चिन्तन करने वाला जीव इन दोषों से अपनी आत्मा की रक्षा करने में सावधान रहता है एवं इससे दूर रहता हुआ आत्म कल्याण का साधन करता है।

३. विपाक विचय - शुद्ध आत्मा का स्वरूप ज्ञान, दर्शन, सुख आदि रूप है। फिर भी कर्म वश उसके निज गुण दबे हुए हैं। एवं वह सांसारिक सुख दुःख के द्वन्द्व में रही हुई चार गतियों में भ्रमण कर रही है। संपत्ति, विपत्ति, संयोग, वियोग आदि से होने वाले सुख दुःख जीव के पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म के ही फल हैं। आत्मा ही अपने कृत कर्मों से सुख दुःख पाता है। स्वोपार्जित कर्मों के सिवाय और कोई भी आत्मा को सुख दुःख देने वाला नहीं है। आत्मा की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में कर्मों के भिन्न-भिन्न फल हैं। इस प्रकार कषाय एवं योग जनित शुभाशुभ कर्म प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध, प्रदेश बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता इत्यादि कर्म विषयक चिन्तन में मन को एकाग्र करना विपाक विचय धर्मध्यान है।

४. संस्थान विचय - धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य एवं उनकी पर्याय, जीव अजीव के आकार, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, लोक का स्वरूप, पृथ्वी, द्वीप, सागर, नरक, विमान, भवन आदि के आकार, लोक स्थिति, जीव की गति आगति, जीवन मरण आदि सभी सिद्धान्त के अर्थ का चिन्तन करे तथा जीव एवं उसके कर्म से पैदा किए हुए जन्म जरा एवं मरण रूपी जल से परिपूर्ण क्रोधादि कषाय रूप पाताल वाले, विविध दुःख रूपी नक्र मकर से भरे हुए अज्ञान रूपी वायु से उठने वाली, संयोग वियोग रूप लहरों सहित इस अनादि अनन्त संसार सागर का चिन्तन करे। इस संसार सागर को तिराने में समर्थ, सम्यग्दर्शन रूपी मजबूत बन्धनों वाली, ज्ञान रूपी नाविक से चलाई जाने वाली चारित्र रूपी नौका है। संवर से निश्छिद्र, तप रूपी पवन से वेग को प्राप्त, वैराग्य मार्ग पर रही हुई, एवं अपध्यान रूपी तरंगों से न डिगने वाली बहुमूल्य शील रत्न से परिपूर्ण नौका पर चढ़ कर मुनि रूपी व्यापारी शीघ्र ही बिना विघ्नों के निर्वाण रूपी नगर को पहुँच जाते हैं। वहाँ पर वे अक्षय, अव्याबाध, स्वाभाविक, निरुपम सुख पाते हैं। इत्यादि रूप से सम्पूर्ण जीवादि पदार्थों के विस्तार वाले, सब नय समूह रूप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्तोक्त अर्थ के चिन्तन में मन को एकाग्र करना संस्थान विचय धर्मध्यान है। जैसा कि भूधरदास जी कृत बारह भावनाओं के दोहों में कहा है कि -

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।

तामें जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान॥

अर्थ - इस लोक का आकार नाचते हुए भोपे के समान है। यह चौदह राजु परिमाण ऊँचा है मेरे जीव ने इन चौदह राजुओं में से एक भी आकाश प्रदेश खाली नहीं छोडा है अर्थात् मेरे जीव ने चौदह राजु के लोकाकाशों में सर्वत्र जनम मरण किया है। अब इस मेरे जीव को थकान आ जाना चाहिए और इसका परिभ्रमण मिट जाना चाहिए ऐसा चिन्तन करना लोक संस्थान विचय नामक धर्म ध्यान है। यह भावना शिवराज ऋषि ने भाई थी।

धर्मध्यान के चार लिङ्ग (चिह्न) - १. आज्ञा रुचि २. निसर्ग रुचि ३. सूत्र रुचि ४. अवगाढ़ रुचि (उपदेश रुचि)

१. आज्ञा रुचि - सूत्र में प्रतिपादित अर्थों पर रुचि धारण करना आज्ञा रुचि है।

२. निसर्ग रुचि - स्वभाव से ही बिना किसी उपदेश के जिनभाषित तत्त्वों पर श्रद्धा करना निसर्ग रुचि है।

३. सूत्र रुचि - सूत्र अर्थात् आगम द्वारा वीतराग प्ररूपित द्रव्यादि पदार्थों पर श्रद्धा करना सूत्र रुचि है।

४. अवगाढ़ रुचि (उपदेश रुचि) - द्वादशाङ्ग का विस्तारपूर्वक ज्ञान करके जो जिन प्रणीत भावों पर श्रद्धा होती है वह अवगाढ़ रुचि है। अथवा साधु के समीप रहने वाले को साधु के सूत्रानुसारी उपदेश से जो श्रद्धा होती है। वह अवगाढ़ रुचि (उपदेश रुचि) है।

तात्पर्य यह है कि तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यक्त्व ही धर्म ध्यान का लिङ्ग (चिह्न) है।

जिनेश्वर देव एवं साधु मुनिराज के गुणों का कथन करना, भक्तिपूर्वक उनकी प्रशंसा और स्तुति करना, गुरु आदि का विनय करना, दान देना, श्रुत शील एवं संयम में अनुराग रखना-ये धर्मध्यान के चिह्न हैं। इनसे धर्मध्यानी पहचाना जाता है।

धर्मध्यान रूपी प्रासाद (महल) पर चढ़ने के चार आलम्बन - १. वाचना २. पृच्छना ३. परिवर्तना ४. अनुप्रेक्षा

१. वाचना - निर्जरा के लिए शिष्य को सूत्र आदि पढ़ाना वाचना है।

२. पृच्छना - सूत्र आदि में शङ्का होने पर उसका निवारण करने के लिए गुरु महाराज से पूछना पृच्छना है।

३. परिवर्तना - पहले पढ़े हुए सूत्रादि भूल न जाए इसलिए तथा निर्जरा के लिए उनकी आवृत्ति करना, अभ्यास करना परिवर्तना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. अनुप्रेक्षा - सूत्र अर्थ का चिन्तन एवं मनन करना अनुप्रेक्षा है।

धर्मध्यान की चार भावनाएं - १. एकत्व भावना २. अनित्य भावना ३. अशरण भावना ४. संसार भावना

१. एकत्व भावना - "इस संसार में मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी का हूँ।" ऐसा भी कोई व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो भविष्य में मेरा होने वाला हो अथवा मैं जिस का बन सकूँ।" इत्यादि रूप से आत्मा के एकत्व अर्थात् असहायपन की भावना करना एकत्व भावना है। जैसा कि कहा है -

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कब हूँ या जीव को, साथी सगा न कोय॥

अर्थ - यह जीव जन्मा तब अकेला ही जन्मा था और मृत्यु के समय जब मरेगा तब अकेला ही मरेगा। संसार सपना नहीं कोई अपना। यह भावना नमिराजर्षि ने भाई थी।

२. अनित्य भावना - "शरीर अनेक विघ्न बाधाओं एवं रोगों का घर है। सम्पत्ति विपत्ति का स्थान है। संयोग के साथ वियोग है। उत्पन्न होने वाला प्रत्येक पदार्थ नश्वर है। इस प्रकार शरीर, जीवन तथा संसार के सभी पदार्थों के अनित्य स्वरूप पर विचार करना अनित्य भावना है। जैसा कि कहा है -

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सब को एक दिन अपनी अपनी बार॥

अर्थ - गरीब से लेकर धनवान् और बड़ी से बड़ी पदवी को धारण करने वाले राजा महाराजा चक्रवर्ती सम्राट भी अपने मरण के समय में आप ही मरता है उसके बदले उसके परिवार का कोई सदस्य अथवा अधीनस्थ कोई राजा आदि नहीं मरता है। अनित्य भावना भरत चक्रवर्ती ने भाई थी।

३. अशरण भावना - जन्म, जरा, मृत्यु के भय से पीड़ित, व्याधि एवं वेदना से व्यथित इस संसार में आत्मा का त्राण रूप कोई नहीं है। यदि कोई आत्मा का त्राण करने वाला है तो जिनेन्द्र भगवान् का प्रवचन ही एक त्राण शरण रूप है। इस प्रकार आत्मा के त्राण शरण के अभाव की चिन्ता करना अशरण भावना है। जैसा कि कहा है -

दल, बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार॥

अर्थ - मृत्यु से बचाने में कोई त्राण शरण रूप नहीं है। धर्म ही एक सच्चा त्राण शरण रूप है। अतः प्राणी को धर्म का आचरण करना चाहिए। यह भावना अनाथी मुनि ने भाई थी।

४. संसार भावना - इस संसार में माता बन कर वही जीव, पुत्री, बहिन एवं स्त्री बन जाता है और पुत्र का जीव पिता, भाई यहाँ तक कि शत्रु बन जाता है। इस प्रकार चार गति में, सभी अवस्थाओं में संसार के विचित्रता पूर्ण स्वरूप का विचार करना संसार भावना है। जैसा कि कहा है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाम बिना निर्धन दु:खी, तृष्णा वश धनवान्।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

अर्थ – संसार में कोई भी जीव सुखी नहीं है। निर्धन पुरुष धन के बिना दु:खी है और धनवान् पुरुष तृष्णा के वश दु:खी है। माता-पिता स्वजन सम्बन्धी का सम्बन्ध भी सदा नित्य नहीं रहता है क्योंकि पति मरकर पत्नी बन सकता है और पत्नी मरकर माता, बहन, पति, पुत्र आदि बन सकता है।

राजा प्रतिबुद्ध, चन्द्रछाय, रुक्मी, शङ्ख, आदिनशत्रु और जीतशत्रु नामक छह राजा भगवान् मल्लिनाथ के पूर्व भव के मित्र थे इस भव में वे छहों मल्लिकुमारी को अपनी पत्नी बनाने के लिये बारात लेकर आये थे। फिर मल्लिकुमारी के उपदेश से उन्होंने अपना पूर्व भव जाना वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ और भगवान् मल्लिनाथ के पास दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया इस प्रकार इन छहों मित्रों ने संसार भावना भाई थी। इसका विस्तृत वर्णन ज्ञातासूत्र के आठवें अध्ययन में है। ज्ञाता सूत्र के उन्नीस कथाओं का हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के पांचवें भाग में है।

धर्मध्यान के चार भेद दूसरी तरह से भी हैं जिनका वर्णन ग्रन्थों में मिलता है वे इस प्रकार हैं –

धर्मध्यान के चार भेद – १. पिण्डस्थ २. पदस्थ ३. रूपस्थ ४. रूपातीत

१. पिण्डस्थ – पार्थिवी, आग्नेयी आदि पांच धारणाओं का एकाग्रता से चिन्तन करना पिण्डस्थ ध्यान है।

२. पदस्थ – नाभि में सोलह पांखड़ी के, हृदय में चौबीस पांखड़ी के तथा मुख पर आठ पांखड़ी के कमल की कल्पना करना और प्रत्येक पांखड़ी पर वर्णमाला के अ आ इ ई आदि अक्षरों की अथवा पञ्च परमेष्ठी मंत्र के अक्षरों की स्थापना करके एकाग्रता पूर्वक उनका चिन्तन करना अर्थात् किसी पद के आश्रित होकर मन को एकाग्र करना पदस्थ ध्यान है।

३. रूपस्थ – शास्त्रोक्त अरिहन्त भगवान् की शान्त दशा को हृदय में स्थापित करके स्थिर चित्त से उसका ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है।

४. रूपातीत – रूप रहित निरंजन निर्मल सिद्ध भगवान् का आलंबन लेकर उसके साथ आत्मा की एकता का चिन्तन करना रूपातीत ध्यान है।

शुक्ल ध्यान के चार भेद – १. पृथक्त्व वितर्क सविचारी। २. एकत्व वितर्क अविचारी। ३. सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती ४. समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती।

१. पृथक्त्व वितर्क सविचारी – एक द्रव्य विषयक अनेक पर्यायों का पृथक्-पृथक् रूप से विस्तार पूर्वक पूर्वगत श्रुत के अनुसार द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदि नयों से चिन्तन करना पृथक्त्व वितर्क सविचारी है। यह ध्यान विचार सहित होता है। विचार का स्वरूप है अर्थ, व्यञ्जन (शब्द) एवं योगों में संक्रमण अर्थात् इस ध्यान में अर्थ से शब्द में और शब्द से अर्थ में और शब्द से शब्द में अर्थ से अर्थ में एवं एक योग से दूसरे योग में संक्रमण होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वगत श्रुत के अनुसार विविध नयों से पदार्थों की पर्यायों का भिन्न-भिन्न रूप से चिन्तन रूप यह शुक्ल ध्यान पूर्वधारी को होता है और मरुदेवी माता की तरह जो पूर्वधर नहीं है, उन्हें अर्थ, व्यञ्जन एवं योगों में परस्पर संक्रमण रूप यह शुक्लध्यान होता है।

२. एकत्व वितर्क अविचारी - पूर्वगत श्रुत का आधार लेकर उत्पाद आदि पर्यायों के एकत्व अर्थात् अभेद से किसी एक पदार्थ अथवा पर्याय का स्थिर चित्त से चिन्तन करना एकत्व वितर्क है। इस ध्यान में अर्थ, व्यञ्जन एवं योगों का संक्रमण नहीं होता है। निर्वात गृह में रहे हुए दीपक की तरह ध्यान में चित्त विक्षेप रहित अर्थात् स्थिर रहता है।

३. सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती - निर्वाण गमन के पूर्व केवली भगवान् मन, वचन, योगों का विरोध कर लेते हैं और अर्द्ध काययोग का भी निरोध कर लेते हैं। उस समय केवली के कायिकी उच्छ्वास आदि सूक्ष्म क्रिया ही रहती है। परिणामों के विशेष बढ़े चढ़े रहने से यहाँ से केवली पीछे नहीं हटते। यह तीसरा सूक्ष्म क्रिया अनिर्वती शुक्लध्यान है।

४. समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती - शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली सभी योगों का निरोध कर लेता है। योगों के निरोध से सभी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। यह ध्यान सदा बना रहता है। इसलिएं इसे समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यान कहते हैं।

पृथक्त्व वितर्क सविचारी शुक्लध्यान सभी योगों में होता है। [illegible] ितर्क अविचार शुक्लध्यान किसी एक ही योग में होता है। सूक्ष्म क्रिया अनिर्वती शुक्लध्यान केवल काय योग में होता है। चौथा समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यान अयोगी को ही होता है। छद्मस्थ के मन को निश्चल करना ध्यान कहलाता है और केवली की काया को निश्चल करना ध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान के चार लिङ्ग - १. अव्यथ २. असम्मोह ३. विवेक ४. व्युत्सर्ग

१. शुक्लध्यानी परीषह उपसर्गों से डर कर ध्यान से चलित नहीं होते हैं। इसलिए वह अव्यथ लिङ्ग वाला है।

२. शुक्लध्यानी को सूक्ष्म अत्यन्त गहन विषयों में अथवा देवादि कृ[illegible]ों सम्मोह नहीं होता है। इसलिए वह असम्मोह लिङ्ग (चिह्न) वाला होता है।

३. शुक्लध्यानी आत्मा को देह से भिन्न एवं सर्व संयोगों को आत्मा से भिन्न समझता है। इसलिए वह विवेक लिङ्ग (चिह्न) वाला होता है।

३. शुक्लध्यानी निःसंग रूप से देह एवं उपधि का त्याग करता है। इसलिए वह व्युत्सर्ग लिङ्ग वाला होता है।

शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन -

जिन मत में प्रधान क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति इन चारों आलम्बनों से जीव शुक्ल ध्यान को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध न करना, उदय में आये हुए क्रोध को दबाना इस प्रकार क्रोध का त्याग क्षमा है।

मान न करना, उदय में आये हुए मान को विफल करना, इस प्रकार मान का त्याग मार्दव है।

माया न करना - उदय में आई हुई माया को विफल करना, रोकना। इस प्रकार माया का त्याग-आर्जव (सरलता) है।

लोभ न करना - उदय में आये हुए लोभ को विफल करना (रोकना)। इस प्रकार लोभ का त्याग-मुक्ति (शौच, निर्लोभता) है।

शुक्ल ध्यानी की चार भावनाएं - १. अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा २. विपरिणामानुप्रेक्षा ३. अशुभानुप्रेक्षा ४. अपायानुप्रेक्षा।

१. अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा - भव परम्परा की अनन्तता की भावना करना - जैसे यह जीव अनादि काल से संसार में चक्कर लगा रहा है। समुद्र की तरह इस संसार के पार पहुंचना, उसे दुष्कर हो रहा है और वह नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव भवों में लगातार एक के बाद दूसरे में बिना विश्राम के परिभ्रमण कर रहा है। इस प्रकार की भावना अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा है।

२. विपरिणामानुप्रेक्षा - वस्तुओं के विपरिणमन पर विचार करना। जैसे - सर्वस्थान अशाश्वत हैं। क्या यहाँ के और क्या देवलोक के देव एवं मनुष्य आदि की ऋद्धियाँ और सुख अस्थायी हैं। इस प्रकार की भावना विपरिणामानुप्रेक्षा है।

३. अशुभानुप्रेक्षा - संसार के अशुभ स्वरूप पर विचार करना। जैसे कि इस संसार को धिक्कार है जिसमें एक सुन्दर रूप वाला अभिमानी पुरुष मर कर अपने ही मृत शरीर में कृमि (कीड़े) रूप से उत्पन्न हो जाता है। इत्यादि रूप से भावना करना अशुभानुप्रेक्षा है।

४. अपायानुप्रेक्षा - आस्रवों से होने वाले, जीवों को दुःख देने वाले, विविध अपायों से चिन्तन करना, जैसे वश में नहीं किये हुए क्रोध और मान, बढ़ती हुई माया और लोभ ये चारों कषाय संसार के मूल को सींचने वाले हैं। अर्थात् संसार को बढ़ाने वाले हैं। इत्यादि रूप से आस्रव से होने वाले अपायों की चिन्तना अपायानुप्रेक्षा है।

देव स्थिति और संवास

चउव्विहा देवाणं ठिई पण्णत्ता तंजहा - देवे णामेगे, देवसिणाए णामेगे, देवपुरोहिए णामेगे, देवपज्जलणे णामेगे।

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - देवे णामेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, देवे णामेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णामेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णामेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय भेद

चत्तारि कसाया पण्णत्ता तंजहा - कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोहकसाए। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। चउपइट्ठिए कोहे पण्णत्ते तंजहा - आयपइट्ठिए, परपइट्ठिए, तदुभयपइट्ठिए, अपइट्ठिए, एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, एवं जाव लोहे जाव वेमाणियाणं। चउहिं ठाणेहिं कोहुप्पई सिया तंजहा - खेत्तं पडुच्च, वत्थुं पडुच्च, सरीरं पडुच्च, उवहिं पडुच्च। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। एवं जाव लोहे जाव वेमाणियाणं। चउव्विहे कोहे पण्णत्ते तंजहा - अणंताणुबंधि कोहे, अपच्चक्खाण कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, संजलणे कोहे। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। एवं जाव लोहे जाव वेमाणियाणं । चउव्विहे कोहे पण्णत्ते तंजहा - आभोगणिव्वत्तिए, अणाभोगणिव्वत्तिए, उवसंते, अणुवसंते। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। एवं जाव लोहे जाव वेमाणियाणं॥ १३२॥

कठिन शब्दार्थ - **देवसिणाए** - देव स्नातक, **देव पुरोहिए** - देव पुरोहित, **देव पज्जलणे** - देव प्रज्वलन-चारण भाट की तरह देवों का गुणगान करने वाला, **संवासे** - संवास-मैथुन, **छवीए** - छवि के, **सद्धिं** - साथ, **चउपइट्ठिए** - चतुः प्रतिष्ठित-चार स्थानों में रहने वाला, **आयपइट्ठिए** - आत्म प्रतिष्ठित, **परपइट्ठिए** - पर प्रतिष्ठित, **तदुभयपइट्ठिए** - तदुभय प्रतिष्ठित, **कोहुप्पई** - क्रोध की उत्पत्ति, **खेत्तं** - क्षेत्र, **पडुच्च** - आश्रित, **उवहिं** - उपधि, **अणंताणुबंधि** - अनन्तानुबंधी, **अपच्चक्खाण** - अप्रत्याख्यान, **पच्चक्खाणावरणे** - प्रत्याख्यानावरण, **संजलणे** - संज्वलन, **आभोगणिव्वत्तिए** - आभोग निर्वर्तित-क्रोध के फल को जानते हुए क्रोध करना, **अणाभोगणिव्वत्तिए** - अनाभोग निर्वर्तित, **उवसंते** - उपशान्त, **अणुवसंते** - अनुपशांत।

भावार्थ - देवों की चार प्रकार की स्थिति यानी मर्यादा कही गई है यथा - कोई देव सामान्य देव होता है, कोई देव देवस्नातक यानी देवों में प्रधान होता है। कोई देव देवपुरोहित यानी शान्तिकर्म कराने वाला होता है और कोई देव देवप्रज्वलन यानी चारण, भाट की तरह देवों के गुणगान करने वाला होता है।

चार प्रकार का संवास यानी मैथुन कहा गया है यथा - कोई देव देवी के साथ सम्भोग करता है, कोई देव छवि यानी औदारिक शरीर वाली नारी और तिर्यञ्चणी के साथ सम्भोग करता है, कोई देव छवि यानी औदारिक शरीर वाला मनुष्य और तिर्यञ्च देवी के साथ सम्भोग करता है और कोई मनुष्य और तिर्यञ्च नारी और तिर्यञ्चणी के साथ सम्भोग करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार कषाय कहे गये हैं यथा – क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषाय। इस प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौवीस ही दण्डक में चारों कषाय कह देने चाहिये। क्रोध कषाय चतुःप्रतिष्ठित यानी चार स्थानों में रहने वाला कहा गया है यथा – आत्मप्रतिष्ठित यानी अपनी आत्मा के अपराध से अपनी आत्मा पर ही उत्पन्न होने वाला क्रोध, पर प्रतिष्ठित यानी दूसरे से कठोर वचन सुन कर उत्पन्न होने वाला क्रोध अथवा दूसरों पर होने वाला क्रोध, तदुभयप्रतिष्ठित यानी अपने पर और दूसरों पर दोनों पर होने वाला क्रोध और अप्रतिष्ठित यानी आक्रोशादि किसी निमित्त कारण के बिना ही केवल क्रोधवेदनीय के उदय से उत्पन्न होने वाला क्रोध । इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिए । इसी प्रकार लोभ तक यानी मान, माया और लोभ ये तीनों कषाय नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिये। चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है यथा – क्षेत्र आश्रित, वस्तु आश्रित, शरीर आश्रित और उपधि यानी उपकरण आश्रित । इस प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डकों में कह देना चाहिए । इसी प्रकार लोभ तक यानी मान, माया और लोभ इन का कथन नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में जान लेना चाहिए । क्रोध चार प्रकार का कहा गया है यथा – अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, संज्वलन क्रोध । इस प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिये । इसी प्रकार मान, माया और लोभ के भी अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन ये चार चार भेद कह देने चाहिये और नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिए । क्रोध चार प्रकार का कहा गया है यथा – आभोगनिवर्तित यानी क्रोध के फल को जानते हुए जो क्रोध किया जाता है वह आभोगनिवर्तित क्रोध है। क्रोध के फल को न जानते हुए जो क्रोध किया जाता है वह अनाभोगनिवर्तित क्रोध है। जो क्रोध सत्ता में हो किन्तु उदयावस्था में न हो वह उपशान्त क्रोध है और उदयावस्था में रहा हुआ क्रोध अनुपशान्त क्रोध है । इस प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिए । इसी प्रकार मान, माया और लोभ के भी उपरोक्त चार चार भेद कह देने चाहिए और नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कह देने चाहिए।

विवेचन - कषाय की व्याख्या और भेद -

कषाय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ रूप आत्मा के परिणाम विशेष जो सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति और यथाख्यात चारित्र का घात करते हैं वे कषाय कहलाते हैं।

कषाय के चार भेद – १. क्रोध २. मान ३. माय ४. लोभ ।

१. क्रोध – क्रोध मोहनीय के उदय से होने वाला, कृत्य अकृत्य के विवेक को हटाने वाला,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्वलन स्वरूप आत्मा के परिणाम को क्रोध कहते हैं। क्रोधवश जीव किसी की बात सहन नहीं करता और बिना विचारे अपने और पराए अनिष्ट के लिए हृदय में और बाहर जलता रहता है ।

२. मान - मान मोहनीय कर्म के उदय से जाति आदि गुणों में अहंकार बुद्धिरूप आत्मा के परिणाम को मान कहते हैं । मान वश जीव में छोटे बड़े के प्रति उचित नम्र भाव नहीं रहता है। मानी जीव अपने को बड़ा समझता है और दूसरों को तुच्छ समझता हुआ उनकी अवहेलना करता है। गर्व वश वह दूसरे के गुणों को सहन नहीं कर सकता है।

३. माया - माया मोहनीय कर्म के उदय से मन, वचन, काया की कुटिलता द्वारा परवञ्चना अर्थात् दूसरे के साथ कपटाई, ठगाई, दगारूप आत्मा के परिणाम विशेष को माया कहते हैं ।

४. लोभ - लोभ मोहनीय कर्म के उदय से द्रव्यादि विषयक इच्छा, मूर्च्छा, ममत्व भाव एवं तृष्णा अर्थात् असन्तोष रूप आत्मा के परिणाम विशेष को लोभ कहते हैं ।

प्रत्येक कषाय के चार चार भेद - १. अनन्तानुबन्धी २. अप्रत्याख्यान ३. प्रत्याख्यानावरण ४. संज्वलन ।

१. अनन्तानुबन्धी - जिस कषाय के प्रभाव से जीव अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करता है। उस कषाय को अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं । यह कषाय सम्यक्त्व का घात करता है । एवं जीवन पर्यन्त बना रहता है । इस कषाय से जीव नरक गति योग्य कर्मों का बन्ध करता है ।

२. अप्रत्याख्यान - जिस कषाय के उदय से देश विरति रूप अल्प (थोड़ा सा भी) प्रत्याख्यान नहीं होता उसे अप्रत्याख्यान कषाय कहते हैं । इस कषाय से श्रावक धर्म की प्राप्ति नहीं होती । यह कषाय एक वर्ष तक बना रहता है । और इससे तिर्यञ्च गति योग्य कर्मों का बन्ध होता है ।

३. प्रत्याख्यानावरण - जिस कषाय के उदय से सर्व विरति रूप प्रत्याख्यान रुक जाता है अर्थात् साधु धर्म की प्राप्ति नहीं होती । वह प्रत्याख्यानावरण कषाय है । यह कषाय चार मास तक बना रहता है । इस के उदय से मनुष्य गति योग्य कर्मों का बन्ध होता है ।

४. संज्वलन - जो कषाय परीषह तथा उपसर्ग के आ जाने पर मुनियों को भी थोड़ा सा जलाता है । अर्थात् उन पर भी थोड़ा सा असर दिखाता है। उसे संज्वलन कषाय कहते हैं। यह कषाय सर्व विरति रूप साधु धर्म में बाधा नहीं पहुँचाता। किन्तु सब से ऊँचे यथाख्यात चारित्र में बाधा पहुँचाता है। यह कषाय एक पक्ष तक बना रहता है और इससे देवगति योग्य कर्मों का बन्ध होता है ।

ऊपर जो कषायों की स्थिति एवं नरकादि गति दी गई है । वह बाहुल्यता की अपेक्षा से हैं । क्योंकि बाहुबलि मुनि को संज्वलन कषाय एक वर्ष तक रहा था और प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के अनन्तानुबन्धी कषाय अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहा था । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषाय के रहते हुए मिथ्या दृष्टियों का नवग्रैवेयक तक में उत्पन्न होना शास्त्र में वर्णित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नोट – ऊपर जो कषाय की स्थिति (जीवपर्यन्त, एक वर्ष, चार मास और एक पक्ष) बतलाई गयी है यह लोक व्यवहार और टीकाकारों की मान्यता अनुसार है। आगमानुसार तो चारों कषाय की स्थिति अन्तर्मुहूर्त तक की ही होती है।

क्रोध के चार भेद और उनकी उपमाएं – १. अनन्तानुबन्धी क्रोध २. अप्रत्याख्यान क्रोध ३. प्रत्याख्यानावरण क्रोध ४. संज्वलन क्रोध ।

१. अनन्तानुबन्धी क्रोध – पर्वत के फटने पर जो दरार होती है । उसका मिलना कठिन है । उसी प्रकार जो क्रोध किसी उपाय से भी शान्त नहीं होता । वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है ।

२. अप्रत्याख्यान क्रोध – सूखे तालाब आदि में मिट्टी के फट जाने पर दरार हो जाती है। परन्तु जब दुबारा वर्षा होती है । तब वह दरार फिर मिल जाती है । उसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त होता है । वह अप्रत्याख्यान क्रोध है ।

३. प्रत्याख्यानावरण क्रोध – बालू में लकीर खींचने पर कुछ समय में हवा से वह लकीर वापिस भर जाती है । उसी प्रकार जो क्रोध कुछ उपाय से शान्त हो । वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध है ।

४. संज्वलन क्रोध – पानी में खींची हुई लकीर जैसे खिंचने के साथ ही मिट जाती है । उसी प्रकार किसी कारण से उदय में आया हुआ जो क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जावे । उसे संज्वलन क्रोध कहते हैं ।

मान के चार भेद और उनकी उपमाएं – १. अनन्तानुबन्धी मान २. अप्रत्याख्यान मान ३. प्रत्याख्यानावरण मान ४. संज्वलन मान ।

१. अनन्तानुबन्धी मान – जैसे पत्थर का खम्भा अनेक उपाय करने पर भी नहीं नमता । उसी प्रकार जो मान किसी भी उपाय से दूर न किया जा सके वह अनन्तानुबन्धी मान है ।

२. अप्रत्याख्यान मान – जैसे हड्डी अनेक उपायों से नमती है । उसी प्रकार जो मान अनेक उपायों और अति परिश्रम से दूर किया जा सके । वह अप्रत्याख्यान मान है ।

३. प्रत्याख्यानावरण मान – जैसे काष्ठ, तैल वगैरह की मालिश से नम जाता है । उसी प्रकार जो मान थोड़े उपायों से नमाया जा सके, वह प्रत्याख्यानावरण मान है ।

४. संज्वलन मान – जैसे बेंत बिना मेहनत के सहज ही नम जाती है । उसी प्रकार जो मान सहज ही छूट जाता है वह संज्वलन मान है ।

माया के चार भेद और उन की उपमाएं – १. अनन्तानुबन्धी माया २. अप्रत्याख्यान माया ३. प्रत्याख्यानावरण माया ४. संज्वलन माया ।

१. अनन्तानुबन्धी माया – जैसे बांस की कठिन जड़ का टेढ़ापन किसी भी उपाय से दूर नहीं किया जा सकता । उसी प्रकार जो माया किसी भी प्रकार दूर न हो, अर्थात् सरलता रूप में परिणत न हो । वह अनन्तानुबन्धी माया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अप्रत्याख्यान माया - जैसे मेंढे का टेढ़ा सींग अनेक उपाय करने पर बड़ी मुश्किल से सीधा होता है । उसी प्रकार जो माया अत्यन्त परिश्रम से दूर की जा सके । वह अप्रत्याख्यान माया है ।

३. प्रत्याख्यानावरण माया - जैसे चलते हुए बैल के मूत्र की टेढ़ी लकीर सूख जाने पर पवनादि से मिट जाती है । उसी प्रकार जो माया सरलता पूर्वक दूर हो सके, वह प्रत्याख्यानावरण माया है ।

४. संज्वलन माया - छीले जाते हुए बांस के छिलके का टेढ़ापन बिना प्रयत्न के सहज ही मिट जाता है। उसी प्रकार जो माया बिना परिश्रम के शीघ्र ही अपने आप दूर हो जाय। वह संज्वलन माया है।

लोभ के चार भेद और उनकी उपमाएं - १. अनन्तानुबन्धी लोभ २. अप्रत्याख्यान लोभ ३. प्रत्याख्यानावरण लोभ ४. संज्वलन लोभ ।

१. अनन्तानुबन्धी लोभ - जैसे किरमची रङ्ग किसी भी उपाय से नहीं छूटता, उसी प्रकार जो लोभ किसी भी उपाय से दूर न हो । वह अनन्तानुबन्धी लोभ है ।

२. अप्रत्याख्यान लोभ - जैसे गाड़ी के पहिए का कीटा (खञ्जन) परिश्रम करने पर अतिकष्ट पूर्वक छूटता है । उसी प्रकार जो लोभ अति परिश्रम से कष्ट पूर्वक दूर किया जा सके । वह अप्रत्याख्यान लोभ है ।

३. प्रत्याख्यानावरण लोभ - जैसे दीपक का काजल साधारण परिश्रम से छूट जाता है । उसी प्रकार जो लोभ कुछ परिश्रम से दूर हो । वह प्रत्याख्यानावरण-लोभ है ।

४. संज्वलन लोभ - जैसे हल्दी का रंग सहज ही छूट जाता है । उसी प्रकार जो लोभ आसानी से स्वयं दूर हो जाय वह संज्वलन लोभ है ।

क्रोध के चार प्रकार - १. आभोग निवर्तित २. अनाभोग निवर्तित ३. उपशान्त ४. अनुपशान्त ।

१. आभोग निवर्तित - पुष्ट कारण होने पर यह सोच कर कि ऐसा किये बिना इसे शिक्षा नहीं मिलेगी । जो क्रोध किया जाता है । वह आभोग निवर्तित क्रोध है । अथवा क्रोध के विपाक को जानते हुए जो क्रोध किया जाता है वह आभोग निवर्तित क्रोध है ।

२. अनाभोग निवर्तित - जब कोई पुरुष यों ही गुण दोष का विचार किये बिना परवश होकर क्रोध कर बैठता है । अथवा क्रोध के विपाक को न जानते हुए क्रोध करता है तो उस का क्रोध अनाभोग निवर्तित क्रोध है ।

३. उपशान्त - जो क्रोध सत्ता में हो, लेकिन उदयावस्था में न हो वह उपशान्त क्रोध है ।

४. अनुपशान्त - उदयावस्था में रहा हुआ क्रोध अनुपशान्त क्रोध है ।

इसी प्रकार माया, मान और लोभ के भी चार चार भेद होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म प्रकृतियों का उपचय आदि

जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्म पयडीओ चिणिंसु तंजहा - कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोहेणं, एवं जाव वेमाणियाणं । एवं चिणंति एस दंडओ, एवं चिणिस्संति एस दंडओ, एवमेएणं तिण्णि दंडगा । एवं उवचिणिंसु उवचिणंति उवचिणिस्संति, बंधिंसु, बंधंति, बंधिस्संति, उदीरिंसु, उदीरिंति, उदीरिस्संति, वेदेंसु, वेदंति, वेदिस्संति, णिज्जरेंसु णिज्जरेंति णिज्जरिस्संति जाव वेमाणियाणं, एवमेक्केक्के पए तिण्णि तिण्णि दंडगा भाणियव्वा जाव णिज्जरिस्संति ।

चार प्रकार की प्रतिमाएँ

चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा- समाहि पडिमा, उवहाण पडिमा, विवेग पडिमा, विउस्सग्ग पडिमा । चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वओ भद्दा । चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - खुड्डिया मोयपडिमा, महल्लिया मोयपडिमा, जवमज्झा, वइरमज्झा ॥ १३३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **कम्मपयडीओ** - कर्मों की प्रकृतियाँ, **समाहि पडिमा** - समाधि पडिमा, **उवहाण पडिमा** - उपधान पडिमा, **विउस्सग्ग पडिमा** - व्युत्सर्ग पडिमा, **भद्दा** - भद्रा, **सुभद्दा** - सुभद्रा, **महाभद्दा**- महाभद्रा, **सव्वओभद्दा** - सर्वतोभद्रा, **खुड्डिया मोयपडिमा** - क्षुद्र मोक पडिमा, **महल्लिया मोयपडिमा**- महती मोक पडिमा, **जवमज्झा** - यवमध्या, **वइरमज्झा** - वज्रमध्या ।

भावार्थ - जीवों ने क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों में आठों ही कर्मों की प्रकृतियों का संचय किया था, संचय करते हैं और संचय करेंगे । इस प्रकार भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों काल सम्बन्धी कथन कर देना चाहिए और इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में कथन कर देना चाहिए । इसी प्रकार उपचय किया है था, करते हैं और करेंगे । बन्ध किया था, करते हैं और करेंगे । उदीरणा की थी, करते हैं और करेंगे । वेदन किया था, करते हैं और करेंगे । निर्जरा की थी, करते हैं और करेंगे। इस प्रकार निर्जरा की थी, निर्जरा करते हैं, निर्जरा करेंगे। इस क्रिया पद तक प्रत्येक में भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों काल सम्बन्धी कथन कर देना चाहिये । नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में उपरोक्त प्रकार से कथन कर देना चाहिए ।

चार प्रकार की पडिमाएं कही गई हैं यथा - श्रुत चारित्र विषयक प्रतिज्ञा सो समाधि पडिमा, उपधान आदि तप विषयक प्रतिज्ञा सो उपधान पडिमा, अशुद्ध आहार पानी आदि का त्याग करना सो विवेकपडिमा और कायोत्सर्ग करना सो व्युत्सर्गपडिमा। चार प्रकार की पडिमाएं कही गई हैं यथा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. भद्रा यानी पूर्व आदि चारों दिशाओं में प्रत्येक में चार चार पहर कायोत्सर्ग करना यानी सोलह पहर तक कायोत्सर्ग करना। यह पडिमा दो दिन में पूर्ण होती है। २. सुभद्रा। ३. महाभद्रा यानी चारों दिशाओं में आठ आठ पहर तक कायोत्सर्ग किया जाता है। यह पड़िमा चार दिन में पूर्ण होती है। ४. सर्वतोभद्रा यानी दशों दिशाओं में चार चार पहर तक कायोत्सर्ग किया जाता है। यह पडिमा दस दिनों में पूर्ण होती है ।

चार प्रकार की पडिमाएं कही गई हैं यथा - क्षुद्र यानी लघु मोकपडिमा, यह सोलह भक्त यानी सात दिन में पूर्ण होती है । महती मोकपडिमा, यह अठारह भक्त यानी आठ उपवास में पूर्ण होती है । यवमध्या। जैसे जौ दोनों किनारों पर पतला और बीच में मोटा होता है उसी तरह आहार की दत्ति अथवा कवलों की संख्या क्रमशः बढाई जावे और बीच में पहुंच कर फिर क्रमशः घटाई जावे वह यवमध्य पडिमा कहलाती है । वज्रमध्या, जो वज्र की तरह दोनों किनारों पर मोटी हो किन्तु बीच में पतली हो वह वज्रमध्यपडिमा कहलाती है ।

विवेचन - उदीरेइ का अर्थ है - उदीरणा करना । अथवा उपशान्त हुए क्रोधादिक को फिर उदीरणा करना यानी जागृत करना । अथवा बन्धे हुए कर्मों की उदीरणा करना । पडिमा यानी प्रतिज्ञा, अभिग्रह विशेष । उपरोक्त सूत्र में ४-४ प्रकार की पडिमाओं का कथन किया गया है । सुभद्रा पडिमा के लिए टीकाकार श्री अभयदेवसूरि लिखते हैं "**सुभद्राऽप्येवंभूतैव सम्भाव्यते, न च दृष्टेति न लिखितेति**" अर्थात् सुभद्रापडिमा भी भद्रा पडिमा के समान ही मालूम पड़ती है किन्तु सुभद्रापडिमा का स्वरूप हमारे देखने में नहीं आया है । इसलिए मैंने इसका स्वरूप नहीं लिखा है ।

अस्तिकाय-अजीवकाय

चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता तंजहा - धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए । चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता तंजहा- धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए ।

फल और मनुष्य

चत्तारि फला पण्णत्ता तंजहा - आमे णाममेगे आममहुरे, आमे णाममेगे पक्कमहुरे, पक्के णाममेगे आममहुरे, पक्केणाममेगे पक्कमहुरे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आमे णाममगे आममहुरफलसमाणे ।

सत्य व झूठ

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते तंजहा - काउज्जुयया, भासुज्जुयया, भावुज्जुयया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अविसंवायणाजोगे । चउव्विहे मोसे पण्णत्ते तंजहा - काय अणुज्जुयया, भास अणुज्जुयया, भाव अणुज्जुयया, विसंवायणाजोगे।

प्रणिधान

चउव्विहे पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणपणिहाणे, वइपणिहाणे, कायपणिहाणे, उवगरणपणिहाणे, एवं णेरइयाणं पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं । चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणसुप्पणिहाणे जाव उवगरणसुप्पणिहाणे । एवं संजयमणुस्साण वि । चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा - मणदुप्पणिहाणे जाव उवगरणदुप्पणिहाणे, एवं पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं॥ १३४॥

कठिन शब्दार्थ - अत्थिकाया - अस्तिकाय, **अरूविकाया** - अरूपीकाय, **आमे** - अपक्व-कच्चा, **पक्कमहुरे** - पके फल के समान मीठा, **काउज्जुयया** - काय ऋजुकता-काया की सरलता, **भासुज्जुयया**- भाषा की सरलता, **भावुज्जुयया** - भावों की सरलता, **अविसंवायणा जोग** - अविसंवादन योग-स्वीकार की हुई प्रतिज्ञा का यथार्थ रूप से पालन करना, **अणुज्जुयया** - वक्रता, **विसंवायणाजोगे** - विसंवादना योग, **पणिहाणे** - प्रणिधान-प्रयोग, **उवगरणपणिहाणे** - उपकरण प्रणिधान, **दुप्पणिहाणे** - दुष्प्रणिधान, **सुप्पणिहाणे** - सुप्रणिधान।

भावार्थ - चार अस्तिकाय अजीव कही गई हैं यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। चार अस्तिकाय अरूपी कही गई हैं यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय।

चार प्रकार के फल कहे गये हैं यथा - कोई एक फल कच्चा होता है परन्तु कुछ मीठा होता है। कोई एक फल कच्चा होता है किन्तु पक्के फल के समान अत्यन्त मीठा होता है । कोई एक फल पक्का होता है किन्तु कुछ मीठा होता है । कोई एक फल पक्का होता है और अत्यन्त मीठा होता है । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष वय और श्रुत की अपेक्षा छोटा और अपक्व मधुरफल समान यानी अल्प उपशमादि गुण वाला । एक पुरुष वय और श्रुत की अपेक्षा छोटा किन्तु प्रधान उपशमादि गुण युक्त । एक पुरुष वय और श्रुत की अपेक्षा बड़ा किन्तु अल्प उपशमादि गुण वाला । एक पुरुष वय और श्रुत की अपेक्षा बड़ा और प्रधान उपशम आदि गुण वाला ।

चार प्रकार का सत्य कहा गया है यथा - काय ऋजुकता यानी काया की सरलता, भाषा की सरलता, भावों की सरलता और अविसंवादन योग यानी स्वीकार की हुई बात का यथार्थ रूप से पालन करना । चार प्रकार का झूठ कहा गया है यथा - काया की वक्रता, भाषा की वक्रता, भावों की वक्रता और विसंवादनायोग यानी स्वीकार की हुई प्रतिज्ञा का यथार्थ रूप से पालन न करना। चार प्रकार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रणिधान यानी प्रयोग कहा गया है यथा - मन प्रणिधान, वचन प्रणिधान, काय प्रणिधान और उपकरण प्रणिधान । इसी प्रकार ये चारों प्रणिधान नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक सब पञ्चेन्द्रियों में पाये जाते हैं, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में ये चारों नहीं पाये जाते हैं । चार प्रकार के सुप्रणिधान कहे गये हैं। यथा - मन सुप्रणिधान यावत् उपकरण सुप्रणिधान । इस प्रकार ये चार सुप्रणिधान सिर्फ संयत मनुष्यों में ही पाये जाते हैं । चार प्रकार के दुष्प्रणिधान कहे गये हैं । यथा - मनदुष्प्रणिधान यावत् उपकरण दुष्प्रणिधान इस प्रकार ये चारों दुष्प्रणिधान नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी पञ्चेन्द्रियों में पाये जाते हैं । एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में ये चारों नहीं पाये जाते हैं ।

विवेचन - यहाँ पर 'अस्ति' शब्द का अर्थ प्रदेश है और काय का अर्थ है राशि । प्रदेशों की राशि वाले द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं। चार अस्तिकाय अचेतन होने से अजीवकाय कही गयी है । यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय । अस्तिकाय मूर्त्त और अमूर्त्त होती है। अतः अमूर्त्त अस्तिकाय के प्रतिपादन के लिये अरूपी अस्तिकाय का सूत्र कहा है जो चार प्रकार की कही गयी है। यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय।

प्रणिधि - प्रणिधान अर्थात् प्रयोग। प्रणिधान चार प्रकार का कहा है - १. मन प्रणिधान - आर्त्त, रौद्र, धर्म आदि रूप मन का प्रयोग मन प्रणिधान, इसी प्रकार २. वचन प्रणिधान और ३. काय प्रणिधान जानना चाहिए ४. उपकरण - लौकिक और लोकोत्तर रूप वस्त्र पात्रादि संयम और असंयम के उपकार के लिये प्रणिधान - प्रयोग, उपकरण प्रणिधान है। जिस प्रकार नैरयिकों के लिये कहा गया है उसी प्रकार वैमानिक, पर्यन्त जो पंचेन्द्रिय हैं उनके लिए भी चार प्रणिधान कहे हैं। एकेन्द्रिय आदि में मन संभव नहीं होने से प्रणिधान भी असंभव है। सुप्रणिधान और दुष्प्रणिधान के भेद से प्रणिधान दो प्रकार का कहा गया है। संयम के शुभ हेतु के लिये मन आदि का व्यापार सुप्रणिधान है। सुप्रणिधान चारित्र की परिणति रूप होने से संयतियों में ही होता है असंयम के लिये मन आदि का व्यापार दुष्प्रणिधान है।

पुरुष विश्लेषण

चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - आवायभद्दए णाममेगे णो संवासभद्दए, संवासभद्दए णाममेगे णो आवायभद्दए, एगे आवायभद्दए वि संवासभद्दए वि, एगे णो आवायभद्दए णो वा संवासभद्दए । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अप्पणो णाममेगे वज्जं पासइ णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं पासइ । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ णो परस्स । अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेइ णो परस्स । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अब्भुट्ठेइ णाममेगे णो अब्भुट्ठावेइ । एवं वंदइ णाममेगे णो वंदावेइ एवं सक्कारेइ, सम्माणेइ, पूएइ, वाएइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिपुच्छइ, पुच्छइ, वागरेइ । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सुत्तधरे णाममेगे णो अत्थधरे, अत्थधरे णाममेगे णो सुत्तधरे॥ १३५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **आवायभद्दे** - आपात भद्र-पहली बार मिलने में अच्छे, **संवासभद्दए** - चिरकाल तक साथ रहने पर अच्छे, **अप्पणो** - अपनी आत्मा का, **वज्जं** - वर्ज्य, **परस्स** - दूसरे का, **उदीरेइ** - उदीरणा करता है, **उवसामेइ** - उपशांत करता है, **अब्भुट्ठेइ** - अभ्युत्थान-स्वयं खड़ा होता है, **वाएइ** - वाचना देता है, **पडिपुच्छइ** - बार बार प्रश्न करता है, **वागरेइ** - उत्तर देता है, **सुत्तधरे** - सूत्रधर, **अत्थधरे**- अर्थधर ।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कितनेक पुरुष आपात भद्र यानी पहली बार मिलने में तो अच्छे होते हैं किन्तु चिरकाल तक साथ रहने पर अच्छे नहीं निकलते हैं । कितनेक पुरुष चिरकाल तक साथ रहने पर अच्छे निकलते हैं किन्तु पहले मिलने के समय अच्छे नहीं निकलते हैं । कितनेक पुरुष पहले मिलने के समय भी अच्छे निकलते हैं और चिर काल तक साथ रहने पर भी अच्छे ही निकलते हैं । कितनेक पुरुष न तो प्रथम मिलने के समय अच्छे होते हैं और न चिर काल तक साथ रहने पर ही अच्छे निकलते हैं । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का दोष देखता है किन्तु दूसरे का दोष नहीं देखता है । कोई एक पुरुष दूसरे का दोष देखता है किन्तु अपना दोष नहीं देखता है । कोई एक पुरुष अपना दोष भी देखता है और दूसरे का भी दोष देखता है। कोई एक पुरुष अपना भी दोष नहीं देखता और दूसरे का भी दोष नहीं देखता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपना दोष प्रकट करता है किन्तु दूसरे का दोष प्रकट नहीं करता है । कोई एक पुरुष दूसरे का दोष प्रकट करता है किन्तु अपना दोष प्रकट नहीं करता है । कोई एक पुरुष अपना भी दोष प्रकट करता है और दूसरे का भी दोष प्रकट करता है कोई एक पुरुष न तो अपना दोष प्रकट करता है और न दूसरे का दोष प्रकट करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा के दोष को उपशान्त करता है किन्तु दूसरे के दोष को उपशान्त नहीं करता है । कोई एक पुरुष दूसरे के दोष को उपशान्त करता है किन्तु अपनी आत्मा के दोष को उपशान्त नहीं करता है । कोई एक पुरुष अपनी आत्मा के और दूसरे के दोनों के दोष को उपशान्त करता है। कोई पुरुष अपनी आत्मा के और दूसरे के दोनों के दोष को उपशान्त नहीं करता है। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष स्वयं खड़ा होता है किन्तु दूसरे को खड़ा नहीं करता है, जैसे छोटी दीक्षा वाला साधु । कोई एक पुरुष स्वयं खड़ा नहीं होता है किन्तु दूसरों को खड़ा करता है, जैसे गुरु आदि । कोई स्वयं भी खड़ा होता है और दूसरों को भी खड़ा करता है, जैसे बीच की दीक्षा वाला साधु। कोई एक पुरुष स्वयं भी खड़ा नहीं होता है और दूसरों को भी खड़ा नहीं करता है, जैसे जिनकल्पी साधु अथवा अविनीत साधु । इसी प्रकार कोई एक पुरुष वन्दना करता है किन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों से वन्दना नहीं करवाता है। इसकी चौभंगी कह देनी चाहिए। इसी प्रकार सत्कार करता है, सन्मान करता है, पूजा करता है, वाचना देता है, बार बार प्रश्न करता है अथवा सूत्रार्थ ग्रहण करता है, प्रश्न पूछता है और प्रश्न का उत्तर देता है। इन सब की पृथक् पृथक् चौभङ्गियाँ कह देनी चाहिए । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक पुरुष सूत्रधर है किन्तु अर्थधर नहीं है । कोई एक पुरुष अर्थधर है किन्तु सूत्रधर नहीं है। कोई एक पुरुष सूत्रधर भी है और अर्थधर भी है । कोई एक पुरुष न तो सूत्रधर है और न अर्थधर है ।

इन्द्रों के लोकपाल, देव प्रकार, प्रमाण

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता तंजहा - सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे । एवं बलिस्स वि सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे । धरणस्स कालपाले कोलपाले सेलपाले, संखपाले, एवं भूयाणंदस्स चत्तारि कालपाले, कोलपाले, संखपाले, सेलपाले, वेणुदेवस्स चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे। वेणुदालिस्स चित्ते विचित्ते विचित्तपक्खे, चित्तपक्खे । हरिकंतस्स पभे, सुप्पभे, पभकंते, सुप्पभकंते । हरिस्सहस्स पभे, सुप्पभे, सुप्पभकंते, पभकंते । अग्गिसिहस्स तेऊ, तेउसिहे, तेउकंते, तेउप्पभे । अग्गिमाणवस्स तेऊ, तेउसिहे तेउप्पभे, तेउकंते । पुण्णस्स रूए रूयंसे रूयकंते रूयप्पभे । एवं विसिट्ठस्स रूए, रूयंसे, रूयप्पभे, रूयकंते । जलकंतस्स जले जलरए जलकंते जलप्पभे । जलप्पहस्स जले जलरए जलप्पभे, जलकंते । अमियगइस्स तुरियगई खिप्पगई सीहगई सीह विक्कमगई । अमियवाहणस्स तुरियगई खिप्पगई, सीहविक्कमगई, सीहगई । वेलंबस्स काले, महाकाले, अंजणे, रिट्ठे । पभंजणस्स काले, महाकाले रिट्ठे अंजणे । घोसस्स आवत्ते, वियावत्ते, णंदियावत्ते, महाणंदियावत्ते । महाघोसस्स आवत्ते वियावत्ते, महाणंदियावत्ते, णंदियावत्ते । सक्कस्स सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे । ईसाणस्स सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे । एवं एगंतरिया जाव अच्चुयस्स । चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता तंजहा - काले महाकाले वेलंबे पभंजणे । चउव्विहा देवा पण्णत्ता तंजहा - भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, विमाणवासी । चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते तंजहा - दव्वप्पमाणे, खित्तप्पमाणे, कालप्पमाणे, भावप्पमाणे॥ १३६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सोमे** - सोम, **जमे** - यम, **वरुणे** - वरुण, **वेसमणे** - वैश्रमण, **बलिस्स** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर दिशा के इन्द्र बली के, **भूयाणंदस्स** - भूतानन्द के, **विचित्तपक्खे** - विचित्रपक्ष, **सुप्पभकंते**- सुप्रभकांत, **अग्गिमाणवस्स** - अग्निमाणवक के, **महाणंदियावत्ते** - महा नंदियावर्त्त, **एगंतरिया** - एकान्तरित-एक के बाद दूसरे देवलोकों के, **दव्वप्पमाणे** - द्रव्य प्रमाण, **खित्तप्पमाणे** - क्षेत्र प्रमाण, **कालप्पमाणे** - काल प्रमाण, **भावप्पमाणे** - भाव प्रमाण ।

भावार्थ - असुरकुमारों के राजा एवं असुरकुमारों के इन्द्र दक्षिण दिशा में रहे हुए चमर के चार लोकपाल कहे गये हैं । यथा - सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । इसी प्रकार उत्तरदिशा में रहे हुए बलीन्द्र के भी चार लोकपाल कहे गये हैं । यथा - सोम, यम, वैश्रमण और वरुण ।

धरणेन्द्र के चार लोकपाल हैं। यथा - कालपाल, कोलपाल, शैलपाल, शंखपाल । इसी प्रकार भूतानन्द के चार लोकपाल कहे गये हैं । यथा - कालपाल, कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल । वेणुदेव के चार लोकपाल हैं । यथा - चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष । वेणुदार या वेणुफल के चार लोकपाल हैं । यथा-चित्र विचित्र, विचित्रपक्ष और चित्रपक्ष । हरिकान्त के चार लोकपाल हैं । यथा - प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त और सुप्रभकान्त । हरिसह के चार लोकपाल हैं । यथा - प्रभ, सुप्रभ, सुप्रभकान्त और प्रभकान्त । अग्निशिख के चार लोकपाल हैं । यथा - तेज, तेजशिख, तेजकाल और तेजप्रभ । अग्निमाणवक के चार लोकपाल हैं । यथा - तेज, तेजशिख, तेजप्रभ और तेजकान्त । पुण्य के चार लोकमाल हैं । यथा- रुच, रुचांश, रुचकान्त और रुचप्रभ । इसी प्रकार वशिष्ठ के चार लोकपाल हैं । यथा - रुच, रुचांश, रुचप्रभ और रुचकान्त । जलकान्त के चार लोकपाल हैं । यथा - जल, जलरत, जलकान्त और जलप्रभ । जलप्रभ के चार लोकपाल हैं । यथा - जल, जलरत, जलप्रभ और जलकान्त । अमितगति के चार लोकपाल हैं । यथा - त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति और सिंहविक्रमगति । अमितवाहन के चार लोकपाल हैं । यथा - त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहविक्रमगति और सिंहगति । वेलम्ब के चार लोकपाल हैं । यथा - काल, महाकाल, अञ्जन और अरिष्ट । प्रभञ्जन के चार लोकपाल हैं । यथा - काल, महाकाल, अरिष्ट और अञ्जन । घोष के चार लोकपाल हैं । यथा - आवर्त्त, व्यावर्त्त, नंदियावर्त्त महानंदियावर्त्त । महाघोष के चार लोकपाल हैं । यथा - आवर्त्त व्यावर्त्त महानंदियावर्त्त और नंदियावर्त्त। ये भवनपति देवों के बीस इन्द्रों के नाम कहे गये हैं ।

नवें आणत और दसवें प्राणत इन दोनों देवलोकों का प्राणत नामक एक ही इन्द्र होता है। इसी प्रकार ग्यारहवें आरण और बारहवें अच्युत इन दोनों देवलोकों का अच्युत नामक एक ही इन्द्र होता है। इस तरह वैमानिक देवों के बारह देवलोकों के दस इन्द्र होते हैं ।

पहले देवलोक के इन्द्र शक्र के चार लोकपाल हैं । यथा - सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । दूसरे देवलोक के इन्द्र ईशान के चार लोकपाल हैं । यथा - सोम, यम, वैश्रमण और वरुण । इसी प्रकार एकान्तरित अर्थात् एक के बाद दूसरे देवलोकों के यावत् अच्युत नामक बारहवें देवलोक तक के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रों के लोकपालों के नाम होते हैं । अर्थात् तीसरे सनत्कुमार, पांचवें ब्रह्मलोक, सातवें शुक्र ◆ नवें दसवें देवलोक के इन्द्र प्राणत, इन चार इन्द्रों के प्रत्येक के लोकपालों के नाम ये हैं - सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । चौथे माहेन्द्र, छठे लान्तक, आठवें सहस्रार और ग्यारहवें बारहवें देवलोक के इन्द्र अच्युत, इन चार इन्द्रों के प्रत्येक के लोकपालों के नाम ये हैं - सोम, यम, वैश्रमण और वरुण ।

चार प्रकार के वायुकुमार देव कहे गये हैं । यथा - काल, महाकाल, वेलम्ब और प्रभञ्जन, ये चारों देव पाताल कलशों के स्वामी हैं । चार प्रकार के देव कहे गये हैं । यथा - भवनवासी, वाणव्यन्तर ज्योतिषी और विमानवासी यानी वैमानिक देव ।

चार प्रकार का प्रमाण कहा गया है । यथा - द्रव्य प्रमाण जिससे जीवादि द्रव्यों का परिमाण किया जाय । क्षेत्र प्रमाण, जिससे आकाश का परिमाण जाना जाय । काल प्रमाण, जिससे समय आवलिका आदि काल का विभाग जाना जाय और भाव प्रमाण, जिससे जीव के गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र का तथा नैगमादि नय और संख्या आदि का ज्ञान किया जाय वह भावप्रमाण है ।

विवेचन - दक्षिण दिशा के इन्द्र के लोकपालों में जो तीसरा नाम है वह उत्तर दिशा के इन्द्र के लोकपालों में चौथा होता है और जो चौथा नाम है वह तीसरा होता है ।

दिक्कुमारियाँ, विद्युतकुमारियाँ

चत्तारि दिसाकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - रूया, रूयंसा, सुरूवा, रूयावई । चत्तारि विज्जुकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - चित्ता, चित्तकणगा, सतेरा, सोयामणी ।

मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति, संसार भेद

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिम परिसाए देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो मज्झिम परिसाए देवीणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । चउव्विहे संसारे पण्णत्ते तंजहा - दव्वसंसारे, खेत्तसंसारे, कालसंसारे, भाव संसारे॥ १३७ ॥

कठिन शब्दार्थ - दिसाकुमारी महत्तरियाओ - दिक्कुमारी महत्तरिका-प्रधान दिशाकुमारियाँ, **विज्जुकुमारि महत्तरियाओ**- विद्युत्कुमारी महत्तरिका-प्रधान विद्युतकुमारियाँ, **मज्झिम परिसाए** -

---

◆ नवें आणत और दसवें प्राणत इन दोनों देवलोकों का प्राणत नामक एक ही इन्द्र होता है । इसी प्रकार ग्यारहवें आरण और बारहवें अच्युत इन दोनों देवलोकों का अच्युत नामक एक ही इन्द्र होता है । इस तरह वैमानिक देवों के बारह देवलोकों के दस इन्द्र होते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मध्यम परिषदा के, **दव्वसंसारे** – द्रव्य संसार, **खेत्तसंसारे** – क्षेत्र संसार, **काल संसारे** – काल संसार, **भावसंसारे**– भाव संसार।

भावार्थ – चार प्रधान दिशाकुमारियाँ कही गई हैं । यथा – रुचा, रुचांशा, सुरुपा और रुचावती । ये मध्यरुचक पर रहती हैं और तीर्थङ्कर के जन्म समय में उपस्थित होकर नाल छेदन करती हैं । चार प्रधान विद्युत्कुमारियाँ कही गई हैं । यथा – चित्रा, चित्रकनका, सतेरा अथवा श्रेयांशा और सौदामिनी । ये विदिग् रुचक पर रहती हैं । तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय में वहाँ उपस्थित होती हैं और हाथों में दीपक लेकर चारों दिशाओं में खड़ी रह कर गाती हैं ।

देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्र की मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति चार पल्योपम कही गई हैं। देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशान की मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति चार पल्योपम कही गई हैं। चार प्रकार का संसार कहा गया है। यथा– जीव पुद्गल आदि द्रव्यों का परिभ्रमण सो द्रव्य संसार, चौदह राजुलोक परिमाण संसार में परिभ्रमण सो क्षेत्र संसार, दिन रात यावत् पल्योपम सागरोपम तक परिभ्रमण करना सो काल संसार और औदयिक आदि भावों का परिणमन सो भावसंसार है ।

दृष्टिवाद, प्रायश्चित्त

चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते तंजहा - परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगए अणुजोगे । चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते, चरित्तपायच्छित्ते, चियत्तकिच्चे पायच्छित्ते। चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - परिसेवणा पायच्छित्ते, संजोयणा पायच्छित्ते, आरोवणा पायच्छित्ते, पलिउंचणा पायच्छित्ते॥ १३८ ॥

कठिन शब्दार्थ – **दिट्ठिवाए** – दृष्टिवाद, **परिकम्मं** – परिकर्म, **सुत्ताइं** – सूत्र, **पुव्वगए** – पूर्व गत, **अणुजोगे** – अनुयोग, **पायच्छित्ते** – प्रायश्चित्त, **चियत्तकिच्चे** – व्यक्त कृत्य प्रायश्चित्त, **परिसेवणा** – प्रतिसेवना, **संजोयणा** – संयोजना, **आरोवणा** – आरोपना, **पलिउंचणा** – परिकुञ्चना, परिवंचना ।

भावार्थ – चार प्रकार का दृष्टिवाद कहा गया है यथा – परिकर्म – इसमें सूत्र आदि ग्रहण करने की योग्यता विषयक वर्णन है । सूत्र – इसमें द्रव्य, पर्याय और नय आदि का वर्णन है। पूर्वगत – इसमें उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्वों का वर्णन है । अनुयोग – इसमें अनुयोगों का वर्णन है।

चार प्रकार का प्रायश्चित्त कहा गया है । यथा ज्ञान प्रायश्चित्त यानी ज्ञान के अतिचारों की आलोचना, दर्शन प्रायश्चित्त यानी दर्शन के अतिचारों की आलोचना। चारित्र प्रायश्चित्त यानी चारित्र विषयक अतिचारों की आलोचना और व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त यानी गीतार्थ के द्वारा यथावसर कम ज्यादा करके जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह उसके लिए विशुद्धि करने वाला होता है। अथवा अवस्था एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिस्थिति के अनुसार जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त है। चार प्रकार का प्रायश्चित्त कहा गया है। यथा - बार बार सेवन किये गये अनाचरणीय कार्य का प्रायश्चित्त सो प्रतिसेवना प्रायश्चित्त। शय्यातर पिण्ड और आधाकर्मादि दोष, इन दोनों के शामिल हो जाने पर लिया जाने वाला प्रायश्चित्त सो संयोजना प्रायश्चित्त। एक पाप कार्य की विशुद्धि के लिए लिये गये प्रायश्चित्त में फिर दोष सेवन करे । उसकी विशुद्धि के लिए फिर प्रायश्चित्त लिया जाय, इस प्रकार छह महीने तक जो प्रायश्चित्त आवे सो आरोपणा प्रायश्चित्त । अपने अपराध को छिपाना अथवा दूसरे ढंग से कहना सो परिकुञ्चना प्रायश्चित्त अथवा परिवञ्चना प्रायश्चित्त कहलाता है।

विवेचन - मूल शब्द "**दिट्ठिवाय**" है, जिसकी संस्कृत छाया दो तरह से होती है यथा - दृष्टिवाद अथवा दृष्टिपात। दृष्टि का अर्थ है दर्शन अर्थात् जिसमें अनेक दर्शनों का-मतमतान्तरों का वर्णन किया गया हो उसे दृष्टिवाद कहते हैं अर्थात् अनेक दृष्टियों की चर्या। वस्तु तत्त्व का निर्णय "**प्रमाण नयैरधिगमः**" अर्थात् प्रमाण और नयों से होता है। सम्पूर्ण वस्तु को ग्रहण करना प्रमाण का विषय है। वस्तु के एक अंश को ग्रहण करना नयों का विषय है। दृष्टिपात शब्द का अर्थ है "**दृष्टयो दर्शनानि-नया पतन्ति-अवतरन्ति यस्मिन्नसौ दृष्टिपातः**" जिसमें वस्तु तत्त्व का निर्णय अनेक नयों से किया गया हो, उसे दृष्टि पात कहते हैं। दृष्टिवाद चार प्रकार का कहा गया है -

१. परिकर्म - जो सूत्र आदि ग्रहण करने की योग्यता का संपादन करने में गणित के संस्कार की तरह समर्थ है उसे परिकर्म कहते हैं ।

२. सूत्र - जो सर्व द्रव्य, पर्याय और नय के अर्थ को सूचित करता हो उसे सूत्र कहते हैं ।

३. पूर्वगत - समस्त श्रुत में प्रथम रचित होने से पूर्व कहलाता है । पूर्व के १४ भेद हैं । पूर्व में रहा हुआ श्रुत पूर्वगत कहलाता है ।

४. अनुयोग - योग अर्थात् जोड़ना, सूत्र के अपने अभिधेय-विषय के साथ योग (जोडना) को अनुयोग कहते हैं। तीर्थंकरों के सम्यक्त्व प्राप्ति और उनके पूर्व भव आदि का जिसमें वर्णन है वह मूल प्रथमानुयोग है। जिसमें कुलकर आदि की वक्तव्यता बतायी है वह गंडिकानुयोग है।

यद्यपि दृष्टिवाद के पांच भेद हैं। पांचवां भेद चुलिका है परन्तु यहाँ पर चौथा ठाणां होने के कारण चार भेद ही लिये गये हैं। पांचवें ठाणें में पाँचों भेदों का वर्णन किया जायेगा।

प्रायश्चित्त - संचित पाप को छेदन करना प्रायश्चित्त है । अथवा अपराध से मलिन चित्त को प्रायः शुद्ध करने वाला जो द्रव्य है वह प्रायश्चित्त है । प्रायश्चित्त चार प्रकार के हैं - १. ज्ञान प्रायश्चित्त २. दर्शन प्रायश्चित्त ३. चारित्र प्रायश्चित्त ४. व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त ।

ज्ञान प्रायश्चित्त - पाप को छेदने एवं चित्त को शुद्ध करने वाला होने से ज्ञान ही प्रायश्चित्त रूप है । अतः इसे ज्ञान प्रायश्चित्त कहते हैं । अथवा ज्ञान के अतिचारों की शुद्धि के लिए जो आलोचना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि प्रायश्चित्त कहे गये हैं वह ज्ञान प्रायश्चित्त है । इसी प्रकार दर्शन प्रायश्चित्त और चारित्र प्रायश्चित्त का स्वरूप भी समझना चाहिये ।

व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त - गीतार्थ मुनि छोटे बड़े आदि का विचार कर जो कुछ प्रायश्चित देते हैं वह सभी पाप विशोधक है। इसलिये व्यक्त अर्थात् गीतार्थ का जो कृत्य है वह व्यक्त कृत्य प्रायश्चित्त है ।

प्रायश्चित्त के अन्य प्रकार से चार भेद हैं - १. प्रतिसेवना प्रायश्चित्त २. संयोजना प्रायश्चित्त ३. आरोपणा प्रायश्चित्त और ४. परिकुञ्चना प्रायश्चित्त ।

१. प्रतिसेवना प्रायश्चित्त - प्रतिषिद्ध (निषेध किये हुए) का सेवन करना अर्थात् अकृत्य का सेवन करना प्रतिसेवना है । इसमें जो आलोचना आदि प्रायश्चित्त है, वह प्रतिसेवना प्रायश्चित्त है ।

२. संयोजना प्रायश्चित्त - एक जातीय अतिचारों का मिल जाना संयोजना है । जैसे कोई साधु शय्यातर पिण्ड लाया, वह भी गीले हाथों से, वह भी सामने लाया हुआ और वह भी आधाकर्मी है । इसमें जो प्रायश्चित्त होता है वह संयोजना प्रायश्चित्त है ।

३. आरोपणा प्रायश्चित्त - एक अपराध का प्रायश्चित्त करने पर बार बार उसी अपराध को सेवन करने रूप दूसरे प्रायश्चित्त का आरोप करना आरोपणा प्रायश्चित्त है। जैसे एक अपराध के लिये पांच दिन का प्रायश्चित्त आया । फिर उसी के सेवन करने पर दस दिन का, फिर सेवन करने पर १५ दिन का । इस प्रकार ६ मास तक लगातार प्रायश्चित्त देना । छह मास से अधिक तप का प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता है।

४. परिकुञ्चना प्रायश्चित्त - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अपराध को छिपाना या उसे दूसरा रूप देना परिकुञ्चना है । इसका प्रायश्चित्त परिकुञ्चना प्रायश्चित्त कहलाता है ।

काल

चउव्विहे काले पण्णत्ते तंजहा - पमाण काले, अहाउयणिव्वत्ति काले, मरण काले, अद्धा काले ।

पुद्गल परिणाम

चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते तंजहा - वण्ण परिणामे, गंध परिणामे, रस परिणामे, फास परिणामे ।

महाव्रत

भरहेरवएसु णं वासेसु पुरिमपच्छिमवज्जा मज्झिमगा बावीसं अरिहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवेंति तंजहा - सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं । सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरिहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवेंति तंजहा - सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं जाव सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं॥ १३९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पमाण काले** - प्रमाण काल, **अहाउयणिव्वत्ति काले** - यथायुर्निर्वृत्ति काल, **पोग्गलपरिणामे** - पुद्गल परिणाम, **पुरिमपच्छिमवज्जा** - प्रथम और अंतिम तीर्थंकरों को छोड़ कर, **चाउज्जामं** - चतुर्याम, **बहिद्धादाणाओ** - बहिर्द्धादान-बाहर की वस्तु लेना, **वेरमणं** - निवृत्त होना ।

भावार्थ - चार प्रकार का काल कहा गया है। यथा - प्रमाण काल यानी मनुष्य क्षेत्र में होने वाला रात, दिन आदि काल विभाग। चारों गति के जीवों के जिस जिस गति का आयुष्य बांधा है उतने समय तक वहाँ रहना यथायुर्निर्वृत्ति काल है। बांधे हुए आयुष्य का समाप्त होना सो मरण काल है । और समय, आवलिका आदि अद्धा काल है। चार प्रकार का पुद्गल परिणाम कहा गया है। यथा - वर्ण परिणाम, गन्ध परिणाम, रस परिणाम, स्पर्श परिणाम। भरत और ऐरवत इन दो क्षेत्रों में चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम और अन्तिम इन दो तीर्थंकरों को छोड़ कर बीच के बाईस तीर्थङ्कर भगवान् चतुर्याम यानी चार महाव्रत रूप धर्म फरमाते हैं। यथा - सब प्रकार के प्राणातिपात से निवृत्त होना, सब प्रकार के मृषावाद से निवृत्त होना, सब प्रकार के अदत्तादान से निवृत्त होना और सब प्रकार की बाहर की वस्तु लेने से निवृत्त होना। सब महाविदेह क्षेत्रों में तीर्थङ्कर भगवान् चतुर्याम यानी चार महाव्रत रूप धर्म फरमाते हैं। यथा - सब प्रकार के प्राणातिपात से यावत् सब प्रकार के बहिर्द्धादान यानी बाहरी वस्तु लेने से निवृत्त होना ।

विवेचन - एक अवस्था को छोड़ कर दूसरी अवस्था को प्राप्त होना परिणाम कहलाता है ।

चातुर्याम धर्म का वर्णन करते हुए चौथे पांचवें महाव्रत के लिये मूल में "**बहिदद्धादाण**" शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसकी संस्कृत छाया होती है "**बहिर्द्धादान**" जिसका अर्थ है बाहरी वस्तु का आदान-ग्रहण करना। मैथुन सेवन करने की स्त्री आदि सामग्री भी बाहरी है और सोना-चांदी आदि वस्तुएँ भी बाहरी है इसलिए बहिर्द्धा शब्द से दोनों का ग्रहण कर लिया गया है। इस अपेक्षा से चातुर्याम शब्द का अर्थ भी पांच महाव्रत रूप ही समझना चाहिए। जैसे ३ बीसी (२०+२०+२०=६०) और ६० इन में केवल शब्दों का अन्तर है अर्थ दोनों का एक ही है। इसी तरह पंचमहाव्रत और चातुर्याम धर्म इनमें केवल शब्दों का अन्तर दिखाई देता है भावार्थ दोनों का एक ही है। इसलिए भरतक्षेत्र, ऐरवत क्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र इन तीनों क्षेत्रों के साधु साध्वी प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण और परिग्रह विरमण इन पांचों महाव्रतों का पालन करते हैं किन्तु किसी के लिये किसी भी एक महाव्रत नहीं पालने की छूट नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरत, ऐरवत क्षेत्रों में पहले एवं चौबीसवें तीर्थंकरों के सिवाय शेष २२ तीर्थंकर भगवान् चतुर्याम-चार महाव्रत रूप धर्म की प्ररूपणा करते हैं। इसी प्रकार महाविदेह क्षेत्र में भी अरिहन्त भगवान् चार महाव्रत रूप धर्म फरमाते हैं। वे चार महाव्रत इस प्रकार हैं - १. सर्व प्राणातिपात से निवृत्ति २. सर्व मृषावाद से निवृत्ति ३. सर्व अदत्तादान से निवृत्ति ४. सर्व बहिर्द्धादान यानी बाहरी वस्तु ग्रहण करने से निवृत्ति । सर्वथा मैथुन निवृत्त रूप महाव्रत का परिग्रह निवृत्ति व्रत में ही समावेश किया जाता है । क्योंकि अपरिगृहीत स्त्रियाँ आदि भोग सामग्री का उपभोग नहीं होता ।

चतुर्याम और पंचयाम रूप धर्म फरमाने का कारण बताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के केशी गौतमिय नामक तेईसवें अध्ययन में इस प्रकार फरमाया है -

पुरिमा उज्जुजड्डा उ, वंक्कजड्डा य पच्छिमा ।
मज्झिमा उज्जुपण्णा उ, तेण धम्मे दुहा कए।।

- प्रथम तीर्थंकर के साधु साध्वी सरल और जड़ (मन्द बुद्धि वाले) होते हैं। अंतिम तीर्थंकर के साधु साध्वी वक्र और जड़ होते हैं अर्थात् प्रकृति के टेढ़े और बुद्धि के मन्द होते हैं। बीच के बाईस तीर्थंकरों के साधु साध्वी प्रकृति से सरल और तीक्ष्ण बुद्धि वाले होते हैं। इस कारण से चतुर्याम और पांच महाव्रत रूप धर्म कहा है ।

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालए।
कप्पो मज्झिमगाणं तु सुविसुज्झो सुपालए।।

- प्रथम तीर्थंकर के साधु साध्वियों को धर्म दुर्बोध्य है तथा अंतिम तीर्थंकर के साधु साध्वियों को धर्म दुःख पूर्वक पालन किया जाता है और मध्य के साधु साध्वियों को धर्म सुबोध्य और सुख पूर्वक पाला जाता है ।

दुर्गति एवं सुगति, कर्मांश क्षीणता

चत्तारि दुग्गईओ पण्णत्ताओ तंजहा - णेरइय दुग्गई, तिरिक्ख जोणिय दुग्गई, मणुस्स दुग्गई, देव दुग्गई । चत्तारि सुग्गईओ पण्णत्ताओ तंजहा - सिद्ध सुग्गई, देव सुग्गई, मणुय सुग्गई, सुकुल पच्चायाई । चत्तारि दुग्गया पण्णत्ता तंजहा - णेरइय दुग्गया, तिरिक्खजोणिय दुग्गया, मणुय दुग्गया, देव दुग्गया । चत्तारि सुग्गया पण्णत्ता तंजहा - सिद्ध सुग्गया, जाव सुकुल पच्चायाया ।

पढमसमय जिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति तंजहा - णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, मोहणिज्जं, अंतराइयं । उप्पण्ण णाण दंसणधरे णं अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मंसे वेदेंति तंजहा - वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं । पढमसमय सिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति तंजहा - वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोयं ॥ १४० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सुकुल पच्चायाई - सुकुल प्रत्याजाति-देवलोक से चव कर श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होना, **पढमसमय जिणस्स** - प्रथम समय जिन-सयोगी केवली के, **कम्मंसे** - कर्मांश, **उप्पण्णणाणदंसणधरे** - केवलज्ञान केवलदर्शन को धारण करने वाले, **जुगवं** - एक साथ, **खिज्जंति** - क्षीण होती है ।

भावार्थ - चार दुर्गति कही गई है । यथा - नैरयिक दुर्गति, तिर्यञ्चयोनि दुर्गति, निन्दित मनुष्य की अपेक्षा मनुष्य दुर्गति और किल्विषिक आदि देवों की अपेक्षा देव दुर्गति। चार सुगति कही गई है यथा - सिद्ध सुगति, देव सुगति, मनुष्य सुगति और सुकुल प्रत्याजाति अर्थात् देवलोकादि में जाकर फिर वहाँ से चवने के बाद श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होना । चार दुर्गत यानी दुर्गति में उत्पन्न होने वाले कहे गये हैं यथा - नैरयिक दुर्गत, तिर्यञ्चयोनिक दुर्गत, मनुष्य दुर्गत यानी नीच कुल में उत्पन्न मनुष्य और देवदुर्गत यानी किल्विषी आदि देवों में उत्पन्न देव । चार सुगत यानी अच्छी गति वाले कहे गये हैं यथा- सिद्धसुगत यावत् मनुष्य सुगत, देवसुगत और सुकुल प्रत्याजात यानी देवलोकादि से चव कर उत्तम कुल में उत्पन्न मनुष्य ।

प्रथम समय जिन यानी सयोगी केवली के चार कर्मांश यानी कर्मों की सब प्रकृतियाँ क्षीण हो जाती है यथा - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय । केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले अरिहन्त, राग द्वेष को जीतने वाले जिन केवली भगवान् चार कर्मों की प्रकृतियों को वेदते हैं यथा - वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र । प्रथम समय में सिद्ध होने वाले केवली भगवान् के चार कर्मों की प्रकृतियाँ एक साथ क्षीण होती है यथा - वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ।

विवेचन - निंदित मनुष्य की अपेक्षा मनुष्य दुर्गति और किल्विषिक आदि देवों की अपेक्षा देव दुर्गति कही गयी है । **'सुकुल पच्चायाइ'** का अर्थ है सुकुल प्रत्याजाति अर्थात् देवलोक आदि में जाकर इक्ष्वाकु आदि सुकुल में उत्पन्न होना । प्रत्याजाति अर्थात् प्रतिजन्म-पुनः जन्म लेना । युगलिक आदि मनुष्यत्व रूप मनुष्य की सुगति से इस सुकुल में जन्म लेने रूप मनुष्य सुगति का भेद बताया है । दुर्गति में रहे हुए दुर्गत और सुगति में रहे हुए सुगत कहलाते हैं ।

प्रथम समय है जिसका वो प्रथम समय ऐसे जिन-सयोगी केवली । उस प्रथम समय जिन के सामान्य रूप कर्म के अंश-ज्ञानावरणीय आदि भेद क्षय होते हैं । आवरण का क्षय होने से उत्पन्न हुए विशेष और सामान्य पदार्थों के बोध रूप ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले उत्पन्न ज्ञान दर्शनधर कहलाते हैं ।

जिससे कोई वस्तु गुप्त नहीं है ऐसे अरहः क्योंकि समीप, दूर, स्थूल और सूक्ष्म रूप समस्त पदार्थ समूह का साक्षात्कार करने वाले होने से अथवा देवादि के द्वारा पूजा के योग्य होने से अर्हन् । रागादि जीतने वाले होने से जिन । केवल परिपूर्ण ज्ञान है जिसका वह केवली कहलाता है । सिद्धत्व और कर्म के क्षय का एक समय में संभव होने से प्रथमसमय सिद्ध आदि कथन किया जाता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हास्योत्पत्ति, अंतर, भृतक, पुरुष भेद

चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया तंजहा - पासित्ता, भासित्ता, सुणित्ता, संभरित्ता। चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते तंजहा - कट्ठंतरे, पम्हंतरे, लोहंतरे, पत्थरंतरे । एवामेव इत्थिए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते तंजहा - कट्ठंतर समाणे, पम्हंतर समाणे, लोहंतर समाणे, पत्थरंतर समाणे । चत्तारि भयगा पण्णत्ता तंजहा - दिवस भयए, जत्ता भयए, उच्चत्त भयए, कब्बाल भयए । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - संपागड पडिसेवी णाममेगे णो पच्छण्णपडिसेवी, पच्छण्णपडिसेवी णाममेगे णो संपागडपडिसेवी, एगे संपागडपडिसेवी वि पच्छण्णपडिसेवी वि, एगे णो संपागडपडिसेवी णो पच्छण्णपडिसेवी॥ १४१ ॥

कठिन शब्दार्थ - हासुप्पत्ती - हास्य की उत्पत्ति, **संभरित्ता** - याद करके, **अंतरे** - अन्तर, **कट्ठंतरे** - काष्ठान्तर, **पम्हंतरे** - पक्ष्मान्तर, **लोहंतरे** - लोहान्तर, **पत्थरंतरे** - प्रस्तरान्तर, **भयगा**- भृतक, **जत्ताभयए** - यात्रा भृतक, **उच्चत्तभयए** - उच्चता भृतक-नियमित समय के लिए कार्य करने वाला नौकर, **कब्बालभयए-कब्बाडभयए** - कब्बाड भृतक-ठेके पर काम करने वाला नौकर, **संपागडपडिसेवी**- संप्रकट प्रतिसेवी-प्रकट रूप से सेवन करने वाला, **पच्छण्ण पडिसेवी** - प्रच्छन्न प्रतिसेवी-गुप्त रूप से सेवन करने वाला ।

भावार्थ - विदूषक एवं भाण्डादिक की चेष्टा को देख कर, विस्मयकारी वचन बोल कर, विस्मयकारी वचन सुन कर और वैसी बातों को याद करके, इन चार कारणों से हास्य की उत्पत्ति होती है । चार प्रकार के दृष्टान्त रूप अन्तर कहे गये हैं यथा - काष्ठान्तर अर्थात् एक काष्ठ से दूसरे काष्ठ में अन्तर जैसे एक चन्दन, दूसरा नीम आदि । पक्ष्मान्तर अर्थात् एक प्रकार के कपास, रूई में दूसरे प्रकार के कपास, रूई आदि से कोमलता आदि का फर्क । लोहान्तर अर्थात् एक लोहा पदार्थों को काटने में तीक्ष्ण और दूसरा मोटा - अतीक्ष्ण । प्रस्तरान्तर यानी एक पत्थर से दूसरे पत्थर में अंतर, जैसे चिन्तामणि रत्न और कंकर । इसी प्रकार एक स्त्री का दूसरी स्त्री से और एक पुरुष का दूसरे पुरुष से चार प्रकार का अन्तर कहा गया है यथा - काष्ठान्तर समान अर्थात् एक विशिष्ट पदवी के योग्य और दूसरा अयोग्य । पक्ष्मान्तर समान यानी एक का वचन कोमल और दूसरे का कठोर । लोहान्तर समान अर्थात् एक स्नेह का छेदन करने वाला और दूसरा स्नेह का छेदन न करने वाला । प्रस्तरान्तर समान अर्थात् एक मन चिन्तित मनोरथ को पूरण करने वाला तथा गुणवान् और वन्दनीय और दूसरा गुणरहित अवन्दनीय । चार प्रकार के भृतक यानी नौकर कहे गये हैं यथा - दिवस भृतक यानी प्रतिदिन पैसे देकर कार्य करने के लिए रखा हुआ नौकर। यात्रा भृतक यानी विदेश जाने आने में साथ रहने वाला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नौकर। उच्चता भृतक यानी नियमित समय के लिए कार्य करने वाला नौकर और कब्बाडभृतक यानी इतनी जमीन खोदने पर इतने पैसे मिलेंगे इस प्रकार ठेके पर काम करने वाला ओड आदि । चार प्रकार के लोकोत्तर पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई साधु कारण विशेष से अकल्पनीय आहार आदि का प्रकटपने सेवन करता है किन्तु प्रच्छन्न यानी गुप्त रूप से सेवन नहीं करता । कोई साधु गुप्त रूप से सेवन करता है किन्तु प्रकट रूप में सेवन नहीं करता । कोई साधु प्रकट रूप में भी सेवन करता है और गुप्तरूप में भी सेवन करता है और कोई साधु न तो प्रकट रूप में सेवन करता है और न गुप्त रूप से सेवन करता है ।

विवेचन - हास्य मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हास्य रूप विकार अर्थात् हंसी की उत्पत्ति चार प्रकार से होती है - १. दर्शन से २. भाषण से ३. श्रवण से और ४. स्मरण से ।

१. दर्शन - विदूषक, बहुरूपिये आदि की हंसीजनक चेष्टा, देख कर हंसी आ जाती है ।

२. भाषण - हास्य उत्पादक वचन कहने से हंसी आती है ।

३. श्रवण - हास्य जनक किसी का वचन सुनने से हंसी की उत्पत्ति होती है ।

४. स्मरण - हंसी के योग्य कोई बात या चेष्टा को याद करने से हंसी उत्पन्न होती है ।

अग्रमहिषियाँ

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - कणगा, कणगलया, चित्तगुत्ता, वसुंधरा । एवं जमस्स, वरुणस्स, वेसमणस्स । बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - मित्तगा, सुभद्दा, विज्जुया, असणी । एवं जमस्स, वेसमणस्स, वरुणस्स । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमार रण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - असोगा, विमला, सुप्पभा, सुदंसणा, एवं जाव संखवालस्स । भूयाणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमार रण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुणंदा, सुभद्दा, सुजाया, सुमणा, एवं जाव सेलवालस्स । जहा धरणस्स एवं सव्वेसिं दाहिणिंदलोगपालाणं जाव घोसस्स जहा भूयाणंदस्स एवं जाव महाघोसस्स लोगपालाणं । कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - कमला, कमलप्पभा, उप्पला, सुदंसणा, एवं महाकालस्स वि । सुरूवस्स णं भूइंदस्स भूयरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - रूववई, बहुरूवा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुरूवा, सुभगा,एवं पडिरूवस्स वि । पुण्णभद्दस्स णं जक्खिंदस्स जक्खरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - पुत्ता, बहुपुत्तिया, उत्तमा, तारगा, एवं मणिभद्दस्स वि । भीमस्स णं रक्खसिंदस्स रक्खसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - पउमा, वसुमई, कणगा, रयणप्पभा, एवं महाभीमस्स वि । किण्णरस्स णं किण्णरिंदस्स किण्णरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - वडिंसा, केउमई, रइसेणा, रइप्पभा, एवं किंपुरिसस्स वि । सप्पुरिसस्स णं किंपुरिसिंदस्स किंपुरिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - रोहिणी, णवमिया, हिरी, पुप्फवई । एवं महापुरिसस्सवि । अइकायस्स णं महोरगिंदस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - भुयगा, भुयगवई, महाकच्छा, फुडा, एवं महाकायस्स वि । गीयरइस्स णं गंधव्विंदस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुघोसा, विमला, सुस्सरा, सरस्सई । एवं गीयजसस्सवि । चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा, एवं सूरस्स वि । णवरं सूरप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा । इंगालस्स णं महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया, एवं सव्वेसिं महागहाणं जाव भावकेउस्स । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - रोहिणी मयणा चित्ता सोमा एवं जाव वेसमणस्स । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - पुढवी, राई, रयणी, विज्जू । एवं जाव वरुणस्स॥ १४२॥

कठिन शब्दार्थ - **अग्गमहिसीओ** - अग्रमहिषियाँ-राजराणियाँ, **महागहस्स** - महाग्रह के, **भावकेउस्स** - भावकेतु के।

भावार्थ - असुरकुमारों के राजा, असुरकुमारों के इन्द्र दक्षिण दिशा के चमर का सोम नामक जो लोकपाल है उसके चार अग्रमहिषियाँ - राज राणियाँ कही गई है यथा - कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुंधरा । इसी प्रकार यम वरुण और वैश्रमण, इन लोकपालों के भी उक्त नामों वाली चार चार अग्रमहिषियाँ हैं। वैरोचन असुरों के राजा, वैरोचन असुरों के इन्द्र उत्तर दिशा के बलि का सोम नामक जो लोकपाल हैं उसके चार अग्रमहिषियाँ कही गई है यथा - मित्रगा, सुभद्रा, विद्युत् और अशनी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार यम, वैश्रमण और वरुण, इन लोकपालों के भी उपरोक्त नामों वाली चार चार अग्रमहिषियाँ हैं। नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र धरण का कालपाल नामक जो लोकपाल हैं उसके चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा-अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना। इसी प्रकार लोकपाल, शैलपाल और यावत् शंखपाल की भी उपरोक्त नामों वाली चार चार अग्रमहिषियाँ हैं। नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र भूतानन्द के जो कालपाल नामक लोकपाल है उसके चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - सुनन्दा, सुभद्रा, सुजात और सुमना। इसी प्रकार कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल, इनके भी उपरोक्त नामों वाली चार चार अग्रमहिषियाँ हैं। जिस प्रकार दक्षिण दिशा के धरणेन्द्र के लोकपालों की अग्रमहिषियाँ कही गई हैं उसी प्रकार घोष तक यानी वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष इन सब दक्षिण दिशा के आठ इन्द्रों के लोकपालों के प्रत्येक के अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना ये चार चार अग्रमहिषियाँ हैं। जिस प्रकार उत्तर दिशा के भूतानन्द के लोकपालों की अग्रमहिषियाँ कही गई हैं उसी प्रकार महाघोष तक यानी वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमान्, अवविशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभञ्जन और महाघोष इन उत्तर दिशा के आठों इन्द्रों के लोकपालों के प्रत्येक के सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना ये चार चार अग्रमहिषियाँ हैं ।

पिशाचों के राजा, पिशाचों के इन्द्र काल के चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना । इसी प्रकार महाकाल के भी उपरोक्त नामों वाली चार अग्रमहिषियाँ हैं । भूतों के राजा, भूतों के इन्द्र सुरूप के चार अग्रमहिषियाँ कही गयी हैं यथा - रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा । इसी प्रकार प्रतिरूप के चार अग्रमहिषियाँ हैं । यक्षों के राजा, यक्षों के इन्द्र पूर्णभद्र के चार अग्रमहिषियाँ कही गई है यथा - पुत्रा अथवा पूर्णा, बहुपुत्रिका उत्तमा और तारका । इसी प्रकार मणिभद्र के भी चार अग्रमहिषियाँ हैं । राक्षसों के राजा, राक्षसों के इन्द्र भीम के चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - पद्मा, वसुमती, कनका और रत्नप्रभा । इसी प्रकार महाभीम के उपरोक्त नामों वाली चार अग्रमहिषियाँ हैं । किन्नरों के राजा, किन्नरों के इन्द्र किन्नर के चार अग्रमहिषियां कही गई हैं यथा - वडिंसा (अवतन्सा), केतुमती, रतिसेना और रतिप्रभा । इसी प्रकार किंपुरुष के भी उपरोक्त नामों वाली चार अग्रमहिषियाँ हैं । किंपुरुषों के राजा, किंपुरुषों के इन्द्र सत्पुरुष के चार अग्रमहिषियाँ कही गई है यथा - रोहिणी, नवमिका, ह्री और पुष्पवती। इसी प्रकार महापुरुष के भी उपरोक्त नामों वाली चार अग्रमहिषियाँ हैं। महोरगों के इन्द्र अतिकाय के चार अग्रमहिषियाँ कही गई है यथा - भुजगा, भुजगवती, महाकच्छा और स्फुटा । इसी प्रकार महाकाय के भी उपरोक्त नामों वाली चार अग्रमहिषियाँ हैं । गन्धर्वों के इन्द्र गीतरति के चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - सुघोषा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती । इसी प्रकार गीतयश के भी उपरोक्त नामों वाली चार अग्रमहिषियाँ हैं।

ज्योतिषियों के राजा, ज्योतिषियों के इन्द्र चन्द्र के चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रभा, दोषिनाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा । इसी प्रकार सूर्य के भी चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - सूर्यप्रभा, दोषिनाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा ।

इंगाल यानी मंगल नामक महाग्रह के चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता । इसी प्रकार भावकेतु पर्यन्त सब ही महाग्रहों के चार चार अग्रमहिषियाँ हैं।

देवों के राजा, देवों के इन्द्र शक्र के जो सोम नाम का लोकपाल हैं उसके चार अग्रमहिषियां कही गई हैं यथा - रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा । इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रमण के भी चार चार अग्रमहिषियां हैं। देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशान का जो सोम नामक लोकपाल हैं उसके चार अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - पृथ्वी, राजी, रजनी और विद्युत् । इसी प्रकार यम, वैश्रमण और वरुण, इन तीनों लोकपालों के भी उपरोक्त नामों वाली चार चार अग्रमहिषियाँ हैं।

विवेचन - लोकपाल की मुख्य राणियाँ-राजा की स्त्रियाँ-राजराणियाँ अग्रमहिषियाँ कहलाती है।

गोरस विगय, स्नेह विगय, महाविगय, कूटागार, कूटागार शालाएँ

चत्तारि गोरसविगईओ पण्णत्ताओ तंजहा - खीरं, दहिं, सप्पिं, णवणीयं । चत्तारि सिणेहविगईओ पण्णत्ताओ तंजहा - तेल्लं, घयं, वसा, णवणीयं । चत्तारि महाविगईओ पण्णत्ताओ तंजहा - महुं, मंसं, मज्जं, णवणीयं । चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता तंजहा - गुत्ते णामं एगे गुत्ते, गुत्ते णामं एगे अगुत्ते, अगुत्ते णामं एगे गुत्ते, अगुत्ते णामं एगे अगुत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गुत्ते णाममेगे गुत्ते । चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ तंजहा - गुत्ता णामं एगा गुत्तदुवारा । गुत्ता णामं एगा अगुत्तदुवारा, अगुत्ता णामं एगा गुत्तदुवारा, अगुत्ता णामं एगा अगुत्तदुवारा । एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ तंजहा - गुत्ता णामं एगा गुत्तिंदिया, गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया, अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया।

अवगाहना

चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता तंजहा - दव्वोगाहणा, खेत्तोगाहणा, कालोगाहणा, भावोगाहणा ।

अंग बाह्य प्रज्ञप्तियाँ

चत्तारि पण्णत्तीओ अंगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, जंबूदीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती ॥ १४३ ॥

॥ इइ चउट्ठाणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - गोरस विगईओ - गोरस-गाय के दूध से उत्पन्न होने वाली विगय, **सप्पिं** - सर्पि-घी, **णवणीयं** - नवनीत (मक्खन), **सिणेह विगईओ** - स्नेह विगय, **तेल्लं** - तेल, **घयं** - घी, **वसा** - चर्बी, **महाविगईओ** - महाविगय, **महुं** - मधु-शहद, **मंसं** - मांस, **मज्जं** - मदिरा, **कूडागार** - कूटागार-शिखर वाले घर, **गुत्ते** - गुप्त, **अगुत्ते** - अगुप्त, **गुत्तदुवारा** - गुप्त द्वार वाली, **गुत्तिंदिया** - गुप्तेन्द्रिय, **ओगाहणा** - अवगाहना, **पण्णत्तीओ** - प्रज्ञप्तियाँ, **अंगबाहिरियाओ** - अंग बाह्य, **दीवसागरपण्णत्ति** - द्वीप सागर प्रज्ञप्ति ।

भावार्थ - गोरस यानी गाय के दूध से उत्पन्न होने वाली चार विगय कही गई हैं यथा - दूध, दही, सर्पि (घी) और नवनीत (मक्खन) । चार स्नेह विगय कही गई हैं यथा - तेल, घी, चर्बी और मक्खन चार महाविगय कही गई हैं यथा - मधु-शहद, मांस, मदिरा और मक्खन।

चार कूटागार यानी शिखर वाले घर कहे गये हैं यथा - कोई एक घर गुप्त यानी कोट आदि से घिरा हुआ अथवा भूमिघर और गुप्त द्वार वाला, कोई एक घर गुप्त किन्तु द्वार अगुप्त, कोई एक घर अगुप्त किन्तु द्वार-गुप्त, कोई एक घर भी अगुप्त और द्वार भी अगुप्त । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष गुप्त यानी वस्त्र आदि से ढका हुआ और भाव से गुप्त यानी लज्जावान् । कोई पुरुष वस्त्रादि से ढका हुआ किन्तु लज्जारहित । कोई पुरुष वस्त्रादि से रहित किन्तु लज्जावान् । कोई पुरुष वस्त्रादि से रहित और लज्जा से भी रहित । चार कूटागार शाला यानी शिखर वाली शालाएं कही गई हैं यथा - कोई एक शाला गुप्त यानी कोट आदि से घिरी हुई और गुप्त द्वार वाली, कोई एक गुप्त किन्तु अगुप्त द्वार वाली, कोई एक अगुप्त किन्तु गुप्त द्वार वाली, कोई एक अगुप्त और अगुप्त द्वार वाली । इसी तरह चार प्रकार की स्त्रियाँ कही गई हैं यथा - कोई एक स्त्री गुप्त यानी परिवार से घिरी हुई अथवा घर के अन्दर ही रहने वाली अथवा वस्त्र आदि से ढकी हुई एवं गूढ स्वभाव वाली और गुप्तेन्द्रिय यानी अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाली, कोई एक स्त्री गुप्त किन्तु अगुप्तेन्द्रिय यानी इन्द्रियों को वश में न रखने वाली, कोई एक स्त्री अगुप्त किन्तु गुप्तेन्द्रिय । कोई एक स्त्री अगुप्त और अगुप्तेन्द्रिय।

चार प्रकार की अवगाहना कही गई हैं यथा - द्रव्य अवगाहना, क्षेत्र अवगाहना, काल अवगाहना और भाव अवगाहना।

चार पण्णत्तियाँ - प्रज्ञप्तियाँ अङ्ग बाह्य कही गई हैं यथा - चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति । ये चारों प्रज्ञप्तियाँ अङ्ग बाह्य और कालिक हैं ।

विवेचन - विगय अर्थात् विकृति, शरीर और मन के लिये प्रायः विकार का हेतु होने से दूध, दही, घी और मक्खन को विगय कहा है। स्नेह रूप विकृतियों को स्नेह विगय कहा है जो चार प्रकार की है - तेल, घी, चर्बी और मक्खन। महाविकार उत्पन्न करने वाली होने से चार महा विगय कहे हैं- मधु-शहद, मांस, मदिरा और मक्खन।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशांगी के बाहर के सूत्र अंग बाह्य कहलाते हैं। अंग बाह्य चार प्रज्ञप्तियाँ कही गयी हैं - १. चन्द्रप्रज्ञप्ति २. सूर्य प्रज्ञप्ति ३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और ४. द्वीप सागर प्रज्ञप्ति। पांचवीं व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) है परन्तु वह अंग प्रविष्ट है अतः यहाँ चार ही प्रज्ञप्तियों का कथन किया गया है।

।। इति चौथे स्थान का प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

चौथे स्थान का दूसरा उद्देशक

प्रतिसंलीन और अप्रतिसंलीन

चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता तंजहा - कोहपडिसंलीणे, माणपडिसंलीणे, मायापडिसंलीणे, लोभपडिसंलीणे । चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता तंजहा - कोह अपड़िसंलीणे, जाव लोभ अपडिसंलीणे । चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता तंजहा - मणपडिसंलीणे, वयपडिसंलीणे, कायपडिसंलीणे, इंदियपडिसंलीणे । चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता तंजहा - मण अपडिसंलीणे जाव इंदियअपडिसंलीणे॥ १४४॥

कठिन शब्दार्थ - पडीसंलीणा - प्रतिसंलीन-क्रोधादि का उपशमन करने वाले, **अपडिसंलीणा**- अप्रतिसंलीन।

भावार्थ - चार प्रतिसंलीन यानी क्रोधादि का उपशमन करने वाले पुरुष कहे गये हैं यथा - क्रोध प्रतिसंलीन यानी क्रोध का उपशमन करने वाला और उदय में आये हुए क्रोध को विफल करने वाला। इसी प्रकार मान प्रतिसंलीन माया प्रतिसंलीन और लोभ प्रतिसंलीन कह देने चाहिए। चार अप्रतिसंलीन कहे गये हैं यथा - क्रोध अप्रतिसंलीन यावत् मान अप्रतिसंलीन माया अप्रतिसंलीन और लोभ अप्रतिसंलीन। चार प्रतिसंलीन कहे गये हैं यथा - मन प्रतिसंलीन, वचन प्रतिसंलीन, काय प्रतिसंलीन और इन्द्रिय प्रतिसंलीन। चार अप्रतिसंलीन कहे गये हैं यथा - मन अप्रतिसंलीन, यावत् इन्द्रिय अप्रतिसंलीन ।

विवेचन - क्रोध आदि का निरोध करने वाले पुरुष को प्रतिसंलीन कहते हैं। क्रोध के उदय का निरोध करना और उदय प्राप्त क्रोध को निष्फल करना क्रोध प्रतिसंलीन कहलाता है। इसी प्रकार मान प्रतिसंलीन, माया प्रतिसंलीन और लोभ प्रतिसंलीन के विषय में भी समझ लेना चाहिये। इससे विपरीत क्रोध आदि का निरोध नहीं करने वाले पुरुष अप्रतिसंलीन कहलाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुशल मन की उदीरणा-प्रवृत्ति से और अकुशल मन के निरोध करने से जिसका मन काबू (वश) में है वह मन: प्रतिसंलीन है अथवा मन से निरोध करने वाला मन: प्रतिसंलीन है इसी प्रकार वचन, काया के विषय में जानना चाहिये। मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि विषयों के प्रति राग द्वेष को दूर करने वाला इन्द्रिय प्रतिसंलीन कहलाता है।

दीन और अदीन

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दीणे णाममेगे दीणे, दीणे णाममेगे अदीणे, अदीणे णाममेगे दीणे, अदीणे णाममेगे अदीणे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दीणे णाममेगे दीण परिणए, दीणे णाममेगे अदीणपरिणए, अदीणे णाममेगे दीण परिणए, अदीण णाममेगे अदीण परिणए । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- दीणे णाममेगे दीणरूवे, दीणे णाममेगे अदीणरूवे, अदीणे णाममेगे दीणरूवे, अदीण णाममेगे अदीणरूवे । एवं दीणमणे, दीणसंकप्पे, दीणपण्णे, दीणदिट्ठी, दीणसीलायारे, दीणववहारे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दीणे णाममेगे दीणपरक्कमे, दीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे, अदीणे णाममेगे दीणपरक्कमे, अदीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे । एवं सव्वेसिं चउभंगो भाणियव्वो । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दीणे णाममेगें दीणवित्ती, दीणे णाममेगे अदीणवित्ती, अदीणे णाममेगे दीणवित्ती, अदीणे णाममेगे अदीणवित्ती । एवं दीणजाई, दीणभासी, दीणोभासी। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दीणे णाममेगे दीणसेवी, दीणे णाममेगे अदीणसेवी, अदीणे णाममेगे दीणसेवी, अदीणे णाममेगे अदीणसेवी । एवं दीणे णाममेगे दीणपरियाए, दीणे णाममेगे दीणपरियाले, सव्वत्थ चउभंगो ।

कठिन शब्दार्थ - दीणे - दीन, **अदीणे** - अदीन, **दीणपरिणए** - दीन परिणत-दीन परिणाम वाला, **अदीण परिणए** - अदीन परिणत-परिणामों से अदीन, **दीणरूवे** - दीन रूप वाला, **दीणमणे** - दीन मन वाला, **दीण संकप्पे** - दीन संकल्प (विचार) वाला, **दीणपण्णे** - दीन प्रज्ञा (बुद्धि) वाला, **दीणदिट्ठी**- दीन दृष्टि वाला, **दीणसीलायारे** - दीन शील आचार वाला, **दीणववहारे** - दीन व्यवहार वाला, **दीण परक्कमे** - पराक्रम से दीन, **दीण वित्ती** - दीन वृत्तिवाला, **दीणोभासी** - दीनावभाषी, **दीणपरियाए** - दीन पर्याय वाला, **दीणपरियाले** - दीन परिवार वाला।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष बाहर से दीन (गरीब) और अन्दर से भी दीन अथवा पहले दीन और पीछे भी दीन । कोई एक पुरुष बाहर से दीन किन्तु भीतर से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अदीन। कोई एक पुरुष बाहर से अदीन किन्तु भीतर से दीन। कोई एक पुरुष बाहर से अदीन और भीतर से भी अदीन । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष बाहर से दीन और दीनपरिणत यानी दीन परिणाम वाला । कोई एक पुरुष बाहर से दीन किन्तु परिणामों से अदीन । कोई एक पुरुष बाहर से अदीन किन्तु परिणामों से दीन । कोई एक पुरुष बाहर से अदीन और परिणामों से भी अदीन । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जाति से दीन और दीन रूप वाला यानी मलिन और जीर्ण वस्त्रों वाला । कोई एक पुरुष जाति से दीन किन्तु अदीन रूप वाला । कोई एक पुरुष जाति से अदीन किन्तु दीन रूप वाला । कोई एक पुरुष जाति से अदीन और अदीन रूप वाला । इसी प्रकार दीन मन वाला, दीन संकल्प यानी विचार वाला, दीनप्रज्ञा यानी बुद्धि वाला, दीन दृष्टि वाला, दीन शील आचार वाला, दीन व्यवहार वाला, इन सब की चौभङ्गी कह देनी चाहिए । जैसे कि कोई पुरुष जाति का दीन और मन का भी दीन यानी कृपण । कोई पुरुष जाति का दीन किन्तु मन का अदीन यानी उदार । कोई पुरुष जाति का अदीन किन्तु मन का दीन । कोई पुरुष जाति का भी अदीन और मन का भी अदीन । इसी प्रकार विचार, बुद्धि, दृष्टि, शील आचार और व्यवहार इन की भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष बाहर से यानी शरीरादि से दीन और पराक्रम से भी दीन । कोई एक पुरुष शरीरादि से दीन किन्तु पराक्रम का अदीन । कोई एक पुरुष शरीरादि से अदीन किन्तु पराक्रम का दीन । कोई एक पुरुष शरीरादि से अदीन और पराक्रम का भी अदीन । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष शरीरादि से बाहर से दीन और दीनवृत्ति वाला यानी दीनतापूर्वक आजीविका करने वाला। कोई एक पुरुष बाहर से दीन किन्तु अदीन वृत्ति वाला । कोई एक पुरुष अदीन किन्तु दीन वृत्ति वाला । कोई एक पुरुष अदीन और अदीनता से वृत्ति करने वाला । इसी प्रकार दीन जाति वाला अथवा दीन याची यानी दीनतापूर्वक याचना करने वाला अथवा दीनपुरुष के पास से याचना करने वाला । दीनभाषी यानी दीनतापूर्वक भाषण करने वाला अथवा दीन पुरुष के साथ भाषण करने वाला । दीनावभासी यानी दीन के समान दिखाई देने वाला । इनकी चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष स्वयं दीन और दीन स्वामी की सेवा करने वाला । कोई एक पुरुष स्वयं अदीन किन्तु दीन की सेवा करने वाला । कोई एक पुरुष स्वयं दीन किन्तु अदीन की सेवा करने वाला । कोई एक पुरुष स्वयं अदीन और अदीन की सेवा करने वाला। इसकी भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए। इसी प्रकार कोई एक पुरुष दीन और दीनपर्याय यानी दीन अवस्था वाला अथवा दीनतापूर्वक दीक्षा का पालन करने वाला । कोई एक पुरुष स्वयं दीन, दीन परिवार वाला । इन सब की चौभङ्गी कह देनी चाहिए । इस प्रकार दीन शब्द की १७ चौभङ्गियाँ कही गई हैं ।

विवेचन - कषाय, योग और इन्द्रियों को वश में नहीं करने से आत्मा दीन बनती है। दीन यानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गरीबी वाला, उपार्जित धन से क्षीण-गरीब, पहले और बाद में भी दान अथवा बाह्य वृत्ति से दीन और अंतर्वृत्ति से दीन इत्यादि रूप से चौभंगी जानना। प्रस्तुत सूत्र में दीन शब्द की १७ चौभंगियां कही गई है जिसका वर्णन भावार्थ से स्पष्ट है।

आर्य और अनार्य

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अज्जे णाममेगे अज्जे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अज्जे णाममेगे अज्जपरिणए । एवं अज्जरूवे, अज्जमणे, अज्जसंकप्पे, अज्जपण्णे, अज्जदिट्ठी, अज्जसीलायारे, अज्जववहारे, अज्जपरक्कमे, अज्जवित्ती, अज्जजाई, अज्जभासी, अज्जओभासी, अज्जसेवी, अज्जपरियाए, अज्जपरियाले । एवं सत्तर आलावगा जहा दीणेणं भणिया तहा अज्जेण वि भाणियव्वा। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अज्जे णाममेगे अज्जभावे, अज्जे णाममेगे अणज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे ॥ १४६ ॥

कठिन शब्दार्थ - अज्जे - आर्य, **अज्जभावे** - आर्य भाव वाला, **अणज्ज भावे** - अनार्य भाव वाला।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जाति आदि से आर्य और आर्य यानी धर्माचरण करने वाला। कोई एक पुरुष जाति आदि से आर्य किन्तु पापाचरण करने वाला, कोई एक पुरुष जाति आदि से अनार्य किन्तु धर्माचरण करने वाला । कोई एक पुरुष जाति आदि से अनार्य और पापाचरण करने वाला । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष आर्य और स्वभाव से भी आर्य । इसी प्रकार आर्य रूप वाला, आर्य मन वाला, आर्य विचार वाला, आर्य बुद्धि वाला, आर्य दृष्टि वाला, आर्य शील आचार वाला, आर्य व्यवहार करने वाला, आर्य पराक्रम करने वाला, आर्य आजीविका करने वाला, आर्य जाति वाला, आर्य भाषा बोलने वाला, आर्य के समान दिखाई देने वाला, आर्य की सेवा करने वाला, आर्य पर्याय वाला और आर्य परिवार वाला । इस प्रकार जैसे दीन शब्द पर सतरह आलापक यानी चौभङ्गियाँ कही गयी थी वैसे ही आर्य शब्द पर भी सतरह चौभङ्गियाँ कह देनी चाहिए । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जाति आदि से आर्य और आर्य भाव वाला यानी क्षायिकादि ज्ञान युक्त । कोई एक पुरुष जाति आदि से आर्य किन्तु अनार्य भाव वाला यानी क्रोधादि वाला । कोई एक पुरुष जाति आदि से अनार्य किन्तु आर्य भावों वाला । कोई एक पुरुष जाति आदि से अनार्य और भावों से भी अनार्य ।

विवेचन - आर्य के नौ भेद हैं - जाति आर्य, क्षेत्र आर्य, कुल आर्य, शिल्प आर्य, कर्म आर्य, भाषा आर्य, ज्ञान आर्य, दर्शन आर्य और चारित्र आर्य। प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में इसका विशेष वर्णन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिया गया है जिज्ञासुओं को वहाँ से देख लेना चाहिये। कहीं पर जाति आर्य के बारह भेद किये गये हैं। अतः इन नौ के पहले तीन भेद और कह देने चाहिए वे इस प्रकार है - १. नाम आर्य २. स्थापना आर्य ३. द्रव्य आर्य। ये तीन भेद और मिला देने से आर्य के बारह भेद हो जाते हैं।

वृषभ और पुरुष

चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे, बलसंपण्णे, रूवसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे जाव रूवसंपण्णे । चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे जाइसंपण्णे वि कुलसंपण्णेवि, एगे णो जाइसंपण्णे णो कुलसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे । चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे । चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे । चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे । चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - कुलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - कुलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे । चत्तारि उसभा पण्णत्ता तंजहा - बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे॥ १४७॥

कठिन शब्दार्थ - उसभा - वृषभ (बैल) **जाइसंपण्णे** - जाति संपन्न, **कुलसंपण्णे** - कुल सम्पन्न, **बलसंपण्णे** - बल सम्पन्न, **रूवसंपण्णे** - रूप संपन्न।

भावार्थ - चार प्रकार के वृषभ अर्थात् बैल कहे गये हैं यथा - जाति सम्पन्न यानी जिसकी माता गुणवान् एवं उत्तम है । कुल संपन्न यानी जिसका पिता गुणवान् एवं उत्तम है । बलसंपन्न यानी भारवहन करने में समर्थ एवं पराक्रमवान् । रूपसंपन्न यानी सुन्दर शरीर और आकृति वाला । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - जाति सम्पन्न यानी जिसका मातृपक्ष निर्मल हो । यावत् कुलसम्पन्न, बलसम्पन्न और रूपसम्पन्न । अब १. जाति शब्द के साथ कुल, २. जाति शब्द के साथ बल, ३. जाति शब्द के साथ रूप, ४. कुल शब्द के साथ बल, ५. कुल शब्द के साथ रूप, और ६. बल शब्द के साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप । ये छह चौभङ्गियाँ बैल का दृष्टान्त देकर बतलाई गई हैं और पुरुष का दार्ष्टान्तिक देकर उसके साथ घटाई गई हैं। चार प्रकार के वृषभ कहे गये हैं यथा - कोई एक बैल जातिसम्पन्न है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं है। कोई एक बैल कुलसम्पन्न है किन्तु जातिसम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल जातिसम्पन्न भी है और कुलसम्पन्न भी है । कोई एक बैल जाति सम्पन्न भी नहीं है और कुलसम्पन्न भी नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जातिसम्पन्न है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं है । कोई एक पुरुष कुलसम्पन्न है किन्तु जातिसम्पन्न नहीं है । कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न भी है और कुल सम्पन्न भी है । कोई एक पुरुष जातिसम्पन्न भी नहीं है और कुलसम्पन्न भी नहीं है । चार प्रकार के बैल कहे गये हैं यथा - कोई एक बैल जाति सम्पन्न है किन्तु बलसम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल बल सम्पन्न है किन्तु जाति सम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल जातिसम्पन्न भी है और बल सम्पन्न भी है । कोई एक बैल जाति सम्पन्न भी नहीं है और बल सम्पन्न भी नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जातिसम्पन्न है किन्तु बल सम्पन्न नहीं है । इस तरह जिस प्रकार बैल के चार भंग कहे हैं उसी प्रकार पुरुष के भी चार भंग कह देने चाहिए । चार प्रकार के बैल कहे गये हैं । यथा - कोई एक बैल जातिसम्पन्न है, किन्तु रूप सम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल रूप सम्पन्न है किन्तु जाति सम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल जाति सम्पन्न भी है और रूप सम्पन्न भी है । कोई एक बैल जाति सम्पन्न भी नहीं है और रूप सम्पन्न भी नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं है । इस प्रकार जिस तरह बैल की चौभङ्गी कही, उसी तरह पुरुष की भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के बैल कहे गये हैं । यथा - कोई एक बैल कुल संपन्न है किन्तु बल सम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल बल सम्पन्न है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल कुल सम्पन्न भी है और बल सम्पन्न भी है । कोई एक बैल कुल सम्पन्न भी नहीं है और बल सम्पन्न भी नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष कुलसम्पन्न है किन्तु बल सम्पन्न नहीं है । इस तरह जिस प्रकार बैल की चौभङ्गी कही गई है उसी प्रकार पुरुष की भी चौभङ्गी समझनी चाहिए । चार प्रकार के बैल कहे गये हैं । यथा - कोई एक बैल कुल सम्पन्न है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल रूप सम्पन्न है किन्तु कुल सम्पन्न नहीं है । कोई एक बैल कुल सम्पन्न भी है और रूप सम्पन्न भी है । कोई एक बैल कुल सम्पन्न भी नहीं है और रूप सम्पन्न भी नहीं है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष कुल सम्पन्न है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं है। इस प्रकार बैल की चौभङ्गी की तरह पुरुष की चौभङ्गी भी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के बैल कहे गये हैं। यथा - कोई एक बैल बल सम्पन्न है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं है। कोई एक बैल रूप सम्पन्न है किन्तु बल सम्पन्न नहीं है। कोई एक बैल बल सम्पन्न भी है और रूप सम्पन्न भी है। कोई एक बैल बल सम्पन्न भी नहीं है और रूप संपन्न भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक पुरुष बल सम्पन्न है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं है। इस तरह जिस प्रकार बैल की चौभङ्गी कही गई है उसी प्रकार पुरुष की भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए।

विवेचन - मातृपक्ष को जाति कहते हैं और पितृ पक्ष को कुल कहते हैं। जिसका मातृ पक्ष निर्मल, गुणवान् एवं उत्तम होता है वह जाति संपन्न कहलाता है और जिसका पितृपक्ष गुणवान् निर्मल, एवं उत्तम है वह कुल सम्पन्न कहलाता है। प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार के बैलों के माध्यम से चार प्रकार के पुरुष का चौभंगियों के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

हाथी और पुरुष

चत्तारि हत्थी पण्णत्ता तंजहा - भद्दे, मंदे, मिए, संकिण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - भद्दे, मंदे, मिए, संकिण्णे। चत्तारि हत्थी पण्णत्ता तंजहा- भद्दे णाममेगे भद्दमणे, भद्दे णाममेगे मंदमणे, भद्दे णाममेगे मियमणे, भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे। एवामेव चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - भद्दे णाममेगे भद्दमणे, भद्दे णाममेगे मंदमणे, भद्दे णाममेगे मियमणे, भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे। चत्तारि हत्थी पण्णत्ता तंजहा - मंदे णाममेगे भद्दमणे, मंदे णाममेगे मंदमणे, मंदे णाममेगे मियमणे, मंदे णाममेगे संकिण्णमणे। एवामेव चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - मंदे णाममेगे भद्दमणे तं चेव। चत्तारि हत्थी पण्णत्ता तंजहा - मिए णाममेगे भद्दमणे, मिए णाममेगे मंदमणे, मिए णाममेगे मियमणे, मिए णाममेगे संकिण्णमणे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - मिए णाममेगे भद्दमणे तं चेव। चत्तारि हत्थी पण्णत्ता तंजहा - संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे, संकिण्णे णाममेगे मंदमणे, संकिण्णे णाममेगे मियमणे, संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे तं चेव जाव संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे।

महुगुलिय पिंगलक्खो, अणुपुव्वसुजायदीहलंगूलो।
पुरओ उदग्गधीरो, सव्वंगसमाहिओ भद्दो॥ १॥
चल बहलविसमचम्मो, थूलसिरो थूलएण पेएण।
थूलणह दंतवालो, हरिपिंगल लोयणो मंदो॥ २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तणुओ तणुयग्गीवो, तणुयतओ तणुयदंतणहवालो ।
भीरू तत्थुव्विग्गो, तासी य भवे मिए णामं ॥ ३ ॥
एएसिं हत्थीणं थोवं थोवं उ जो हरइ हत्थी ।
रूवेण य सीलेण य सो संकिण्णो त्ति णायव्वो ॥ ४ ॥
भद्दो मज्जइ सरए, मंदो उण मज्जए वसंतम्मि ।
मिउ मज्जइ हेमंते, संकिण्णो सव्वकालम्मि ॥ ५ ॥ १४८॥

कठिन शब्दार्थ - **हत्थी** - हाथी, **भद्दे** - भद्र-धीरता आदि गुण युक्त, **मंदे** - मंद, **मिए** - मृग-हल्कापन, डरपोकपना आदि गुणों से युक्त, **संकिण्णे** - संकीर्ण (सब गुणों का सम्मिलित रूप), **महुगुलिय**- मधु गुटिका, **पिंगलक्खो**- पीली आंखों वाला, **अणुपुव्वसुजाय दीह लंगूलो** - अनुक्रम से अपनी जाति के अनुसार बल और रूपादि से युक्त दीर्घ पूंछ वाला, **पुरओ** - सामने, **उदग्गधीरो** - उन्नत कुंभ स्थल वाला धीर, **सव्वंग समाहिओ** - सर्वांग समाहित-सब अंग लक्षण युक्त और प्रमाणोपेत, **चल बहल** - फूली हुई और मोटी, **विसम चम्मो** - विषम चमड़ी वाला, **थूल सिरो** - स्थूल (मोटे) मस्तक वाला, **थूल णह दंत वालो** - स्थूल, नख, दांत और बाल वाला, **हरिपिंगल** - सिंह के समान पीली, **लोयणो** - लोचन (आँखें), **तणुओ** - तनुक-दुर्बल शरीर वाला, **तणुयग्गीवो** - तनुक ग्रीव-छोटी गर्दन वाला, **भीरू** - डरपोक, **तत्थ** - त्रस्त, **उव्विग्गो** - उद्‌विग्न, **थोवं थोवं** - थोड़े थोड़े, **मज्जइ** - मद को प्राप्त होता है, **सरए** - शरद ऋतु में, **वसंतम्मि** - वसन्त ऋतु में, **हेमंते** - हेमंत ऋतु में, **सव्वकालम्मि** - सर्व काल-सब समय में ।

भावार्थ - चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं । यथा - भद्र यानी धीरता आदि गुण युक्त, मन्द यानी धैर्य, वेग आदि गुणों में मन्द, मृग यानी हल्कापना, डरपोकपना आदि गुणों से युक्त और संकीर्ण यानी कुछ भद्रता आदि गुणों से युक्त । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - भद्र, मन्द, मृग और संकीर्ण । अब आगे (१) भद्र शब्द के साथ भद्र मन, मन्द मन, मृग मन और संकीर्ण मन की चौभङ्गी, (२) मन्द शब्द के साथ भद्र मन, मन्द मन, मृग मन और संकीर्ण मन की चौभङ्गी, (३) मृग शब्द के साथ भद्र मन, मन्द मन, मृग मन और संकीर्ण मन की चौभङ्गी, (४) संकीर्ण शब्द के साथ भद्र मन, मन्द मन, मृग मन और संकीर्ण मन की चौभङ्गी, इस प्रकार हाथी का दृष्टान्त देकर चार चौभङ्गियाँ बतलाई गई हैं और पुरुष दार्ष्टान्तिक के साथ उन्हें घटाई गई हैं।

चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं । यथा - कोई एक हाथी जाति और आकार आदि से भद्र और भद्रमन यानी मन का भी भद्र, कोई एक हाथी जाति और आकार आदि से भद्र और मन का मन्द अर्थात् धैर्य रहित, कोई एक हाथी जाति आदि से भद्र और मन का मृग यानी मृग के समान डरपोक, कोई एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाथी जाति आदि से भद्र और संकीर्ण मन यानी विचित्र चित्त वाला । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति और आकार आदि से भद्र और भद्र मन वाला, कोई एक पुरुष जाति आदि से भद्र और मन का मंद, कोई एक पुरुष जाति आदि से भद्र और मन का मृग यानी डरपोक, कोई एक पुरुष जाति आदि से भद्र और संकीर्ण मन यानी विचित्र चित्त वाला । चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं । यथा - कोई एक हाथी जाति आदि से मन्द और भद्र मन वाला कोई एक हाथी जाति आदि से मन्द और मन्द मन वाला । कोई एक हाथी जाति आदि से मन्द और मन का मृग यानी डरपोक, कोई एक हाथी जाति आदि से मन्द और संकीर्ण मन यानी विचित्र चित्त वाला । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति आदि से मन्द और मन का भद्र, इसी प्रकार जैसी हाथी की चौभङ्गी कही गई है वैसी ही पुरुष की चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं । यथा - कोई एक हाथी जाति आदि से मृग यानी डरपोक और मन का भद्र, कोई एक हाथी जाति आदि से मृग यानी डरपोक और मन का मन्द, कोई एक हाथी जाति आदि से मृग यानी डरपोक और मन का भी मृग यानी डरपोक और कोई एक हाथी जाति आदि से मृग यानी डरपोक और संकीर्ण मन यानी विचित्र चित्त वाला । इसी प्रकार चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति आदि से मृग यानी डरपोक और मन का भद्र, इस तरह जिस प्रकार हाथी की चौभङ्गी कही गई है उसी प्रकार पुरुष की भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं । यथा - कोई एक हाथी जाति आदि से संकीर्ण और मन का भद्र, कोई एक हाथी जाति आदि से संकीर्ण और मन का मन्द, कोई एक हाथी जाति आदि से संकीर्ण और मन का मृग यानी डरपोक, कोई एक हाथी जाति आदि से संकीर्ण और मन का भी संकीर्ण यानी विचित्र चित्त वाला । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति आदि से संकीर्ण और मन का भद्र, इस तरह जिस प्रकार हाथी की चौभङ्गी कही गई है । उसी प्रकार पुरुष की भी चौभङ्गी कह देनी चाहिए यावत् कोई एक पुरुष जाति आदि से संकीर्ण होता है और मन का भी संकीर्ण यानी विचित्र चित्त वाला होता है ।

अब चार प्रकार के हाथियों के लक्षण बताये जाते हैं - मधु गुटिका के समान पीली आंखों वाला, अनुक्रम से अपनी जाति के अनुसार बल और रूपादि से युक्त और दीर्घ पूंछ वाला, सामने उन्नत कुम्भस्थल वाला और धीर यानी क्षोभ को प्राप्त न होने वाला, जिसके सब अङ्ग लक्षण युक्त और प्रमाणोपेत हैं वह भद्र हाथी कहलाता है ॥ १ ॥

फूली हुई और मोटी तथा विषम चमड़ी वाला, मोटे मस्तक वाला, जिसकी पूंछ का मूल भाग मोटा हैं, जिसके नख दांत और बाल स्थूल हैं, जिसकी आंखें सिंह के समान पीली हैं वह मन्द हाथी कहलाता है ॥ २ ॥

तनुक यानी दुर्बल शरीर वाला, तनुकग्रीव यानी छोटी गर्दन वाला, तनुकत्वक् यानी पतली चमड़ी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला, छोटे दांत नख और केशों वाला स्वभाव से ही डरपोक, त्रस्त यानी भय का कारण आने पर कान आदि इन्द्रियों को स्तम्भित करने वाला उद्विग्न यानी जरा सा कष्ट आने पर या चलने आदि में खेद को प्राप्त होने वाला और त्रासी यानी स्वयं डर कर दूसरों को भी भयभीत करने वाला मृग नामक हाथी होता है ॥ ३ ॥

जो हाथी ऊपर कहे गये हाथियों के थोड़े थोड़े रूप और गुणों को धारण करे वह संकीर्ण हाथी है । ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

भद्र हाथी शरद ऋतु में मद को प्राप्त होता है । मन्द हाथी वसन्त ऋतु में मद को प्राप्त होता है । मृग हाथी हेमन्त ऋतु में मद को प्राप्त होता है और संकीर्ण हाथी सब समय में मद को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में हाथी का दृष्टान्त देकर चौभंगियाँ बतलाई गई हैं जिन्हें पुरुष दार्ष्टान्तिक के साथ घटाई गई हैं।

विकथा और धर्मकथा के भेद

चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा। इत्थिकहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - इत्थीणं जाइ कहा, इत्थीणं कुल कहा, इत्थीणं रूव कहा, इत्थीणं णेवत्थ कहा। भत्त कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - भत्तस्स आवाव कहा, भत्तस्स णिव्वाव कहा, भत्तस्स आरंभ कहा, भत्तस्स णिट्ठाण कहा । देस कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - देसविहिं कहा, देसविकप्प कहा, देसच्छंद कहा, देसणेवत्थ कहा । राय कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - रण्णो अइयाण कहा, रण्णो णिज्जाण कहा, रण्णो बलवाहण कहा, रण्णो कोसकोट्ठागार कहा । चउव्विहा धम्म कहा पण्णत्ता तंजहा - अक्खेवणी, विक्खेवणी, संवेगणी, णिव्वेयणी । अक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - आयार अक्खेवणी, ववहार अक्खेवणी, पण्णत्ति अक्खेवणी, दिट्ठिवाय अक्खेवणी । विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - ससमयं कहेइ ससमयं कहित्ता परसमयं कहेइ, परसमयं कहित्ता ससमयं ठावइत्ता भवइ, सम्मावायं कहेइ सम्मावायं कहित्ता मिच्छा वायं कहेइ, मिच्छावायं कहित्ता सम्मावायं ठावइत्ता भवइ । संवेगणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - इह लोग संवेगणी, परलोग संवेगणी, आयसरीर संवेगणी, परसरीर संवेगणी । णिव्वेगणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - इह लोगे दुच्चिण्णा कम्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति, इहलोगे दुचिण्णा कम्मा परलोगे दुहफल विवाग संजुत्ता भवंति, परलोगे दुचिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति, परलोगे दुचिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति । इहलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवाग संजुत्ता भवंति, इहलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवाग संजुत्ता भवंति । परलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवाग संजुत्ता भवंति । परलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफल विवागसंजुत्ता भवंति॥ १४९ ॥

कठिन शब्दार्थ - विकहाओ - विकथाएँ, **जाइ कहा** - जाति कथा, **कुल कहा** - कुल कथा, **रूव कहा** - रूप कथा, **णेवत्थ कहा** - नेपथ्य कथा-वेश कथा, **आवाव कहा** - आवाप कथा, **णिव्वाव कहा**- निर्वाप कथा, **आरंभ कहा** - आरम्भ कथा, **णिट्ठाण कहा** - निष्ठान कथा, **देसविहि कहा** - देश विधि कथा, **देसविकप्प कहा** - देश विकल्प कथा, **देसच्छंद कहा** - देशछन्द कथा, **देसणेवत्थ कहा**- देश नैपथ्य (वेश-पेहनाव) कथा, **अइयाण कहा** - अतियान कथा, **णिज्जाण कहा** - निर्याण कथा, **बलवाहण कहा** - बलवाहन कथा, **कोस कोट्ठागार कहा** - धन धान्यादि के भण्डार की कथा, **अक्खेवणी** - आक्षेपणी, **विक्खेवणी** - विक्षेपणी, **संवेयणी** - संवेगनी, **णिव्वेयणी** - निर्वेदनी, **ससमयं**- स्व सिद्धान्त को, **ठावइत्ता** - स्थापित करके, **सम्मावायं** - सम्यग्वाद, **मिच्छावायं** - मिथ्यावाद, **आयसरीर संवेगणी** - आत्म शरीर-स्वशरीर संवेगनी, **दुच्चिणा** - दुष्ट रूप से उपार्जन किये गये, **कम्मा** - कर्म, **दुहफल विवागसंजुत्ता** - दुःख रूप फल देने वाले, **सुच्चिणा**- शुभ रूप से उपार्जन किये गये, **सुहफल विवाग संजुत्ता** - सुख रूप फल देने वाले।

भावार्थ - चार विकथाएँ कही गई हैं । यथा - स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा, राजकथा । स्त्री कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - स्त्रियों की जाति की कथा, स्त्रियों के कुल की कथा, स्त्रियों के रूप की कथा और स्त्रियों की नेपथ्य कथा यानी वेश की कथा । भक्त कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - भक्त यानी भोजन की आवाप कथा यानी अमुक भोजन बनाने में इतने इतने अमुक सामान की जरूरत है इत्यादि कथा करना । भोजन की निर्वाप कथा यानी मिठाइयाँ इतने प्रकार की होती हैं, शाक इतने प्रकार के होते हैं, इत्यादि कथा करना । भोजन की आरम्भ कथा यानी अमुक शाक में इतने नमक मिर्च की जरूरत है, इत्यादि कथा करना । भोजन की निष्ठान कथा यानी अमुक भोजन में इतने पदार्थ डालने से ही वह स्वादिष्ट बनता है, इत्यादि कथा करना । देश कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - देश विधि कथा यानी अमुक देश का खान, पान, रीति रिवाज, वस्त्रादि पहनने की विधि अच्छी या बुरी है, इत्यादि कथा करना, देश विकल्प कथा यानी अमुक देश में धान्य की उत्पत्ति, बावड़ी, कुंएं आदि खूब हैं, इत्यादि कथा करना, देश छन्द कथा यानी अमुक देश में मामा की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लड़की के साथ विवाह करने की प्रथा है, इत्यादि कथा करना। देश नेपथ्य कथा यानी देश के स्त्री पुरुषों के वेश, भूषा आदि की कथा करना। राज कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - राजा की अतियान कथा यानी नगर में प्रवेश तथा उस समय की विभूति की कथा करना । राजा की निर्याण कथा यानी नगर से बाहर जाते समय राजा के सामन्त, सेना, आदि ऐश्वर्य की कथा करना । राजा के बल वाहन यानी हाथी घोड़े रथ आदि की कथा करना । राजा के धन धान्य आदि के भण्डार की कथा करना।

धर्मकथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - आक्षेपणी यानी श्रोता को मोह से हटा कर तत्त्व की ओर आकर्षित करने वाली कथा, विक्षेपणी यानी सन्मार्ग के गुणों को बतला कर या कुमार्ग के दोषों को बता कर श्रोता को कुमार्ग से सन्मार्ग में लाने वाली कथा । संवेगनी यानी कामभोगों के कटु फल बता कर श्रोता में वैराग्य भाव उत्पन्न करने वाली कथा,. निर्वेदनी यानी इस लोक और परलोक में पुण्य पाप के शुभाशुभ फल को बता कर संसार से उदासीनता उत्पन्न कराने वाली कथा । आक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है। यथा - आचार आक्षेपणी यानी साधु के आचार का अथवा आचाराङ्ग सूत्र के व्याख्यान द्वारा श्रोता में तत्त्वरुचि उत्पन्न करना । दोष की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त द्वारा अथवा व्यवहार सूत्र के व्याख्यान द्वारा तत्त्व के प्रति आकर्षित करने वाली कथा व्यवहार आक्षेपणी कथा है । संशययुक्त श्रोता को मधुर वचनों से समझा कर अथवा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि प्रज्ञप्ति सूत्रों के व्याख्यान द्वारा श्रोता को तत्त्व के प्रति आकर्षित करने वाली कथा प्रज्ञप्ति आक्षेपणी कथा है । सात नयों के अनुसार सूक्ष्म जीवादि तत्त्वों के कथन द्वारा अथवा दृष्टिवाद सूत्र के व्याख्यान द्वारा श्रोता को तत्त्व की ओर आकर्षित करने वाली कथा दृष्टिवाद आक्षेपणी कथा है।

विक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - अपने सिद्धान्त का कथन करना, अपने सिद्धान्त का कथन करके पर सिद्धान्त का कथन करना यानी अपने सिद्धान्त के गुणों को प्रकाशित कर पर-सिद्धान्त के दोषों को बतलाने वाली पहली विक्षेपणी कथा है । पर-सिद्धान्त का कथन करके स्वसिद्धान्त को स्थापित करे अर्थात् पर-सिद्धान्त का कथन करते हुए अपने सिद्धान्त को स्थापित करना, यह दूसरी विक्षेपणी कथा है। सम्यग्वाद अर्थात् पर-सिद्धान्त में घुणाक्षर न्याय से जितनी बातें जिनागम के सदृश हैं उनका कथन करे और सम्यग्वाद का कथन करके मिथ्यावाद यानी जिनागम के विपरीत वाद के दोषों का कथन करना अथवा आस्तिकवादी के अभिप्राय को बता कर नास्तिक वादी का अभिप्राय बतलाना तीसरी विक्षेपणी कथा है । मिथ्यावाद यानी जिनागम से विपरीत बातों के दोषों का कथन करके सम्यग्वाद की स्थापना करना अथवा नास्तिकवाद के दोषों को बता कर आस्तिकवाद की स्थापना करना । यह चौथी विक्षेपणी कथा है ।

संवेगनी कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - यह सांसारिक धन वैभव असार एवं अस्थिर है, इस प्रकार संसार का स्वरूप बता कर वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा इहलोग संवेगनी कथा है। देव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी ईर्षा, विषाद, भय, वियोग, आदि विविध दुःखों से दुःखी हैं, इस प्रकार परलोक का स्वरूप बता कर वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा परलोक संवेगनी कथा है। यह शरीर स्वयं अशुचि रूप है । अशुचि से उत्पन्न हुआ है अशुचि पदार्थों से पोषित हुआ है । अशुचि से भरा हुआ है और अशुचि को उत्पन्न करने वाला है, इत्यादि रूप से मानव-शरीर के स्वरूप को बता कर वैराग्यभाव उत्पन्न करने वाली कथा आत्मशरीर-स्वशरीरसंवेगनी कथा है । दूसरे के शरीर की अशुचिता बतला कर वैराग्यभाव उत्पन्न करने वाली कथा परशरीर संवेगनी कथा है ।

निर्वेदनी कथा चार प्रकार की कही गई है । यथा - इस लोक में किये हुए दुष्ट कर्म इसी लोक में दुःख रूप फल देने वाले होते हैं । जैसे चोरी, परस्त्री गमन आदि दुष्ट कर्म । यह पहली निर्वेदनी कथा है। इस लोक में किये हुए दुष्ट कर्म परलोक में दुःख रूप फल देते हैं । जैसे महारम्भ महापरिग्रह आदि नरक योग्य कर्मों का फल नरक में भोगना पड़ता है । यह दूसरी निर्वेदनी कथा है । परलोक में उपार्जन किये हुए अशुभ कर्म इस लोक में दुःख रूप फल देते हैं । जैसे पूर्वभव में किये हुए अशुभ कर्मों के फल रूप इस लोक में नीच कुल में उत्पन्न होना, बचपन से ही कोढ आदि भयंकर रोगों से पीड़ित होना, दरिद्री होना आदि । यह तीसरी निर्वेदनी कथा है । परलोक में किये हुए अशुभ कर्म परलोक में दुःख रूप फल देते हैं । जैसे पूर्वभव में किये हुए अशुभ कर्मो से जीव कौवे, गीध आदि के भव में उत्पन्न होते हैं और यहाँ से मर कर नरक में उत्पन्न होते हैं । यह चौथी निर्वेदनी कथा है । ऊपर अशुभ कर्मों की अपेक्षा निर्वेदनी कथा के चार भेद बतलाये गये हैं । अब शुभ कर्मों की अपेक्षा निर्वेदनी कथा के चार भेद बतलाये जाते हैं । इस लोक में किये हुए शुभकर्म इसी लोक में सुख रूप फल देने वाले होते हैं । जैसे तीर्थङ्कर भगवान् को दान देने वाले पुरुष को सुवर्णवृष्टि आदि सुख रूप फल इसी लोक में मिलता है । इस लोक में किये हुए शुभकर्म परलोक में सुख रूप फल देने वाले होते हैं। जैसे इस लोक में पाले हुए निरतिचार चारित्र का सुख रूप फल परलोक में मिलता है । परलोक में किये हुए शुभकर्म इस लोक में सुख रूप फल देने वाले होते हैं । जैसे पूर्वभव में शुभ कर्म करने वाले जीव इस भव में तीर्थङ्कर रूप से जन्म लेकर सुख रूप फल पाते हैं । परलोक में किये हुए शुभ कर्म परलोक में सुख रूप फल के देने वाले होते हैं । जैसे देवभव में रहा हुआ तीर्थङ्कर का जीव पूर्वभव के तीर्थङ्कर प्रकृति रूप शुभकर्मों का फल देवभव के बाद तीर्थङ्कर जन्म में भोगेगा ।

विवेचन - विकथा की व्याख्या और भेद - संयम में बाधक चारित्र विरुद्ध कथा को विकथा कहते हैं। विकथा के चार भेद हैं - १. स्त्रीकथा २. भक्तकथा ३. देशकथा ४. राजकथा। चारों विकथाओं के भेदों-प्रभेदों का वर्णन भावार्थ से स्पष्ट है। चारों विकथाओं के दोष इस प्रकार हैं -

स्त्री कथा करने और सुनने वालों को मोह की उत्पत्ति होती है। लोक में निन्दा होती है। सूत्र और अर्थ ज्ञान की हानि होती है। ब्रह्मचर्य्य में दोष लगता है। स्त्रीकथा करने वाला संयम से गिर जाता है। कुलिङ्गी हो जाता है या साधु वेश में रह कर अनाचार सेवन करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्त कथा अर्थात् आहार कथा करने से गृद्धि होती है और आहार बिना किए ही गृद्धि आसक्ति से साधु को इङ्गाल आदि दोष लगते हैं। लोगों में यह चर्चा होने लगती है कि यह साधु अजितेन्द्रिय है। इन्होंने खाने के लिए संयम लिया है। यदि ऐसा न होता तो ये साधु आहार कथा क्यों करते ? अपना स्वाध्याय, ध्यान आदि क्यों नहीं करते ? गृद्धि भाव से षट् जीव निकाय के वध की अनुमोदना लगती है तथा आहार में आसक्त साधु एषणाशुद्धि का विचार भी नहीं कर सकता। इस प्रकार भक्त कथा के अनेक दोष हैं।

देश कथा करने से विशिष्ट देश के प्रति राग या दूसरे देश से अरुचि होती है। रागद्वेष से कर्मबन्ध होता है। स्वपक्ष और परपक्ष वालों के साथ इस सम्बन्ध में वादविवाद खड़ा हो जाने पर झगड़ा हो सकता है। देश वर्णन सुनकर दूसरा साधु उस देश को विविध गुण सम्पन्न सुनकर वहाँ जा सकता है। इस प्रकार देश कथा से अनेक दोषों की संभावना है।

उपाश्रय में बैठे हुए साधुओं को राज कथा करते हुए सुन कर राजपुरुष के मन में ऐसे विचार आ सकते हैं कि ये वास्तव में साधु नहीं हैं ? सच्चे साधुओं को राजकथा से क्या प्रयोजन ? मालूम होता है कि ये गुप्तचर या चोर हैं। राजा के अमुक अश्व का हरण हो गया था, राजा के स्वजन को किसी ने मार दिया था। उन अपराधियों का पता नहीं लगा। क्या ये वे ही तो अपराधी नहीं हैं ? अथवा ये उक्त काम करने के अभिलाषी तो नहीं हैं ? राजकथा सुनकर किसी राजकुल से दीक्षित साधु को भुक्त भोगों का स्मरण हो सकता है। अथवा दूसरा साधु राजऋद्धि सुन कर नियाणा कर सकता है। इस प्रकार राजकथा के ये तथा और भी अनेक दोष हैं।

चार प्रकार के पुरुष, केवलज्ञान केवलदर्शन के बाधक कारण

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - किसे णाममेगे किसे, किसे णाममेगे दढे, दढे णाममेगे किसे, दढे णाममेगे दढे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - किसे णाममेगे किस सरीरे, किसे णाममेगे दढसरीरे, दढे णाममेगे किस सरीरे, दढे णाममेगे दढसरीरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ णो दढसरीरस्स, दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ णो किससरीरस्स, एगस्स किससरीरस्स वि णाण्ण दंसणे समुप्पज्जइ दढसरीरस्स वि। एगस्स णो किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जइ णो दढसरीरस्स । चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि अइसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे वि ण समुप्पज्जेज्जा तंजहा - अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीकहं भत्तकहं देसकहं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रायकहं कहित्ता भवइ, विवेगेणं विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणं भावित्ता भवइ, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्मजागरियं जागरित्ता भवइ, फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसित्ता भवइ, इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण जाव णो समुप्पज्जेज्जा । चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अइसेस णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा तंजहा - इत्थीकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं णो कहित्ता भवइ, विवेगेणं विउस्सग्गेणं सम्ममप्पाणं भावित्ता भवइ, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरित्ता भवइ, फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स सम्मं गवेसित्ता भवइ, इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव समुप्पज्जेज्जा॥ १५०॥

कठिन शब्दार्थ - **किसे** - कृश-दुर्बल, **दढे** - दृढ़, **समुप्पज्जइ** - उत्पन्न होता है, **अस्सिं** - इस में, **अइसेसे** - अतिशेष, **अभिक्खणं अभिक्खणं** - बार-बार, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि** - पिछली रात्रि के समय में, **धम्मजागरियं** - धर्म जागरणा, **फासुयस्स** - प्रासुक का, **एसणिज्जस्स** - एषणीय का, **उंछस्स** - थोड़ा थोड़ा का, **सामुदाणियस्स** - सामुदानिक गोचरी का, **गवेसित्ता** - गवेषणा, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष शरीर से कृश यानी दुर्बल और भाव से भी कृश यानी हीन पराक्रम वाला, कोई एक पुरुष शरीर से कृश किन्तु भाव से दृढ़ यानी दृढ़ पराक्रम वाला, कोई एक पुरुष शरीर से दृढ़ किन्तु भाव से कृश, कोई एक पुरुष शरीर से भी दृढ़ और भाव से भी दृढ़ । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष भाव से कृश और शरीर से भी कृश, कोई एक पुरुष भाव से कृश किन्तु शरीर से दृढ़, कोई एक पुरुष भाव से दृढ़ किन्तु शरीर से कृश, कोई एक पुरुष भाव से दृढ़ और शरीर से भी दृढ़ । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा- किसी एक कृश शरीर वाले पुरुष को छद्मस्थ सम्बन्धी ज्ञान दर्शन अथवा केवलज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं किन्तु दृढ़ शरीर वाले पुरुष को नहीं। किसी एक दृढ़ शरीर वाले पुरुष को ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं किन्तु कृश शरीर वाले को नहीं, किसी एक कृश शरीर वाले पुरुष को भी ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ़ शरीर वाले को भी उत्पन्न होते हैं, किसी एक न तो कृश शरीर वाले पुरुष को ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं और न दृढ़ शरीर वाले को उत्पन्न होते हैं।

साधु साध्वियों को अमुक समय में उत्पन्न होते हुए भी अतिशेष यानी केवलज्ञान केवलदर्शन चार कारणों से उत्पन्न नहीं होते हैं । यथा - जो बार बार स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा करता है, विवेक यानी अशुद्ध आहार आदि का त्याग करने से तथा कायोत्सर्ग करने से जो अपनी आत्मा को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् प्रकार से भावित नहीं करता है, जो पीछली रात्रि के समय में धर्म जागरणा नहीं करता है, जो प्रासुक एषणीय थोड़ा थोड़ा और सामुदानिक गोचरी से प्राप्त होने वाले आहार की सम्यक् प्रकार से गवेषणा नहीं करता है, इन चार कारणों से साधु अथवा साध्वियों को इस समय में उत्पन्न होते हुए केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न नहीं होते हैं। चार कारणों से साधु अथवा साध्वी को उत्पन्न होते हुए केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो जाते हैं। यथा - जो स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा और राज कथा नहीं करता है, जो विवेक यानी अशुद्ध आहार का त्याग करने से और कायोत्सर्ग करने से अपनी आत्मा को सम्यक् रूप से भावित करता है, जो पीछली रात्रि के समय में धर्मजागरणा करता है, जो प्रासुक एषणीय थोड़ा थोड़ा सामुदानिक भिक्षाचर्या से प्राप्त होने वाले आहार की सम्यक् प्रकार से गवेषणा करता है इन चार कारणों से साधु अथवा साध्वी को उत्पन्न होते हुए केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो जाते हैं।

स्वाध्याय अस्वाध्याय काल

णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए तंजहा - आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तियपाडिवए सुगिम्हपाडिवए । णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं संझाहिं सज्झायं करित्तए तंजहा - पढमाए, पच्छिमाए, मज्झण्हे, अड्ढरए । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चाउक्कालं सज्झायं करित्तए तंजहा - पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

लोक स्थिति, पुरुष के भेद

चउव्विहा लोगट्ठिई पण्णत्ता तंजहा - आगासपइट्ठिए वाए, वायपइट्ठिए उदही, उदहि पइट्ठिया पुढवी, पुढविपइट्ठिया तसा थावरा पाणा । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - तहे णाममेगे, णो तहे णाममेगे, सोवत्थी णाममेगे, पहाणे णाममेगे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आयंतकरे णाममेगे णो परंतकरे, परंतकरे णाममेगे णो आयंतकरे, एगे आयंतकरे वि परंतकरे वि, एगे णो आयंतकरे णो परंतकरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आयंतमे णाममेगे णो परंतमे, परंतमे णाममेगे णो आयंतमे, एगे आयंतमे वि परंतमे वि, एगे णो आयंतमे णो परंतमे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आयंदमे णाममेगे णो परंदमे, परंदमे णाममेगे णो आयंदमे, एगे आयंदमे वि परंदमे वि, एगे णो आयंदमे णो परंदमे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्हा

चउव्विहा गरहा पण्णत्ता तंजहा - उवसंपज्जामि एगा गरहा, वितिगिच्छामि एगा गरहा, जं किंचि मिच्छामि एगा गरहा, एवं वि पण्णत्ति एगा गरहा॥ १५१॥

कठिन शब्दार्थ - महापाडिवएहिं - महा प्रतिपदाओं में, **सज्झायं** - स्वाध्याय, **आसाढ पाडिवए**- आषाढ मास की पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा, **इंदमहपाडिवए** - इन्द्रमह-आश्विन मास की पूर्णिमा के बाद आने वाली प्रतिपदा, **कत्तिय पाडिवए** - कार्तिक मास की पूर्णिमा के बाद आने वाली प्रतिपदा, **सुगिम्ह पाडिवए** - सुग्रीष्म-चैत्र मास की पूर्णिमा के बाद आने वाली प्रतिपदा, **संझाहिं** - संध्याओं में, **पढमाए** - प्रथम, **पच्छिमाए** - पश्चिम, **मज्झण्हे** - मध्याह्न, **अड्ढरए** - अर्द्ध रात्रि, **चाउक्कालं** - चार प्रहर में, **पुवण्हे** - पूर्वाण्ह, **अवरण्हे** - अपराण्ह, **पओसे** - प्रदोष, **पच्चूसे** - प्रत्यूष, **लोगठिई** - लोक स्थिति, **उदहीं** - उदधि, **पुढविपइट्ठिया** - पृथ्वी प्रतिष्ठित, **तहे** - तथा, **सोवत्थी**- सौवस्तिक-मांगलिक वचन बोलने वाला, **पहाणे** - प्रधान, **आयंतकरे** - आत्म अन्तकर, **परंतकरे** - पर-अंतकर-दूसरों का कल्याण करने वाला, **आयंतमे** - अपनी आत्मा पर क्रोध करने वाला, **परंतमे** - दूसरों पर क्रोध करने वाला, **आयंदमे** - आत्मदमन करने वाला, **परंदमे** - दूसरों का दमन करने वाला, **गरहा** - गर्हा, **पण्णत्ति** - प्रज्ञप्ति-फरमाना।

भावार्थ - साधु साध्वियों को चार महा प्रतिपदाओं में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है । यथा - आषाढ मास की पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा यानी श्रावण बदी एकम, इन्द्रमह यानी आश्विन मास की पूर्णिमा के बाद आने वाली प्रतिपदा यानी कार्तिक बदी एकम, कार्तिक मास की पूर्णिमा के बाद आने वाली प्रतिपदा यानी मिगसर वदी एकम और सुग्रीष्म यानी चैत्र मास की पूर्णिमा के बाद आने वाली प्रतिपदा वैशाख बदी एकम । साधु साध्वी को चार सन्ध्याओं में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है । यथा - प्रथम सन्ध्या यानी सूर्योदय से दो घड़ी पहले, पश्चिम सन्ध्या यानी सूर्यास्त के बाद दो घड़ी पीछे तक, मध्याह्न यानी दिन में दुपहर के समय और आधी रात के समय । साधु साध्वी को चार पहर में स्वाध्याय करना कल्पता है । यथा - पूर्वाण्ह यानी दिन के पहले पहर में, अपराण्ह यानी दिन के पीछले पहर में, प्रदोष यानी रात्रि के पहले पहर में और प्रत्यूष यानी रात्रि के अन्तिम पहर में ।

चार प्रकार की लोकस्थिति कही गई है । यथा - वायु यानी घनवात और तनुवात आकाश प्रतिष्ठित है, घनोदधि वायु प्रतिष्ठित है, पृथ्वी घनोदधि प्रतिष्ठित है और त्रस तथा स्थावर प्राणी पृथ्वी प्रतिष्ठित हैं । अर्थात् त्रस स्थावर प्राणी पृथ्वी पर रहे हुए हैं । पृथ्वी घनोदधि पर रही हुई है । घनोदधि घनवात तनुवात पर ठहरा हुआ है और घनवात तनुवात आकाश पर ठहरा हुआ है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - एक तथापुरुष यानी सेवक पुरुष, जो कि जिस प्रकार स्वामी आज्ञा देता है उसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार कार्य करता है, एक नोतथापुरुष यानी स्वामी जैसी आज्ञा देता है वैसा कार्य नहीं करता किन्तु स्वामी की आज्ञा से विपरीत कार्य करता है, एक पुरुष सौवस्तिक यानी माङ्गलिक वचन बोलने वाला होता है और एक पुरुष प्रधान यानी इन सब का स्वामी होता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष आत्म-अन्तकर यानी सिर्फ अपनी आत्मा का ही कल्याण करता है दूसरों का कल्याण नहीं करता, जैसे प्रत्येक बुद्ध आदि। कोई एक पुरुष दूसरों का कल्याण करता है किन्तु उसी भव में अपनी आत्मा को मोक्ष नहीं पहुँचाता है, जैसे अचरम शरीरी आचार्य आदि, कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का भी कल्याण करता है और दूसरों का भी कल्याण करता है, जैसे तीर्थङ्कर भगवान् तथा अन्य साधु आदि, कोई एक पुरुष न तो अपनी आत्मा का कल्याण करता है और न दूसरों का कल्याण करता है, जैसे कालिकाचार्य आदि या मूर्ख । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा पर ही क्रोध करता है किन्तु दूसरों पर क्रोध नहीं करता है, कोई एक पुरुष दूसरों पर क्रोध करता है किन्तु अपनी आत्मा पर क्रोध नहीं करता है, कोई एक पुरुष अपनी आत्मा पर भी क्रोध करता है और दूसरों पर भी क्रोध करता है, कोई एक पुरुष न तो अपनी आत्मा पर क्रोध करता है और न दूसरों पर क्रोध करता है। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का दमन करता है किन्तु दूसरों का दमन नहीं करता है, कोई एक पुरुष दूसरों का दमन करता है किन्तु अपनी आत्मा का दमन नहीं करता है, कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का भी दमन करता है और दूसरों का भी दमन करता है, कोई एक पुरुष न तो अपनी आत्मा का दमन करता है और न दूसरों का दमन करता है । चार प्रकार की गर्हा कही गई है । यथा - अपने दोष निवेदन करने के लिए मैं गुरु महाराज के पास जाता हूँ इस प्रकार विचार करना एक यानी पहली गर्हा है, 'मैं अपने दोषों की विशेष प्रकार से गर्हा करता हूँ' इस प्रकार का विचार करना एक गर्हा है 'जो कुछ दोष मुझे लगा है वह मिथ्या हो' यह एक गर्हा है । 'जिन भगवान् ने अमुक दोष की शुद्धि इस प्रकार फरमाई है', इस प्रकार विचार करना एक गर्हा है ।

विवेचन - शोभन रीति से मर्यादा पूर्वक अस्वाध्याय काल का परिहार करते हुए शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है। चार महा प्रतिपदाओं में नंदी सूत्र आदि विषयक वाचनादि स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है किन्तु अनुप्रेक्षा (चिंतन) का निषेध नहीं है। इसी प्रकार चार संध्याओं में भी स्वाध्याय करना उचित नहीं है। अस्वाध्याय में स्वाध्याय नहीं करने का कारण बताते हुए वृत्तिकार ने कहा है -

सुयणायंमि अभत्ती लोगविरुद्धं पमत्त छलणा य ।
विज्जासाहणवेगुण्ण धम्मया एव मा कुणसु ॥

अर्थात् - अनध्याय (अस्वाध्याय) में स्वाध्याय करना भक्ति-विरुद्ध है। लोकाचार के विपरीत है अशुद्ध उच्चारण से विपरीतार्थ की भावना के कारण अभीष्ट सिद्धि में बाधा पहुँचने की सम्भावना रहती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है अतः अस्वाध्याय काल में आगमों का स्वाध्याय निषिद्ध है। इसलिये स्वाध्याय काल में ही स्वाध्याय करना चाहिये।

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में स्वाध्याय का फल बताते हुए कहा है -

"**णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ**" अर्थात् स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है। वाचना, पृच्छना आदि स्वाध्याय के भेदों से महान् निर्जरा का होना तथा असाता वेदनीय कर्म का बार-बार बन्ध न होना यावत् शीघ्र ही संसार सागर से पार पहुँचना आदि महाफल बतलाये गये हैं। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि समुचित वेला में ही स्वाध्याय करने से ये महान् फल प्राप्त होते हैं। जो समय स्वाध्याय का नहीं है उस समय स्वाध्याय करने से लाभ के बदले हानि हो सकती है क्योंकि भगवती सूत्र में कहा है कि देवताओं की भाषा अर्धमागधी है और शास्त्रों की भाषा भी यही है। आगमों के देववाणी में होने से तथा देवाधिष्ठित होने के कारण अस्वाध्याय को टालना चाहिए। क्योंकि उस समय स्वाध्याय करने से भक्ति के बदले अभक्ति हो जाती है तथा किसी के यहाँ मृत्यु होने पर स्वाध्याय करना व्यवहार में भी शोभा नहीं देता है क्योंकि लोग कह देते हैं कि ये बिचारे इतने दुःखी है इन को इनके प्रति कोई सहानुभूति नहीं है, इसलिए ये गीत गा रहे हैं।

नोट - यहाँ चार पूर्णिमा और चार प्रतिपदाओं का अस्वाध्याय काल बताया गया है किन्तु निशीथ सूत्र के उन्नीसवें उद्देशक में आश्विन के बदले भादवें की महाप्रतिपदा को अस्वाध्याय माना है। इसलिए भादवे की पूर्णिमा और आसोज वदी एकम इन दो को भी अस्वाध्याय मानना चाहिए। अस्वाध्याय चौतीस हैं - यथा दस औदारिक शरीर सम्बन्धी, दस आकाश सम्बन्धी, पांच पूर्णिमा, पांच प्रतिपदा और चार संध्या (सुबह-शाम दोपहर और अर्धरात्रि) ये चौतीस अस्वाध्याय टालकर जो स्वाध्याय किया जाता है उसमें किसी प्रकार की विघ्न बाधा नहीं आती है।

इनका विशेष विवरण ठाणाङ्ग चार, ठाणाङ्ग दस, व्यवहार भाष्य और हरिभद्र आवश्यक में है उनका हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के सातवें भाग १६८ वें बोल में है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

चार प्रकार से लोक की स्थिति कही है -

१. आकाश पर घनवात, तनुवात (पतली वायु) रहा हुआ है। २. वायु पर घनोदधि रहा हुआ है ३. घनोदधि पर पृथ्वी रही हुई है और ४. पृथ्वी पर त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुए हैं।

गुरु की साक्षी पूर्वक आत्मा की निन्दा गर्हा कहलाती है। प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार की गर्हा बतलायी गई है।

पुरुष और स्त्रियों के भेद

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अप्पणो णाममेगे अलमंथू भवइ णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परस्स, परस्स णाममेगे अलमंथू भवइ णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि अलमंथू भवइ परस्स वि, एगे णो अप्पणो अलमंथू भवइ णो परस्स ।

चत्तारि मग्गा पण्णत्ता तंजहा- उज्जू णाममेगे उज्जु, उज्जू णाममेगे वंके, वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वंके,वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके । चत्तारि मग्गा पण्णत्ता तंजहा - खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे । चत्तारि मग्गा पण्णत्ता तंजहा - खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे ।

चत्तारि संबुक्का पण्णत्ता तंजहा - वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते ।

चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता। एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ तंजहा - वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता। चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता । एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ तंजहा - वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता । चत्तारि वायमंडलिया पण्णत्ता तंजहा - वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता । एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ तंजहा - वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता ।

चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता तंजहा - वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते॥ १५२॥

कठिन शब्दार्थ - अलमंथू - समर्थ, **मग्गा** - मार्ग, **उज्जू**- सरल, **वंके** - वक्र (टेढा) **खेमे** - क्षेम-उपद्रव रहित, **खेमरूवे** - क्षेम रूप-स्वच्छ, **संवुक्का** - शंख, **वामे** - वाम, **वामावत्ते** - वाम आवर्त वाला, **दाहिणावत्ते** - दक्षिणावर्त, **धूमसिहाओ** - धूम शिखाएं, **अग्गिसिहाओ**- अग्नि शिखाएँ, **वायमंडलिया** - वातमाण्डलिक।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा को पाप से निवृत्त करने में समर्थ होता है किन्तु दूसरों को नहीं, कोई एक पुरुष दूसरों को पाप से हटाने में समर्थ होता है किन्तु अपनी आत्मा को पाप से हटाने में समर्थ नहीं होता है, कोई एक पुरुष अपनी आत्मा को भी पाप से हटाने में समर्थ होता है और दूसरों को भी पाप से हटाने में समर्थ होता है, कोई एक पुरुष अपनी आत्मा को भी पाप से हटाने में समर्थ नहीं होता है और दूसरों को भी पाप से हटाने में समर्थ नहीं होता है ।

चार प्रकार के मार्ग कहे गये हैं । यथा - कोई एक मार्ग आदि (प्रारम्भ) में सरल और अन्त में भी सरल, कोई एक मार्ग आदि में सरल किन्तु अन्त में वक्र यानी टेढ़ा, कोई एक मार्ग आदि (प्रारम्भ) में टेढ़ा और अन्त में सरल, कोई एक मार्ग आदि में भी टेढ़ा और अन्त में भी टेढ़ा । इसी प्रकार चार तरह के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष पहले सरल और पीछे भी सरल, कोई एक पुरुष पहले सरल किन्तु पीछे टेढ़ा, कोई एक पुरुष पहले टेढ़ा किन्तु पीछे सरल, कोई एक पुरुष पहले भी टेढ़ा और पीछे भी टेढ़ा । चार प्रकार के मार्ग कहे गये हैं । यथा - कोई एक मार्ग आदि में क्षेम यानी उपद्रव रहित और अन्त में भी क्षेम, कोई एक मार्ग आदि में क्षेम किन्तु अन्त में अक्षेम यानी उपद्रव सहित, कोई एक मार्ग आदि में क्षेम किन्तु अन्त में अक्षेम, कोई एक मार्ग आदि में अक्षेम किन्तु अन्त में क्षेम, कोई एक मार्ग आदि में भी अक्षेम और अन्त में भी अक्षेम । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष पहले क्षेम (कल्याणकारी) और पीछे भी क्षेम, कोई एक पुरुष पहले क्षेम और पीछे अक्षेम, कोई एक पुरुष पहले अक्षेम किन्तु पीछे क्षेम, कोई एक पुरुष पहले भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अक्षेम और पीछे भी अक्षेम । चार प्रकार के मार्ग कहे गये हैं । यथा - कोई एक मार्ग क्षेम यानी उपद्रव रहित और क्षेमरूप यानी स्वच्छ, कोई एक मार्ग क्षेम किन्तु अस्वच्छ, कोई एक मार्ग अक्षेम किन्तु स्वच्छ, कोई एक मार्ग अक्षेम और अस्वच्छ। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष क्षेम यानी अच्छे भाव वाला और क्षेमरूप यानी अच्छे वेश वाला जैसे साधु, कोई एक पुरुष अच्छे भाव वाला किन्तु अक्षेम यानी असुन्दर वेश वाला जैसे कारण से द्रव्य लिङ्ग रहित साधु, कोई एक पुरुष अक्षेम किन्तु क्षेम रूप वाला जैसे निह्नव, कोई एक पुरुष अक्षेम और अक्षेम रूप वाला जैसे अन्यतीर्थिक या गृहस्थ । चार प्रकार के शंख कहे गये हैं । यथा - कोई एक शंख वाम यानी प्रतिकूल गुणों वाला अथवा बांई तरफ रखा हुआ और वाम आवर्त वाला, कोई एक शंख वाम किन्तु दक्षिणावर्त, कोई एक शंख दक्षिण यानी दक्षिण की तरफ रखा हुआ अथवा अनुकूल गुणों वाला किन्तु वाम आवर्त वाला, कोई एक शंख दक्षिण की तरफ रखा हुआ अथवा अनुकूल गुणों वाला और दक्षिणावर्त वाला होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष स्वभाव से वाम यानी टेढ़ा और वामावर्त्त यानी विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, कोई एक पुरुष स्वभाव से वाम किन्तु दक्षिणावर्त यानी अनुकूल प्रवृत्ति करने वाला, कोई एक पुरुष स्वभाव से अनुकूल किन्तु किसी कारण वश विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, कोई एक पुरुष स्वभाव से अनुकूल और अनुकूल प्रवृत्ति करने वाला होता है ।

चार प्रकार की धूम शिखाएं कही गई हैं । यथा - कोई एक धूम शिखा बाईं तरफ होती है और उसका आवर्त्त भी बायां होता है । कोई एक धूम शिखा बाईं तरफ होती है किन्तु उसका आवर्त दाहिना होता है, कोई एक धूम शिखा दक्षिण की तरफ होती है किन्तु उसका आवर्त बायां होता है, कोई एक धूम शिखा दाहिनी तरफ होती है और उसका आवर्त्त भी दाहिना होता है । इसी तरह चार प्रकार की स्त्रियाँ कही गई हैं । यथा - कोई एक स्त्री स्वभाव से वाम यानी मलिन स्वभाव वाली और वामावर्त्ता यानी विपरीत प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री मलिन स्वभाव वाली किन्तु अनुकूल प्रवृत्ति करने वाली, कोई एक स्त्री अच्छे स्वभाव वाली किन्तु विपरीत प्रवृत्ति करने वाली, कोई एक स्त्री अच्छे स्वभाव वाली और अनुकूल प्रवृत्ति करने वाली होती है । चार प्रकार की अग्नि शिखा कही गई है । यथा - कोई अग्निशिखा वाम यानी बाईं तरफ होती है और आवर्त्त भी वाम होता है । कोई एक अग्निशिखा वाम किन्तु दक्षिणावर्त वाली, कोई दाहिनी तरफ किन्तु वाम आवर्त्त वाली, कोई दाहिनी तरफ और दक्षिणावर्त वाली होती है । इसी तरह चार प्रकार की स्त्रियाँ कही गई हैं । यथा - कोई एक स्त्री वाम यानी तेज स्वभाव वाली और वामावर्त्ता यानी विपरीत प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री तेज स्वभाव वाली किन्तु अनुकूल प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री शान्त स्वभाव वाली किन्तु विपरीत प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री शान्त स्वभाव वाली और अनुकूल प्रवृत्ति करने वाली होती है । चार प्रकार की वातमाण्डलिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यानी मण्डलाकार ऊंची उठी हुई वायु कही गई है। यथा - कोई वायु वाम यानी बाईं तरफ और वाम आवर्त्त वाली, कोई वायु वाम किन्तु दक्षिण आवर्त्त वाली, कोई वायु दक्षिण तरफ किन्तु वाम आवर्त्त वाली कोई वायु दक्षिण तरफ और दक्षिण आवर्त्त वाली। इसी तरह चार प्रकार की स्त्रियाँ कही गई हैं । यथा-कोई स्त्री वाम यानी चञ्चल स्वभाव वाली और वामावर्त्त यानी विपरीत प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री चञ्चल स्वभाव वाली किन्तु अनुकूल प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री गम्भीर स्वभाव वाली किन्तु विपरीत प्रवृत्ति करने वाली, कोई स्त्री गम्भीर स्वभाव वाली और अनुकूल प्रवृत्ति करने वाली होती है।

चार प्रकार के वनखण्ड कहे गये हैं । यथा - कोई एक वनखण्ड वाम यानी बाईं तरफ होता है और वाम आवर्त्त वाला होता है, कोई वनखण्ड वाम किन्तु दक्षिणावर्त्त वाला, कोई वनखण्ड दक्षिण तरफ किन्तु वाम आवर्त्त वाला कोई एक वनखण्ड दक्षिण तरफ और दक्षिणावर्त्त होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष वाम यानी विपरीत स्वभाव वाला और वामावर्त्त यानी विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, कोई एक पुरुष विपरीत स्वभाव वाला किन्तु अनुकूल प्रवृत्ति करने वाला, कोई एक पुरुष अनुकूल स्वभाव वाला किन्तु विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, कोई एक पुरुष अनुकूल स्वभाव वाला और अनुकूल प्रवृत्ति करने वाला होता है ।

आपवादिक विधान

चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं आलवमाणे वा संलवमाणे वा णाइक्कमइ तंजहा - पंथं पुच्छमाणे वा, पंथं देसमाणे वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दलेमाणे वा, दलावेमाणे वा।

तमस्काय

तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा - तमे इ वा, तमुक्काए इ वा, अंधकारे इ वा, महंधकारे इ वा । तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा - लोगंधयारे इ वा, लोगतमसे इ वा, देवंधयारे इ वा देवतमसे इ वा । तमुक्कायस्स णं चत्तारि, णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा - वायफलिहे इ वा, वायफलिहखोभेइ वा, देवरण्णे इ वा, देववूहे इ वा । तमुक्काएणं चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठइ तंजहा - सोहम्म ईसाणं सणंकुमारमाहिंदं॥ १५३॥

कठिन शब्दार्थ - णिग्गंथिं - साध्वी को, **आलवमाणे वा संलवमाणे वा** - आलाप संलाप-बातचीत करता हुआ, **अइक्कमइ** - उल्लंघन करता है, **पंथं** - पंथ-मार्ग को, **पुच्छमाणे** - पूछता हुआ, **देसमाणे** - बतलाता हुआ, **दलेमाणे** - देता हुआ, **दलावेमाणे** - दिलवाता हुआ, **तमुक्कायस्स** - तमस्काय के, **लोगंधयारे** - लोकान्धकार, **लोग तमसे** - लोक तम, **देवंधयारे** - देवान्धकार, **देवतमसे**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवतम, **वायफलिहे** - वात परिध, **वायफलिहखोभे** - वातपरिध क्षोभ, **देवरण्णे** - देवारण्य, **देववूहे** - देव व्यूह।

भावार्थ - चार कारणों से साधु अकेली साध्वी के साथ आलापसंलाप यानी बातचीत करता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । यथा - मार्ग का अजान होने से मार्ग के लिए पूछे, कोई साध्वी मार्ग न जानती हो अथवा मार्ग भूल गई हो तो उसको मार्ग बतलावे, कोई विशेष कारण उत्पन्न होने पर अशन, पानी, खादिम, स्वादिम देवे और दिलावे । विशेष कारण उपस्थित होने पर इन चार बातों को करता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं । यथा - तम, तमस्काय, अन्धकार, महान् अन्धकार ।

तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं । यथा - लोकान्धकार, लोक तम, देवान्धकार, देवतम । तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं । यथा - वातपरिघ यानी वायु को रोकने के लिए अर्गला के समान, वातपरिघक्षोभ यानी वायु को क्षुब्ध करने के लिए परिघ नामक शस्त्र के समान, देवारण्य यानी बलवान् देव के भय से डर कर देव उसमें जाकर छिप जाते हैं । देवव्यूह यानी संग्राम में जैसे व्यूह दुरधिगम्य होता है उसी तरह यह देवों के लिए भी व्यूह के समान है । तमस्काय सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र, इन चार देवलोकों को आवृत्त करके यानी घेर कर रही हुई है ।

विवेचन - **'एगो एगित्थिए सद्धिं णेव चिट्ठे ण संलवे''** - इस आगम वाक्य के अनुसार अकेला साधु अकेली स्त्री के के साथ खड़ा नहीं रहे और बोले भी नहीं परन्तु आपवादिक स्थिति में निम्न चार कारणों से साधु अकेली साध्वी के साथ आलाप (थोड़ा अथवा पहली बार बोलता हुआ) और संलाप (परस्पर बार-बार बोलता हुआ) करता हुआ आचार-भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है। यथा - १. मार्ग पूछते हुए २. अनजान अथवा मार्ग भूली हुई साध्वी को मार्ग बतलाते हुए ३-४. विशेष कारण होने पर अशन, पानी खादिम स्वादिम देते हुए और दिलाते हुए। आपवादिक स्थिति नहीं होने पर भी अपवाद मान कर प्रवृत्ति करना स्वच्छन्दता है और स्वच्छन्दता संयम से पतित करने वाली होती है।

तमस्काय - 'तमसः अप्कायपरिणामरूपस्यान्धकारस्य कायः- प्रचयस्तमस्कायः।'

अर्थ - तमस्काय अपूकाय का परिणाम रूप है उसका प्रचयसमूह तमस्काय कहलाता है। जो असंख्यातवें अरुणवर द्वीप की बाहर की वेदिका के अन्त से अरुणवर समुद्र में ४२ हजार योजन जाने पर वहाँ पानी से एक प्रदेश श्रेणी वाली तमस्काय निकलती है । वह १७२१ योजन ऊपर जाकर विस्तृत हो जाती है । प्रथम के चार देवलोकों को घेर कर पांचवें ब्रह्म देवलोक के रिष्ठ विमान तक पहुँची है।

चार प्रकार के पुरुष

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - संपागड पडिसेवी णाममेगे, पच्छण्ण पडिसेवी णाममेगे, पडुप्पण्णणंदी णाममेगे, णिस्सरणणंदी णाममेगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेना और साधक

चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ तंजहा - जइत्ता णाममेगा णो पराजिणित्ता, पराजिणित्ता णाममेगा णो जइत्ता, एगा जइत्ता वि पराजिणित्ता वि, एगा णो जइत्ता णो पराजिणित्ता । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जइत्ता णाममेगे णो पराजिणित्ता, पराजिणित्ता णाममेगे णो जइत्ता, एगे जइत्ता वि पराजिणित्ता वि, एगे णो जइत्ता णो पराजिणित्ता । चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ तंजहा - जइत्ता णाममेगा जयइ, जइत्ता णाममेगा पराजिणइ, पराजिणित्ता णाममेगा जयइ, पराजिणित्ता णाममेगा पराजिणइ । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जइत्ता णाममेगे जयइ, जइत्ता णाममेगे पराजिणइ, पराजिणित्ता णाममेगे जयइ, पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणइ ॥ १५४ ॥

कठिन शब्दार्थ - संपागड पडिसेवी - संप्रकट प्रतिसेवी-प्रत्यक्ष दोष का सेवन करने वाला, **पच्छण्ण पडिसेवी** - प्रच्छन्न प्रतिसेवी-गुप्त रूप से दोष का सेवन करने वाला, **पडुप्पणणंदी** - प्रत्युत्पन्ननंदी-मिलने पर प्रसन्न होने वाला, **णिस्सरणणंदी** - निकल जाने पर प्रसन्न होने वाला, **सेणाओ**- सेना, **जइत्ता** - जीतकर, **पराजिणित्ता** - पराजित होकर।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक साधु प्रत्यक्ष में दोष का सेवन करे, कोई एक साधु गुप्त रूप से दोष का सेवन करता है, कोई एक साधु शिष्य, आचार्य आदि के मिलने पर प्रसन्न होता है और कोई एक साधु गच्छ में से निकल जाने पर प्रसन्न होता है।

चार प्रकार की सेना कही गई है । यथा - कोई सेना शत्रुसेना को जीतती है किन्तु उससे पराजित नहीं होती, कोई सेना शत्रुसेना से पराजित हो जाती है किन्तु उसे जीतती नहीं, कोई सेना शत्रुसेना को जीतती भी है और अवसर देख कर उससे पराजित होकर भाग जाती है, एक सेना न तो शत्रुसेना को जीतती है और न शत्रुसेना से पराजित होती है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई साधु परीषहों को जीतता है किन्तु परीषहों से पराजित नहीं होता है, जैसे महावीर स्वामी, कोई साधु परीषहों से पराजित हो जाता है किन्तु उनको जीतता नहीं है, जैसे कण्डरीक । कोई साधु परीषहों को जीतता है और कारण विशेष से उनसे पराजित भी होता है, जैसे शैलक राजर्षि । किसी साधु को परीषह उत्पन्न नहीं होते इसलिए वह न तो उनको जीतता है और न उनसे पराजित होता है । चार प्रकार की सेना कही गई है । यथा - कोई सेना एक बार शत्रु सेना को जीत कर फिर भी शत्रुसेना को जीतती है, एक सेना शत्रुसेना को एक बार जीतती है किन्तु दुबारा उससे पराजित हो जाती है । कोई सेना एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बार शत्रुसेना से पराजित हो जाती है किन्तु दुबारा उसे जीत लेती हैं । कोई सेना पहले भी शत्रुसेना से पराजित होती है और फिर भी शत्रुसेना से पराजित होती है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई साधु पहले भी परीषहों को जीतता है और फिर भी परीषहों को जीतता है, कोई साधु पहले तो परीषहों को जीतता है किन्तु फिर परीषहों से पराजित हो जाता है । कोई साधु पहले तो परीषहों से पराजित हो जाता है किन्तु पीछे परीषहों को जीत लेता है, कोई साधु पहले भी परीषहों से पराजित हो जाता है और पीछे भी परीषहों से पराजित हो जाता है ।

चार प्रकार के कषाय और उनकी उपमाएँ

चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ तंजहा - पव्वय राई, पुढवि राई, वालुय राई, उदग राई । एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते तंजहा - पव्वयराइ समाणे, पुढविराइ समाणे, वालुयराइ समाणे, उदगराइ समाणे । पव्वयराइ समाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जइ, पुढविराइ समाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ, वालुयराइ समाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जइ, उदगराइ समाणं कोहमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ। चत्तारि थंभा पण्णत्ता तंजहा - सेलथंभे, अट्ठिथंभे, दारुथंभे, तिणिसलयाथंभे । एवामेव चउव्विहे माणे पण्णत्ते तंजहा - सेलथंभ समाणे, अट्ठिथंभ समाणे, दारुथंभ समाणे, तिणिसलयाथंभ समाणे । सेलथंभे समाणं माणमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ, अट्ठिथंभ समाणं माणमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ, दारुथंभ समाणं माणमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ, तिणिसलयाथंभ समाणं माणमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ।

चत्तारि केयणा पण्णत्ता तंजहा - वंसीमूलकेयणए, मेंढविसाणकेयणए, गोमुत्तिकेयणए, अवलेहणियकेयणए । एवामेव चउव्विहा माया पण्णत्ता तंजहा - वंसीमूल-केयण समाणा, मेंढविसाण-केयण समाणा, गोमुत्ति-केयणसमाणा, अवलेहणिय-केयण समाणा । वंसीमूलकेयण समाणं मायमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ, मेंढविसाणकेयण समाणं मायमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ, गोमुत्तिकेयण समाणं मायमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ, अवलेहणियकेयण समाणं मायमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि वत्था पण्णत्ता तंजहा - किमिरागरत्ते, कद्दमरागरत्ते, खंजणरागरत्ते, हलिद्दरागरत्ते । एवामेव चउव्विहे लोभे पण्णत्ते तंजहा - किमिरागरत्तवत्थ समाणे, कद्दमरागरत्तवत्थ समाणे, खंजणरागरत्तवत्थ समाणे, हलिद्दरागरत्तवत्थ समाणे । किमिरागरत्तवत्थ समाणं लोभमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ, कद्दमरागरत्तवत्थ समाणं लोभमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ, खंजणरागरत्तवत्थ समाणं लोभमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ, हलिद्दरागरत्तवत्थ समाणं लोभमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ॥ १५५॥

कठिन शब्दार्थ - **राइओ** - रेखा, **पव्वयराई** - पर्वत की रेखा, **पुढविराई** - पृथ्वी की रेखा, **वालुयराई** - बालू की रेखा, **उदगराई** - पानी की रेखा, **कोहं** - क्रोध को, **अणुप्पविट्ठे** - रहा हुआ, **सेलथंभे** - शैल स्तम्भ, **अट्ठिथंभे** - अस्थि स्तंभ, **दारुथंभे** - लकड़ी का स्तंभ, **तिणिसलया थंभे** - तिनिस लता स्तंभ, **वंसीमूलकेयणए** - बांस का मूल, **मेंढविसाण केयणए** - मेंढे का सींग, **गोमुत्तिकेयणए** - चलते हुए बैल के मूत्र की लकीर, **अवलेहणिय केयणए** - अवलेखनिका केतन, **किमिरागरत्ते** - कृमिरागरक्त, **कद्दमरागरत्ते** - कर्दम राग रक्त, **खंजणरागरत्ते** - खञ्जन राग रक्त-खञ्जन में रंगा हुआ, **हलिद्दरागरत्ते** - हल्दी के रंग में रंगा हुआ।

भावार्थ - चार प्रकार की रेखा कही गई है यथा - पर्वत की रेखा, पृथ्वी की रेखा, बालू की रेखा और पानी की रेखा । इसी तरह चार प्रकार का क्रोध कहा गया है यथा - पर्वत की रेखा के समान, पृथ्वी की रेखा के समान, बालू की रेखा के समान और पानी की रेखा के समान। पर्वत की रेखा के समान क्रोध में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है। पृथ्वी की रेखा के समान क्रोध में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होता है। बालू में खींची हुई रेखा के समान क्रोध में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है। जल में खींची हुई रेखा के समान क्रोध में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है।

चार प्रकार के स्तम्भ कहे गये हैं यथा - शैलस्तम्भ यानी पत्थर का स्तम्भ, अस्थिस्तम्भ, लकड़ी का स्तम्भ, तिनिसलता स्तम्भ यानी तिनिस नामक वृक्ष की शाखा जो कि अत्यन्त कोमल होती है उसका स्तम्भ । इसी प्रकार चार प्रकार का मान कहा गया है यथा - शैलस्तम्भ के समान, अस्थिस्तम्भ के समान, लकड़ी के स्तम्भ के समान, तिनिस लता के समान । शैलस्तम्भ के समान मान में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है । अस्थिस्तम्भ के समान मान में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो तिर्यञ्च योनि वाले जीवों में उत्पन्न होता है । लकड़ी के स्तम्भ के समान मान में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है। तिनिस वृक्ष की शाखा के समान मान में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार प्रकार की केतन यानी टेढी वस्तुएं कही गई है यथा - बांस का मूल, मेंढे का सींग, चलता हुआ बैल जो मूत्र करता है उसकी लकीर और अवलेखनिका यानी बांस को छीलने से ऊपर से जो पतली छाल उतरती है वह छाल । इसी तरह चार प्रकार की माया कही गई है यथा - बांस के मूल के समान, मेंढे के सींग के समान, चलता हुआ बैल जो मूत्र करता है उसकी जो टेढी लकीर बन जाती है उसके समान, बांस के छीलके के समान । बांस के मूल के समान गूढ माया में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है । मेंढे के सींग के समान माया में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो तिर्यञ्च योनि वाले जीवों में उत्पन्न होता है । गोमूत्रिका के समान माया में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है । अवलेखनिका यानी बांस के छीलके के समान माया में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है ।

चार प्रकार के वस्त्र कहे गये हैं यथा - कृमिरागरक्त, कर्दमरागरक्त यानी गायों के बांधने के स्थान में गोबर और मूत्र के संयोग से होने वाले कीचड़ में रंगा हुआ, खञ्जन यानी दीपक के तेल युक्त मैल में रंगा हुआ और हल्दी के रंग में रंगा हुआ। इसी तरह चार प्रकार का लोभ कहा गया है यथा - कृमिराग से रंगे हुए वस्त्र के समान, कर्दमराग से रंगे हुए वस्त्र के समान, खञ्जनराग से रंगे हुए वस्त्र के समान, हल्दी के रंग में रंगे हुए वस्त्र के समान । कृमिरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है । कर्दमरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो तिर्यञ्च योनि वाले जीवों में उत्पन्न होता है । खञ्जनराग से रक्त वस्त्र के समान लोभ में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है । हल्दी के रंग में रंगे हुए वस्त्र के समान लोभ में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है ।

कोई लोग ऐसा कहते हैं कि मनुष्य के खून को किसी बर्तन में रखने पर उसमें कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। उन कीड़ों का मर्दन करके उसमें रंगा हुआ वस्त्र कृमि राग रक्त कहलाता है।

विवेचन - श्री आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित संस्कृत टीका वाले स्थानाङ्ग सूत्र में और पूज्य श्री अमोलख ऋषिजी महाराज वाले स्थानाङ्ग सूत्र में तथा हस्त लिखित प्रतियों में यहाँ पर यानी चौथे ठाणे के दूसरे उद्देशक में माया, मान और क्रोध की उपमाएं और उनका स्वरूप दिया गया है और चौथे ठाणे के तीसरे उद्देशक के प्रारम्भ में क्रोध की उपमा और क्रोध का स्वरूप दिया गया है। किन्तु जैन सूत्रों में जहाँ कहीं कषाय का वर्णन आया है वहाँ सब जगह क्रोध, मान, माया, लोभ यह क्रम आया है। इसलिए इस पाठ के विषय में छानबीन करने से पता चला कि पूना के शास्त्र भण्डार में ताड़पत्र पर लिखी हुई स्थानांग सूत्र की जो प्रति है उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, इस क्रम से इनका स्वरूप और उपमाएं दी हुई है। अतः उस ताड़पत्र की प्रति के अनुसार ही यहाँ उसी क्रम से पाठ दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार, आयु, भव, आहार के भेद

चउव्विहे संसारे पण्णत्ते तंजहा - णेरइय संसारे, तिरिक्खजोणिय संसारे, मणुस्स संसारे, देव संसारे । चउव्विहे आउए पण्णत्ते तंजहा - णेरइय आउए, तिरिक्खजोणिय आउए, मणुस्स आउए, देव आउए । चउव्विहे भवे पण्णत्ते तंजहा - णेरइय भवे, तिरिक्खजोणिय भवे, मणुस्स भवे, देव भवे । चउव्विहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - असणे, पाणे, खाइमे, साइमे । चउव्विहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - उवक्खर संपण्णे, उवक्खड संपण्णे, सभाव संपण्णे, परिजुसिय संपण्णे॥ १५६ ॥

कठिन शब्दार्थ - उवक्खर संपण्णे - उपस्कर संपन्न, **उवक्खड संपण्णे** - उपस्कृत संपन्न, **सभाव संपण्णे** - स्वभाव संपन्न, **परिजुसिय संपण्णे** - परिजुषित सम्पन्न।

भावार्थ - चार प्रकार का संसार कहा गया है यथा - नैरयिक संसार, तिर्यञ्च योनिक संसार, मनुष्य संसार और देव संसार । चार प्रकार का आयुष्य कहा गया है यथा - नैरयिक आयुष्य, तिर्यञ्च योनिक आयुष्य, मनुष्य आयुष्य और देव आयुष्य । चार प्रकार का भव कहा गया है यथा - नैरयिक भव तिर्यञ्च योनिक भव, मनुष्य भव और देव भव। चार प्रकार का आहार कहा गया है यथा - अशन, ओदन आदि, पानी, खादिम फल आदि, स्वादिम चूर्ण आदि । चार प्रकार का आहार कहा गया है यथा-उपस्कर सम्पन्न यानी हींग आदि छौंकार - भंगार देकर तय्यार किया हुआ, उपस्कृतसम्पन्न यानी अग्नि द्वारा पका कर तय्यार किया हुआ ओदन आदि, स्वभाव सम्पन्न यानी स्वतः पक कर तय्यार बना हुआ दाख आदि और परिजुषित सम्पन्न यानी कुछ दिन पड़ा रख कर तय्यार किया हुआ जैसे आम का आचार आदि ।

विवेचन - संसार का अर्थ है - **"संसरन्ति जीवाः यस्मिन्नसौ संसारः"** - जिसमें जीव संसरण अर्थात् परिभ्रमण करते हैं वही संसार है। संसार चार प्रकार का कहा है - १. नैरयिक संसार २. तिर्यंचयोनिक संसार ३. मनुष्य संसार और ४. देव संसार। नैरयिक के योग्य, आयु, नाम और गोत्र कर्म का उदय होने पर ही जीव नैरयिक कहलाता है। कहा है -

"णेरइए णं भंते ! णेरइएसु उववज्जइ अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ ? गोयमा ! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ णो अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ ।"

प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न होता है या अनैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उत्तर - हे गौतम ! नैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न होता है परन्तु अनैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता है। इस हेतु से नैरयिक का संसरण-उत्पत्ति स्थान में जाना अथवा अन्य-अन्य अवस्था को प्राप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना नैरयिक संसार है अथवा जीव जिसमें संसरण करते हैं अर्थात् भटकते हैं वह गति चतुष्टय रूप संसार है। संसार आयुष्य होने पर होता है अतः इस सूत्र के बाद आयुष्य भी चार प्रकार का कहा है। जिसके कारण से जीव नरक आदि गतियों में रुका रहता है। नरक में उत्पत्ति होना नरक भव कहलाता है इसी प्रकार चारों भवों के विषय में समझ लेना चाहिये।

चार प्रकार का आहार कहा गया है - १. अशन २. पान ३. खादिम और ४. स्वादिम ।

१. अशन - दाल रोटी भात आदि आहार अशन कहलाता है।

२. पान - पानी आदि यानी पेय पदार्थ पान है।

३. खादिम - फल, मेवा आदि आहार खादिम कहलाता है।

४. स्वादिम - पान, सुपारी, इलायची आदि आहार स्वादिम है। इसके अतिरिक्त भी चार प्रकार का आहार कहा है जिसका स्वरूप भावार्थ में स्पष्ट कर दिया गया है।

बंध, उपक्रम, अल्पबहुत्व, संक्रम निद्यत निकाचित के भेद

चउव्विहे बंधे पण्णत्ते तंजहा - पगइ बंधे, ठिइ बंधे, अणुभाव बंधे, पएस बंधे । चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते तंजहा-बंधणोवक्कमे, उदीरणोवक्कमे, उवसमणोवक्कमे, विप्परिणामणोवक्कमे । बंधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - पगइबंधणोवक्कमे, ठिइबंधणोवक्कमे, अणुभावबंधणोवक्कमे, पएसबंधणोवक्कमे । उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - पगइउदीरणोवक्कमे, ठिइउदीरणोवक्कमे, अणुभावउदीरणोवक्कमे, पएसउदीरणोवक्कमे । उवसमणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - पगइउवसमणोवक्कमे, ठिइउवसमणोवक्कमे, अणुभावउवसमणोवक्कमे, पएसउवसमणोवक्कमे। विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - पगइविप्परिणामणोवक्कमे, ठिइविप्परिणामणोवक्कमे, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे, पएसविप्परिणामणोवक्कमे । चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते तंजहा - पगइअप्पाबहुए, ठिइअप्पाबहुए, अणुभावअप्पाबहुए, पएसअप्पाबहुए । चउव्विहे संकमे पण्णत्ते तंजहा-पगइसंकमे, ठिइसंकमे, अणुभावसंकमे, पएससंकमे। चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते तंजहा-पगइणिधत्ते, ठिइणिधत्ते, अणुभावणिधत्ते, पएसणिधत्ते। चउव्विहे णिकाइए पण्णत्ते तंजहा - पगइणिकाइए, ठिइणिकाइए, अणुभावणिकाइए, पएसणिकाइए॥ १५७॥

कठिन शब्दार्थ - **पगइबंधे** - प्रकृति बंध, **ठिइबंधे** - स्थिति बंध, **अणुभावबंधे** - अनुभाग बंध, **पएसबंधे** - प्रदेश बंध, **बंधणोवक्कमे** - बन्धनोपक्रम, **उदीरणोपक्कमे** - उदीरणोपक्रम,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवसमणोपक्कमे - उपशमनोपक्रम, **विप्परिणामणोवक्कमे** - विपरिणामनोपक्रम, **अप्पाबहुए** - अल्पबहुत्व, **संकमे** - संक्रम, **णिधत्ते** - निधत्त, **णिकाइए** - निकाचित।

भावार्थ - चार प्रकार का बन्ध कहा गया है यथा - प्रकृति बन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभावबन्ध, प्रदेशबन्ध । चार प्रकार का उपक्रम यानी जीव की शक्ति विशेष कहा गया है यथा - बन्धनोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशमनोपक्रम, विपरिणामनोपक्रम । बन्धनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है यथा - प्रकृतिबन्धनोपक्रम, स्थितिबन्धनोपक्रम, अनुभावबन्धनोपक्रम, प्रदेशबन्धनोपक्रम । उदीरणोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है यथा-प्रकृतिउदीरणोपक्रम, स्थितिउदीरणोपक्रम, अनुभावउदीरणोपक्रम, प्रदेश-उदीरणोपक्रम। उपशमनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है यथा - प्रकृति उपशमनोपक्रम, स्थिति उपशमनोपक्रम, अनुभाव उपशमनोपक्रम, प्रदेश उपशमनोपक्रम । विपरिणामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है यथा - प्रकृतिविपरिणामनोपक्रम, स्थितिविपरिणामनोपक्रम, अनुभाव विपरिणामनोपक्रम, प्रदेश विपरिणामनोपक्रम । चार प्रकार का अल्पबहुत्व कहा गया है यथा - कर्मों की प्रकृति की अपेक्षा अल्पबहुत्व, स्थिति की अपेक्षा अल्पबहुत्व, अनुभाव यानी कर्मविपाक की अपेक्षा अल्पबहुत्व, कर्मों के प्रदेशों की अपेक्षा अल्पबहुत्व । चार प्रकार का संक्रम कहा गया है यथा - प्रकृति संक्रम, स्थिति संक्रम, अनुभाव संक्रम, प्रदेश संक्रम । चार प्रकार का निधत्त कहा गया है यथा - प्रकृति निधत्त, स्थिति निधत्त, अनुभाव निधत्त, प्रदेश निधत्त। चार प्रकार का निकाचित कहा गया है यथा - प्रकृति निकाचित, स्थिति निकाचित, अनुभाव निकाचित और प्रदेश निकाचित ।

विवेचन - बन्ध की व्याख्या और उसके भेद - जैसे कोई व्यक्ति अपने शरीर पर तेल लगा कर धूलि में लेटे, तो धूलि उसके शरीर पर चिपक जाती है। उसी प्रकार मिथ्यात्व, कषाय, योग आदि से जीव के प्रदेशों में जब हलचल होती है तब जिस आकाश में आत्मा के प्रदेश रहे हुए हैं। वहीं के अनन्त-अनन्त कर्म योग्य पुद्गल परमाणु जीव के एक-एक प्रदेश के साथ बंध जाते हैं। कर्म और आत्मप्रदेश इस प्रकार मिल जाते हैं। जैसे दूध और पानी तथा आग और लोह पिण्ड परस्पर एक हो कर मिल जाते हैं। आत्मा के साथ कर्मों का जो यह सम्बन्ध होता है, वही बन्ध कहलाता है।

बंध के चार भेद हैं - १. प्रकृति बन्ध २. स्थिति बन्ध ३. अनुभाग बन्ध ४. प्रदेश बन्ध

१. प्रकृति बन्ध - जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों में जुदे-जुदे स्वभावों का अर्थात् शक्तियों का पैदा होना प्रकृति बन्ध कहलाता है।

२. स्थिति बन्ध - जीव के द्वारा ग्रहण किए हुये कर्म पुद्गलों में अमुक काल तक अपने स्वभावों का त्याग न करते हुए जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को स्थिति बन्ध कहते हैं।

३. अनुभाग बन्ध - अनुभाग बन्ध को अनुभाव बन्ध और अनुभव बन्ध भी कहते हैं। जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों में से इसके तरतम भाव का अर्थात् फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना अनुभाग बन्ध कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. प्रदेश बन्ध - जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्धों का सम्बन्ध होना प्रदेश बन्ध कहलाता है।

चारों बन्धों का स्वरूप समझाने के लिए मोदक (लड्डू) का दृष्टान्त दिया जाता है यथा -

जैसे सोंठ, पीपर, कालीमिर्च, आदि से बनाया हुआ मोदक वायु नाशक होता है। इसी प्रकार पित्त नाशक पदार्थों से बना हुआ मोदक पित का एवं कफ नाशक पदार्थों से बना हुआ मोदक कफ का नाश करने वाला होता है। इसी प्रकार आत्मा से ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों में से किन्हीं में ज्ञान गुण को आच्छादन करने की शक्ति पैदा होती है। किन्हीं में दर्शन गुण घात करने की। कोई कर्म-पुद्गल, आत्मा के आनन्द गुण का घात करते हैं। तो कोई आत्मा की अनन्त शक्ति का इस तरह भिन्न-भिन्न कर्म पुद्गलों में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतियों के बन्ध होने को 'प्रकृति बन्ध' करते हैं।

जैसे कोई मोदक एक सप्ताह, कोई एक पक्ष, कोई एक मास तक निजी स्वभाव को रखते हैं। इसके बाद में छोड़ देते हैं अर्थात् विकृत हो जाते हैं। मोदकों की काल मर्यादा की तरह कर्मों की भी काल मर्यादा होती है। वही 'स्थिति बन्ध' है। स्थिति पूर्ण होने पर कर्म आत्मा से जुदे हो जाते हैं।

कोई मोदक रस में अधिक मधुर होते हैं तो कोई कम। कोई रस में अधिक कटु होते हैं, कोई कम। इस प्रकार मोदकों में जैसे रसों की न्यूनाधिकता होती है। उसी प्रकार कुछ कर्म दलों में शुभ रस अधिक और कुछ में कम। कुछ कर्म दलों में अशुभ रस अधिक और कुछ में अशुभ रस कम होता है। इसी प्रकार कर्मों में तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर, मन्दतम शुभाशुभ रसों का बन्ध होना रस बन्ध है। यही बन्ध 'अनुभाग बन्ध' और 'अनुभाव बन्ध' भी कहलाता है।

कोई मोदक परिमाण में दो तोले का, कोई पांच तोले और कोई पावभर का होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कर्म दलों में परमाणुओं की संख्या का न्यूनाधिक होना 'प्रदेश बन्ध' कहलाता है।

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि जीव संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओं से बने हुए कार्माण स्कन्धों को ग्रहण नहीं करता परन्तु अनन्तानन्त परमाणु वाले स्कन्ध को ग्रहण करता है।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं। स्थिति बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से बंधते हैं।

उपक्रम की व्याख्या और भेद -

उपक्रम का अर्थ आरम्भ है। वस्तु परिकर्म एवं वस्तु विनाश को भी उपक्रम कहा जाता है। उपक्रम के चार भेद हैं - १. बन्धनोपक्रम २. उदीरणोपक्रम ३. उपशमनोपक्रम ४. विपरिणामनोपक्रम।

१. बन्धनोपक्रम - कर्म पुद्गल और जीव प्रदेशों के परस्पर सम्बन्ध होने को बन्धन कहते हैं। उसके आरम्भ को बन्धनोपक्रम कहते हैं। अथवा बिखरी हुई अवस्था में रहे हुए कर्मों को आत्मा से सम्बन्धित अवस्था वाले कर देना बन्धनोपक्रम है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. उदीरणोपक्रम - विपाक अर्थात् फल देने का समय न होने पर भी कर्मों को भोगने के लिए प्रयत्न विशेष से उन्हें उदय अवस्था में प्रवेश कराना उदीरणा है। उदीरणा के प्रारम्भ को उदीरणोपक्रम कहते हैं।

३. उपशमनोपक्रम - कर्म उदय, उदीरणा, निधत्त करण और निकाचना करण के अयोग्य हो जायें, इस प्रकार उन्हें स्थापन करना उपशमना है। इसका आरम्भ उपशमनोपक्रम हैं। इसमें अपवर्तन, उद्वर्त्तन और संक्रमण ये तीन करण होते हैं।

४. विपरिणामनोपक्रम - सत्ता, उदय, क्षय, क्षयोपशम, उद्वर्त्तना, अपवर्त्तना आदि द्वारा कर्मों के परिणाम को बदल देना विपरिणामना है। अथवा गिरिनदीपाषाण की तरह स्वाभाविक रूप से या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि से अथवा करण विशेष से कर्मों का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदल जाना विपरिणामना है। इसका उपक्रम (आरम्भ) विपरिणामनोपक्रम कहलाता है।

संक्रम (संक्रमण) की व्याख्या और उसके भेद - जीव जिस प्रकृति को बांध रहा है। उसी विपाक में वीर्य विशेष से दूसरी प्रकृति के दलिकों (कर्म पुद्गलों) को परिणत करना संक्रम कहलाता है।

जिस वीर्य विशेष से कर्म एक स्वरूप को छोड़ कर दूसरे सजातीय स्वरूप को प्राप्त करता है। उस वीर्य विशेष का नाम संक्रमण है। इसी तरह एक कर्म प्रकृति का दूसरी सजातीय कर्म प्रकृति रूप बन जाना भी संक्रमण है। जैसे मति ज्ञानावरणीय का श्रुत ज्ञानावरणीय अथवा श्रुत ज्ञानावरणीय का मति ज्ञानावरणीय कर्म रूप में बदल जाना ये दोनों कर्म प्रकृतियाँ ज्ञानावरणीय कर्म के भेद होने से आपस में सजातीय हैं।

संक्रम के चार भेद हैं - १. प्रकृति संक्रम २. स्थिति संक्रम ३. अनुभाग संक्रम ४. प्रदेश संक्रम।

निधत्त की व्याख्या और भेद - उद्वर्त्तना और अपवर्तना करण के सिवाय विशेष करणों के अयोग्य कर्मों को रखना निधत्त कहा जाता है। निधत्त अवस्था में उदीरणा, संक्रमण वगैरह नहीं होते हैं। तपा कर निकाली हुई लोह शलाका के सम्बन्ध के समान पूर्वबद्ध कर्मों को परस्पर मिलाकर धारण करना निधत्त कहलाता है। इसके भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से चार भेद होते हैं।

निकाचित की व्याख्या और भेद - जिन कर्मों का फल बन्ध के अनुसार निश्चय ही भोगा जाता है। जिन्हें बिना भोगे छुटकारा नहीं होता। वे निकाचित कर्म कहलाते हैं। निकाचित कर्म में कोई भी करण नहीं होता। तपा कर निकाली हुई लोह शलाकायें (सुइयें) घन से कूटने पर जिस तरह एक हो जाती हैं। उसी प्रकार इन कर्मों का भी आत्मा के साथ गाढ़ा सम्बन्ध हो जाता है। निकाचित कर्म के भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार भेद हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकत्व, कति, सर्व भेद

चत्तारि एक्का पण्णत्ता तंजहा - दविए एक्कए, माउय एक्कए, पज्जए एक्कए, संगहे एक्कए । चत्तारि कई पण्णत्ता तंजहा - दविय कई, माउय कई, पज्जव कई, संगह कई । चत्तारि सव्वा पण्णत्ता तंजहा - णाम सव्वए, ठवणसव्वए आएससव्वए णिरवसेससव्वए॥ १५८ ॥

कठिन शब्दार्थ - एक्का - एक-एक, **माउय** - मातृकापद, **पज्जए** - पर्याय, **कई** - कति, **पज्जव**- पर्यव, **सव्वा** - सर्व।

भावार्थ - मुख्य रूप से चार पदार्थ एक एक कहे गये हैं यथा - सब द्रव्य एक हैं । मातृकापद यानी **'उप्पणे इ वा, विगमे इ वा, धुवे इ वा'** इत्यादि पद अथवा अ, आ इत्यादि पद सब शास्त्रों के प्रवर्त्तक एवं व्यापक होने के कारण एक हैं । सब पर्याय एक हैं । समुदाय रूप संग्रह एक है । चार कति कहे गये हैं यथा - द्रव्य कति यानी द्रव्य के सचित्त अचित्त आदि अनेक भेद हैं । मातृका कति यानी मातृकापद में स्वर व्यञ्जन आदि भेद हैं । पर्यव कति यानी वर्ण गन्ध रस आदि अनेक पर्याय हैं । संग्रह कति यानी सालि, जौ, गेहूँ आदि अनेक प्रकार के धान्य का समूह है ।

चार सर्व कहे गये हैं यथा - नाम सर्व यानी जिसका नाम 'सर्व' रखा गया हो । स्थापना सर्व यानी किसी पाशे आदि में 'सर्व' की स्थापना कर देना । आदेश सर्व यानी उपचार से किसी वस्तु को कहना, जैसे रखे हुए घी में से बहुत घी खा लेने पर और थोड़ा बाकी बच जाने पर यह कहना कि 'सारा घी खा लिया' इत्यादि । निरवशेष सर्व यानी सब में घटित होने वाली कोई बात कहना, जैसे देव अनिमेषदृष्टि यानी पलक रहित दृष्टि वाले होते हैं । वे आंख नहीं टमकारते हैं ।

विवेचन - कति का अर्थ है कितना । यह बहुवचनान्त शब्द है । यह प्रश्न करने में आता है अथवा यहां पर द्रव्य अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है । किसी किसी प्रति में **'सव्वा'** के स्थान में **'सच्चा'** पाठ है । **'सच्चा'** का अर्थ है सत्य । सत्य के चार भेद - नाम सत्य, स्थापना सत्य, आदेश सत्य और निरवशेष सत्य।

कूट, वृत्तवैताढ्य, वक्षस्कार पर्वत, वन, शिला आदि

माणुस्सुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता तंजहा - रयणे, रयणुच्चए, सव्वरयणे, रयणसंचए । जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो होत्था । जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुस्समसुसमाए समाए जहण्णपए णं चत्तारि सागरोवम कोडाकोडीओ कालो होत्था । जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ । जंबूद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरु वज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - हेमवए, एरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे । चत्तारि वट्टवेयड्ढ पव्वया पण्णत्ता तंजहा - सद्दावई, वियडावई, गंधावई, मालवंतपरियाए । तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तंजहा - साई, पभासे, अरुणे, पउमे । जंबूद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा । सव्वे वि णिसढणीलवंत वासहरपव्वया चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउसयाइं उव्वेहणं पण्णत्ता । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए दाहिण कूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - अंकावई, पम्हावई, आसीविसे, सुहावहे । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - चंदपव्वए, सूरपव्वए, देवपव्वए, णागपव्वए । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - सोमणसे, विज्जुप्पभे, गंधमायणे, मालवंते । जंबूद्दीवे दीवे महाविदेहवासे जहण्णपए चत्तारि अरिहंता, चत्तारि चक्कवट्टी, चत्तारि बलदेवा, चत्तारि वासुदेवा, उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा । जंबूद्दीवे दीवे मंदर पव्वए चत्तारि वणा पण्णत्ता तंजहा - भद्दसाल वणे, णंदण वणे, सोमणसवणे, पंडगवणे । जंबूद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए पंडगवणे चत्तारि अभिसेगसिलाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पंडुकंबलसिला, अइपंडुकंबलसिला, रत्तकंबलसिला, अइरत्तकंबलसिला । मंदरचूलिया णं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । एवं धायइसंड-दीवपुरच्छिमद्धे वि कालं आदिं करित्ता जाव मंदरचूलियत्ति । एवं जाव पुक्खरवरदीवपच्चत्थिमद्धे जाव मंदर चूलियत्ति ॥ १५९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **कूडा** - कूट, **रयणुच्चए** - रत्नोच्चय, **उत्तरकूले** - उत्तर किनारे पर, **वक्खारपव्वया** - वक्षस्कार पर्वत, **भद्दसाल** - भद्रशाल, **णंदण** - नंदन, **सोमणस** - सोमनस, **पंडगवणे**- पंडगवन, **पंडुकंबलसिला** - पाण्डु कम्बल शिला, **अइपंडुकंबल सिला** - अति पाण्डु कम्बल शिला, **रत्तकंबलसिला** - रक्त कम्बल शिला, **अइरत्तकंबलसिला** - अतिरक्त कम्बल शिला, **मंदरचूलियत्ति**- मंदर चूलिका तक।

भावार्थ - मानुष्योत्तर पर्वत के चारों विदिशाओं में चार कूट कहे गये हैं यथा - पूर्व दक्षिण यानी ईशान कोण में रत्नकूट, दक्षिण पश्चिम यानी आग्नेय कोण में रत्नोच्चय कूट, पूर्व उत्तर यानी नैऋत्य कोण में सर्वरत्न कूट और पश्चिम उत्तर यानी वायव्य कोण में रत्न संचय कूट । इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी का सुषमसुषमा नामक आरा चार कोडाकोडी सागरोपम का था । इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में इस उत्सर्पिणी का सुषमसुषमा आरा जघन्य चार कोडाकोडी सागरोपम काल का था । इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी का सुषमसुषमा आरा चार कोडाकोडी सागरोपम काल का होगा । इस जम्बूद्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़ कर चार अकर्मभूमियाँ कही गई हैं यथा - हेमवय, एरण्णवय, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष । चार वृत्त यानी गोल वैताढय पर्वत कहे गये हैं यथा - शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती और माल्यवान् नामक । उन पर्वतों पर महाऋद्धि सम्पन्न यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं यथा - स्वाति, प्रभास, अरुण और पद्म । इस जम्बूद्वीप में चार महाविदेह क्षेत्र कहे गये हैं यथा - पूर्वविदेह, पश्चिमविदेह, देवकुरु उत्तरकुरु । सभी निषध और नीलवान् पर्वत चार सौ योजन ऊंचे और चार सौ गाऊ यानी कोस धरती में ऊंडे कहे गये हैं । इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल । इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - त्रिकूट, वैश्रमण कूट, अञ्जन, मातञ्जन । इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के दक्षिण किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - अंकावती, पद्मावती, आशीविष, सुखावह । इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के उत्तर किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - चन्द्रपर्वत, सूर्यपर्वत, देवपर्वत नागपर्वत । इस जम्बूद्वीप में चारों विदिशाओं में चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - सोमनस, विद्युत्प्रभ, गंधमादन, माल्यवान् । इस जम्बूद्वीप में महाविदेह क्षेत्र में जघन्य पद में यानी कम से कम एक साथ चार तीर्थङ्कर, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव, चार वासुदेव उत्पन्न हुए थे और उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होवेंगे । इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत पर चार वन कहे गये हैं यथा - भद्रशाल वन, नन्दनवन, सोमनस वन और पण्डक वन । इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत पर पण्डक वन में चार अभिषेक शिलाएं यानी तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करने की शिलाएं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कही गई हैं यथा - पाण्डुकम्बल शिला, अतिपाण्डुकम्बल शिला, रक्त कंबल शिला और अतिरिक्त कम्बल शिला । मेरु पर्वत की चूलिका ऊपर चार योजन चौड़ी कही गई है । इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में तथा अर्द्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में काल से लेकर यावत् मंदरचूलिका तक सारा अधिकार कह देना चाहिए । यही बात गाथा में कही गई है । यथा -

जंबूद्दीवगआवस्सगं तु, कालओ चूलिया जाव ।
धायइसंडे पुक्खरवरे, य पुव्वावरे वासे ।। १ ।।

कठिन शब्दार्थ - **कालओ** - काल से, **जाव** - यावत् **चूलिया** - चूलिका, **पुव्वावरे** - पूर्व और पश्चिम।

भावार्थ - सुषमसुषमा काल से लेकर यावत् मेरुपर्वत की चूलिका तक जम्बूद्वीप में जितनी वस्तुओं का कथन किया गया है वह सारा कथन धातकीखण्ड और अर्द्धपुष्करवरद्वीप के पूर्व और पश्चिम क्षेत्रों में कह देना चाहिए ।

विवेचन - मानुषोत्तर पर्वत पुष्कर द्वीप के मध्य भाग में चारों ओर कुंडलाकार अवस्थित है इसकी आकृति बैठे हुए सिंह के समान है। यह पुष्कर द्वीप को दो भागों में विभक्त करता है। इस पर्वत के बाहर मनुष्य नहीं है। मानुषोत्तर पर्वत पर चारों विदिशाओं में चार कूट इस प्रकार हैं - आग्नेय कोण में रत्न कूट, नैऋत्य कोण में रत्नोच्चय कूट, वायव्य कोण में सर्वरत्न कूट और ईशाण कोण में रत्न संचय कूट। रत्न कूट, सुवर्ण कुमार जाति के वेणुदेव का निवास स्थान है। रत्नोचय कूट वेलंब नाम के वायुकुमारेन्द्र का निवास स्थान है। सर्वरत्न कूट प्रभंजन नामक वायुकुमारेन्द्र का निवास स्थान है और रत्न संचय कूट वेणुदालिक नामक सुपर्ण कुमारेन्द्र का निवास स्थान है। इन चार कूटों के अलावा पूर्व दिशा में तीन, दक्षिण दिशा में तीन, पश्चिम दिशा में तीन और उत्तर दिशा में तीन कूट हैं। इस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत पर कुल १६ कूट हैं।

जो वैताढ्य पर्वत गोलाकार हैं वे वृत वैताढ्य कहलाते हैं। प्रस्तुत सूत्र में शब्दापाती, विकटापाती गन्धापाती और माल्यवान् नामक चार वृत वैताढ्य पर्वत कहे हैं जिन पर महाऋद्धि संपन्न एक पल्योपम की स्थिति वाले क्रमशः चार देव रहते हैं यथा - स्वाति, प्रभास, अरुण और पद्म ।

जो पर्वत गजदंताकार हैं उन्हें वक्खार (वक्षस्कार) पर्वत कहते हैं। शीता महानदी पूर्व महाविदेह क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई समुद्र में प्रवेश करती है। शीता महानदी के उत्तर किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं - चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल। उसके दक्षिण किनारे पर भी चार वक्षस्कार पर्वत हैं - त्रिकूट, वैश्रमण कूट, अञ्जन और मातञ्जन। शीतोदा महानदी पश्चिम महाविदेह क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई समुद्र में प्रवेश करती है उसके दक्षिण किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत हैं - अंकावती, पद्मावती, आशीविष, सुखावह। उसके उत्तर किनारे पर भी चार वक्षस्कार पर्वत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं- चन्द्रपर्वत, सूर्य पर्वत, देव पर्वत और नागपर्वत। इस प्रकार कुल सोलह पर्वत हैं। मेरु पर्वत की चार विदिशाओं में चार वक्षस्कार पर्वत कहे हैं - सोमनस, विद्युत्प्रभ, गंधमादन, माल्यवान्।

जंबूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में कम से कम चार अरिहन्त, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव और चार वासुदेव सदा काल रहते हैं। एक विजय में एक तीर्थंकर, एक चक्रवर्ती, एक बलदेव और एक ही वासुदेव उत्पन्न होते हैं। जिस विजय में चक्रवर्ती होते हैं उसमें बलदेव वासुदेव नहीं होते हैं क्योंकि उनका स्वतन्त्र साम्राज्य होता है।

मेरुपर्वत पर चार वन हैं - भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पण्डक। पण्डक वन में पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तरदिशा में क्रमशः चार अभिषेक शिलाएं हैं यथा - (१) पाण्डुकम्बलशिला (२) अतिपाण्डुकम्बल शिला (३) रक्तकंबल शिला और (४) अतिरक्तकम्बल शिला। इनमें से पाण्डुकम्बल शिला और रक्तकम्बल शिला पर दो-दो सिंहासन हैं और शेष दो शिलाओं पर एक-एक सिंहासन है। जहाँ पर तीर्थंकरों का जन्म महोत्सव किया जाता है। जिस दिशा में तीर्थंकर का जन्म होता है उसी दिशा वाली शिला पर उनका जन्माभिषेक किया जाता है। अर्थात् - दक्षिण में अति पण्डु कम्बल शिला है जिस पर भरत क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्म महोत्सव किया जाता है। उत्तर दिशा में अतिरक्त कम्बल शिला है जिस पर ऐरवत क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्म महोत्सव किया जाता है। पूर्व में पण्डुकम्बल शिला है जिस पर पूर्व महाविदेह क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्म महोत्सव किया जाता है। पश्चिम में रक्त कम्बल शिला है जिस पर पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के तीथङ्करों का जन्म महोत्सव किया जाता है।

जंबूद्वीप के द्वार

जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता तंजहा - विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए । ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता । तत्थणं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवट्ठिइया परिवसंति तंजहा - विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए॥ १६०॥

कठिन शब्दार्थ - दारा - द्वार, **पवेसेणं** - प्रवेश द्वार।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के चार द्वार कहे गये हैं यथा - विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित । वे द्वार चार योजन की चौड़ाई वाले हैं और उतना ही यानी चार योजन का उनका प्रवेशद्वार कहा गया है । वहां पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं यथा - विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित ।

विवेचन - जंबूद्वीप के पूर्व में विजय, दक्षिण में वैजयंत, पश्चिम में जयंत और उत्तर दिशा में अपराजित नाम का द्वार है। इन द्वारों पर उनके नाम के अनुसार चार देव रहते है। विस्तृत वर्णन के लिए जिज्ञासुओं को जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति देखना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छप्पन अंतरद्वीप वर्णन

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - एगूरुयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे, णंगोलियदीवे। तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति तंजहा - एगूरुया, आभासिया, वेसाणिया, णंगोलिया । तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं चत्तारि चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, संकुलिकण्णदीवे । तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति तंजहा - हयकण्णा, गयकण्णा, गोकण्णा, संकुलिकण्णा । तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं पंच पंच जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - आयंसमुहदीवे, मेंढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे । तेसुणं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा । तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं छ छ जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे, सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे । तेसुणं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा । तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त सत्त जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - आसकण्णदीवे, हत्थिकण्णदीवे, अकण्णदीवे, कण्णपाउरणदीवे। तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा । तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं अट्ठट्ठ जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे, विज्जुमुहदीवे, विज्जुदंतदीवे । तेसुणं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा । तेसिणं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं णव णव जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - घणदंतदीवे, लट्ठदंतदीवे, गूढदंतदीवे, सुद्धदंतदीवे । तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति तंजहा - घणदंता, लट्ठदंता, गूढदंता, सुद्धदंता । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थणं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा - एगूरुयदीवे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभासियदीवे, वेसाणियदीवे, णंगोलियदीवे । सेसं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव सुद्धदंता॥ १६१॥

कठिन शब्दार्थ - तिण्णिजोयणसयाइं - तीन सौ योजन, **ओगाहित्ता** - जाने पर, **अंतरदीवा** - अंतर द्वीप ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत के चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में तीन सौ तीन सौ योजन जाने पर वहाँ तीन सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं यथा - एकोरुक द्वीप, आभाषिक द्वीप, वैषाणिक द्वीप, लाङ्गुलिक द्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं यथा - एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक और लांगूलिक । उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में चार सौ चार सौ योजन जाने पर वहां चार सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं यथा - हयकर्ण द्वीप, गजकर्ण द्वीप, गोकर्ण द्वीप, शष्कुली कर्ण द्वीप। उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं यथा - हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुली कर्ण। उन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में पांच सौ पांच सौ योजन जाने पर वहाँ पर पांच सौ पांच सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं यथा - आयंसमुखद्वीप, मेंढमुखद्वीप, अयोमुखद्वीप, गोमुखद्वीप । उन द्वीपों में उन्हीं नामों वाले चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं । उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में छह सौ छह सौ योजन जाने पर वहाँ छह सौ छह सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं यथा - अश्वमुख द्वीप, हस्तिमुख द्वीप, सिंहमुख द्वीप, व्याघ्रमुख द्वीप। उन द्वीपों में उन्हीं नामों वाले मनुष्य रहते हैं । उन द्वीपो की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र में सात सौ सात सौ योजन जाने पर वहाँ सात सौ सात सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं । यथा - अश्वकर्ण द्वीप, हस्तिकर्ण द्वीप, अकर्ण द्वीप, कर्ण प्रावरण द्वीप । उन द्वीपों में उन्हीं नामों वाले मनुष्य रहते हैं । उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र में आठ सौ आठ सौ योजन जाने पर वहाँ आठ सौ आठ सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं । यथा - उल्कामुखद्वीप, मेघमुखद्वीप, विद्युत्मुख द्वीप, विद्युत्दंत द्वीप। उन द्वीपों में उन्हीं नामों वाले मनुष्य रहते हैं । उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र में नव सौ नव सौ योजन जाने पर वहाँ नव सौ नव सौ योजन के लम्बे चौड़े चार अन्तर द्वीप कहे गये हैं । यथा - घनदंत द्वीप, लष्ठदन्त द्वीप, गूढदन्त द्वीप, शुद्धदन्त द्वीप। उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं । यथा - घनदंत, लष्ठदन्त, गूढदन्त शुद्धदन्त ।

इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र में तीन सौ तीन सौ योजन जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप कहे गये हैं । यथा - एकोरूक द्वीप, आभाषिक द्वीप, वैषानिक द्वीप और लाङ्गूलिक द्वीप । शेष यावत् शुद्धदन्त तक सारा अधिकार उसी प्रकार कह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देना चाहिए। चुल्लहिमवान् पर्वत से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में सात सात अन्तर द्वीप हैं । इस तरह चुल्लहिमवान् की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तर द्वीप हैं । इसी प्रकार शिखरी पर्वत से भी चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तर द्वीप हैं । इस प्रकार कुल ५६ अन्तर द्वीप हैं । उन अन्तर द्वीपों में अन्तर द्वीप के नाम वाले ही युगलिया मनुष्य रहते हैं ।

विवेचन - अन्तर द्वीप - लवण समुद्र के भीतर होने से इनको अन्तर द्वीप कहते हैं। उनमें रहने वाले मनुष्यों को आन्तरद्वीपिक कहते हैं। जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और हैमवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्लहिमवान् पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम में लवण समुद्र को स्पर्श करता है। उस पर्वत के पूर्व और पश्चिम के चरमान्त से चारों विदिशाओं (ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य) में लवण समुद्र में तीन सौ-तीन सौ योजन जाने पर प्रत्येक विदिशा में एकोरुक आदि एक द्वीप आता है। वे द्वीप गोल हैं। उनकी लम्बाई चौड़ाई तीन सौ-तीन सौ योजन की है। परिधि प्रत्येक की ९४९ योजन से कुछ कम है। इन द्वीपों से चार सौ-चार सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर क्रमशः पांचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ द्वीप आते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई चार सौ-चार सौ योजन की है। ये सभी गोल हैं। इनकी प्रत्येक की परिधि १२६५ योजन से कुछ कम हैं। इसी प्रकार इनसे आगे क्रमशः पांच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ, नव सौ योजन जाने पर क्रमशः चार-चार द्वीप आते जाते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई पांच सौ से लेकर नव सौ योजन तक क्रमशः जाननी चाहिये। ये सभी गोल हैं। तिगुनी से कुछ अधिक परिधि है। इस प्रकार चुल्लहिमवान् पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तर द्वीप हैं।

जिस प्रकार चुल्लहिमवान् पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तरद्वीप कहे गये हैं उसी प्रकार शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में भी अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं। जिनका वर्णन भगवती सूत्र के दसवें शतक के सातवें उद्देशक से लेकर चौंतीसवें उद्देशे तक २८ उद्देशकों में किया गया है। उनके नाम आदि सब समान हैं।

जीवाजीवाभिगम और पण्णवणा आदि सूत्रों की टीका में चुल्लहिमवान् और शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में चार-चार दाढाएं बतलाई गई हैं उन दाढाओं के ऊपर अन्तर द्वीपों का होना बतलाया गया है। किन्तु यह बात सूत्र के मूल पाठ से मिलती नहीं है। क्योंकि इन दोनों पर्वतों की जो लम्बाई आदि बतलाई गई है वह पर्वत की सीमा तक ही आई है। उसमें दाढाओं की लम्बाई आदि नहीं बतलाई गई है। यदि इन पर्वतों की दाढाएं होती तो उन पर्वतों की हद लवण समुद्र में भी बतलाई जाती। लवण समुद्र में भी दाढाओं का वर्णन नहीं है। इसी प्रकार भगवती सूत्र के मूल पाठ में तथा टीका में भी दाढाओं का वर्णन नहीं है। ये द्वीप विदिशाओं में टेढे आये हैं इन टेढे टेढे शब्दों को बिगाड कर दाढाओं की कल्पना कर ली गई मालूम होती है। आगम के अनुसार दाढायें किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छप्पन अन्तरद्वीपों के नाम -

ईशाण कोण	**आग्नेय कोण**	**नैर्ऋत्य कोण**	**वायव्यकोण**
१. एकोरुक	आभासिक	वैषाणिक	नाङ्गोलिक
२. हयकर्ण	गजकर्ण	गोकर्ण	शष्कुलीकर्ण
३. आदर्शमुख	मेण्ढमुख	अयोमुख	गोमुख
४. अश्वमुख	हस्तिमुख	सिंहमुख	व्याघ्रमुख
५. अश्वकर्ण	हरिकर्ण	अकर्ण	कर्णप्रावरण
६. उल्कामुख	मेघमुख	विद्युन्मुख	विद्युतदन्त
७. घनदन्त	लष्टदन्त	गूढदन्त	शुद्धदन्त

चुल्लहिमवान् पर्वत की तरह ही शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में उपरोक्त नाम वाले सात-सात अन्तर द्वीप हैं। इस प्रकार दोनों पर्वतों की चारों विदिशाओं में छप्पन अन्तरद्वीप हैं। इन अंतरद्वीपों में अंतरद्वीप के नाम वाले ही युगलिक मनुष्य रहते हैं।

पाताल कलश आवास पर्वत

जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयाओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं महतिमहालया महालंजरसंठाण संठिया चत्तारि महापायाला पण्णत्ता तंजहा - वलयामुहे, केउए, जूवए, ईसरे । एत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तंजहा - काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे । जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयाओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं बायालीसं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चउण्हं वेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता तंजहा - गोथूमे, उदयभासे, संखे, दगसीमे । तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तंजहा - गोथूमे, सिवए, संखे, मणोसिलए । जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयाओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं बायालीसं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चउण्हं अणुवेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता तंजहा - कक्कोडए, विज्जुप्पभे, केलासे, अरुणप्पभे । एत्थणं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तंजहा - कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे ।

लवणे णं समुद्दे णं चत्तारि चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा । चत्तारि कत्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा, चत्तारि अंगारा जाव चत्तारि भावकेऊ । लवणस्स णं समुद्दस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता तंजहा - विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए। ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता । तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तंजहा - विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए । धायइसंडे दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल विक्खंभेणं पण्णत्ते । जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बहिया चत्तारि भरहाइं चत्तारि एरवयाइं, एवं जहा सदुद्देसए तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव चत्तारि मंदरा चत्तारि मंदर चूलियाओ॥ १६२॥

कठिन शब्दार्थ - **बाहिरिल्लाओ** - बाहर की, **वेइयाओ** - वेदिका से, **महालंजरसंठाण संठिया**- महा सुराही के आकार वाले, **महापायाला** - महा पाताल कलश, **वलयामुहे** - बडवामुख, **आवासपव्वया**- निवास पर्वत, **अणुवेलंधर णागराईणं** - अनुवेलंधर नागराजाओं के, **सदुद्देसए** - शब्दोद्देशक ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के बाहर की वेदिका से चारों दिशाओं में लवण समुद्र में ९५ हजार योजन जाने पर वहाँ बहुत बड़े महा सुराही के आकार वाले चार महापाताल कलश कहे गये हैं । यथा बडवामुख, केतुक, यूपक और ईश्वर । ये पाताल कलश एक लाख योजन गहरे हैं । इन का मूल भाग और ऊपर मुख भाग दस हजार योजन का चौड़ा है और मध्यभाग एक लाख योजन का चौड़ा है । इनके मूलभाग में सिर्फ वायु है । मध्य भाग में जल और वायु तथा ऊपर के भाग में सिर्फ पानी है । इन पाताल कलशों पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव निवास करते हैं । यथा - काल महाकाल वेलम्ब और प्रभञ्जन । इस जम्बूद्वीप की बाहरी वेदिका से चारों दिशाओं में लवण समुद्र में बयालीस हजार बयालीस हजार योजन जाने पर वहाँ चार वेलंधर नाग राजाओं के चार निवास पर्वत कहे गये हैं । यथा - गोस्तूभ, उदयभास, शंख और दकसीम । वहाँ महान् ऋद्धि वाले यावत् पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं । यथा - गोस्तूभ, शिवक, शंख और मनःशिल । इस जम्बूद्वीप की बाहरी वेदिका से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में बयालीस हजार बयालीस हजार योजन जाने पर वहाँ चार अनुवेलंधर नागराजाओं के चार निवासपर्वत कहे गये हैं । यथा - कर्कोटक, विद्युत्प्रभ, कैलाश और अरुणप्रभ । उन पर्वतों पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं । यथा - कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवणसमुद्र में चार चन्द्रमा प्रकाशित हुए थे, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होंगे । इसी प्रकार चार सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे । इसी तरह चार कृतिका यावत् चार भरणी तक अट्ठाईस ही नक्षत्र प्रत्येक चार चार हैं । अग्नि यानी कृत्तिका नक्षत्र का अधिपति देव यावत् यम यानी भरणी नक्षत्र का स्वामी देव, ये अट्ठाईस नक्षत्रों के अट्ठाईस देव प्रत्येक चार चार हैं । अङ्गारक यावत् भावकेतु तक ८८ महाग्रह, ये प्रत्येक चार चार हैं । लवण समुद्र के चार द्वार कहे गये हैं । यथा - विजय वैजयंत जयन्त और अपराजित । वे द्वार चार योजन विष्कम्भ यानी चौड़े और उतने ही यानी चार योजन प्रवेश द्वार वाले कहे गये हैं । वहाँ महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं । यथा - विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित धातकीखण्ड द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ यानी गोलाकार चौड़ाई चार लाख योजन की कही गई है । इस जम्बूद्वीप के बाहर यानी धातकीखण्ड द्वीप में और अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में चार भरत, चार ऐरवत यावत् चार मेरु पर्वत और चार मेरु पर्वत की चूलिकाएं हैं, इस प्रकार जैसे शब्दोद्देशक यानी दूसरे ठाणे के तीसरे उद्देशक में कहा है । वैसे ही सारा अधिकार यहाँ पर कह देना चाहिए । वहाँ दूसरा ठाणा होने से दो दो का कथन किया था किन्तु यह चौथा ठाणा है इसलिए चार चार का कथन किया गया है ।

विवेचन - जम्बूद्वीप की बाह्य वेदिका से चारों दिशाओं में लवण समुद्र में ९५-९५ हजार योजन जाने पर कलश आकार के चार महापाताल कलश है। घड़ाकार होने से उन्हें कलश और गहराई से पाताल को स्पर्श करने वाले होने से उन्हें पाताल कलश कहा जाता है। वलयमुख, केतुक, यूपक और ईश्वर नाम के ये चारों महापाताल कलश वज्रमय है। जो मूलभाग में और ऊपर के भाग में १०-१० हजार योजन के तथा मध्य में लाख-लाख योजन हैं। इनकी दीवारें १०००'योजन की मोटी है इन कलशों के ऊपर के तीसरे भाग में मात्र पानी है मध्य के तीसरे भाग में वायु और जल है तथा मूल के तीसरे भाग में वायु है। जिनमें काल आदि वायुकुमार जाति के देव है जिनकी स्थिति एक-एक पल्योपम की है। प्रत्येक पाताल कलश के आसपास छोटे-छोटे पाताल कलश भी है जिनकी कुल संख्या ७८८४ है जो मध्य भाग में १०००-१००० योजन के चौड़े हैं उनकी दीवारें १०-१० योजन की मोटी है। मूल एवं ऊपर भाग में १००-१०० योजन चौडे हैं। समस्त पाताल कलशों के तीन-तीन भाग हैं।

लवण समुद्र की शिखा को अथवा अन्दर में प्रवेश करती और बाहर निकलती अग्रशिखा को वेलंधर और अनुवेलंधर देव धारण करते हैं। लवण समुद्र की शिखा चक्रवाल (गोलाई) से १० हजार योजन चौड़ी १६ हजार योजन ऊंची और १ हजार योजन की लवण समुद्र की ऊपर की सपाटी से भूमि में गहरी है। शिखा ऊपर के भाग में किंचित् न्यून अर्द्ध योजन अहोरात्रि में दो बार क्रमशः विशेष विशेष बढ़ती और घटती रहती है। लवण समद्र की अंदर की वेला अर्थात् जम्बूद्वीप के सम्मुख जाती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुई वेला को नाग कुमार जाति के ४२ हजार देवता अटकाते हैं और बाहर की वेला को अर्थात् धातकी खण्ड द्वीप के सम्मुख जाती हुई वेला को ७२ हजार देवता अटकाते हैं साठ हजार नागकुमार देवता समुद्र की शिखा के अग्रभाग के पानी को धारण करते है अर्थात् उससे ऊपर वृद्धि पाते हुए जल को अटकाते हैं। लवण समुद्र के चारों दिशाओं में वेलंधर देवों के रहने के चार आवास हैं।

लवण समुद्र में चार चन्द्रों और चार सूर्यों की संख्या होने से उनके परिवार भूत अट्ठाईस नक्षत्र भी चार-चार है शेष वर्णन दूसरे स्थानक में जंबूद्वीप के द्वार आदि की तरह समुद्र के द्वार आदि जानना चाहिए। चक्रवाल-वलय का विस्तार, जंबूद्वीप के बाहर चारों ओर घातकीखण्ड द्वीप और अर्द्धपुष्करवर द्वीप में चार भरत और चार ऐरवत क्षेत्र हैं। शब्द से ज्ञात उद्देशक शब्दोद्देशक अर्थात् दूसरे स्थान के तीसरे उद्देशक की तरह संपूर्ण वर्णन जानना चाहिए किन्तु विशेषता यह है कि वहाँ दूसरा स्थान होने से दो भरत आदि कहे गये हैं जब कि यहाँ चौथा स्थानक होने से चार भरत आदि का कथन किया गया है।

नन्दीश्वर द्वीप, अंजनक पर्वत वर्णन

णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभाए चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वया पण्णत्ता तंजहा - पुरच्छिमिल्ले, अंजणगपव्वए, दाहिणिल्ले, अंजणगपव्वए, पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए, उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए । ते णं अंजणगपव्वया चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं । तयाणंतरं च णं मायाए मायाए परिहाएमाणे परिहाएमाणे उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पण्णत्ते । मूले इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं उवरिं तिण्णि तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च छावट्ठं जोयणसयं परिक्खेवेणं, मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छ संठाणसंठिया सव्व अंजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा । तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्ज भूमिभागा पण्णत्ता । तेसि णं बहुसमरमणिज्ज भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए चत्तारि सिद्धायणा पण्णत्ता । ते णं सिद्धाययणा एगं जोयणसयं आयामेणं पण्णत्ता पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं बावत्तरि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं तेसि णं सिद्धायणाणं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता तंजहा - देवदारे, असुरदारे, णागदारे सुवण्णदारे ।

तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसंति तंजहा - देवा असुरा णागा सुवण्णा । तेसिं णं दाराणं पुरुओ चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता। तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता । तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं बहुमज्झदेसभाए चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता । तेसिणं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता। तेसि णं सीहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता । तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभाए चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता । तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु चत्तारि कुंभिका मुत्तादामा पण्णत्ता । ते णं कुंभिका मुत्तादामा पत्तेयं पत्तेयं अण्णेहिं तयद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिएहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता । तेसिणं चेइयथूभाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामइयाओ सपलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति, तंजहा-रिसभा वद्धमाणा चंदाणणा, वारिसेणा । तेसिणं चेइयथूभाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। तासिणं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता । तेसिणं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता । तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ । तासिणं पुक्खरणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता तंजहा - पुरच्छिमेणं, दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं ।

पुव्वेणं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं ।
अवरेणं चंपगवणं, चूयवणं उत्तरे पासे ॥ १ ॥

तत्थ णं जे से पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - णंदुत्तरा, णंदा, आणंदा, णंदिवद्धणा । ताओ णंदाओ पुक्खरणीओ एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं पण्णासं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं । तासिणं पुक्खरणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता । तेसिणं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ चत्तारि तोरणा पण्णत्ता तंजहा - पुरच्छिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं । तासि णं पुक्खरणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता तंजहा - पुरओ, दाहिणओ, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं ।

पुव्वेणं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं ।
अवरेणं चंपगवणं, चूयवणं उत्तरे पासे ॥

तासिणं पुक्खरणीणं बहुमज्झदेसभाए चत्तारि दहिमुहगपव्वया पण्णत्ता । ते णं दहिमुहगपव्वया चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा । तेसि णं दहिमुहग पव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता, सेसं जहेव अंजणगपव्वयाणं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव चूयवणं उत्तरे पासे । तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - भद्दा, विसाला, कुमुया, पोंडरिगिणी । ताओ णंदाओ पुक्खरणीओ एगं जोयणसयसहस्सं सेसं तं चेव जाव दहिमुहगपव्वया जाव वणसंडा । तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्सणं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - णंदिसेणा, अमोहा, गोथूभा, सुदंसणा, सेसं तं चेव, तहेव दहिमुहगपव्वया तहेव सिद्धाययणा जाव वणसंडा । तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया । ताओ णं पुक्खरणीओ एगं जोयणसयसहस्सं तं चेव पमाणं तहेव दहिमुहगपव्वया तहेव सिद्धाययणा जाव वणसंडा । णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवाल विक्खंभस्स बहुमज्झदेसभाए चउसु विदिसासु चत्तारि रइकरगपव्वया पण्णत्ता तंजहा - उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए, दाहिणपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए, दाहिण पच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए । ते णं रइकरगपव्वया दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वत्थसमा झल्लरिसंठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं सव्वरयणामया, अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं जे से उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हं अग्गमहिसीणं जंबूद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ तंजहा- णंदुत्तरा, णंदा, उत्तरकुरा, देवकुरा। कण्हाए, कण्हराईए, रामाए, रामरक्खियाए। तत्थ णं जे से दाहिण पुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हं अग्गमहिसीणं जंबूद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुमणा, सोमणसा, अच्चिमाली, मणोरमा, पउमाए, सिवाए, सईए, अंजूए। तत्थ णं जे से दाहिण पच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हं अग्गमहिसीणं जंबूद्दीवपमाणमित्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - भूया भूयवडिंसा, गोथूभा, सुदंसणा, अमलाए अच्छराए णवमियाए रोहिणीए। तत्थ णं जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हं अग्गमहिसीणं जंबूद्दीव पमाणमित्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - रयणा, रयणुच्चया, सव्वरयणा, रयणसंचया, वसुए, वसुगुत्ताए, वसुमित्ताए वसुंधराए॥ १६३॥

कठिन शब्दार्थ - **तयाणंतरं** - उसके बाद, **परिहाएमाणे** - घटते हुए, **उवरिं** - ऊपर, **मूले**- मूल में, **विच्छिण्णा** - विस्तृत, **संखित्ता** - संकुचित, **गोपुच्छसंठाण संठिया** - गाय के पूंछ के आकार वाले, **अच्छा** - निर्मल, **सण्हा** - श्लक्ष्ण, **लण्हा** - लक्ष्ण-स्निग्ध, **घट्ठा** - घृष्ट, **मट्ठा** - मृष्ट, **णीरया** - नीरज-रज रहित, **णिप्पंका** - निष्पंक, **णिक्कंकडच्छाया** - निर्मल शोभा वाले, **सप्पभा** - स्वयं प्रभा वाले, **समिरीया** - समरिचि-किरणों वाले, **सउज्जोया** - सउद्योत-उद्योत वाले, **पासाईया** - प्रासादीय- मन को प्रसन्न करने वाले, **दरिसणीया** - दर्शनीय, **अभिरूवा** - अभिरूप-कमनीय, **पडिरूवा** - प्रतिरूप, **बहुसमरमणिज्ज भूमिभागा** - बहुत समान रमणीय भूमि भाग, **सिद्धायणा** - सिद्धायतन, **मुहमंडवा** - मुख मण्डप, **पेच्छाघरमंडवा** - प्रेक्षागृह मण्डप, **वइरामया** - वज्रमय, **अक्खाडगा** - अखाडे, **मणिपेढियाओ** - मणि पीठिकाएं, **विजयदूसा** - विजय दूष्य, **कुंभिका** - कुम्भ प्रमाण, **मुत्तादामा** - मुक्तादाम-मोतियों की माला, **संपरिक्खित्ता** - वेष्टित, **चेइयथूभा** - चैत्य स्तूप, **सपलियंक णिसण्णाओ**- पर्यंक आसन से बैठी हुई, **महिंदज्झया** - महेन्द्र ध्वजा, **पुक्खरणीओ** - पुष्करणियां, **असोगवण्णं** - अशोक वन, **सतवण्णवणं** - सप्तपर्ण वन **तिसोवाण पडिरूवगा** - त्रिसोपान प्रतिरूपक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप से आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप है। अब उसका अधिकार बतलाया जाता है । उसका चक्रवालविष्कम्भ १६३८४०००००० है । उस नन्दीश्वर द्वीप के चक्रवाल विष्कम्भ के मध्यभाग में चारों दिशाओं में चार अंजनक पर्वत कहे गये हैं । यथा - पूर्व दिशा का अञ्जनक पर्वत, दक्षिण दिशा का अञ्जनक पर्वत, पश्चिम दिशा का अञ्जनक पर्वत और उत्तर दिशा का अञ्जनक पर्वत । वे चारों अञ्जनक पर्वत चौरासी हजार योजन के ऊंचे और एक हजार योजन जमीन में ऊंडे हैं । मूल में दस हजार योजन चौड़े हैं और इसके बाद अनुक्रम से कुछ कुछ घटते घटते शिखर पर एक हजार योजन चौड़े रह गये हैं । मूल में ३१६२३ (इकतीस हजार छह सौ तेईस) योजन की परिधि है और शिखर पर ३१६६ (तीन हजार एक सौ छासठ) योजन की परिधि है । मूल में विस्तृत हैं । बीच में संकुचित-संकडे हैं और ऊपर पतले हैं । ये गाय के पूंछ के आकार वाले हैं अर्थात् जैसे गाय का पूंछ शुरूआत में मोटा और फिर क्रमशः कम होता हुआ अन्त में पतला होता है। इसी तरह ये अञ्जनक पर्वत भी मूल में अधिक चौड़े हैं और फिर क्रमशः घटते हुए शिखर पर पतले हैं । ये सब पर्वत अञ्जनमय यानी काले रंग के रत्नों के हैं । ये आकाश के समान निर्मल, श्लक्ष्ण यानी चिकने, मसृण यानी स्निग्ध, शाण पर चढ़ी हुई पाषाण की प्रतिमा के समान धृष्ट और मृष्ट यानी घिसे हुए और सुंहाले, रज रहित, निष्पङ्क यानी गीले मल रहित, निर्मल शोभा वाले, स्वयं प्रभा वाले, किरणों वाले, उद्योत वाले, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय यानी देखने योग्य, अभिरूप - कमनीय और प्रतिरूप यानी देखने वालों के लिए रमणीय हैं। उन अञ्जनक पर्वतों के ऊपर बहुत समान रमणीय भूमिभाग हैं। उन बहुत समान रमणीय भूमिभागों के मध्य भाग में चार सिद्धायतन कहे गये हैं । वे सिद्धायतन एक सौ योजन लम्बे पचास योजन के चौड़े और बहत्तर योजन के ऊंचे कहे गये हैं । उन सिद्धायतनों के चारों दिशाओं में चार द्वार कहे गये हैं । यथा - देवद्वार, असुरद्वार, नाग द्वार, सुवर्ण द्वार । उन द्वारों में चार जाति के देव रहते हैं । यथा - देव, असुर, नाग और सुवर्ण। उन द्वारों के सामने चार मुख मण्डप कहे गये हैं । उन मुख मण्डपों के सामने चार प्रेक्षागृहमण्डप कहे गये हैं । उन प्रेक्षागृहमण्डपों के मध्य भाग में चार वज्रमय अखाड़े कहे गये हैं । उन वज्रमय अखाड़ों के मध्य भाग में चार मणिपीढिकाएं कही गई हैं । उन मणिपीढिकाओं के ऊपर चार सिंहासन कहे गये हैं । उन सिंहासनों के ऊपर चार विजयदूष्य कहे गये हैं । उन विजयदूष्यों के मध्यभाग में चार वज्रमय अंकुश कहे गये हैं । उन वज्रमय अङ्कुशों में कुम्भप्रमाण ❀ युक्त चार मुक्तादाम यानी मोतियों की मालाएं कही गई हैं । वे कुम्भप्रमाण युक्त प्रत्येक मोतियों की मालाएं दूसरी उनसे आधी ऊंचाई वाली और अर्द्ध कुम्भप्रमाण युक्त चार मोतियों की मालाओं से चारों तरफ से वेष्टित यानी घिरी हुई हैं ।

❀ कुम्भ एक प्रकार का प्रमाण होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन प्रेक्षागृहों के सामने चार मणिपीढिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीढिकाओं के ऊपर चार चार चैत्यस्तूप कहे गये हैं। उन प्रत्येक चैत्यस्तूपों के चारों दिशाओं में चार मणिपीढिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीढिकाओं के ऊपर चार जिन प्रतिमाएं हैं। वे सब रत्नमय हैं और स्तूप की तरफ मुंह करके पर्यङ्क आसन से स्थित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं। यथा - ऋषभ, वर्द्धमान, चन्द्रानन और वारिसेन। उन चैत्यस्तूपों के सामने चार मणिपीढिकाएं कही गई है। उन मणिपीढिकाओं के ऊपर चार चैत्यवृक्ष कहे गये हैं। उन चैत्यवृक्षों के सामने चार मणिपीढिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीढिकाओं के ऊपर चार महेन्द्र ध्वजाएं कही गई हैं। उन महेन्द्र ध्वजाओं के सामने चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं। उन प्रत्येक पुष्करणियों के चारों तरफ पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं में चार वनखण्ड कहे गये हैं। यथा - पूर्व में अशोक वन, दक्षिण में सप्तपर्ण वन, पश्चिम में चम्पक वन और उत्तर दिशा में आम्र वन है।

पहले जो चार अञ्जनक पर्वत कहे हैं उनमें जो पूर्व दिशा का अञ्जनक पर्वत है। उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं। यथा - नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा और नन्दिवर्द्धना। वे नन्दा पुष्करणियाँ एक लाख योजन की लम्बी पचास हजार योजन की चौड़ी और एक हजार योजन की ऊड़ी कही गयी हैं। उन प्रत्येक पुष्करणियों के चारों दिशाओं में चार त्रिसोपान प्रतिरूपक यानी आने जाने के लिए तीन सीढियाँ कही गई हैं। उन त्रिसोपान प्रतिरूपकों के सामने पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं में चार तोरण कहे गये हैं। उन प्रत्येक पुष्करणी के सामने पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं में चार वनखण्ड कहे गये हैं। यथा - पूर्व में अशोक वन, दक्षिण में सप्तपर्ण वन, पश्चिम में चम्पक वन और उत्तर दिशा में आम्रवन है।

उन पुष्करणियों के मध्यभाग में चार दधिमुख पर्वत कहे गये हैं। वे दधिमुख पर्वत चौसठ हजार योजन के ऊंचे और एक हजार योजन जमीन में ऊंडे हैं। वे पर्वत मूल से लेकर शिखर तक सब जगह समान हैं। वे ✽ पल्य के आकार वाले हैं। दस हजार योजन के चौड़े हैं। इन की परिधि ३१६२३ (इकतीस हजार छह सौ तेईस) योजन है। ये सब रत्नमय उज्वल यावत् प्रतिरूप हैं। उन दधिमुख पर्वतों के ऊपर बहुत समान और रमणीय भूमिभाग कहे गये हैं। शेष अधिकार जैसा अञ्जनक पर्वतों का कहा गया है। वैसा ही यावत् उत्तर दिशा में आम्रवन है यहाँ तक सारा अधिकार कह देना चाहिए।

जो अञ्जनक पर्वत पहले कहे गये हैं उनमें से जो दक्षिण दिशा का अञ्जनक पर्वत है उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं। यथा - भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुण्डरिकिणी। वे नन्दा पुष्करणियाँ एक लाख योजन की लम्बी हैं इत्यादि शेष सारा अधिकार यावत्

✽ पल्य - अनाज भरने का गोल कोठा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दधिमुख पर्वत और वनखण्डों तक जैसा कि पहले कहा गया है वैसा ही कह देना चाहिए । उन में जो पश्चिम दिशा का अञ्जनक पर्वत है उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं । यथा - नन्दिषेणा, अमोघा, गोस्थूभ, सुदर्शना । दधिमुख पर्वत, सिद्धायतन यावत् वनखण्डों तक शेष सारा अधिकार जैसा पहले कहा है वैसा ही कह देना चाहिए। उन में से जो उत्तर दिशा का अञ्जनक पर्वत है उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करणियाँ कही गई हैं । यथा - विजया, वैजयंती जयन्ती और अपराजिता। वे पुष्करणियाँ एक लाख योजन की लम्बी हैं । इत्यादि उनका प्रमाण पहले के अनुसार ही है। इसी प्रकार दधिमुख पर्वत, सिद्धायतन यावत् वनखण्ड तक सारा अधिकार जैसा पहले कहा गया है वैसा ही जानना चाहिए ।

नन्दीश्वर द्वीप के चक्रवाल विष्कम्भ के मध्य भाग में चारों विदिशाओं में चार रतिकर पर्वत कहे गये हैं । यथा - उत्तर और पूर्व के बीच का अर्थात् ईशान कोण का रतिकर पर्वत, दक्षिण और पूर्व के बीच का यानी आग्नेय कोण का रतिकर पर्वत, दक्षिण और पश्चिम के बीच का यानी नैऋत्य कोण का रतिकर पर्वत और उत्तर और पश्चिम के बीच का यानी वायव्य कोण का रतिकर पर्वत । वे रतिकर पर्वत दस सौ यानी एक हजार योजन ऊंचे हैं और एक हजार कोस धरती में उंडे हैं । ऊपर, नीचे और बीच में सब जगह समान हैं। झालर के आकार वाले हैं। दस हजार योजन चौड़े हैं । ३१६२३ (इकतीस हजार छह सौ तेईस) योजन की परिधि है । सब रत्नमय हैं और सुन्दर यावत् प्रतिरूप हैं । उनमें जो ईशान कोण का रतिकर पर्वत हैं उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में देवों के इन्द्र देवों के राजा ईशानेन्द्र की कृष्णा, कृष्णराजि, रामा और रामरक्षिता इन चार अग्रमहिषियों की ज़म्बूद्वीप प्रमाण यानी एक लाख योजन की चार राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - नन्दोत्तरा, नन्दा, उत्तरकुरा और देवकुरा । उनमें जो आग्नेय कोण में रतिकर पर्वत है उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र की पद्मा शिवा, शची और अञ्जु, इन चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाण यानी एक लाख योजन की चार राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - सुमना, सोमनसा, अर्चिमाली और मनोरमा। उनमें जो नैऋत्य कोण में रतिकर पर्वत है उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र की अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी इन चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाण यानी एक लाख योजन की चार राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - भूता, भूतावतंसा, गोस्तूभा और सुदर्शना । उनमें वायव्य कोण में जो रतिकर पर्वत है । उसके चारों तरफ चारों दिशाओं में देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र की वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुंधरा इन चार की जम्बूद्वीप प्रमाण यानी एक लाख योजन की चार राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - रत्ना, रत्नोच्चया, सर्वरत्ना और रत्नसञ्चया ।

विवेचन - १. जंबूद्वीप और लवण समुद्र २. धातकीखण्ड द्वीप और कालोदधि ३. पुष्करवर द्वीप से प्रारंभ होकर ४. वारुणी ५. क्षीर ६. घृत ७. इक्षु ८. नंदीश्वर और ९. अरुण नाम के द्वीप और समुद्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है यावत् स्वयंभूरमण पर्यंत द्वीपों के नाम के अनुसार ही समुद्रों के नाम हैं इस गणना से आठवां द्वीप नंदीश्वर है जिसका वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। यह नंदीश्वर द्वीप १,६३,८४,००००० (एक अरब त्रेसठ करोड़ और चौरासी लाख) योजन विष्कंभ वाला है। नन्दीश्वर द्वीप की जो रचना बतलाई गई है। उसके लिए टीकाकार ने लिखा है कि "**तत्त्वन्तु बहुश्रुता विदन्तीति**" इसका तत्त्व यानी रहस्य तो बहुश्रुत ज्ञानी पुरुष जानते हैं। मूल में अंजनक पर्वत के लिये "**अच्छा**" "**सण्हा**" "**लण्हा**" आदि सोलह विशेषण दिये हैं। जो वस्तु शाश्वत होती है, उसके लिये ये सोलह विशेषण दिये जाते हैं और अशाश्वत वस्तु के लिये "**पासाईया**" आदि चार विशेषण दिये जाते हैं। इन सोलह विशेषणों का अर्थ इस प्रकार है -

१. **अच्छा** - स्वच्छ=आकाश एवं स्फटिक के समान सब तरफ से स्वच्छ अर्थात् निर्मल।

२. **सण्हा** - श्लक्ष्ण यानी चिकने सूक्ष्म पुद्गलों से बने हुए होने के कारण चिकने वस्त्र के समान।

३. **लण्हा** - लक्ष्ण घोटे हुए वस्त्र जैसे चिकने।

४. **घट्ठा** - घृष्ट=पाषाण की पुतली जिस प्रकार खुरशाण से घिस कर एक सी और चिकनी कर दी जाती है वैसी घृष्ट।

५. **मट्ठा** - मृष्ट - कोमल खुरशाण से घिसे हुए चिकने।

६. **णीरया** - नीरज=रज अर्थात् धूलि रहित।

७. **णिम्मला** - निर्मल=मल रहित।

८. **णिप्पंका** - निष्पंक यानी गीले मल रहित।

९. **णिक्कंकडच्छाया** - निर्मल शोभा वाले।

१०. **सप्पभा** - सप्रभा - प्रकाश सम्पन्न अथवा स्वयं आभा-चमक से सम्पन्न।

११. **समिरिया** (सस्सिरिया) - समरिचि=मरिचि अर्थात् किरणों से युक्त तथा शोभा युक्त।

१२. **सउज्जोया** - सउद्योत=उद्योत अर्थात् प्रकाश सहित तथा समीपस्थ वस्तु को प्रकाशित करने वाले।

१३. **पासाईया** - प्रासादीय - मन को प्रसन्न करने वाले।

१४. **दरिसणिज्जा** - दर्शनीय=देखने योग्य तथा देखते हुए आंखों को थकान मालूम नहीं होती है ऐसे।

१५. **अभिरूवा** - अभिरूप =जितनी वक्त देखो उतनी वक्त नया नया रूप दिखाई देता है।

१६. **पडिरूवा** - प्रतिरूप=प्रत्येक व्यक्ति के लिये रमणीय।

सिद्धायतन - '**सिद्धानि नित्यानि च शाश्वतानि, तान्यायतानि**' अर्थात् शाश्वत आयतन (निवास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान) ही सिद्धायतन कहलाते हैं। सिद्धायतन में न तो सिद्ध भगवान् विराजित है न ही किसी ने वहाँ से सिद्ध गति को प्राप्त किया है अतः सिद्धायतन देव विशेषों के स्थान मात्र हैं, उनका मुक्तात्मा रूप सिद्ध भगवंतों से कोई संबंध नहीं है।

इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव हुए थे और अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान् (महावीर) हुए थे। इसी प्रकार इस अवसर्पिणी काल में ऐरवत क्षेत्र में प्रथम तीर्थङ्कर श्री चन्दानन स्वामी और चौबीसवें तीर्थङ्कर वारिसेन हुए थे। इनमें ऋषभदेव और चन्दाननस्वामी की अवगाहना पांच सौ धनुष थी और अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान तथा वारिसेन तीर्थङ्कर की अवगाहना सात हाथ की थी। परन्तु यहाँ जो चार प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है उन सब की अवगाहना आगम में पांच सौ धनुष की बतलाई गयी है। इसलिए ये चारों प्रतिमाएँ इन ऋषभदेव आदि भगवन्तों की नहीं है। जैसा कि टीकाकार ने बतलाया है कि ये प्रतिमाएँ और सिद्धायतन शाश्वत हैं। अतः इनको तीर्थङ्कर की प्रतिमाएं मानना आगम के अनुकूल नहीं हैं। यह तो नन्दीश्वर द्वीप की रचना है वैसी रचना का वर्णन आगमकारों ने किया है।

प्रेक्षागृहमण्डप - जहाँ बैठ कर दूर दूर की वस्तुओं को देखा जाता है उन मण्डपों को प्रेक्षागृह मण्डप कहते हैं।

रतिकर पर्वत - जो पर्वत देव देवियों के रमणीय क्रीडा स्थल हैं उन्हें रतिकर पर्वत कहा जाता है।

सत्य, आजीविक तप, संयम त्याग अकिंचनता

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते तंजहा - णामसच्चे, ठवणसच्चे, दव्वसच्चे, भावसच्चे। आजीवियाणं चउव्विहे तवे पण्णत्ते तंजहा - उग्गतवे, घोरतवे, रसणिज्जूहणया, जिब्भिंदियपडिसंलीणया । चउव्विहे संजमे पण्णत्ते तंजहा - मणसंजमे, वइसंजमे, कायसंजमे, उवगरणसंजमे । चउव्विहे चियाए पण्णत्ते तंजहा - मणचियाए वइचियाए कायच्चियाए उवगरणचियाए। चउव्विहा अकिंचणया पण्णत्ता तंजहा-मणअकिंचणया, वइअकिंचणया, कायअकिंचणया, उवगरण अकिंचणया॥ १६४॥

।। इति द्वितीयोद्देशकः सम्पूर्णः ।।

कठिन शब्दार्थ - सच्चे - सत्य, **आजीवियाणं** - आजीविक-गोशालक के मत में, **उग्गतवे** - उग्र तप, **घोरतवे** - घोर तप, **रसणिज्जूहणया** - रस निर्यूहनता-घृत आदि रसों का त्याग, **जिब्भिंदिय पडिसंलीणया** - जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता, **उवगरणसंजमे** - उपकरण संयम, **चियाए** - त्याग, **अकिंचणया** - अकिञ्चनता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - चार प्रकार का सत्य कहा गया है । यथा - नाम सत्य, स्थापना सत्य, द्रव्य सत्य और भाव सत्य । आजीविक यानी गोशालक मतानुयायियों के मत में चार प्रकार का तप कहा गया है । यथा-उग्र तप, उपवास बेला, तेला, आदि घोर तप, रसनिर्यूहनता यानी घृतादि रसों का त्याग और जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता यानी अच्छे और बुरे आहार में राग द्वेष न करना ।

चार प्रकार का संयम कहा गया है । यथा - मनसंयम, वचन संयम, काय संयम और उपकरण संयम । चार प्रकार का त्याग कहा गया है । यथा - मन त्याग, वचन त्याग, काय त्याग, उपकरण त्याग। चार प्रकार की अकिञ्चनता कही गई है । यथा - मन अकिञ्चनता, वचन अकिञ्चनता, काय अकिञ्चनता और उपकरण अकिञ्चनता ।

विवेचन - उपयोग रहित वक्ता का सत्य, द्रव्य सत्य है तथा उपयोग युक्त वक्ता का जो सत्य है वह भाव सत्य है।

आजीविक - गोशालक के शिष्यों का अट्ठम आदि तप उग्र तप, घोर-अपनी अपेक्षा रखे बिना अर्थात् अपने शरीर की चिंता किये बिना किया जाने वाला तप, घृतादि रस त्याग रूप तप और जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता-मनोज्ञ या अमनोज्ञ आहार के विषय में राग द्वेष का त्याग, यह चार प्रकार का तप है जब कि अरिहंत के शिष्यों का तप बारह प्रकार का है मन, वचन और काया के अकुशल पन का निरोध रूप और कुशलपन में प्रवृत्ति करने रूप मन आदि संयम है। बहुमूल्य वस्त्र आदि का त्याग करने रूप उपकरण संयम है। अशुभ मन आदि का निरोध अथवा मन आदि से साधुओं के लिए आहारादि का दान त्याग है।

'उग्गतवे' की जगह किसी प्रति में **'उदारतवे'** ऐसा पाठ है। इसका अर्थ है - उदार तप यानी इहलोकादि की आशंसा रहित तप।

जो द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित है वह अकिंचन कहलाता है। यहाँ अकिंचनता का अर्थ निष्परिग्रहता है। यहाँ मन आदि के भेद से अकिंचनता चार प्रकार की कही गयी है।

।। इति चौथे ठाणे का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

चतुर्थ स्थान का तृतीय उद्देशक

चत्तारि उदगा पण्णत्ता तंजहा - कद्दमोदए, खंजणोदए, वालुओदए, सेलोदए । एवामेव चउव्विहे भावे पण्णत्ते तंजहा - कद्दमोदगसमाणे, खंजणोदगसमाणे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वालुओदगसमाणे, सेलोदगसमाणे । कद्दमोदगसमाणं भावमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ, खंजणोदगसमाणं भावमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ, वालुओदगसमाणं भावमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ मणुस्सेसु उववज्जइ, सेलोदगसमाणं भावमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ देवेसु उववज्जइ।

चत्तारि पक्खी पण्णत्ते तंजहा - रुयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो रुयसंपण्णे, एगे रुयसंपण्णे वि रूवसंपण्णे वि, एगे णो रुयसंपण्णे णो रूवसंपण्णे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - रुयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो रुयसंपण्णे, एगे रुयसंपण्णे वि रूवसंपण्णे वि, एगे णो रुयसंपण्णे णो रूवसंपण्णे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पत्तियं करेमि एगे पत्तियं करेइ, पत्तियं करेमि एगे अपत्तियं करेइ, अपत्तियं करेमि एगे पत्तियं करेइ, अपत्तियं करेमि एगे अपत्तियं करेइ । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अप्पणो णाममेगे पत्तियं करेइ णो परस्स, परस्स णाममेगे पत्तियं करेइ णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि पत्तियं करेइ परस्स वि, एगे णो अप्पणो पत्तियं करेइ णो परस्स । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पत्तियं पवेसामि एगे पत्तियं पवेसेइ, पत्तियं पवेसामि एगे अपत्तियं पवेसेइ, अपत्तियं पवेसामि एगे पत्तियं पवेसेइ, अपत्तियं पवेसामि एगे अपत्तियं पवेसेइ। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अप्पणो णाममेगे पत्तियं पवेसेइ णो परस्स, परस्स णाममेगे पत्तियं पवेसेइ णो अप्पणो, एगे अप्पणो वि पत्तियं पवेसेइ परस्स वि, एगे णो अप्पणो पत्तियं पवेसेइ णो परस्स॥ १६५॥

कठिन शब्दार्थ - **कद्दमोदए** - कर्दमोदक-कीचड़ युक्त जल, **खंजणोदए** - खंजणोदक-खञ्जन युक्त जल, **वालुओदए** - बालुकोदक-बालू मिश्रित जल, **सेलोदए** - शैलोदक-पत्थर पर का जल, **अणुप्पविट्ठे** - रहा हुआ, **पक्खी** - पक्षी, **रुयसंपण्णे** - रुत सम्पन्न-मधुर शब्द वाला, **रूवसंपण्णे** - रूप संपन्न, **पत्तियं** - हित।

भावार्थ - चार प्रकार का जल कहा गया है । यथा - कीचड़ युक्त जल, जिसमें निकलना कठिन होता है । खञ्जन यानी दीपक की कालिक जैसा जल जो पैर आदि पर लग जाने पर कुछ लेप करता है, बालू मिश्रित जल जो सूख जाने पर बालू स्वतः नीचे गिर जाती है । शैलोदक यानी पत्थर पर का जल, जिसका स्पर्श मात्र होता है किन्तु लेप नहीं होता है । इसी तरह चार प्रकार का भाव कहा गया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है । यथा - कर्दमोदक समान, जिससे कर्मों का गाढा लेप होता है, खञ्जनोदक समान, जिससे कर्मों का कुछ हल्का लेप होता है । बालुकोदक समान, जिससे मामूली हल्का लेप होता है और शैलोदक समान जिससे स्पर्शमात्र होता है । कर्दमोदक समान भाव में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है । खञ्जनोदक समान भाव में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होता है। बालुकोदक समान भाव में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है। शैलोदक समान भाव में रहा हुआ जीव यदि काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है ।

चार प्रकार के पक्षी कहे गये हैं । यथा - कोई एक पक्षी रुत सम्पन्न यानी मधुर शब्द वाला होता है किन्तु रूपसम्पन्न यानी सुन्दर रूप वाला नहीं होता है जैसे कोयल । कोई एक पक्षी रूपसम्पन्न होता है किन्तु रुत सम्पन्न यानी मधुर शब्द वाला नहीं होता है, जैसे अशिक्षित तोता । कोई एक पक्षी रुत सम्पन्न यानी मधुर शब्द वाला भी होता है और रूप सम्पन्न भी होता है, जैसे मोर । कोई एक पक्षी न तो रुतसम्पन्न यानी मधुर शब्द वाला होता है और रूप सम्पन्न होता है जैसे कौआ । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष मधुर शब्द वाला होता है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं होता है। कोई एक पुरुष रूप सम्पन्न होता है किन्तु मधुर शब्द वाला नहीं होता है । कोई एक पुरुष मधुर शब्द वाला भी होता है और रूप सम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो मधुर शब्द वाला होता है और न रूप सम्पन्न होता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं इसका हित करूँ और वह उसका हित करता है । कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं इसका हित करूँ किन्तु वह उसका अहित करता है । कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं इसका अहित करूँ, किन्तु वह उसका हित करता है । कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं उसका अहित करूँ और उसका अहित करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का हित करता है किन्तु दूसरे का हित नहीं करता है । कोई एक पुरुष दूसरे का हित करता है किन्तु अपनी आत्मा का हित नहीं करता है। कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का भी हित करता है और दूसरे का भी हित करता है । कोई एक पुरुष न तो अपनी आत्मा का हित करता है और न दूसरे का हित करता है। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं इसके हृदय में ऐसा विश्वास उत्पन्न करूँगा कि यह मेरा हित करता है ऐसा विचार कर वह उसके हृदय में विश्वास उत्पन्न करता है एवं उसका हित करता है । कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं इसके हृदय में हित करने का विश्वास उत्पन्न करूँ, किन्तु वह उसके हृदय में विश्वास उत्पन्न करता है एवं हित करता है । कोई एक पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं इसके हृदय में अविश्वास उत्पन्न करूँ एवं अहित करूँ, ऐसा विचार करके वह अविश्वास उत्पन्न करता है एवं अहित करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का विश्वास एवं हित करता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु दूसरे का विश्वास एवं हित नहीं करता है । कोई एक पुरुष दूसरे का विश्वास एवं हित करता है किन्तु अपनी आत्मा का विश्वास एवं हित नहीं करता है। कोई एक पुरुष अपनी आत्मा का भी विश्वास एवं हित करता है और दूसरे का भी विश्वास एवं हित करता है । कोई एक पुरुष न तो अपनी आत्मा का विश्वास एवं हित करता है और न दूसरे का विश्वास एवं हित करता है।

विवेचन - इस सूत्र में क्रोध और उसकी उपमाओं का वर्णन किया गया है। चार प्रकार के भाव-मानसिक प्रवृत्तियाँ कही है। भावों के अनुसार ही जीव कर्मों का उपार्जन करता है और कर्मानुसार ही जीव को फल भोगना पड़ता है। उपरोक्त सूत्र में दूषित जल के माध्यम से कर्मों का एवं उनके फलभोग का वर्णन किया गया है।

वृक्ष और मनुष्य

चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा - पत्तोवए, पुप्फोवए, फलोवए, छायोवए । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवा-रुक्खसमाणे, फलोवारुक्खसमाणे, छायोवारुक्खसमाणे।

चार विश्राम

भारं णं वहमाणस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता तंजहा - जत्थ णं अंसाओ अंसं साहरइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते, जत्थ वि य णं उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठावेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते, जत्थ वि य णं णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते, जत्थ वि य णं आवकहाए चिट्ठइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते । एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता तंजहा - जत्थ णं सीलव्वयगुणव्वयवेरमण पच्चक्खाणपोसहोववासाइं पडिवज्जेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते, जत्थ वि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते, जत्थ वि य चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिसु पडिपुण्णं पोसहं सम्ममणुपालेइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते, जत्थ वि य णं अपच्छिममारणंतिय संलेहणा झूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालमणवकंखमाणे विहरइ तत्थ वि य से एगे आसासे पण्णत्ते॥ १६६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पत्तोवए** - पत्तों वाला, **पुप्फोवए** - फूलों वाला, **फलोवए** - फलों वाला, **छायोवए** - छाया वाला, **अंसाओ** - एक कन्धे से, **अंसं** - दूसरे कन्धे पर, **आसासा** - विश्राम स्थान.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उच्चारं - उच्चार-मल, **पासवणं** - प्रस्रवण-मूत्र, **आवकहाए** - यावज्जीवन के लिये, **सीलव्वय गुणव्वय वेरमण पच्चक्खाणं पोसहोववासाइं** - पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं अन्य त्याग पच्चक्खाण तथा पौषधोपवास को, **भत्तपाणपडियाइक्खिए** - आहार पानी का त्याग कर, **कालमणवकंखमाणे** - मरण की वाञ्छा न करते हुए ।

भावार्थ - चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं । यथा - पत्तों वाला, फूलों वाला, फलों वाला और छाया वाला । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - पत्तों वाले वृक्ष के समान, जो दूसरों का उपकार नहीं करते किन्तु अपना ही उपकार करते हैं । फूलों वाले वृक्ष के समान, जो दूसरों को सूत्र पढाने से उपकार करते हैं । फलों वाले वृक्ष के समान, जो दूसरों को सूत्र और अर्थ दोनों पढा कर उपकार करते हैं । छाया वाले वृक्ष के समान, जो दूसरों को अनुवर्तना (परावर्तन दोहराना) आदि करवा कर तथा कष्ट से रक्षा करके उनका उपकार करते हैं ।

भार को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले पुरुष के चार विश्राम स्थान कहे गये हैं । यथा - जहाँ पर वह भार को एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर लेता है । वहाँ वह एक विश्राम स्थान कहा गया है । जहाँ पर भार को रख कर टट्टी अथवा पेशाब करता है वह एक विश्राम स्थान कहा गया है । जहाँ नागकुमार अथवा सुवर्णकुमार के देहरे (मन्दिर) में या अन्य स्थान पर रात्रि के लिए ठहरता है । वह एक विश्राम कहा गया है और जहाँ पर पहुँचना है वहाँ पहुँच कर यावज्जीवन के लिए विश्राम करना वह एक विश्राम कहा गया है । इसी तरह श्रमणोपासक श्रावक के चार विश्राम स्थान कहे गये हैं। यथा - जब पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं अन्य त्याग पच्चक्खाण तथा पौषधोपवास को अङ्गीकार करता है तब वह एक विश्राम स्थान कहा गया है ।

जब अपश्चिम मारणान्तिक यानी मृत्यु के अवसर पर अन्त समय में संलेखना अङ्गीकार करके आहार पानी का त्याग कर पादपोपगमन यानी वृक्ष की तरह निश्चेष्ट रहते हुए मरण की वाञ्छा न करते हुए रहता है तब वह एक विश्राम स्थान कहा गया है ।

विवेचन - भार को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले पुरुष के लिए चार विश्राम होते हैं -

१. भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर लेना एक विश्राम है ।

२. भार रख कर टट्टी पेशाब करना दूसरा विश्राम है ।

३. नागकुमार सुवर्णकुमार आदि के देहरे मन्दिर में या अन्य स्थान पर रात्रि के लिए विश्राम करना तीसरा विश्राम है ।

४. जहां पहुँचना है, वहाँ पहुँच कर सदा के लिए विश्राम करना चौथा विश्राम है ।

इसी प्रकार श्रावक के चार विश्राम कहे गये हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं अन्य त्याग प्रत्याख्यान अंगीकार करना पहला विश्राम है ।

२. सामायिक देशावकासिक व्रतों का पालन करना तथा अन्य ग्रहण किये हुए व्रतों में रखी हुई मर्यादा का प्रतिदिन संकोच करना एवं उन्हें सम्यक् प्रकार से पालन करना दूसरा विश्राम स्थान है ।

३. अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का सम्यक् प्रकार पालन करना तीसरा विश्राम स्थान है।

४. अन्त समय में संलेखना अंगीकार कर आहार पानी का त्याग कर, निश्चेष्ट रहते हुए मरण की इच्छा न करते हुए रहना चौथा विश्राम स्थान है ।

उदय-अस्त चौभंगी

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उदिओदिए णाममेगे, उदियत्थमिए णाममेगे, अत्थमिओदिए णाममेगे, अत्थमियत्थमिए णाममेगे, भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी णं उदिओदिए, बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी उदियत्थमिए, हरिएसबले णं अणगारे अत्थमिओदिए, काले णं सोयरिए अत्थमियत्थमिए।

युग्म भेद

चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता तंजहा - कडजुम्मे, तेओए, दावरजुम्मे, कलिओए । णेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता तंजहा- कडजुम्मे, तेओए, दावरजुम्मे, कलिओए । एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं, एवं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं वाणमंतर जोइसियाणं वेमाणियाणं सव्वेसिं जहा णेरइयाणं ।

चार प्रकार के शूर, कुल और मानव लेश्याएँ

चत्तारि सूरा पण्णत्ता तंजहा - खंतिसूरे, तवसूरे, दाणसूरे, जुद्धसूरे । खंतिसूरा अरिहंता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्धसूरे वासुदेवे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उच्चे णाममेगे उच्चच्छंदे, उच्चे णाममेगे णीयच्छंदे, णीए णाममेगे उच्चच्छंदे, णीए णाममेगे णीयच्छंदे। असुरकुमाराणं चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा, तेउलेस्सा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं जाव थणियकुमाराणं, एवं पुढविकाइयाणं आउवणस्सइकाइयाणं वाणमंतराणं सव्वेसिं जहा असुरकुमाराणं॥ १६७॥

कठिन शब्दार्थ - उदिओदिए - उदितोदित, **उदियत्थमिए** - उदित अस्त, **अत्थमिओदिए** - अस्तोदित, **अत्थमियत्थमिए** - अस्तमितास्तमित, **जुम्मा** - युग्म, **कडजुम्मे** - कृतयुग्म, **तेओए** - त्र्योज, **दावरजुम्मे** - द्वापर युग्म, **कलिओए** - कल्योज, **सूरा** - शूर, **खंतिसूरे** - क्षान्तिशूर, **जुद्धसूरे** - युद्धशूर, **वेसमणे** - वैश्रमण, **उच्चच्छंदे** - उच्च अभिप्राय वाला।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई पुरुष उदितोदित अर्थात् उच्च कुल, बल, ऋद्धि आदि पाकर फिर परम सुख को प्राप्त करने वाला, ऐसा उदितोदित चारों दिशाओं को जीतने वाला चक्रवर्ती भरत राजा हुआ था । यह मोक्ष में गया था । कोई एक पुरुष उदितअस्त अर्थात् जैसे सूर्य प्रातःकाल उदय होकर शाम को अस्त हो जाता है उसी प्रकार जो पहले उच्चकुल, बल, ऋद्धि आदि को प्राप्त करके फिर उस ऋद्धि आदि से रहित होकर दुर्गति में चला जाय, ऐसा चारों दिशाओं को जीतने वाला ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुआ था । वह चक्रवर्ती की ऋद्धि को भोग कर सातवीं नरक में गया था । कोई एक पुरुष अस्तउदित अर्थात् नीचकुल में उत्पन्न होकर फिर मोक्ष को प्राप्त हो । ऐसा अस्तोदित हरिकेशी बल नामक मुनि हुए थे । हरिकेशी का जन्म चण्डाल कुल में हुआ था । फिर दीक्षा लेकर वे मोक्ष में गये । कोई एक पुरुष अस्तमितास्तमित अर्थात् नीचकुल में जन्म लेकर फिर क्रूर कर्म करके नरक गति में चला जाय । ऐसा अस्तमितास्तमित काल शौकरिक कसाई हुआ था । वह नीचकुल में उत्पन्न हुआ था । वह ५०० भैंसा रोजाना मारता था । वह मर कर सातवीं नरक में गया था।

चार युग्म कहे गये हैं यथा - कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापर युग्म और कल्योज । नैरयिकों में कृतयुग्म त्र्योज द्वापर युग्म और कल्योज ये चारों युग्म कहे गये हैं । इसी तरह असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक सब भवनपति देवों में चार युग्म होते हैं । इसी प्रकार पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्च, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन सभी दण्डकों में नैरयिकों के समान चारों युग्म होते हैं।

चार शूर कहे गये हैं यथा - क्षान्तिशूर - क्षमाशूर, तपःशूर, दानशूर और युद्धशूर । क्षमाशूर अरिहन्त होते हैं । तपःशूर अनगार-मुनि होते हैं । दानशूर वैश्रमण होता है और युद्धशूर वासुदेव होता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष उच्च यानी कुल, बल रूपादि गुणों से उन्नत और उच्च अभिप्राय वाला होता है । कोई एक पुरुष कुल आदि से उच्च होता है किन्तु अभिप्राय आदि से नीच होता है । कोई एक पुरुष कुल आदि से नीच होता है किन्तु अभिप्राय आदि से उच्च होता है और कोई एक पुरुष कुल आदि से नीच होता है और अभिप्राय आदि से भी नीच होता है। असुरकुमारों में चार लेश्याएं कही गई हैं यथा - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या। इसी तरह स्तनितकुमारों तक चार लेश्याएं होती हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार असुरकुमारों में चार लेश्याएं कही गयी है उसी प्रकार पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय तथा वाणव्यन्तर इन सब में चार-चार लेश्याएं होती हैं ।

विवेचन - जिस राशि में से चार चार कम करते हुए शेष चार बच जाय उसे कृतयुग्म कहते हैं । तीन बचें तो उसे त्र्योज कहते हैं । दो बचें तो द्वापर युग्म और एक बचे तो कल्योज कहते हैं । गणित की परिभाषा में समराशि को युग्म और विषम राशि को ओज कहते हैं ।

उच्चकुल, बल, समृद्धि और निर्दोष कार्यों से उदित-अभ्युदय वाला और परम सुख के समूह के उदय से उदित-उदय पाया हुआ अतः उदितोदित जैसे भरत महाराजा का उदितोदितपना प्रसिद्ध है तथा प्रथम उदय प्राप्त और फिर अस्त हुए-सूर्य की तरह क्योंकि सर्व समृद्धि से भ्रष्ट होने से और दुर्गति में जाने से उदित अस्तमित-उदय को पाकर अस्त हुए ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह वे उत्तमकुल में उत्पन्न हुए होने से और स्वभुजा के बल से प्राप्त साम्राज्य से प्रथम उदय को प्राप्त और पीछे और मरण के बाद अप्रतिष्ठान नाम के महा नरकावास संबंधी वेदना को प्राप्त होने से अस्त ।

हीन कुल में उत्पत्ति, दुर्भाग्य और द्वारिद्र्य आदि से पहले अस्त और बाद में समृद्धि, कीर्ति और सद्‌गति की प्राप्ति आदि से उदित-उदय प्राप्त हैं वे अस्तमितोदित हैं जैसे हरिकेश बल नाम के मुनि। पूर्व जन्म में बांधे हुए नीच गोत्र कर्म के वश हरिकेश नाम के चांडाल कुलपणे से दुर्भाग्यपन से और दरिद्रपन से प्रथम अस्त परन्तु पीछे से दीक्षित होने के कारण निश्चल चारित्र के गुणों से प्राप्त देवकृत सहायता से प्रसिद्धि प्राप्त होने और मोक्ष में जाने से उदित कहलाये ।

सूर्य की तरह प्रथम अस्त क्योंकि नीचकुलपना और दुष्ट कर्म करने से कीर्ति, समृद्धि, लक्षण, तेज आदि से जो रहित हैं और बाद में दुर्गति में जाने के कारण जो अस्त हुए वे अस्तमितास्तमित जैसे काल नाम का सौकरिक जो दुष्ट कुल में उत्पन्न हुआ और प्रतिदिन ५०० पाड़ों को मारने वाला होने के कारण प्रथम अस्त को प्राप्त और बाद में सातवीं नारकी में जाने के कारण अस्त कहा है ।

शूर पुरुष के चार प्रकार हैं -

१. क्षमा शूर - वीरपुरुष - अरिहंत भगवान् होते हैं । जैसे भगवान् महावीर स्वामी । **२. तप शूर**- अनगार होते हैं । जैसे धन्नाजी और दृढ प्रहारी अनगार । दृढ़ प्रहारी ने चोर अवस्था में दृढ प्रहार आदि से उपार्जित कर्मों का अन्त दीक्षा ले कर तप द्वारा छह माह में कर दिया । द्रव्य शत्रुओं की तरह भाव शत्रु अर्थात् कर्मों के लिये भी उसने अपने आप को दृढ़ प्रहारी सिद्ध कर दिया । **३. दान शूर** - वैश्रमण-उत्तरदिशा का लोकपाल (कुबेर) हैं जो तीर्थंकर आदि के जन्म के समय में और पारणा आदि के समय में रत्नों की वृष्टि करते हैं । **४. युद्ध शूर** - वासुदेव होते हैं । जैसे कृष्ण महाराज जिन्होंने ३६० युद्धों में जीत हासिल की थी ।

देवता और नैरयिक जीवों में द्रव्य लेश्या उनके आयुष्य पर्यन्त अवस्थित रहती है उन द्रव्यों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ अन्य द्रव्यों का संपर्क होने से भावलेश्या छह होती है । परंतु मूल द्रव्यों में परिवर्तन नहीं होता है तदाकार मात्र होता है । जबकि मनुष्य और तिर्यंचों की द्रव्य लेश्या अंतर्मुहूर्त्त पर्यन्त अवस्थित रहती है, फिर बदलती है । केवली की लेश्या अवस्थित रहती है ।

यान, वाहन, सारथि एवं पुरुष

चत्तारि जाणा पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । चत्तारि जाणा पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणए, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणए। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्त परिणए, जुत्ते णाममेगे अजुत्त परिणए, अजुत्ते णाममेगे जुत्त परिणए, अजुत्ते णाममेगे अजुत्त परिणए । चत्तारि जाणा पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्त रूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्त रूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्त रूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे । चत्तारि जाणा पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे । चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवं जहा जाणेण चत्तारि आलावगा तहा जुग्गेण वि, पडिवक्खो तहेव पुरिसजाया जाव सोभे त्ति । चत्तारि सारही पण्णत्ता तंजहा - जोयावइत्ता णाममेगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाममेगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्ता वि विजोयावइत्ता वि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जोयावइत्ता णाममेगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाममेगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्ता वि विजोयावइत्ता वि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता । चत्तारि हया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममगे जुत्ते, जुत्ते णाममगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवं जुत्तपरिणए, जुत्तरूवे, जुत्तसोभे, सव्वेसिं पडिवक्खो पुरिसजाया । चत्तारि गया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममगे अजुत्ते, अजुत्ते णामम्रेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते । एवं जहा हयाणं तहा गयाणं वि भाणियव्वं, पडिवक्खो तहेव पुरिसजाया॥ १६८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **जाणा** - यान-गाड़ी आदि, **जुत्ते** - बैल आदि से युक्त, **अजुत्ते** - अयुक्त, **जुत्तपरिणए** - युक्त परिणत, **अजुत्त परिणए** - अयुक्त परिणत, **जुत्तसोभे** - शोभा युक्त, **अजुत्तसोभे**- शोभा युक्त नहीं, **जुग्गा** - युग्य-सवारी, **सारहि** - सारथि, **जोयावइत्ता** - जोतता है, **विजोयावइत्ता** - छोड़ता है, **पडिवक्खो** - प्रतिपक्ष ।

भावार्थ - चार यान यानी गाड़ी आदि कहे गये हैं यथा - कोई एक यान बैल आदि से युक्त होते हैं और उचित सामग्री से भी युक्त होते हैं । कोई एक यान बैल आदि से युक्त होते हैं किन्तु सामग्री आदि से युक्त नहीं होते हैं। कोई एक यान बैल आदि से युक्त नहीं होते हैं किन्तु सामग्री आदि से युक्त होते हैं। कोई एक यान बैल आदि से युक्त नहीं होते हैं और सामग्री आदि से भी युक्त नहीं होते हैं । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धनादि से युक्त होता है और उचित अनुष्ठान से युक्त होता है अर्थात् दानादि में धन का व्यय करता है एवं धर्मध्यान आदि करता है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त होता है किन्तु उचित अनुष्ठान से युक्त नहीं होता है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है किन्तु उचित अनुष्ठान से युक्त नहीं होता। कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं होता है और उचित अनुष्ठान आदि से भी युक्त नहीं होता है । अथवा इस चौभङ्गी का दूसरी तरह से भी अर्थ किया जा सकता है । यथा - द्रव्यलिङ्ग से युक्त और भावलिङ्ग से भी युक्त, जैसे साधु । द्रव्यलिङ्ग से युक्त किन्तु भावलिङ्ग से अयुक्त, जैसे निह्नव आदि । द्रव्यलिङ्ग से अयुक्त किन्तु भावलिङ्ग से युक्त, जैसे प्रत्येक बुद्ध आदि । द्रव्यलिङ्ग से भी अयुक्त और भावलिङ्ग से भी अयुक्त, जैसे गृहस्थ आदि ।

चार यान कहे गये हैं यथा - कोई एक यान बैल आदि से युक्त होता है और युक्त परिणत यानी श्रेष्ठ सामग्री को अपने अनुकूल किये हुए होता हैं । कोई एक यान युक्त होता है किन्तु युक्त परिणत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता है । कोई एक यान बैलादि से युक्त नहीं होता है किन्तु युक्त परिणत होता है । कोई एक यान अयुक्त है और अयुक्त परिणत हैं । इसी तरह चार पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है और युक्त परिणत भी है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है किन्तु युक्त परिणत नहीं है । कोई एक पुरुष धनादि से अयुक्त है किन्तु युक्त परिणत है । कोई एक पुरुष धनादि से अयुक्त है और अयुक्त परिणत है । चार यान कहे गये हैं यथा - कोई एक यान बैल आदि से युक्त है और युक्तरूप यानी सुन्दर रूप वाला है । कोई एक यान बैलादि से युक्त है किन्तु रूप युक्त नहीं है । कोई एक यान बैलादि से युक्त नहीं है किन्तु रूप युक्त है । कोई एक यान बैल आदि से युक्त नहीं है और रूप युक्त भी नहीं है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धनादि से युक्त हैं और रूप आदि से युक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है किन्तु रूप युक्त नहीं है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है किन्तु रूपादि से युक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है और रूपादि से भी युक्त नहीं है । चार यान कहे गये हैं यथा - कोई एक यान बैल आदि से युक्त है और युक्त शोभा वाला है यानी बैल आदि जोड़ने से अच्छा लगता है । कोई एक यान बैल आदि से युक्त है किन्तु शोभायुक्त नहीं है । कोई एक यान बैलादि से युक्त नहीं है किन्तु शोभायुक्त है । कोई एक यान बैलादि से भी युक्त नहीं है और शोभायुक्त भी नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धनादि से एवं ज्ञानादि से युक्त है और उचित शोभा युक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है किन्तु शोभा युक्त नहीं है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है किन्तु शोभायुक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है और शोभायुक्त भी नहीं है । चार प्रकार के युग्य यानी घोड़ा आदि सवारी अथवा पालखी आदि सवारी कहे गये हैं यथा - कोई एक युग्य चढने की सामग्री पलाण आदि से युक्त होता है और वेग आदि से भी युक्त होता है । कोई एक युग्य पलाण आदि सामग्री से युक्त होता है किन्तु वेगादि से युक्त नहीं होता है । कोई एक युग्य पलाण आदि सामग्री से युक्त नहीं होता है किन्तु वेगादि से युक्त होता है । कोई एक युग्य पलाण आदि सामग्री से भी युक्त नहीं है और वेगादि से भी युक्त नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है और उचित अनुष्ठान से भी युक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है किन्तु उचित अनुष्ठान से युक्त नहीं है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है किन्तु उचित अनुष्ठान से युक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त नहीं है और उचित अनुष्ठान आदि से भी युक्त नहीं है । इस तरह जिस प्रकार यान के चार आलापक यानी भांगे कहे गये हैं उसी प्रकार युग्य के भी चार भांगे कह देने चाहिएं और उसी प्रकार दार्ष्टान्तिक में पुरुष का कथन कर देना चाहिए यावत् शोभा तक इसी तरह कह देना चाहिए ।

चार प्रकार के सारथि कहे गये हैं यथा - कोई एक सारथि बैलादि को गाड़ी में जोतता है किन्तु उन्हें छोड़ता नहीं है । कोई एक सारथि बैलादि को छोड़ता है किन्तु उन्हें गाड़ी में जोतता नहीं है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक सारथि बैल आदि को गाड़ी में जोतता भी है और उन्हें छोड़ता भी है । कोई एक सारथि बैलादि को न तो गाड़ी में जोतता है और न उन्हें छोड़ता है किन्तु उन्हें हांकता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष एवं साधु कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु दूसरे साधुओं को संयम में प्रवृत्त करता है किन्तु अनुचित कार्य से उन्हें रोकता नहीं है । कोई एक साधु दूसरों को अनुचित कार्य से रोकता हैं किन्तु उन्हें संयम मार्ग में प्रवृत्त नहीं करता है । कोई एक साधु दूसरे साधुओं को संयम में प्रवृत्त भी करता है और उन्हें अनुचित कार्य से रोकता भी है । कोई एक साधु दूसरे साधुओं को संयम में प्रवृत्त भी नहीं करता है और उन्हें अनुचित कार्य से रोकता भी नहीं है । चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं यथा - कोई एक घोड़ा पलाण आदि से युक्त है और वेग आदि से भी युक्त है । कोई एक घोड़ा पलाण आदि से युक्त है किन्तु वेग आदि से युक्त नहीं है । कोई एक घोड़ा पलाण आदि से युक्त नहीं है किन्तु वेग आदि से युक्त है । कोई एक घोड़ा पलाण आदि से युक्त नहीं है और वेग आदि से भी युक्त नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है और उचित अनुष्ठान आदि से भी युक्त है । कोई एक पुरुष धनादि से युक्त है किन्तु उचित अनुष्ठान आदि से युक्त नहीं है । कोई एक पुरुष धन आदि से युक्त नहीं है किन्तु उचित अनुष्ठान आदि से युक्त है । कोई एक पुरुष धन आदि से युक्त नहीं है और उचित अनुष्ठान आदि से भी युक्त नहीं है । इसी तरह युक्त परिणत, युक्त रूप और युक्त शोभा से युक्त इत्यादि सब का कथन कर देना चाहिए और इन सब का प्रतिपक्ष यानी दार्ष्टान्तिक में पुरुष का कथन कर देना चाहिए । चार प्रकार के हाथी कहे गये हैं यथा - कोई एक हाथी अम्बावाड़ी (अम्बारी) आदि से युक्त है और वेग आदि से भी युक्त है । कोई एक हाथी अम्बावाड़ी आदि से युक्त है किन्तु वेग आदि से युक्त नहीं है । कोई एक हाथी अम्बावाड़ी आदि से युक्त नहीं है किन्तु वेग आदि से युक्त है । कोई एक हाथी अम्बावाड़ी आदि से भी युक्त नहीं है और वेग आदि से भी युक्त नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धन आदि से युक्त है और उचित अनुष्ठान आदि से भी युक्त है । कोई एक पुरुष धन आदि से युक्त है किन्तु उचित अनुष्ठान आदि से युक्त नहीं है । कोई एक पुरुष धन आदि से युक्त नहीं है किन्तु उचित अनुष्ठान आदि से युक्त है । कोई एक पुरुष धन आदि से युक्त नहीं है और उचित अनुष्ठान आदि से भी युक्त नहीं है । इस प्रकार जैसे घोड़े का कहा है वैसे ही हाथी का भी कह देना चाहिए और उसी तरह दार्ष्टान्तिक में पुरुष का कथन कर देना चाहिए ।

युग्यचर्या, पुष्प और मानव व्यक्तित्व

चत्तारि जुग्गारिया पण्णत्ता तंजहा - पहजाई णाममेगे णो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे णो पहजाई, एगे पहजाई वि उप्पहजाई वि, एगे णो पहजाई णो उप्पहजाई ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पहजाई णाममेगे णो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे णो पहजाई, एगे पहजाई वि उप्पहजाई वि, एगे णो पहजाई णो उप्पहजाई । चत्तारि पुप्फा पण्णत्ता तंजहा - रूवसंपण्णे णाममेगे णो गंधसंपण्णे, गंधसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णे वि गंधसंपण्णे वि, एगे णो रूवसंपण्णे णो गंधसंपण्णे ।एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - रूवसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णे वि सीलसंपण्णे वि, एगे णो रूवसंपण्णे णो सीलसंपण्णे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णे वि जाइसंपण्णे वि, एगे णो कुलसंपण्णे णो जाइसंपण्णे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे जाइसंपण्णे वि बलसंपण्णे वि, एगे णो जाइसंपण्णे णो बलसंपण्णे । एवं जाईए रूवेण चत्तारि आलावगा । एवं जाईए सुएण, जाईए सीलेण, जाईए चरित्तेण चत्तारि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा । एवं कुलेण रूवेण, कुलेण सुएण, कुलेण सीलेण, कुलेण चरित्तेण चत्तारि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णे वि रूवसंपण्णे वि, एगे णो बलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे । एवं बलेण सुएण, बलेण सीलेण, बलेण चरित्तेण, चत्तारि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - रूवसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, सुयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णे वि सुयसंपण्णे वि, एगे णो रूवसंपण्णे णो सुयसंपण्णे । एवं रूवेण सीलेण, रूवेण चरित्तेण चत्तारि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सुयसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, एगे सुयसंपण्णे वि सीलसंपण्णे वि, एगे णो सुयसंपण्णे णो सीलसंपण्णे । एवं सुएण चरित्तेण चत्तारि आलावगा भाणियव्वा । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सीलसंपण्णे णाममेगे णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे,

एगे सीलसंपण्णे वि चरित्तसंपण्णे वि, एगे णो सीलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे । एए एक्कवीसं भंगा भाणियव्वा॥ १६१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **जुग्गारिया (जुग्गायरिय)** - युग्यचर्या-हाथी घोड़े आदि की गति, **पहजाई** - मार्ग गामी, **उप्पहजाई** - उन्मार्गगामी, **पुप्फा** - फूल, **रूवसंपण्णे** - रूपसंपन्न, **गंधसंपण्णे** - गंध संपन्न, **बलसंपण्णे** - बल संपन्न, **सुयसंपण्णे** - श्रुत संपन्न, **सीलेण** - शील के साथ ।

भावार्थ - चार प्रकार की युग्य चर्या यानी हाथी घोड़े आदि की गति कही गई है यथा - कोई एक घोड़ा आदि मार्गगामी होता है किन्तु उन्मार्गगामी नहीं होता है । कोई एक उन्मार्गगामी होता है किन्तु मार्गगामी नहीं होता है । कोई एक मार्ग में भी चलता है और उन्मार्ग में भी चलता है । कोई एक न तो मार्ग में चलता है और न उन्मार्ग में चलता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जिन-आज्ञा रूप मार्ग में चलता है किन्तु उन्मार्ग में नहीं चलता है । कोई एक उत्पथ यानी जिन-आज्ञा से विपरीत मार्ग में चलता है किन्तु जिनाज्ञा रूप मार्ग में नहीं चलता है । कोई एक पुरुष जिनाज्ञा रूप मार्ग में भी चलता है और जिनाज्ञा से विपरीत भी चलता है । कोई एक न तो मार्ग में चलता है और न उन्मार्ग में चलता है, जैसे सिद्ध भगवान् । चार प्रकार के फूल कहे गये हैं यथा - कोई एक फूल रूप सम्पन्न होता है किन्तु सुगन्ध युक्त नहीं होता है, जैसे केशु, आक आदि का फूल । कोई एक फूल गन्धसम्पन्न होता है किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता है, जैसे बकुल का फूल । कोई एक फूल रूपसम्पन्न भी होता है और गन्धसम्पन्न भी होता है, जैसे गुलाब, चमेली आदि के फूल । कोई एक फूल न तो रूपसम्पन्न होता है और न गन्धसम्पन्न होता है जैसे बदरी वृक्ष का फूल । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष रूपसम्पन्न है किन्तु शील आदि गुणों से युक्त नहीं है । कोई एक पुरुष शीलसम्पन्न है किन्तु रूपसम्पन्न नहीं है । कोई एक रूपसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो रूपसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न होता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जातिसम्पन्न होता है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष कुलसम्पन्न होता है किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और जातिसम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो कुलसम्पन्न होता है और न जातिसम्पन्न होता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जातिसम्पन्न होता है किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष बलसम्पन्न होता है किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो जातिसम्पन्न होता है और न बल सम्पन्न होता है । इसी प्रकार जाति का रूप के साथ चार आलापक - भांगे कह देने चाहिएं । इसी प्रकार जाति का श्रुत के साथ, जाति का शील के साथ और जाति का चारित्र के साथ चार चार भांगे कह देने चाहिएं । इसी प्रकार कुल का रूप के साथ, कुल का श्रुत के साथ, कुल का शील के साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और कुल का चारित्र के साथ चार चार आलापक - भांगे कह देने चाहिएं । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष बलसम्पन्न होता है किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष रूपसम्पन्न होता है किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न होता है । इसी प्रकार बल का श्रुत के साथ, बल का शील के साथ और बल का चारित्र के साथ चार चार आलापक - भांगे कह देने चाहिये । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष रूपसम्पन्न होता है किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता है। कोई एक पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो रूपसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न होता है। इसी प्रकार रूप का शील के साथ, रूप का चारित्र के साथ चार चार आलापक - भांगे कह देने चाहिये । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता है। कोई एक पुरुष शीलसम्पन्न होता है किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता है । कोई एक पुरुष श्रुतसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है । कोई एक पुरुष न तो श्रुतसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न होता है। इसी तरह श्रुत का चारित्र के साथ चार आलापक कह देने चाहिए। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष शीलसम्पन्न होता है किन्तु चारित्रसम्पन्न नहीं होता है। कोई एक पुरुष चारित्रसम्पन्न होता है किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता है। कोई एक पुरुष शीलसम्पन्न भी होता है और चारित्रसम्पन्न भी होता है। कोई एक पुरुष न तो शीलसम्पन्न होता है और न चारित्रसम्पन्न होता है। इस प्रकार ये उपरोक्त इक्कीस चौभङ्गियाँ कह देनी चाहिए ।

विवेचन - चार प्रकार के फूल कहे गये हैं -

१. एक फूल सुन्दर परंतु सुगन्धहीन होता है जैसे आकुली, रोहिड़ आदि का फूल ।

२. एक फूल सुगंध युक्त होता है पर सुन्दर नहीं होता जैसे बकुल और मोहनी का फूल ।

३. एक फूल सुगन्ध और रूप दोनों से युक्त होता है । जैसे जातिपुष्प, गुलाब का फूल आदि ।

४. एक फूल गन्ध और रूप दोनों से हीन होता है । जैसे बैर का फूल, धतूरे का फूल ।

(१) फूल की उपमा से चार प्रकार के पुरुष कहे हैं -

१. एक पुरुष रूप सम्पन्न है परन्तु शील सम्पन्न नहीं । जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ।

२. एक पुरुष शील सम्पन्न है परन्तु रूप सम्पन्न नहीं । जैसे हरिकेशी मुनि ।

३. एक पुरुष रूप और शील दोनों से ही सम्पन्न होता है । जैसे भरत चक्रवर्ती ।

४. एक पुरुष रूप और शील दोनों से ही हीन होता है । जैसे - काल सौकरिक कसाई ।

इसी प्रकार जाति का बल के साथ (२) जाति का रूप के साथ (३) जाति का श्रुत के साथ (४) जाति का शील के साथ (५) जाति का चारित्र के साथ (६) चार चार आलापक (चतुर्भंगी)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जानने चाहिये । इसी प्रकार कुल की बल के साथ चतुर्भंगी (७) कुल और रूप की चतुर्भंगी (८) कुल और श्रुत की चतुर्भंगी (९) कुल और शील की चौभंगी (१०) कुल और चारित्र के साथ (११) चतुर्भंगी कहनी चाहिये । चार प्रकार के पुरुष कहे हैं - १. एक पुरुष बल संपन्न है परन्तु रूप संपन्न नहीं है इस प्रकार बल और रूप की चतुर्भंगी (१२) जानना, बल की श्रुत के साथ (१३) चौभंगी, बल की शील के साथ (१४) बल और चारित्र की चौभंगी (१५) कहना । चार प्रकार के पुरुष कहे हैं - एक पुरुष रूप संपन्न है परन्तु श्रुत (ज्ञान) संपन्न नहीं, इस प्रकार रूप और श्रुत की चतुर्भंगी (१६) रूप की शील के साथ चतुर्भंगी (१७) रूप और चारित्र की चौभंगी (१८) । चार प्रकार के पुरुष कहे हैं - १. एक पुरुष श्रुत संपन्न है परन्तु शील संपन्न नहीं इस प्रकार श्रुत और शील की चौभंगी (१९) श्रुत और चारित्र की चौभंगी (२०)। चार प्रकार के पुरुष कहे हैं - एक पुरुष शील संपन्न है परन्तु चारित्र संपन्न नहीं, इस प्रकार शील और चारित्र की चौभंगी समझना (२१)। इस प्रकार कुल इक्कीस चौभंगियाँ कह देनी चाहिये ।

फलोपम आचार्य और साधक

चत्तारि फला पण्णत्ता तंजहा - आमलग महुरे, मुद्दियामहुरे, खीरमहुरे, खंडमहुरे। एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा - आमलगमहुर फलसमाणे जाव खंडमहुरफलसमाणे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आयवेयावच्चकरे णाममेगे णो परवेयावच्चकरे, परवेयावच्चकरे णाममेगे णो आयवेयावच्चकरे, एगे आयवेयावच्चकरे वि परवेयावच्चकरे वि, एगे णो आयवेयावच्चकरे णो परवेयावच्चकरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - करेइ णाममेगे वेयावच्चं णो पडिच्छइ, पडिच्छइ णाममेगे वेयावच्चं णो करेइ, एगे वेयावच्चं करेइ वि पडिच्छइ वि, एगे णो करेइ वेयावच्चं णो पडिच्छइ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अट्ठकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो अट्ठकरे, एगे अट्ठकरे वि माणकरे वि, एगे णो अट्ठकरे णो माणकरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गणट्ठकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणट्ठकरे, एगे गणट्ठकरे वि माणकरे वि, एगे णो गणट्ठकरे णो माणकरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गणसंग्गहकरे णाममगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसंग्गहकरे, एगे गणसंग्गहकरे वि माणकरे वि, एगे णो गणसंग्गहकरे णो माणकरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गणसोभकरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसोभकरे, एगे गणसोभकरे वि माणकरे वि, एगे णो गणसोभकरे णो माणकरे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गणसोहिकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसोहिकरे, एगे गणसोहिकरे वि माणकरे वि, एगे णो गणसोहिकरे णो माणकरे ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - रूवं णाममेगे जहइ, णो धम्मं, धम्मं णाममेगे जहइ णो रूवं, एगे रूवं वि जहइ धम्मं वि जहइ, एगे णो रूवं जहइ णो धम्मं जहइ । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - धम्मं णाममगे जहइ णो गणसंठिइं, गणसंठिइं णाममेगे जहइ णो धम्मं, एगे धम्मं वि जहइ गणसंठिइं वि जहइ, एगे णो धम्मं जहइ णो गणसंठिइं जहइ । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पियधम्मे णाममेगे णो दढधम्मे, दढधम्मे णाममेगे णो पियधम्मे, एगे पियधम्मे वि दढधम्मे वि, एगे णो पियधम्मे णो दढधम्मे । चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा - पव्वायणायरिए णाममेगे णो उवट्ठाणायरिए, उवट्ठाणायरिए णाममेगे णो पव्वायणायरिए, एगे पव्वायणायरिए वि उवट्ठाणायरिए वि, एगे णो पव्वायणायरिए णो उवट्ठाणायरिए धम्मायरिए।

चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा - उद्देसणायरिए णाममेगे णो वायणायरिए, वायणायरिए णाममेगे णो उद्देसणायरिए, एगे उद्देसणायरिए वि वायणायरिए वि, एगे णो उद्देसणायरिए णो वायणायरिए धम्मायरिए । चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता तंजहा - पव्वायणंतेवासी णाममेगे णो उवट्ठावणंतेवासी । उवट्ठावणंतेवासी णाममेगे णो पव्वायणंतेवासी । एगे पव्वायणंतेवासी वि उवट्ठावणंतेवासी वि । एगे णो पव्वायणंतेवासी णो उवट्ठावणंतेवासी । चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता तंजहा - उद्देसणंतेवासी णाममेगे णो वायणंतेवासी, वायणंतेवासी णाममेगे णो उद्देसणंतेवासी, एगे उद्देसणंतेवासी वि वायणंतेवासी वि, एगे णो उद्देसणंतेवासी णो वायणंतेवासी धम्मंतेवासी । चत्तारि णिग्गंथा पण्णत्ता तंजहा - रायणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणायावी असमिए धम्मस्स अणाराहए भवइ, रायणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आयावी समिए धम्मस्स आराहए भवइ, ओमरायणिए समणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणायावी असमिए धम्मस्स अणाराहए भवइ, ओमरायणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आयावी समिए धम्मस्स आराहए भवइ । चत्तारि णिग्गंथीओ पण्णत्ताओ एवं चेव । चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता एवं चेव। एवं चेव चत्तारि समणोवासियाओ पण्णत्ताओ तहेव चत्तारि गमा॥ १७०॥

कठिन शब्दार्थ - आमलगमहुरे - आंवले जैसा मीठा, **मुद्दियामहुरे** - मृद्विका (दाख) जैसा मीठा, **खीरमहुरे**- क्षीर (दूध) जैसा मीठा, **खंडमहुरे** - शक्कर जैसा मीठा, **आयरिया** - आचार्य, **आयवेयावच्चकरे** - अपनी वैयावृत्य करने वाला, **परवेयावच्चकरे** - दूसरों की वैयावच्च करने वाला, **अट्ठकरे** - अर्थकर-धन प्राप्त करने वाला, **माणकरे** - अभिमान करने वाला, **गणट्ठकरे** - गण का हित करने वाला, **गणसंग्गहकरे** - गण के लिये ज्ञानादि का संग्रह करने वाला, **गणसोभकरे** - गण की शोभा करने वाला, **जहइ** - छोड़ देता है, **गणसंठिइं** - गच्छ की मर्यादा को, **पियधम्मे** - प्रियधर्मी, **दढधम्मे** - दृढधर्मी, **पव्वायणायरिए** - प्रव्राजनाचार्य-दीक्षा देने वाले आचार्य, **उवट्ठाणायरिए** - उपस्थापनाचार्य, **उद्देसणायरिए** - उद्देशनाचार्य-अगांदि सूत्र प्रारम्भ कराने वाले, **वायणायरिए** - वाचनाचार्य, **अंतेवासी**-शिष्य, **रायणिए** - रत्नाधिक, **महाकम्मे** - महाकर्म वाला, **महाकिरिए** - महाक्रिया वाला, **आयावी** - आतापी-आतापना लेने वाला, **अणायावी** - अनातापी-आतापना नहीं लेने वाला।

भावार्थ - चार प्रकार के फल कहे गये हैं यथा - एक फल आंवले जैसा मीठा, एक फल दाख जैसा मीठा, एक फल दूध (क्षीर) जैसा मीठा, एक फल शक्कर जैसा मीठा । इसी तरह चार प्रकार के आचार्य कहे गये हैं यथा - आंवले के समान मधुर यावत् शक्कर के समान मधुर । जिस प्रकार आंवला, दाख, खीर और शक्कर ये चारों पदार्थ क्रमशः कुछ मीठे, मीठे, अधिक मीठे और बहुत अधिक मीठे होते हैं उसी प्रकार आचार्य भी क्रमशः अल्प, अधिक, ज्यादा अधिक और बहुत ज्यादा अधिक उपशम आदि गुण रूपी मधुरता से युक्त होते हैं ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष अपनी ही वैयावच्च करता है किन्तु दूसरों की वैयावच्च नहीं करता है जैसे विसम्भोगिक अकेला साधु या आलसी। कोई एक दूसरों की वैयावच्च करता है किन्तु अपनी वैयावच्च नहीं करता है, जैसे स्वार्थ बुद्धिरहित कोई साधु । कोई एक अपनी वैयावच्च भी करता है और दूसरों की वैयावच्च भी करता है । जैसे स्थविरकल्पी साधु । कोई एक न तो अपनी वैयावच्च करता है और न दूसरों की वैयावच्च करता है । जैसे संथारा किया हुआ मुनि या कोई अभिग्रहधारी मुनि । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक दूसरों की वैयावच्च करता है किन्तु दूसरों से अपनी वैयावच्च नहीं करवाता है, जैसे कोई स्वार्थबुद्धि रहित पुरुष । कोई एक दूसरों से वैयावच्च करवाता है किन्तु दूसरों की वैयावच्च नहीं करता है, जैसे आचार्य तथा बीमार साधु आदि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक दूसरों की वैयावच्च करता भी है और दूसरों से वैयावच्च करवाता भी है, जैसे स्थविरकल्पी साधु । कोई एक दूसरों की वैयावच्च नहीं करता है और न दूसरों से वैयावच्च करवाता है, जैसे जिनकल्पी साधु ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष अर्थकर यानी अपने लिए धनादि प्राप्त करने वाला होता है किन्तु अभिमान नहीं करता है । कोई एक पुरुष अभिमान करता है किन्तु धनादि प्राप्त नहीं करता है । कोई एक पुरुष धनादि भी प्राप्त करता है और अभिमान भी करता है । कोई एक पुरुष न तो धनादि प्राप्त करता है और न अभिमान करता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष (साधु) कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु गण यानी साधु समुदाय का हित करता है किन्तु अभिमान नही करता है । कोई एक साधु अभिमान करता है किन्तु गण का हित नहीं करता है । कोई एक साधु गण का हित भी करता है और अभिमान भी करता है । कोई एक साधु न तो गण का हित करता है और न अभिमान करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु साधुओं के गण के लिए आहार और ज्ञानादि का संग्रह करता है किन्तु इसका अभिमान नहीं करता है । कोई एक साधु अभिमान करता है किन्तु गण के लिए उपधि आदि का संग्रह नहीं करता है। कोई एक साधु गण के लिए ज्ञानादि का संग्रह भी करता है और अभिमान भी करता है । कोई एक साधु न तो गण के लिए उपधि आदि का संग्रह करता है और न अभिमान करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु गण की शोभा करने वाला होता है किन्तु अभिमान नहीं करता है। कोई एक साधु अभिमान करता है किन्तु गण की शोभा करने वाला नहीं होता है । कोई एक साधु गण की शोभा करने वाला भी होता है और अभिमान भी करता है । कोई एक साधु न तो गण की शोभा करने वाला होता है और न अभिमान करता है।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु गण की शुद्धि करने वाला होता है किन्तु अभिमान नहीं करता है । कोई एक साधु अभिमान करता है किन्तु गण की शुद्धि करने वाला नहीं होता है । कोई एक साधु गण की शुद्धि करने वाला भी होता है और अभिमान भी करता है । कोई एक साधु न तो गण की शुद्धि करने वाला होता है और न अभिमान करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु रूप को यानी साधुवेष को छोड़ देता है किन्तु धर्म को नहीं छोड़ता है । कोई एक साधु धर्म को छोड़ देता है किन्तु साधुवेष को नहीं छोड़ता है । कोई एक साधु साधुवेष को भी छोड़ देता है और धर्म को भी छोड़ देता है । कोई एक साधु न तो रूप-साधुवेश को छोड़ता है और न धर्म को छोड़ता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु धर्म को छोड़ देता है किन्तु अपने गच्छ की मर्यादा को नहीं छोड़ता है । कोई एक साधु अपने गच्छ की मर्यादा को छोड़ देता है किन्तु धर्म को नहीं छोड़ता है । कोई एक साधु धर्म को भी छोड़ देता है और अपने गच्छ की

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

मर्यादा को भी छोड़ देता है । कोई एक साधु न तो धर्म को छोड़ता है और न अपने गच्छ की मर्यादा को छोड़ता है ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष प्रियधर्मी होता है किन्तु दृढधर्मी नहीं होता है । कोई एक पुरुष दृढधर्मी होता है किन्तु प्रियधर्मी नहीं होता है । कोई एक पुरुष प्रियधर्मी भी होता है और दृढधर्मी भी होता है । कोई एक पुरुष न तो प्रियधर्मी होता है और न दृढधर्मी होता है ।

चार प्रकार के आचार्य कहे गये हैं यथा - कोई प्रव्राजनाचार्य यानी दीक्षा देने वाले आचार्य हैं किन्तु उपस्थापनाचार्य यानी बड़ी दीक्षा देने वाले नहीं हैं । कोई एक उपस्थापनाचार्य हैं किन्तु प्रव्राजनाचार्य नहीं हैं । कोई एक प्रव्राजनाचार्य भी हैं और उपस्थापनाचार्य भी हैं । कोई एक न तो प्रव्राजनाचार्य हैं और न उपस्थापनाचार्य हैं किन्तु प्रतिबोध देने वाले धर्माचार्य हैं । चार प्रकार के आचार्य कहे गये हैं यथा - कोई एक उद्देशनाचार्य यानी अङ्गादि सूत्र प्रारम्भ कराने वाले हैं किन्तु वाचनाचार्य यानी सूत्र और अर्थ पढाने वाले नहीं हैं । कोई एक वाचनाचार्य हैं किन्तु उद्देशनाचार्य नहीं हैं । कोई एक उद्देशनाचार्य भी हैं और वाचनाचार्य भी हैं । कोई एक न तो उद्देशनाचार्य हैं और न वाचनाचार्य हैं किन्तु धर्माचार्य है । चार प्रकार के अन्तेवासी यानी शिष्य कहे गये हैं यथा - कोई एक प्रव्राजनान्तेवासी हैं यानी ऐसा शिष्य है जिसको सिर्फ दीक्षा दी गई हैं किन्तु उपस्थापना अन्तेवासी नहीं हैं यानी ऐसा शिष्य जिसमें महाव्रतों का आरोपण करके बड़ी दीक्षा नहीं दी गई हैं । कोई एक उपस्थापना अंतेवासी है किन्तु प्रव्राजना अंतेवासी नहीं हैं । कोई एक प्रव्राजना अन्तेवासी भी हैं और उपस्थापना अन्तेवासी भी है । कोई एक न तो प्रव्राजना अन्तेवासी हैं और न उपस्थापना अन्तेवासी हैं किन्तु जिसको धर्म का बोध दिया गया है ऐसा धर्मान्तेवासी है। चार प्रकार के अन्तेवासी कहे गये हैं यथा - कोई एक उद्देशना अन्तेवासी है यानी ऐसा शिष्य है जिसको अंगादि सूत्र प्रारंभ करवाये गये हैं। किन्तु वाचना अन्तेवासी नहीं है। कोई एक वाचना अन्तेवासी है किन्तु उद्देशना अन्तेवासी नहीं है। कोई एक उद्देशना अन्तेवासी भी है और वाचना अन्तेवासी भी है। कोई एक न तो उद्देशना अन्तेवासी है और न वाचना अन्तेवासी है किन्तु धर्मान्तेवासी है यानी जिसको धर्म का बोध दिया गया है ऐसा शिष्य।

चार प्रकार के निर्ग्रन्थ कहे गये हैं यथा - कोई एक रत्नाधिक यानी दीक्षा पर्याय में बड़ा श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा यानी लम्बी स्थिति के कर्म बांधने वाला प्रमाद आदि महाक्रिया करने वाला, अनातापी यानी आतापना आदि न लेने वाला और समिति आदि से रहित होता है वह धर्म का आराधक नहीं होता है । जो रत्नाधिक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मों वाला, अल्पक्रिया वाला, आतापना लेने वाला और समिति आदि से युक्त होता है वह धर्म का आराधक होता है । कोई एक अवमरात्निक यानी दीक्षापर्याय में छोटा श्रमण निर्ग्रन्थ महाकर्मा, महाक्रिया वाला, अनातापी यानी आतापना न लेने वाला और समिति आदि से रहित होता है वह धर्म का आराधक नहीं होता है । अवमरात्निक यानी कोई दीक्षापर्याय में छोटा श्रमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्ग्रन्थ अल्पकर्मों वाला, अल्पक्रिया वाला, आतापना लेने वाला और समिति आदि से युक्त होता है वह धर्म का आराधक होता है। जिस तरह चार प्रकार के साधु कहे गये हैं, उसी तरह साध्वियाँ भी चार प्रकार की कही गई हैं। इसी तरह श्रमणोपासक यानी श्रावक भी चार प्रकार के कहे गये हैं। इसी तरह श्रमणोपासिका यानी श्राविका भी चार प्रकार की कही गई हैं जिस प्रकार साधु के चार भांगे कहे गये हैं वैसे ही साध्वी, श्रावक और श्राविका इनके प्रत्येक के चार चार आलापक यानी भांगे कह देने चाहिए।

विवेचन - प्रश्न - गणार्थकर किसे कहते हैं ?

उत्तर - गण - साधु समुदाय के अर्थ-कार्यों को करने वाला गणार्थकर कहलाता है । गणार्थकर, आहार, उपधि, शय्या आदि से गच्छ की सार संभाल करता है ।

प्रश्न - गणसंग्रहकर किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो गण-गच्छ के लिये संग्रह करता है उसे गणसंग्रहकर कहते हैं । गच्छ के लिए संग्रह द्रव्य और भाव से दो प्रकार का कहा गया है । उसमें द्रव्य से आहार, उपधि और शय्या तथा भाव से ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप संग्रह जो करता है वह गणसंग्रहकर कहलाता है ।

प्रश्न - गणशोभाकर किसे कहते हैं ?

उत्तर - गच्छ को निर्दोष साधु की समाचारी में प्रवर्त्ताने रूप अथवा वादी, धर्मकथी, नैमित्तिक विद्या और सिद्ध (अंजन, चूर्ण आदि प्रयोग से सिद्ध) आदि से गच्छ की शोभा करने के स्वभाव वाले को गणशोभाकर कहते हैं ।

प्रश्न - गणशोधिकर किसे कहते हैं ?

उत्तर - गण को यथायोग्य प्रायश्चित्त आदि देने से जो शुद्ध करता है वह गणशोधिकर कहलाता है ।

१. रूप - साधु के वेश को कारणवश छोड़ता है परन्तु चारित्र लक्षण धर्म को जो नहीं छोड़ता । जैसे बोटिक मत में रहा हुआ मुनि । २. एक धर्म को छोड़ता है पर वेश को नहीं छोड़ता जैसे निह्नव । ३. जो रूप और धर्म दोनों को छोड़ता है जैसे दीक्षा को छोड़ने वाला और ४. जो रूप और धर्म दोनों को नहीं छोड़ता । जैसे सुसाधु ।

धर्म में प्रेम करके और सुखपूर्वक धर्म को स्वीकार करने से जिसे धर्म प्रिय लगता है वह प्रियधर्मी है । संकट आदि आने पर भी जो धर्म में दृढ़ रहता है वह दृढ़धर्मी है । प्रियधर्मी और दृढ़धर्मी के चार आलापक (भंग) कहे हैं - १. प्रियधर्मी है किंतु दृढ़धर्मी नहीं - दस प्रकार वैयावृत्य में से किसी एक भेद में प्रियधर्मीपन होने से उसमें उद्यम करता है परंतु दृढ़धर्मी न होने से धैर्य और वीर्यबल से कृश-शिथिल होकर पूर्ण रूप से उस धर्म का पालन नहीं कर सकता, यह प्रथम भंग है । २. प्रियधर्मी नहीं किंतु दृढ़धर्मी है - प्रियधर्मी नहीं होने से महान् कष्ट से ग्रहण किये हुए धर्म का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बराबर पालने करने से वह दृढ़धर्मी है यह दूसरा भंग है। ३. प्रियधर्मी है और दृढ़धर्मी है दोनों प्रकार से कल्याण रूप है ।४. दोनों प्रकार से प्रतिकूल है अर्थात् प्रियधर्मी भी नहीं है और दृढ़धर्मी भी नहीं है ।

प्रश्न – अंतेवासी किसे कहते हैं ?

उत्तर – अंते – गुरु के समीप रहने का जिसका स्वभाव है वह अंतेवासी (शिष्य) कहलाता है ।

प्रश्न – निर्ग्रंथ किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हैं वे निर्ग्रंथ कहलाते हैं ।

प्रश्न – रात्निक किसे कहते हैं ?

उत्तर – रत्नत्रयी-ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नों में विचरण करने वाले रात्निक कहलाते हैं। दीक्षा पर्याय में ज्येष्ठ श्रमण निर्ग्रंथ रात्निक (रत्नाधिक) कहलाते हैं ।

चार प्रकार के श्रमणोपासक, स्थिति

चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता तंजहा – अम्मापिइसमाणे, भाइसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे । चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता तंजहा – अद्दागसमाणे, पडागसमाणे, खाणुसमाणे, खरकंटयसमाणे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स समणोवासगाणं सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता॥ १७१ ॥

कठिन शब्दार्थ – समणोवासगा – श्रमणोपासक, **अम्मापिइसमाणे** – अम्मा पिया-मातापिता के समान, **भाइसमाणे** – भाई के समान, **मित्तसमाणे** – मित्र के समान, **सवत्तिसमाणे** – सौत के समान, **अद्दागसमाणे** – आदर्श समान, **पडाग समाणे** – पताका समान, **खाणुसमाणे** – स्थाणु (ठूंठ) के समान, **खरकंटयसमाणे** – खर कण्टक समान, **अरुणाभे विमाणे** – अरुणाभ विमान में ।

भावार्थ – चार प्रकार के श्रमणोपासक – श्रावक कहे गये हैं यथा – माता पिता के समान यानी जो साधुओं का सब प्रकार का हित करने वाले हैं वे माता पिता के समान हैं । तत्त्व विचारणा आदि में कठोर वचन से कभी साधुओं से अप्रीति होने पर भी मन में सदा उनका हित चाहते हैं वे भाई के समान हैं । साधुओं के दोषों को ढकने वाले और उनके गुणों का प्रकाश करने वाले श्रावक मित्र के समान हैं । साधुओं में सदा दोष देखने वाले और उनका अपकार करने वाले श्रावक सौत के समान है । चार प्रकार के श्रमणोपासक-श्रावक कहे गये हैं यथा – आदर्श समान यानी जैसे काच में पदार्थों का वैसा ही प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी प्रकार साधु मुनिराज द्वारा कहे गये सूत्र सिद्धान्त के भावों को जो यथार्थ रूप से ग्रहण करता है वह आदर्श यानी दर्पण के समान श्रावक है। पताकासमान यानी ध्वजा जिस दिशा की वायु होती है उसी दिशा में फहराने लगती है उसी प्रकार जिस श्रावक का अस्थिर मन विचित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशना सुन कर बदलता रहता है अर्थात् जैसी देशना सुनता है उसी की ओर झुक जाता है वह पताका समान श्रावक है। जो श्रावक गीतार्थ साधु का उपदेश सुन कर भी अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ता है वह स्थाणु ठूंठ के समान है । जैसे बबूल आदि का कांटा उसमें फंसे हुए वस्त्र को फाड़ देता है और साथ ही छुड़ाने वाले पुरुष के हाथों में चुभ कर उसे दुःखित करता है, उसी प्रकार जो श्रावक समझाया जाने पर भी अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ता है बल्कि समझाने वाले को कठोर वचन रूपी कांटों से कष्ट पहुँचाता है वह खरकण्टक समान श्रावक है ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आनन्द, कामदेव आदि दस श्रमणोपासकों की सौधर्म नामक प्रथम देवलोक के अरुणाभ आदि विमानों में चार-चार पल्योपम की स्थिति कही गई है ।

विवेचन - चार प्रकार के श्रावक कहे हैं -

१. माता पिता के समान - बिना अपवाद के साधुओं के प्रति एकान्त रूप से वत्सल भाव रखने वाले श्रावक माता-पिता के समान हैं। जैसे माता-पिता अपनी सन्तान का एकान्त हित चाहते हैं यदि कोई अयोग्य कार्य करें तो उसे रोक देते हैं और उसकी हित कार्य में प्रवृत्ति कराते हैं उसी प्रकार जो श्रावक श्राविका साधु-साध्वी के महाव्रतों का निर्मलता पूर्वक पलवाने में सहायक होते हैं। यदि साधु-साध्वी कोई विपरीत कार्य करें तो वे उसे रोक देते हैं और व्रत निर्मल रखने में सहायक बनते हैं। इसके लिये कुछ कठोर बर्ताव भी करना पड़े तो करते हैं परन्तु मन में किसी प्रकार का द्वेष भाव नहीं रखते हैं। इसी प्रकार संयम में उपकारक श्रावक-श्राविका माता-पिता के समान कहलाते हैं।

२. भाई के समान - तत्त्व विचारणा आदि में कठोर वचन से कभी साधुओं से अप्रीति होने पर भी शेष प्रयोजनों में अतिशय वत्सलता रखने वाले श्रावक भाई के समान हैं ।

३. मित्र के समान - उपचार सहित वचन आदि द्वारा साधुओं से जिनकी प्रीति का नाश हो जाता है और प्रीति का नाश हो जाने पर भी आपत्ति में उपेक्षा नहीं करने वाले श्रावक मित्र के समान हैं । मित्र की तरह दोषों को ढकने वाले और गुणों का प्रकाश करने वाले श्रावक मित्र के समान हैं ।

४. सौत के समान - साधुओं में सदा दोष देखने वाले और उनका अपकार करने वाले श्रावक सौत के समान हैं ।

श्रावक के अन्य चार प्रकार -

१. आदर्श समान श्रावक - जैसे दर्पण समीपस्थ पदार्थों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है । उसी प्रकार जो श्रावक साधुओं से उपदिष्ट उत्सर्ग, अपवाद आदि आगम सम्बन्धी भावों को यथार्थ रूप से ग्रहण करता है । वह आदर्श (दर्पण) समान श्रावक है ।

२. पताका समान श्रावक - जैसे अस्थिर पताका जिस दिशा की वायु होती है । उसी दिशा में फहराने लगती है । उसी प्रकार जिस श्रावक का अस्थिर ज्ञान विचित्र देशना रूप वायु के प्रभाव से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशना के अनुसार बदलता रहता है । अर्थात् जैसी देशना सुनता है । उसी की ओर झुक जाता है । वह पताका समान श्रावक है ।

३. स्थाणु (ठूंठ) समान श्रावक - जो श्रावक गीतार्थ की देशना सुन कर भी अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ता वह श्रावक अनमन शील (अपरिवर्तन शील) ज्ञान सहित होने से स्थाणु के समान है ।

४. खर कण्टक समान श्रावक - जो श्रावक समझाये जाने पर भी अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ता, बल्कि समझाने वाले को कठोर वचन रूपी कांटों से कष्ट पहुँचाता है । जैसे बबूल आदि का कांटा उसमें फंसे हुए वस्त्र को फाड़ता है और साथ ही छुड़ाने वाले पुरुष के हाथों में चुभकर उसे दु:खित करता है ।

देव अनागमन-आगमन के कारण

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तंजहा - अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाइ णो परियाणाइ णो अट्ठं बंधइ णो णियाणं पगरेइ णो ठिइपगप्पं पगरेइ । अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे तस्स णं माणुस्सए पेमे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवइ । अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ इण्हिं गच्छं मुहुत्तेणं गच्छं तेणं कालेणं अप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति । अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ । उड्ढं वि य णं माणुस्सए गंधे जाव चत्तारि पंचजोयणसयाइं हव्वमागच्छइ । इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तंजहा - अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोएसु अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ-अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा पवत्ती इ वा थेरे इ वा गणी इ वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणहरे इ वा गणावच्छेए इ वा जेसिं पभावेणं मए इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुई लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, तं गच्छामि णं ते भगवए वंदामि जाव पज्जुवासामि । अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ - अत्थि खलु माणुस्सए भवे णाणी इ वा तवस्सी इ वा अइदुक्कर दुक्करकारए, तं गच्छामि णं ते भगवए वंदामि जाव पज्जुवासामि । अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माया इ वा, पिया इ वा, भाया इ वा, भज्जा इ वा, भइणी इ वा, पुत्ता इ वा, धूया इ वा, सुण्हा इ वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि पासंतु ता मे इममेयारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं । अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मित्ते इ वा, सही इ वा, सुही इ वा, सहाए इ वा, संगए इ वा, तेसिं च णं अम्हे अण्णमण्णस्स संगारे पडिसुए भवइ, जो मे पुव्विं चयइ से संबोहेयव्वे । इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए॥ १७२ ॥

कठिन शब्दार्थ - अहुणोववण्णे - अधुना (तत्काल) उत्पन्न हुआ, **हव्वं** - शीघ्र, **आगच्छित्तए**- आने के लिए, **गिद्धे** - गृद्ध, **गढिए** - आसक्त, **अज्झोववण्णे** - तल्लीन बना हुआ, **आढाइ** - आदर करता है, **परियाणाइ** - अच्छा जानता है, **ठिइपगप्पं** - स्थिति प्रकल्प, **वोच्छिण्णे** - नष्ट हो जाता है, **संकंते** - संक्रांति (लग गया), **पवत्तीए** - प्रवर्तक, **गणावच्छेए** - गणावच्छेदक, **अभिसमण्णागया** - सन्मुख उपस्थित हुई है, **अइदुक्करदुक्करकारए** - कठिन से कठिन क्रिया करने वाले, **सही** - सखा, **सुही**- सुहृत्-हितैषी, **सहाए** - सहायक, **संगए** - संगत-परिचित, **संगारे** - संकेत, **संबोहेयव्वे** - संबोधित करना चाहिए ।

भावार्थ - देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव मनुष्य लोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है किन्तु चार कारणों से शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता है । यथा - १. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन बन जाता है । इसलिए वह मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का आदर नहीं करता है, इन्हें सारभूत नहीं जानता है । २. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन बन जाता है । इसीलिए उसका मनुष्य सम्बन्धी प्रेम नष्ट हो जाता है और दिव्य संक्रान्ति हो जाती है अर्थात् देवसम्बन्धी प्रेम उत्पन्न हो जाता है । ३. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बन जाता है, उसको इस प्रकार विचार उत्पन्न होता है कि - मैं मनुष्य लोक में अभी जाऊँ, एक मुहूर्त में जाऊँ, ऐसा सोचते हुए विलम्ब कर देता है इतने समय में अल्प आयुष्य वाले मनुष्य यानी उसके पूर्वभव के स्वजन, परिवार आदि के मनुष्य कालधर्म को प्राप्त हो जाते हैं । ४. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन बन जाता है । इसलिए उसको मनुष्य लोक की गन्ध प्रतिकूल और अमनोज्ञ मालूम होती है । क्योंकि मनुष्यलोक की गन्ध पहले और दूसरे आरे में चार सौ योजन और शेष आरों में पांच सौ योजन तक इस भूमि से ऊपर जाती है । देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव मनुष्यलोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है किन्तु उपरोक्त चार कारणों से शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता है ।

देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ देव मनुष्यलोक में शीघ्र आने की इच्छा करता है तो इन चार कारणों से शीघ्र आने में समर्थ होता है । यथा - १. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ जो देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित नहीं होता है यावत् उनमें तल्लीन नहीं होता है उसको इस प्रकार विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्य भव में मेरे आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर, गणावच्छेदक हैं । जिनके प्रभाव से मुझे इस प्रकार की यह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति मिली है, प्राप्त हुई है, मेरे सन्मुख उपस्थित हुई है । इसलिये मैं मनुष्यलोक में जाऊँ और उन पूज्य आचार्य आदि को वन्दना नमस्कार करूँ यावत् उनकी उपासना करूँ । २. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ जो देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित नहीं होता है यावत् उनमें तल्लीन नहीं बनता है उसको इस प्रकार विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्य लोक में ज्ञानी और कठिन से कठिन क्रिया करने वाले तपस्वी आदि हैं । इसलिए मैं मनुष्यलोक में जाऊँ उन पूज्य ज्ञानी तपस्वियों को वन्दना नमस्कार करूँ यावत् उनकी सेवा भक्ति करूँ। ३. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ जो देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित नहीं होता है यावत् उनमें तल्लीन नहीं होता है। उसको इस प्रकार विचार होता है कि 'मनुष्यलोक में मेरे माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू आदि हैं, इसलिए मैं मनुष्यलोक में जाऊँ और उनके सामने प्रकट होऊँ । वे मुझे मिली हुई, प्राप्त हुई, मुझे भोग्य अवस्था में मिली हुई मेरी ऐसी उत्कृष्ट इस दिव्य देवऋद्धि को, दिव्य देवद्युति और शक्ति को देखें । ४. देवलोकों में तत्काल उत्पन्न हुआ जो देव दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित नहीं होता है यावत् तल्लीन नहीं होता है, उसको इस प्रकार विचार होता है कि मनुष्यलोक में मेरा मित्र सखा यानी बचपन का दोस्त, सुहृत् यानी हितैषी सज्जन, सहायक अथवा संगत यानी परिचित व्यक्ति हैं, उनमें और मेरे में परस्पर संकेत यानी यह प्रतिज्ञा स्वीकृत हुई थी कि अपने में से जो पहले देवलोक से चव जाय उसको सम्बोधित करे अर्थात् उसको धर्म का प्रतिबोध देवें । प्रतिज्ञा के अनुसार वह देव मनुष्य लोक में आने में समर्थ होता है । इन उपरोक्त चार कारणों से देव मनुष्य लोक में आने में समर्थ होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन-तत्काल उत्पन्न देवता चार कारणों से इच्छा करने पर भी मनुष्य लोक में नहीं आ सकता-

१. तत्काल उत्पन्न देवता दिव्य काम भोगों में अत्यधिक मोहित और गृद्ध हो जाता है । इसलिए मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों से उसका मोह छूट जाता है और वह उनकी चाह नहीं करता ।

२. वह देवता दिव्य काम भोगों में इतना मोहित और गृद्ध हो जाता है कि उसका मनुष्य सम्बन्धी प्रेम देवता सम्बन्धी प्रेम में परिणत हो जाता है ।

३. वह तत्काल उत्पन्न देवता "मैं मनुष्य लोक में जाऊँ, अभी जाऊँ" ऐसा सोचते हुए विलम्ब कर देता है । क्योंकि वह देव कार्यों के पराधीन हो जाता है और मनुष्य सम्बन्धी कार्यों से स्वतन्त्र हो जाता है । इसी बीच उसके पूर्व भव के अल्प आयु वाले स्वजन, परिवार आदि के मनुष्य अपनी आयु पूरी कर देते हैं ।

४. देवता को मनुष्य लोक की गन्ध प्रतिकूल और अत्यन्त अमनोज्ञ मालूम होती है । वह गन्ध इस भूमि से, पहले दूसरे आरे में चार सौ योजन और शेष आरों में पांच सौ योजन तक ऊपर जाती है ।

इससे विपरीत तत्काल उत्पन्न देवता मनुष्य लोक में आने की इच्छा करता हुआ चार बोलों से आने में समर्थ होता है ।

१. वह देवता यह सोचता है कि मनुष्य भव में मेरे आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणी, गणधर एवं गणावच्छेदक हैं । जिनके प्रभाव से यह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देव द्युति और दिव्य देव शक्ति मुझे इस भव में प्राप्त हुई है । इसलिए मैं मनुष्य लोक में जाऊँ और उन पूज्य आचार्यादि को वन्दना नमस्कार करूं, सत्कार सन्मान दूं एवं कल्याण तथा मंगल रूप यावत् उनकी उपासना करूं ।

२. नवीन उत्पन्न देवता यह सोचता है कि सिंह की गुफा में कायोत्सर्ग करना दुष्कर कार्य है । किन्तु पूर्व उपभुक्त, अनुरक्त तथा प्रार्थना करनेवाली वेश्या के मन्दिर में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना उससे भी अति दुष्कर कार्य है । स्थूलभद्र मुनि की तरह ऐसी कठिन से कठिन क्रिया करने वाले ज्ञानी, तपस्वी, मनुष्य-लोक में दिखाई पड़ते हैं । इसलिये मैं मनुष्य लोक में जाऊं और उन पूज्य मुनीश्वर को वन्दना नमस्कार करूं यावत् उनकी उपासना करूं ।

३. वह देवता यह सोचता है कि मनुष्य भव में मेरे माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू आदि हैं । मैं वहां जाऊं और उनके सन्मुख प्रकट होऊं । वे मेरी इस दिव्य देव सम्बन्धी ऋद्धि, द्युति और शक्ति को देखें ।

४. दो मित्रों या सम्बन्धियों ने मरने से पहले परस्पर प्रतिज्ञा की कि, हममें से जो देवलोक से पहले चवेगा । दूसरा उसकी सहायता करेगा और धर्म का प्रतिबोध देगा इस प्रकार की प्रतिज्ञा में बद्ध होकर स्वर्ग से चवकर मनुष्य भव में उत्पन्न हुए अपने साथी की सहायता करने के लिये उसे धर्म का बोध देने के लिये वह देवता मनुष्य लोक में आने में समर्थ होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोकान्धकार, लोक उद्योत के कारण

चउहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया तंजहा - अरिहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरिहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे, जायतेए वोच्छिज्जमाणे। चउहिं ठाणेहिं लोउज्जए सिया तंजहा - अरिहंतेहिं जायमाणेहिं, अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं अरिहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरिहंताणं परिणिव्वाण महिमासु । एवं देवंधयारे देव उज्जोए, देवसण्णिवाए देवउक्कलियाए, देवकहकहए ।

चउहिं ठाणेहिं देविंदा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छंति एवं जहा तिठाणे जाव लोगंतिया देवा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छेज्जा तंजहा - अरिहंतेहिं जायमाणेहिं जाव अरिहंताणं परिणिव्वाण महिमासु॥ १७३ ॥

कठिन शब्दार्थ - लोगंधयारे - लोक में अन्धकार, **वोच्छिज्जमाणेहिं** - व्यवच्छेद (विरह) पडने पर, **लोउज्जोए** - लोक में उद्योत, **जायमाणेहिं** - जन्म होने पर, **पव्वयमाणेहिं** - प्रव्रजित (दीक्षा) होने पर, **णाणुप्पायमहिमासु** - केवलज्ञान महोत्सव के समय, **परिणिव्वाणमहिमासु** - निर्वाण महोत्सव के समय, **देवसण्णिवाए** - देव सन्निपात, **देव उक्कलियाए** - देव उत्कलिका।

भावार्थ - चार कारणों से लोक में कुछ समय के लिए अन्धकार हो जाता है । यथा - अरिहन्त भगवान् का व्यवच्छेद यानी विरह पड़ने पर, अरिहंत प्रज्ञप्त यानी अरिहंत भगवान् के फरमाये हुए धर्म का व्यवच्छेद होने पर, पूर्वगत यानी पूर्वधारी का व्यवच्छेद होने पर और अग्नि का विच्छेद होने पर, इन चार बातों के होने पर लोक में कुछ समय के लिये अन्धकार हो जाता है। चार कारणों से लोक में कुछ समय के लिये उद्योत यानी प्रकाश हो जाता है । यथा - तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होने पर, तीर्थङ्कर भगवान् के दीक्षा लेने पर, तीर्थङ्कर भगवान् को केवल उत्पन्न होने पर देवों द्वारा किये गये केवलज्ञान महोत्सव के समय, तीर्थङ्कर भगवान् के मोक्ष जाने के समय देवों द्वारा किये जाने वाले निर्वाण महोत्सव के समय, इन चार बातों के होने पर लोक में कुछ समय के लिए प्रकाश हो जाता है । इस प्रकार देव अन्धकार और देव प्रकाश के चार चार कारण बतलाये हैं । इसी प्रकार देवसन्निपात यानी देवों का एक जगह इकट्ठा होना, देवउत्कलिका, देव कहकह यानी देवों की हर्ष ध्वनि के भी उपरोक्त चार कारण हैं । चार कारणों से देवेन्द्र मनुष्य लोक में आते हैं । इस तरह जैसा तीसरे स्थानक के प्रथम उद्देशक में कहा है वैसा ही सारा अधिकार यहाँ भी कह देना चाहिए यावत् लोकान्तिक देव चार कारणों से मनुष्यलोक में आते हैं । यथा - तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय यावत् तीर्थङ्कर भगवान् के मोक्ष जाने के समय देवों द्वारा किये जाने वाले निर्वाण महोत्सव के समय देव मनुष्यलोक में आते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में लोकान्धकार और लोक-प्रकाश के चार-चार कारण बताये हैं । अग्नि का विच्छेद होने से द्रव्य से अन्धकार होता है शेष तीन कारण भावान्धकार के हैं। इसी तरह सूर्य, चन्द्र दीपक आदि के प्रकाश को द्रव्य उद्योत कहा जाता है और ज्ञान, प्रमोद, इष्ट प्राप्ति आदि भाव प्रकाश (उद्योत) के अन्तर्गत आते हैं। यहां शास्त्रकार को भाव उद्योत ही अभीष्ट है ।

चार कारणों से लोक में अंधकार हो जाता है - १. अरिहंतों के विरह होने से २. अरिहंत भाषित धर्म का व्यवच्छेद हो जाने से ३. पूर्वों का ज्ञान नष्ट हो जाने से और ४. बादर अग्नि का नाश हो जाने से।

चार कारणों से लोक में उद्योत (प्रकाश) होता है - १. अरिहंतों के जन्म होने से २. अरिहंतों की दीक्षा के अवसर पर ३. अरिहंतों के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर और ४. अरिहंतों का निर्वाण होने पर । इसी प्रकार देव अन्धकार, देव प्रकाश आदि के भी चार चार कारण बतलाये हैं । देवों के समवाय (मिलाप) को देवसन्निपात एवं देवों की लहेरी (आनंदजन्य कल्लोल) को देवोत्कलिका कहते हैं ।

चतुर्विध दुःख शय्या

चत्तारि दुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ तंजहा - तत्थ खलु इमा पढमा दुहसेज्जा तंजहा- से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिए, कंखिए, विइगिच्छिए, भेयसमावण्णे, कलुससमावण्णे, णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहइ, णो पत्तियइ, णो रोएइ, णिग्गंथं पावयणं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे मणं उच्चावयं णियच्छइ विणिघायमावज्जइ पढमा दुहसेज्जा । अहावरा दोच्चा दुहसेज्जा से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ जाव पव्वइए सएणं लाभेणं णो तुस्सइ परस्स लाभमासाएइ, पीहेइ, पत्थेइ, अभिलसइ, परस्स लाभमासाएमाणे जाव अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छइ विणिघायमावज्जइ दोच्चा दुहसेज्जा । अहावरा तच्चा दुहसेज्जा से णं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए दिव्वे माणुस्सए कामभोए आसाएइ जाव अभिलसइ दिव्वमाणुस्सए कामभोए आसाएमाणे जाव अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छइ विणिघायमावज्जइ तच्चा दुहसेज्जा । अहावरा चउत्था दुहसेज्जा से णं मुंडे जाव पव्वइए तस्स णं एवं भवइ जया णं अहं अगारवासमावसामि तया णं अहं संवाहणपरिमद्दण गायब्भंगगायुच्छोलणाइं लभामि जप्पभिइं च णं अहं मुंडे जाव पव्वइए तप्पभिइं च णं अहं संवाहणं जाव गायुच्छोलणाइं णो लभामि, से णं संवाहणं जाव गायुच्छोलणाइं आसाएइ जाव अभिलसइ, से णं संवाहणं जाव गायुच्छोलणाइं आसाएमाणे जाव अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छइ विणिघायमावज्जइ चउत्था दुहसेज्जा॥ १७४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **दुहसेज्जा** - दुःख शय्या, **संकिए** - शंका करे, **कंखिए** - कांक्षा करे, **विइगिच्छिए** - विचिकित्सा करे, **भेयसमावण्णे** - भेद को प्राप्त, **कलुससमावण्णे** - कलुषता को प्राप्त, **विणिघायमावज्जइ** - धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, **उच्चावयं** - ऊंचा नीचा, **पीहेइ** - स्पृहा करता है, **पत्थेइ**- प्रार्थना (याचना) करता है, **अभिलसइ** - अभिलाषा करता है, **संवाहण** - मालिश, **परिमद्दण** - पीठी, **गायब्भंग** - गात्राभ्यङ्ग-तेल मालिश, **गायुच्छोलणाइं** - गात्रोत्क्षालन-स्नान आदि।

भावार्थ - चार प्रकार की दुःखशय्या कही गई हैं । यथा - उनमें पहली दुःखशय्या यह है । यथा - कोई पुरुष मुण्डित होकर गृहस्थवास से निकल कर अनगार धर्म में प्रव्रजित यानी दीक्षा लेकर निर्ग्रन्थ प्रवचनों में शङ्का करे । कांक्षा यानी अन्यमत की वाञ्छा करे, विचिकित्सा यानी धर्मक्रिया के फल में सन्देह करे अथवा साधु साध्वी के प्रति घृणा करे, भेद को प्राप्त हो यानी बुद्धि को अस्थिर रखे, कलुषता को प्राप्त हो यानी चित्त में संकल्प विकल्प करे, चित्त को डांवाडोल करे और निर्ग्रन्थ प्रवचनों में श्रद्धा न रखे, प्रतीति न करे, रुचि न रखे। इस प्रकार निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा न रखता हुआ, प्रतीति न रखता हुआ, रुचि न रखता हुआ मन को ऊंचा नीचा करता है । इस कारण वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है एवं संसार परिभ्रमण करता है । यह पहली दुःखशय्या है । इसके आगे अब दूसरी दुःख शय्या कही जाती है । कोई एक पुरुष मुण्डित होकर गृहस्थवास को छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार करके अपने लाभ से सन्तुष्ट नहीं होता, दूसरों के लाभ में से कुछ लेने की इच्छा करता है स्पृहा करता है, याचना करता है, अभिलाषा करता है । इस प्रकार दूसरों के लाभ में से लेने की इच्छा करता हुआ यावत् अभिलाषा रखता हुआ मन को ऊंचा नीचा करता है । इस कारण वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है एवं संसार परिभ्रमण करता है । यह दूसरी दुःख शय्या है । इसके बाद अब तीसरी दुःख शय्या बतलाई जाती है । जैसे कोई पुरुष मुण्डित होकर यावत् दीक्षा लेकर दिव्य यानी देवसम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को प्राप्त करने की इच्छा करता है यावत् कि देव सम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ यावत् अभिलाषा करता हुआ मन को ऊंचा नीचा करता है । इस कारण से वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है एवं संसार परिभ्रमण करता है । यह तीसरी दुःखशय्या है । इसके बाद अब चौथी दुःख शय्या बतलाई जाती है । जैसे कोई पुरुष मुण्डित होकर यावत् दीक्षा लेकर इस प्रकार विचार करता है कि जब मैं गृहस्थवास में रहता था तब मैं शरीर पर मालिश, पीठी, गात्राभ्यङ्ग यानी तेलमालिश, गात्रोत्क्षालन यानी स्नान आदि करता था किन्तु जब से मैं मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर साधु बना हूँ तब से मुझे ये मर्दन यावत् स्नान आदि प्राप्त नहीं होते हैं । इस प्रकार वह मर्दन यावत् स्नान की आशा करता है यावत् अभिलाषा करता है । इस तरह वह मर्दन यावत् स्नान आदि की इच्छा करता हुआ यावत् अभिलाषा करता हुआ मन को ऊंचा नीचा करता है । इस कारण से वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है और संसार परिभ्रमण करता है । यह चौथी दुःखशय्या है । साधु को ये चारों दुःखशय्या छोड़कर संयम में मन को स्थिर करना चाहिए ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - भाव दुःख शय्या के चार प्रकार - पलङ्ग बिछौना वगैरह जैसे होने चाहिए, वैसे न हों, दुःखकारी हों, तो ये द्रव्य से दुःख शय्या रूप हैं । चित्त (मन) श्रमण स्वभाव वाला न होकर दुःश्रमणता वाला हो, तो वह भाव से दुःख शय्या है । भाव दुःख शय्या चार हैं -

१. पहली दुःख शय्या - किसी गुरु (भारी) कर्म वाले मनुष्य ने मुंडित होकर दीक्षा ली । दीक्षा लेने पर वह निर्ग्रंथ प्रवचन में शङ्का, कांक्षा (पर मत अच्छा है, इस प्रकार की बुद्धि) विचिकित्सा (धर्म फल के प्रति सन्देह या साधु साध्वी के प्रति घृणा) करता है, जिन शासन में कहे हुए भाव वैसे ही हैं अथवा दूसरी तरह के हैं ? इस प्रकार चित्त को डांवाडोल करता है । कलुष भाव अर्थात् विपरीत भाव को प्राप्त करता है । वह जिन प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं रखता । जिन प्रवचन में श्रद्धा प्रतीति न करता हुआ और रुचि न रखता हुआ मन को ऊँचा नीचा करता है । इस कारण वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । इस प्रकार वह श्रमणता रूपी शय्या में दुःख से रहता है ।

२. दूसरी दुःख शय्या - कोई कर्मों से भारी मनुष्य प्रव्रज्या लेकर अपने लाभ से सन्तुष्ट नहीं होता । वह असन्तोषी बन कर दूसरे के लाभ में से, वह मुझे देगा, ऐसी इच्छा रखता है । यदि वह देवे तो मैं भोगूँ, ऐसी इच्छा करता है । उसके लिए याचना करता है और अति अभिलाषा करता है । उसके मिल जाने पर और अधिक चाहता है। इस प्रकार दूसरे के लाभ में से आशा, इच्छा, याचना यावत् अभिलाषा करता हुआ वह मन को ऊँचा नीचा करता है । इस कारण वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । यह दूसरी दुःख शय्या है ।

३. तीसरी दुःख शय्या - कोई कर्म बहुल प्राणी दीक्षित होकर देव तथा मनुष्य सम्बन्धी काम भोग पाने की आशा करता है । याचना यावत् अभिलाषा करता है । इस प्रकार करते हुए वह अपने मन को ऊँचा नीचा करता है और धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । यह तीसरी दुःख शय्या है ।

४. चौथी दुःख शय्या - कोई गुरु कर्मी जीव साधुपन लेकर सोचता है कि मैं जब गृहस्थ वास में था । उस समय तो मेरे शरीर पर मालिश होती थी । पीठी होती थी । तैलादि लगाए जाते थे और शरीर के अङ्ग उपाङ्ग धोये जाते थे अर्थात् मुझे स्नान कराया जाता था । लेकिन जब से साधु बना हूँ । तब से मुझे ये मर्दन आदि प्राप्त नहीं होते हैं । इस प्रकार वह उनकी आशा यावत् अभिलाषा करता है और मन को ऊँचा नीचा करता हुआ धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । यह चौथी दुःख शय्या है । श्रमण को ये चारों दुःख शय्या छोड़ कर संयम में मन को स्थिर करना चाहिए ।

चतुर्विध सुख शय्या

चत्तारि सुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ तंजहा - तत्थ खलु इमा पढमा सुहसेज्जा, से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिव्विइगिच्छिए णो भेयसमावण्णे णो कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहइ पत्तियइ रोएइ णिग्गंथं पावयणं सद्दहमाणे पत्तियमाणे रोएमाणे णो णं उच्चावयं णियच्छइ णो विणिघायमावज्जइ पढमा सुहसेज्जा । अहावरा दोच्चा सुहसेज्जा से णं मुंडे जाव पव्वइए सएणं लाभेणं तुस्सइ परस्स लाभं णो आसाएइ णो पीहेइ णो पत्थेइ णो अभिलसइ, परस्स लाभमणासाएमाणे जाव अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छइ णो विणिघायमावज्जइ दोच्चा सुहसेज्जा । अहावरा तच्चा सुहसेज्जा, से णं मुंडे जाव पव्वइए दिव्वमाणुस्सए कामभोए णो आसाएइ जाव णो अभिलसइ दिव्वमाणुस्सए कामभोए अणासाएमाणे जाव अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छइ णो विणिघायमावज्जइ तच्चा सुहसेज्जा । अहावरा चउत्था सुहसेज्जा, से णं मुंडे जाव पव्वइए तस्स णं एवं भवइ - जइ ताव अरिहंता भगवंतो हट्ठा आरोग्गा बलिया कल्लसरीरा अण्णयराइं, ओरालाइं, कल्लाणाइं, विउलाइं, पयत्ताइं, पग्गहियाइं, महाणुभागाइं, कम्मक्खय कारणाइं, तवोकम्माइं, पडिवज्जंति किमंग पुण अहं अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयणं णो सम्मं सहामि खमामि तितिक्खेमि अहियासेमि ममं च णं अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयणं सम्ममसहमाणस्स अक्खममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जइ ? एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जइ, ममं च णं अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयणं सम्मं सहमाणस्स जाव अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जइ ? एगंतसो मे णिज्जरा कज्जइ, चउत्था सुहसेज्जा॥ १७५ ॥

कठिन शब्दार्थ - सुहसेज्जा - सुखशय्या, **णिव्विइगिच्छिए** - विचिकित्सा रहित, **हट्ठा** - हृष्ट, **आरोग्गा** - नीरोग, **बलिया** - बलवान्, **कल्लसरीरा** - स्वस्थ शरीर वाले, **पयत्ताइं** - उत्कृष्ट, **महाणुभागाइं**- महा प्रभावशाली, **पग्गहियाइं**-आदर भाव से ग्रहण किये हुए, **अब्भोवगमिओवक्कमियं**- आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी, **सम्ममसहमाणस्स** - समभाव पूर्वक सहन न करने से, **अतितिक्खमाणस्स** - तितिक्षा न करने से, **अणहियासेमाणस्स** - धैर्यपूर्वक सहन न करने से ।

भावार्थ - ऊपर बताई हुई दुःखशय्या से विपरीत सुखशय्या जाननी चाहिए । वे इस प्रकार हैं - चार सुख शय्याएं कही गई हैं । यथा - उनमें पहली सुखशय्या यह है - कोई पुरुष मुण्डित होकर गृहस्थावास को छोड़ कर अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचनों में शंका रहित, कांक्षा रहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विचिकित्सा रहित होता है । भेद को प्राप्त नहीं होता है यानी चित्त को डांवाडोल नहीं करता है और कलुषता को प्राप्त नहीं होता है । निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ अपने मन को ऊंचा नीचा नहीं करता है । इस कारण से धर्म से भ्रष्ट नहीं होता है एवं संसार में परिभ्रमण नहीं करता है यह पहली सुखशय्या है । इसके बाद अब दूसरी सुख शय्या बतलाई जाती है । जैसे कि कोई पुरुष मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर अपने लाभ से सन्तुष्ट रहता है । दूसरों के लाभ की आशा नहीं करता है, इच्छा नहीं करता है, प्रार्थना नहीं करता है और अभिलाषा नहीं करता है । इस प्रकार दूसरों के लाभ की आशा नहीं करता हुआ यावत् अभिलाषा नहीं करता हुआ मन को ऊँचा नीचा नहीं करता है । इस कारण से धर्म से भ्रष्ट नहीं होता है एवं संसार परिभ्रमण नहीं करता है । यह दूसरी सुखशय्या है । इसके बाद अब तीसरी सुखशय्या बतलाई जाती है । जैसे कि कोई पुरुष मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर देव सम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों की आशा नहीं करता है यावत् अभिलाषा नहीं करता है । इस प्रकार देव और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों की आशा न करता हुआ यावत् अभिलाषा न करता हुआ मन को ऊंचा नीचा नहीं करता है । इस कारण से धर्म से भ्रष्ट नहीं होता है एवं संसार परिभ्रमण नहीं करता है । यह तीसरी सुखशय्या है । इसके पश्चात् अब चौथी सुखशय्या बतलाई जाती है - जैसे कोई पुरुष मुण्डित यावत् प्रव्रजित होकर उसके मन में इस प्रकार विचार उत्पन्न होता है कि जब हृष्ट, नीरोग, बलवान्, स्वस्थ शरीर वाले अरिहन्त भगवान् अनशन आदि तपों में से कोई एक उदार, कल्याणकारी विपुल उत्कृष्ट महाप्रभावशाली कर्मों को क्षय करने वाले तप को आदरभाव से अङ्गीकार करते हैं तो फिर क्या मुझे * आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को किसी पर कोप न करते हुए शान्तिपूर्वक दीनता न दिखाते हुए धैर्य के साथ समभाव पूर्वक सहन न करना चाहिए ?

इस आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को समभावपूर्वक सहन न करने से क्षमा न करने से तितिक्षा न करने से और धैर्य पूर्वक सहन न करने से मुझे क्या होगा ? मुझे एकान्तरूप से पापकर्म का बन्ध होगा । यदि मैं इस आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को समभावपूर्वक सहन करूँगा यावत् धैर्यपूर्वक सहन करूँगा तो मुझे क्या होगा ? मुझे एकान्तरूप से निर्जरा होगी । इस प्रकार विचार करके उपरोक्त वेदना को समभावपूर्वक सहन करना चाहिए। अपितु अवश्य सहन करना चाहिए। यह चौथी सुखशय्या है।

विवेचन - सुख शय्या चार - ऊपर बताई हुई दुःख शय्या से विपरीत चार सुख शय्या जाननी चाहिये । वे संक्षेप में इस प्रकार हैं -

---

* केश लोच, ब्रह्मचर्य पालन आदि में होने वाली वेदना आभ्युपगमिकी कहलाती है और बुखार, अतिसार आदि रोगों से होने वाली वेदना औपक्रमिकी कहलाती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. जिन प्रवचन पर शंका, कांक्षा, विचिकित्सा न करता हुआ तथा चित्त को डांवाडोल और कलुषित न करता हुआ साधु निर्ग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि रखता है और मन को संयम में स्थिर रखता है । वह धर्म से भ्रष्ट नहीं होता अपितु धर्म पर और भी अधिक दृढ़ होता है । यह पहली सुख शय्या है ।

२. जो साधु अपने लाभ से सन्तुष्ट रहता है और दूसरों के लाभ में से आशा, इच्छा, याचना और अभिलाषा नहीं करता । उस सन्तोषी साधु का मन संयम में स्थिर रहता है । और वह धर्म भ्रष्ट नहीं होता । यह दूसरी सुख शय्या है ।

३. जो साधु देवता और मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों की आशा यावत् अभिलाषा नहीं करता । उसका मन संयम में स्थिर रहता है और वह धर्म से भ्रष्ट नहीं होता । यह तीसरी सुख शय्या है ।

४. कोई साधु होकर यह सोचता है कि जब हृष्ट, नीरोग, बलवान् शरीर वाले अरिहन्त भगवान् आशंसा दोष रहित अतएव उदार, कल्याणकारी, दीर्घ कालीन, महा प्रभावशाली, कर्मों को क्षय करने वाले तप को संयम पूर्वक आदर भाव से अंगीकार करते हैं । तो क्या मुझे केश लोच, ब्रह्मचर्य आदि में होने वाली आभ्युपगमिकी और ज्वर, अतिसार आदि रोगों से होने वाली औपक्रमिकी वेदना को शान्ति पूर्वक, दैन्यभाव न दर्शाते हुए, बिना किसी पर कोप किए सम्यक् प्रकार से समभाव पूर्वक न सहना चाहिए ? इस वेदना को सम्यक् प्रकार न सहन कर मैं एकान्त पाप कर्म के सिवाय और क्या उपार्जन करता हूँ ? यदि मैं इसे सम्यक् प्रकार सहन कर लूँ, तो क्या मुझे एकान्त निर्जरा न होगी ? इस प्रकार विचार कर ब्रह्मचर्य व्रत के दूषण रूप मर्दन आदि की आशा, इच्छा का त्याग करना चाहिए । एवं उनके अभाव से प्राप्त वेदना तथा अन्य प्रकार की वेदना को सम्यक् प्रकार सहना चाहिए । यह चौथी सुख शय्या है ।

अवाचनीय एवं वाचनीय

चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता तंजहा - अविणीए, विगइप्पडिबद्धे, अविउसवियपाहुडे, माई । चत्तारि वायणिज्जा पण्णत्ता तंजहा - विणीए, अविगइप्पडिबद्धे, विउसवियपाहुडे, अमाई ॥ १७६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अवायणिज्जा** - अवाचनीय-वाचना देने के अयोग्य, **विगइप्पडिबद्धे** - विकृति प्रतिबद्ध-विगयों में गृद्ध, **अविउसवियपाहुडे** - अव्यवशमित प्राभृत-क्रोध को शान्त न करने वाला, **वायणिज्जा** - वाचनीय-वाचना देने के योग्य, **अविगइप्पडिबद्धे** - अविकृति प्रतिबद्ध-विगयों में अनासक्त, **विउसवियपाहुडे** - व्यवशमित प्राभृत-क्रोध रहित ।

भावार्थ - चार पुरुष वाचना देने के अयोग्य कहे गये हैं यथा - अविनीत, दूध आदि विगयों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृद्ध, क्रोध को शान्त न करने वाला यानी क्रोधी और मायावी-कपटी । चार पुरुष वाचना देने के योग्य कहे गये हैं यथा - विनीत, विगयों में अनासक्त, क्रोधरहित और माया कपट रहित ।

विवेचन - शिष्य को सूत्र अर्थ का पढ़ाना वाचना है । चार व्यक्ति वाचना के पात्र कहे गये हैं - १. विनीत २. विगयों में आसक्ति नहीं रखने वाला ३. क्रोध को शान्त करने वाला और ४. अमायी - माया-कपट नहीं करने वाला । चार व्यक्ति वाचना के अयोग्य हैं - १. अविनीत २. विगयों में आसक्ति रखने वाला ३. अशान्त (क्रोधी) और ४. मायावी (छल करने वाला) ।

अनेक दृष्टियों से पुरुष भेद

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आयंभरे णाममेगे णो परंभरे, परंभरे णाममेगे णो आयंभरे, एगे आयंभरे वि परंभरे वि, एगे णो आयंभरे णो परंभरे ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दुग्गए णाममेगे दुग्गए, दुग्गए णाममेगे सुग्गए, सुग्गए णाममेगे दुग्गए, सुग्गए णाममेगे सुग्गए । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- दुग्गए णाममेगे दुव्वए, दुग्गए णाममेगे सुव्वए, सुग्गए णाममेगे दुव्वए, सुग्गए णाममेगे सुव्वए । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दुग्गए णाममेगे दुप्पडियाणंदे, दुग्गए णाममेगे सुप्पडियाणंदे, सुग्गए णाममेगे दुप्पडियाणंदे, सुग्गए णाममेगे सुप्पडियाणंदे। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- दुग्गए णाममेगे दुग्गइगामी, दुग्गए णाममेगे सुग्गइगामी, सुग्गए णाममेगे दुग्गइगामी, सुग्गए णाममेगे सुग्गइगामी। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - दुग्गए णाममेगे दुग्गइं गए, दुग्गए णाममेगे सुगइं गए, सुग्गए णाममेगे दुग्गइं गए, सुग्गए णाममेगे सुगइं गए ।

चत्तारि पुरिजाया पण्णत्ता तंजहा - तमे णाममेगे तमे, तमे णाममेगे जोई, जोई णाममेगे तमे, जोई णाममेगे जोई। चत्तारि पुरिजाया पण्णत्ता तंजहा - तमे णाममेगे तमबले, तमे णाममेगे जोइबले, जोई णाममेगे तमबले, जोई णाममेगे जोइबले । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - तमे णाममेगे तमबलपलज्जणे, तम णाममेगे जोइबलपलज्जणे, जोई णाममेगे तमबलपलज्जणे, जोई णाममेगे जोइबलपलज्जणे चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- परिण्णायकम्मे णाममेगे णो परिण्णायसण्णे, परिण्णायसण्णे णाममेगे णो परिण्णायकम्मे, एगे परिण्णाय कम्मे वि परिण्णायसण्णे वि, एगे णो परिण्णायकम्मे णो परिण्णायसण्णे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा-परिण्णायकम्मे णाममेगे णो परिण्णायगिहावासे, परिण्णायगिहावासे णाममेगे णो परिण्णायकम्मे, एगे परिण्णायकम्मे वि परिण्णाय गिहावासे वि, एगे णो परिण्णायकम्मे णो परिण्णायगिहावासे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - परिण्णायसण्णे णाममेगे णो परिण्णायगिहावासे, परिण्णायगिहावासे णाममेगे णो परिण्णायसण्णे, एगे परिण्णायसण्णे वि परिण्णाय गिहावासे वि । एगे णो परिण्णायसण्णे णो परिण्णाय गिहावासे॥ १७७ ॥

कठिन शब्दार्थ - आयंभरे - आत्मा का हित करने वाला, **परंभरे** - दूसरों का हित करने वाला, **दुग्गए** - दुर्गत, **सुग्गए** - सुगत, **सुव्वए** - अच्छे व्रतों का पालन करने वाला, **दुप्पडियाणंदे** - दुष्प्रत्यानन्द-किये हुए उपकार को न जानने वाला, **सुप्पडियाणंदे** - सुप्रत्यानन्द-उपकार को जानने वाला, **दुग्गइगामी**-दुर्गतिगामी, **जोइबलपलज्जणे** - प्रकाश में आनंद मानने वाला, **परिण्णायकमे** - परिज्ञात कर्मा, **परिण्णायसण्णे** - परिज्ञातसंज्ञा, **परिण्णायगिहावासे** - गृहस्थवास का त्यागी।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष अपना ही स्वार्थ पूरा करता है किन्तु दूसरे का कार्य नहीं करता है । स्वार्थी अथवा जिनकल्पी साधु । कोई एक दूसरों का ही हित करता है किन्तु अपना कार्य नहीं करता है, जैसे तीर्थङ्कर भगवान् । कोई एक पुरुष अपना हित भी करता है और दूसरों का हित भी करता है । जैसे स्थविर कल्पी मुनि । कोई एक पुरुष न तो आत्मा का हित करता है और न दूसरों का हित करता है, जैसे मूर्ख अथवा गुरु की आज्ञा न मानने वाला स्वच्छन्दी । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से दुर्गत दरिद्री और भाव से भी दुर्गत यानी ज्ञानादि रत्नों से हीन, कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री किन्तु भाव से सुगत यानी ज्ञानादि रत्नों से युक्त । कोई एक पुरुष द्रव्य से सुगत यानी धनवान् और भाव से ज्ञानादि रत्नों से हीन । कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् और भाव से भी ज्ञानादि रत्नों से युक्त । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री और से भाव से खराब व्रत पालने वाला, कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री किन्तु भाव से अच्छे व्रतों को पालने वाला । कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् किन्तु भाव से खराब व्रत पालने वाला । कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् और भाव से अच्छे व्रतों को पालने वाला । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री और भाव से दुष्प्रत्यानन्द यानी किये हुए उपकार को न जानने वाला । कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री किन्तु भाव से सुप्रत्यानन्द यानी किये हुए उपकार को जानने वाला । कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् किन्तु भाव से दुष्प्रत्यानन्द यानी किये हुए उपकार को न जानने वाला कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् और भाव से भी सुप्रत्यानन्द यानी किये हुए उपकार को मानने वाला । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दरिद्री और भाव से भी दुर्गतिगामी यानी दुर्गति में जाने वाला । कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री किन्तु भाव से सुगतिगामी। कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान किन्तु भाव से दुर्गति गामी। कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् और भाव से भी सुगतिगामी । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री और भाव से दुर्गति में गया हुआ । कोई एक पुरुष द्रव्य से दरिद्री किन्तु भाव से सुगति में गया हुआ । कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् किन्तु भाव से दुर्गति में गया हुआ । कोई एक पुरुष द्रव्य से धनवान् और भाव से सुगति में गया हुआ । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष पहले अज्ञानी और पीछे भी अज्ञानी रहा । कोई एक पुरुष पहले अज्ञानी था किन्तु पीछे ज्ञानी बन गया। कोई एक पुरुष पहले ज्ञानी था किन्तु पीछे अज्ञानी बन गया । कोई एक पुरुष पहले भी ज्ञानी था और पीछे भी ज्ञानी बना रहा । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष कुकर्म करने वाला और कुकर्म का ही बल रखने वाला असदाचारी और अज्ञानी अथवा रात्रि में चोरी करने वाला चोर । कोई एक पुरुष कुकर्म करने वाला होता है किन्तु ज्ञान या प्रकाश का बल रखने वाला होता है अर्थात्, असदाचारी किन्तु ज्ञानवान् अथवा दिन में चोरी करने वाला चोर । कोई एक पुरुष सत्कर्म करने वाला किन्तु अज्ञानी अथवा किसी कारण से रात्रि में घूमने वाला । कोई एक पुरुष सत्कर्म करने वाला और ज्ञानी अथवा दिन में चलने वाला पुरुष । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष पाप कर्म करता है और मिथ्यात्व में अथवा अन्धकार में आनन्द मानता है । कोई एक पुरुष पाप कर्म करता है किन्तु ज्ञान में अथवा सूर्य के प्रकाश में आनन्द मानता है । कोई एक पुरुष सत्कर्म करता है किन्तु अज्ञान में अथवा अन्धकार में आनन्द मानता है । कोई एक पुरुष सत्कर्म करता है और ज्ञान में अथवा सूर्य के प्रकाश में ही आनन्द मानता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष परिज्ञातकर्मा यानी ज्ञ परिज्ञा से आरम्भ परिग्रह को खराब जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग करने वाला होता है किन्तु परिज्ञात संज्ञा वाला यानी सद्भावना वाला नहीं होता है, जैसे अभावितात्मा अनगार। कोई एक पुरुष परिज्ञात संज्ञा वाला होता है। किन्तु परिज्ञात कर्मा नहीं होता है, जैसे श्रावक कोई एक पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होता है और परिज्ञाता संज्ञा वाला भी होता है, जैसे साधु । कोई एक पुरुष न तो परिज्ञातकर्मा होता है और न परिज्ञात संज्ञा वाला होता है, जैसे असंयति गृहस्थ । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष परिज्ञात कर्मा होता है किन्तु गृहस्थवास का त्यागी नहीं होता है, जैसे श्रावक । कोई एक पुरुष गृहस्थावास का त्यागी होता है । किन्तु परिज्ञातकर्मा नहीं होता है, जैसे द्रव्यलिङ्गी साधु । कोई एक पुरुष परिज्ञात कर्मा भी होता है और गृहस्थवास का त्यागी भी होता है, जैसे महाव्रतधारी साधु । कोई एक पुरुष न तो परिज्ञातकर्मा होता है और न गृहस्थवास का त्यागी होता है, जैसे असंयति गृहस्थ । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष परिज्ञात संज्ञा वाला होता है। किन्तु गृहस्थवास का त्यागी नहीं होता है, जैसे श्रावक । कोई एक पुरुष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थ वास का त्यागी होता है किन्तु परिज्ञात संज्ञा वाला नहीं होता है, जैसे तापस आदि । कोई एक पुरुष परिज्ञात संज्ञा वाला भी होता है और गृहस्थवास का त्यागी भी होता है, जैसे सुसाधु । कोई एक पुरुष न तो परिज्ञात संज्ञा वाला होता है और न गृहस्थवास का त्यागी होता है, जैसे कुसाधु।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अनेक दृष्टियों से पुरुषों के चार-चार भेद बतलाये गये हैं।

प्रथम चौभंगी - **आयत्थे णाममेगे..........**की टीका इस प्रकार दी गयी है-

"आत्मानं बिभर्ति-पुष्णातीत्यात्मम्भरिः प्राकृतत्वादायंभरे तथा परं बिभर्त्तीति परम्भरिः प्राकृत त्वात्परंभरेइति, तत्र प्रथम भंगे स्वार्थकारक एव, स च जिनकल्पिको, द्वितीयः परार्थकारक एव, स च भगवानर्हन्, तस्य विवक्षया सकलस्वार्थ समाप्तेः वर प्रधान प्रयोजन प्रापण प्रवणप्राणितत्वात्, तृतीये स्वपरार्थकारी, स च स्थविरकल्पिकः विहितानुष्ठानतः स्वार्थकरत्वाद्विधिवत् सिद्धान्तदेशनातश्च परार्थसम्पादकत्वात्, चतुर्थे तूभयानुपकारी, स च मुग्धमतिः कश्चिद् यथाच्छन्दो वेति, एवं लौकिकपुरुषोऽपि योजनीयः।"-

अर्थ - १. जो केवल अपनी आत्मा का कार्य करता है-स्वार्थी पुरुष अथवा जिनकल्पी मुनि जो केवल अपनी आत्मा की साधना करते हैं धर्मोपदेश आदि नहीं देते हैं।

२. केवल दूसरों का उपकार करने वाले तीर्थंकर भगवान् क्योंकि केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण वे कृतकृत्य हो गए है। अब उनको अपना कोई काम करना बाकी नहीं रहा है, वे सम्पूर्ण जगत् के जीवों के कल्याण के लिए उपदेश देते हैं।

३. स्थविरकल्पी साधु वे अपनी आत्मा के कल्याण के लिए महाव्रतों आदि का पालन करते हैं और यथा अवसर धर्मोपदेश भी देते हैं।

४. आत्मा और दूसरों का किसी का हित नहीं करते हैं। मन्दबुद्धि अज्ञानी तथा यथाछन्द साधु (अपनी इच्छानुसार उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाला) यह साधुओं की अपेक्षा घटित किया गया है। इस प्रकार लौकिक पुरुषों के लिए भी घटित कर लेना चाहिए।

घोडे की उपमा और पुरुष

चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - इहत्थे णाममेगे णो परत्थे, परत्थे णाममेगे णो इहत्थे, एगे इहत्थे वि परत्थे वि, एगे णो इहत्थे णो परत्थे । चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा - एगेणं णाममेगे वड्ढइ एगेणं हायइ, एगेणं णाममेगे वड्ढइ दोहिं हायइ, दोहिं णाममेगे वड्ढइ एगेणं हायइ, दोहिं णाममेगे वड्ढइ दोहिं हायइ ।

चत्तारि कंथगा पण्णत्ता तंजहा - आइण्णे णाममेगे आइण्णे, आइण्णे णाममेगे खलुंके, खलुंके णाममेगे आइण्णे, खलुंके णाममेगे खलुंके । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आइण्णे णाममेगे आइण्णे चउभंगो । चत्तारि कंथगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता तंजहा - आइण्णे णाममेगे आइण्णयाए विहरइ, आइण्णे णाममेगे खलुंकत्ताए विहरइ, खलुंके णाममेगे आइण्णयाए विहरइ, खलुंके णाममेगे खलुंकत्ताए विहरइ। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आइण्णे णाममेगे आइण्णयाए विहरइ चउब्भंगो। चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे जाइसंपण्णे वि कुलसंपण्णे वि, एगे णो जाइसंपण्णे णो कुलसंपण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे चउब्भंगो। चत्तारि कंथगा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे जाइसंपण्णे वि बलसंपण्णे वि। एगे णो जाइसंपण्णे णो बलसंपण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे। चउब्भंगो। चत्तारि कंथगा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे जाइसंपण्णे वि रूवसंपण्णे वि, एगे णो जाइसंपण्णे णो रूवसंपण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे चउब्भंगो। चत्तारि कंथगा पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो जाइसंपण्णे, एगे जाइसंपण्णे वि जयसंपण्णे वि, एगे णो जाइसंपण्णे णो जयसंपण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - जाइसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, चउब्भंगो एवं कुलसंपण्णेण य, बलसंपण्णेण य, कुलसंपण्णेण य, रूवसंपण्णेण य। कुलसंपण्णेण य, जयसंपण्णेण य। एवं बलसंपण्णेण य, रूवसंपण्णेण य। बल संपण्णेण य, जयसंपण्णेण य। सव्वत्थ पुरिसजाया पडिवक्खो। चत्तारि कंथगा पण्णत्ता तंजहा-रूवसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णे वि जयसंपण्णे वि, एगे णो रूवसंपण्णे णो जयसंपण्णे। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - रूवसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे चउब्भंगो।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ, सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सियालत्ताए विहरइ, सियालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ, सियालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सियालत्ताए विहरइ॥ १७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - इहत्थे - ऐहिक सुखों का अर्थी, **परत्थे** - पारलौकिक सुखों का अर्थी, **हायइ**- घटता है, **वड्ढइ** - बढ़ता है, **आइण्णे** - आकीर्ण(जातीवान), **खलुंके** - खलुंक-गलियार, **कंथगा** - घोड़े **जयसंपण्णे** - जय सम्पन्न, **सीहत्ताए** - सिंह की तरह, **णिक्खंते** - दीक्षा ग्रहण करता है।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष ऐहिक सुखों का अर्थी (चाहने वाला होता) है किन्तु पारलौकिक सुखों का अर्थी नहीं है, जैसे - भोगी पुरुष । कोई एक पुरुष पारलौकिक सुखों का अर्थी है किन्तु इहलौकिक सुखों का अर्थी नहीं है, जैसे बालतपस्वी । कोई एक पुरुष ऐहिक सुखों का अर्थी भी है और पारलौकिक सुखों का अर्थी भी है जैसे सुश्रावक । कोई एक पुरुष न तो ऐहिक सुखों का अर्थी है और न पारलौकिक सुखों का अर्थी है जैसे कालशौकरिक कसाई आदि । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष एक से यानी ज्ञान से वृद्धि पाता है किन्तु एक से यानी समकित से हीन होता है जैसे उत्सूत्र प्ररूपक । कोई एक पुरुष एक ज्ञान से वृद्धि पाता है किन्तु दो से यानी समकित और विनय से हीन होता है । कोई एक पुरुष दो से यानी ज्ञान और क्रिया से वृद्धि पाता है किन्तु एक समकित से हीन होता है । कोई एक पुरुष ज्ञान और क्रिया इन दोनों से वृद्धि पाता है और समकित और विनय इन दोनों से हीन होता है अथवा कोई एक पुरुष ज्ञान से वृद्धि पाता है और राग से हीन होता है । कोई ज्ञान से वृद्धि पाता है और राग द्वेष दोनों से हीन होता है । कोई ज्ञान और संयम दोनों से बढता है और राग से हीन होता है । कोई ज्ञान और संयम दोनों से बढता है और राग द्वेष दोनों से हीन होता है । अथवा - कोई क्रोध से बढता है और माया से हीन होता है । कोई क्रोध से बढता है और माया और लोभ से हीन होता है । कोई क्रोध और मान इन दोनों से बढता है और माया से हीन होता है । कोई क्रोध और मान इन दोनों से बढता है और माया और लोभ इन दोनों से हीन होता है ।

चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा पहले तो आकीर्ण यानी वेगादि गुण युक्त होता है और पीछे भी आकीर्ण यानी वेगादि गुण युक्त ही रहता है । कोई एक घोड़ा पहले तो आकीर्ण होता है किन्तु पीछे खलुंक यानी गलियार एवं अविनीत हो जाता है । कोई एक घोड़ा पहले तो खलुंक होता है किन्तु पीछे आकीर्ण हो जाता है। कोई एक घोड़ा पहले भी खलुंक होता है और पीछे भी खलुंक ही रहता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष पहले आकीर्ण यानी विनयादि गुण युक्त होता है और पीछे भी विनयादि गुण युक्त ही रहता है । इस तरह चार भांगे कह देने चाहिए । चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा वेगादि गुण युक्त है और अच्छी तरह से चलता है । कोई एक घोड़ा वेगादि गुण युक्त है किन्तु अविनीत की तरह टेढी चाल से चलता है । कोई एक घोड़ा खलुंक यानी जातिवान् नहीं है किन्तु अच्छी चाल से चलता है । कोई एक घोड़ा जातिवान् नहीं है और अच्छी तरह चलता भी नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जातिवान् है और विनयादि गुण युक्त होकर चलता है । इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह चार भांगे समझने चाहिए । चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं है । कोई एक घोड़ा कुल सम्पन्न है किन्तु जाति सम्पन्न नहीं है । कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न भी है और कुल सम्पन्न भी है। कोई एक घोड़ा न तो जाति सम्पन्न है और न कुलसम्पन्न है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न है किन्तु कुल सम्पन्न नहीं है । इस तरह चार भांगे कह देने चाहिए । चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न होता है किन्तु बल सम्पन्न नहीं होता है । कोई एक घोड़ा बल सम्पन्न होता है किन्तु जाति सम्पन्न नहीं होता है। कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न भी होता है और बल सम्पन्न भी होता है । कोई एक घोड़ा न तो जाति सम्पन्न होता है और न बल सम्पन्न होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न होता है किन्तु बल सम्पन्न नहीं होता है । इस प्रकार चार भांगे जानने चाहिए । चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न होता है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं होता है । कोई एक घोड़ा रूप सम्पन्न होता है किन्तु जाति सम्पन्न नहीं होता है । कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है। कोई एक घोड़ा न तो जाति सम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न होता है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं होता है । इस तरह चार भांगे कह देने चाहिए । चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न है किन्तु जयसम्पन्न नहीं है यानी संग्राम आदि में जय प्राप्त नहीं कर सकता है । कोई एक घोड़ा जय सम्पन्न होता है किन्तु जाति सम्पन्न नहीं होता है । कोई एक घोड़ा जाति सम्पन्न भी होता है और जय सम्पन्न भी होता है । कोई एक घोड़ा न तो जाति सम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न होता है । किन्तु जय सम्पन्न नहीं होता है । इस तरह चार भांगे कह देने चाहिए । पहले जैसे भांगे कहे हैं वैसे ही घोड़े और पुरुष पर कुल सम्पन्न और बल सम्पन्न के चार भांगे, कुल सम्पन्न और रूपसम्पन्न के चार भांगे, कुल सम्पन्न और जयसम्पन्न के चार भांगे, बल सम्पन्न और रूप सम्पन्न के चार भांगे तथा बल सम्पन्न और जय सम्पन्न के चार भांगे कह देने चाहिए । सब जगह प्रतिपक्ष यानी दार्ष्टान्तिक रूप में पुरुष का कथन करना चाहिए। चार प्रकार के घोड़े कहे गये हैं । यथा - कोई एक घोड़ा रूप सम्पन्न होता है किन्तु जय सम्पन्न नहीं होता है । कोई एक घोड़ा जय सम्पन्न होता है किन्तु रूप सम्पन्न नहीं होता है । कोई एक घोड़ा रूप सम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है । कोई एक घोड़ा न तो रूप सम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष रूप सम्पन्न होता है किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता है । इस तरह चार भांगे कह देने चाहिए ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष सिंह की तरह दीक्षा ग्रहण करता है और सिंह की तरह पालन करते हुए विचरता है, जैसे धन्ना मुनि । कोई एक पुरुष सिंह की तरह दीक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण करता है किन्तु शृगाल की तरह पालन करता हुआ विचरता है, जैसे कण्डरीक मुनि। कोई एक पुरुष शृगाल की तरह दीक्षा ग्रहण करता है किन्तु सिंह की तरह पालन करता हुआ विचरता है, जैसे मेतार्यमुनि। कोई एक पुरुष शृंगाल की तरह दीक्षा ग्रहण करता है और शृंगाल की तरह ही पालन करता हुआ विचरता है, जैसे सोमाचार्य।

विवेचन - इहत्थे णाममेगे.......चौभंगी में **इहत्थ** शब्द की दो संस्कृत छाया की गई है, संस्कृत टीका इस प्रकार है-

इहैव जन्मन्यर्थः-प्रयोजनं भोगसुखादि आस्था वा-इदमेव साध्विति बुद्धिर्यस्य स इहार्थ इहास्थो वा भोगपुरुष इहलोकप्रतिबद्धो वा परत्रैव जन्मान्तरे अर्थ आस्था वा यस्य स परार्थः परस्थो वा साधुबलितपस्वी वा इह परत्र च यस्यार्थ आस्था वा स सुश्रावक उभयप्रतिबद्धो वा उभयप्रतिषेधवान् कालशौकरिकादिर्मूढो वेति अथवा इहैव विवक्षिते ग्रामादो तिष्ठतीति इहस्थस्तत्प्रतिबन्धान्न परस्थो अन्यस्तु परत्र प्रतिबन्धात्परस्थः अन्यस्तूभयस्थः अन्यः सर्वाप्रतिबद्धत्वादनुभयस्थः साधुरिति।

अर्थ - १. इस जन्म के ही भोग सुखादि को देखने वाला काम भोगों में आसक्त भोगी पुरुष अथवा नास्तिक (परलोक नहीं मानने वाला)।

२. परलोक में सुख की चाह करने वाला साधु अथवा अज्ञानी बाल तपस्वी।

३. सुश्रावक उभय लोक में सुख चाहने वाला।

४. कालशौकरिक (कालियाकसाई) अज्ञानी अथवा

इहस्थ का अर्थ - १. किसी विवक्षित ग्राम में रहने वाला, दूसरे ग्राम से सम्बन्धित नहीं।

२. दूसरे ग्राम से ज्यादा सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् अपने ग्राम का भला न कर पर ग्राम का भला करने वाला।

३. कोई स्व ग्राम और पर ग्राम दोनों का भला करने वाला।

जो किसी भी ग्राम से बन्धा हुआ न हो, वह अप्रतिबद्ध विहारी साधु।

चार लक्खा, द्विशरीर जीव

चत्तारि लोए समा पण्णत्ता तंजहा - अपइट्ठाणे णरए, जंबूद्दीवे दीवे, पालए जाणविमाणे, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे । चत्तारि लोए समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता तंजहा - सीमंतए णरए, समयक्खेत्ते, उडुविमाणे, इसीपब्भारा पुढवी । उड्ढलोए णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया आउकाइया वणस्सइ काइया उराला तसा पाणा । अहो लोए णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता तंजहा - एवं चेव । एवं तिरियलोए वि॥ १७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **समा** - समान, **अपइट्ठाणे णरए** - अप्रतिष्ठान नाम का सातवीं नरक का नरकावास, **पालए** - पालक, **जाणविमाणे** - यान विमान, **सव्वट्ठसिद्धे** - सर्वार्थसिद्ध, **सपक्खिं** - सपक्ष-सब दिशाओं में समान, **सपडिदिसिं** - सप्रतिदिक्-सभी-विदिशाओं में समान, **सीमंतए** - सीमन्तक, **समयक्खेत्ते** - समय क्षेत्र, **उडुविमाणे** - उडु विमान, **इसीपब्भारा पुढवी** - ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी यावी सिद्ध शिला, **बिसरीरा** - द्विशरीर-दो शरीर वाले, **उराला**-उदार, **तसा** - त्रस, **पाणा**-प्राणी।

भावार्थ - इस लोक में चार स्थान समान कहे गये हैं यथा - सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नामक नरकावास, जम्बूद्वीप, सौधर्मेन्द्र का जाने आने का पालक नामक विमान और सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान । ये चारों एक लाख योजन के हैं । इस लोक में चार स्थान दिशाओं और विदिशाओं में अत्यन्त समान कहे गये हैं यथा - प्रथम नरक का सीमन्तक नामक नरकावास, समय क्षेत्र यानी ढाई द्वीप, उडुविमान यानी सौधर्म देवलोक का पहला प्रस्तट - पाथड़ा और ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी । ये चारों ४५ लाख योजन के लम्बे चौड़े गोलाकार हैं । ऊर्ध्व लोक में चार प्रकार के जीव दो शरीर वाले कहे गये हैं यथा - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और उदारत्रस प्राणी यानी पञ्चेन्द्रिय जीव ।

इसी तरह अधोलोक में और तिर्च्छालोक में उपरोक्त चार प्रकार के जीव द्विशरीर वाले कहे गये हैं।

विवेचन - **प्रश्न** - प्रायः करके, थोकड़ा वाले पूछा करते हैं कि - चार लक्खा कौन से हैं ? अर्थात् एक लाख की लम्बाई चौड़ाई वाले चार पदार्थ कौन से हैं?

उत्तर - यहाँ बतलाया गया है कि - सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकेन्द्र, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्ध और पहले देवलोक का पालक नाम का यान विमान, ये चार पदार्थ एक लाख योजन के लम्बे और एक लाख योजन के चौड़े हैं। इनकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सो सत्ताईस योजन तीन गाउ एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। इन चारों में जो विशेषता है वह ठाणाङ्ग सूत्र के तीसरे ठाणे के पहले उद्देशक में इस प्रकार बतलाई गयी है - **"तओ लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं"** अर्थात् अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप और सर्वार्थसिद्ध ये तीन तो दिशा और विदिशा में समान रूप से आये हुए हैं। किन्तु पालक विमान को तो जब इन्द्र कहीं बाहर जाता हो तब वैक्रिय से बनाया जाता है। वह उपरोक्त तीन की तरह समान दिशा और विदिशा में आया हुआ नहीं है। यह सवारी के काम आता है। इसलिये इसको यान (आना-जाना) विमान कहते हैं।

प्रश्न - पैंतालीस लाख के लम्बे और पैंतालीस लाख के चौड़े चार पदार्थ कौन से हैं? (चार पैंताला कौन से हैं? थोकड़ा वाले पूछते हैं।)

उत्तर - अढाई द्वीप में चार वस्तुएं पैंतालीस लाख पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी कही गई है। यथा - पहली नरक के प्रथम प्रतर (प्रस्तट) में गोल मध्यभागवर्ती नरकेन्द्र है जिसका नाम "सीमन्तक" है। सौधर्म और ईशान अर्थात् पहले और दूसरे देवलोक के पहले प्रतर में चारों दिशाओं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में आवलिका प्रविष्ट विमानों का मध्यवर्ती गोल विमान केन्द्र उडु विमान तथा ईषत्प्राग्भारा (सिद्धि) पृथ्वी और समय क्षेत्र अर्थात् मनुष्य लोक। ये सब पैंतालीस-पैंतालीस लाख योजन लम्बे चौड़े कहे गये हैं। ये चारों दिशा और विदिशाओं में समान रूप से आये हुए हैं। थोकड़ा वाले इनको 'चार पैंताला' कहते हैं।

जो जीव दूसरे भव में मोक्ष जा सकते हैं उनको यहां द्विशरीर कहा गया है । क्योंकि जिस भव में जो शरीर है वह एक शरीर और वहाँ से मनुष्य भव में आकर मोक्ष जावे, वह दूसरा शरीर है । इस अपेक्षा से पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और पंचेन्द्रिय जीव द्विशरीर वाले कहे गये हैं। ये द्वि शरीर वाले जीव अधोलोक तिर्च्छा लोक और ऊर्ध्व लोक इस प्रकार तीनों लोकों में हैं।

सत्त्वदृष्टि से पुरुष भेद, प्रतिमा, जीव स्पृष्ट, कार्मणामिश्रित शरीर

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तंजहा - हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते, थिरसत्ते। चत्तारि सिज्जपडिमाओ पण्णत्ताओ, चत्तारि वत्थपडिमाओ पण्णत्ताओ, चत्तारि पायपडिमाओ पण्णत्ताओ, चत्तारि ठाणपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चत्तारि सरीरगा जीवफुडा पण्णत्ता तंजहा - वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए। चत्तारि सरीरगा कम्मुम्मीसगा पण्णत्ता तंजहा - ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेउए। चउहिं अत्थिकाएहिं लोए फुडे पण्णत्ते तंजहा - धम्मत्थिकाएणं, अधम्मत्थिकाएणं, जीवत्थिकाएणं, पुग्गलत्थिकाणं। चउहिं बायरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोए फुडे पण्णत्ते तंजहा - पुढविकाइएहिं, आउकाइएहिं, वाउकाइएहिं, वणस्सइकाइएहिं । चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता तंजहा - धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे॥ १८०॥

कठिन शब्दार्थ - हिरिसत्ते - ह्री सत्त्व, **हिरिमणसत्ते** - ह्रीमनसत्त्व, **चलसत्ते** - चल सत्त्व, **थिर सत्ते** - स्थिर सत्त्व, **सिज्जपडिमाओ** - शय्या पडिमाएं, **वत्थपडिमाओ** - वस्त्र पडिमाएं, **पायपडिमाओ**- पात्र पडिमाएं, **ठाणपडिमाओ** - स्थान पडिमाएं, **जीवफुडा** - जीव से स्पृष्ट, **कम्मुम्मीसगा** - कार्मण मिश्रित, **लोए फुडे** - लोक स्पृष्ट, **पएसग्गेणं** - प्रदेशों की अपेक्षा, **तुल्ला** - तुल्य।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - ह्रीसत्त्व यानी परीषह आदि आने पर लज्जा से उन्हें सहन करता है । ह्रीमनसत्त्व यानी परीषहादि आने पर लज्जा के कारण जो मन को दृढ़ रखता है । चलसत्त्व यानी परीषह आदि आने पर जो चलित हो जाता है और स्थिरसत्त्व यानी परीषह आदि आने पर जो दृढ़ रहता है । चार प्रकार की शय्या पडिमाएं कही गई है । चार प्रकार की वस्त्र पडिमाएं कही गई है। चार प्रकार की पात्र पडिमाएं कही गई है । चार प्रकार की स्थान पडिमाएं कही गई है । चार शरीर जीव से स्पृष्ट कहे गये हैं यथा - वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण । चार शरीर कार्मण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रित कहे गये हैं यथा - औदारिक, वैक्रियक, आहारक और तैजस । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय, इन चार अस्तिकायों से यह लोक स्पृष्ट है । उत्पन्न होती हुई यानी अपर्याप्त अवस्था वाली चार बादर कायों से यह लोक स्पृष्ट कहा गया है यथा - पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय । चार पदार्थ प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य कहे गये हैं यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव ।

विवेचन - ह्री शब्द का अर्थ है - लज्जा और सत्त्व का अर्थ है - सामर्थ्य। सूत्रकार ने जीवों के सत्त्व-सामर्थ्य की अपेक्षा चार प्रकार के पुरुष बतलाये हैं ।

पडिमा (प्रतिमा) का अर्थ है अभिग्रह अर्थात् विशेष प्रकार का अभिग्रह (प्रतिज्ञा) धारण करके उसका पालन करना पडिमा है। शय्या पडिमा, वस्त्र पडिमा, पात्र पडिमा और स्थान पडिमा के चार-चार भेद कहे गये हैं। जिनका विस्तृत वर्णन आचारांग सूत्र में किया गया है।

औदारिक शरीर को छोड़ कर शेष चार शरीर 'जीव स्पृष्ट' कहे गये हैं। जीव स्पृष्ट का अर्थ है - जीव से व्याप्त। जीव के द्वारा त्याग दिये जाने पर जिस शरीर के अवशेषों की सत्ता शेष न रहे उसे यहाँ जीव स्पृष्ट कहा है। जब जीव द्वारा औदारिक शरीर का त्याग किया जाता है तो अवशेष रूप हाड़ मांस का पुतला रह जाता है परन्तु शेष चार शरीरों को जीव द्वारा छोड़ जाने पर इस प्रकार का कोई चिह्न शेष नहीं रहता है। अतः वे चारों जीव स्पृष्ट कहे गये हैं।

कार्मण शरीर शेष चारों शरीरों का मूल (भाजन रूप) है। क्योंकि कर्म ही जन्म से मृत्यु पर्यन्त रहने वाले शरीरों का निमित्त कारण है अतः चारों शरीरों को कार्मण शरीर से मिश्रित बतलाया है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव, असंख्यात प्रदेशी होने के कारण चारों तुल्य कहे गये हैं।

चउण्हमेगं सरीरं णो सुपस्सं भवइ तंजहा - पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं । चत्तारि इंदियत्था पुट्ठा वेएंति तंजहा - सोइंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे, फासिंदियत्थे । चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो संचाएंति बहिया लोगंता गमणयाए तंजहा - गइअभावेणं, णिरुवग्गहयाए, लुक्खत्ताए, लोगाणुभावेणं॥ १८१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **चउण्हं** - चार कायों का, **इंदियत्था** - इन्द्रियार्थ-इन्द्रियों से जाने जाने वाले विषय, **लोगंता** - लोकान्त-लोक के अंत में, **बहिया** - बाहर, **गमणयाए** - जाने में, **गइअभावेणं** - गति के अभाव से, **णिरुवग्गहयाए** - गति में उपकारक का अभाव होने से, **लुक्खत्ताए** - रूक्षता के कारण, **लोगाणुभावेणं**- लोक की मर्यादा होने से।

भावार्थ - चार कायों का एक शरीर अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो सकता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा - पृथ्वीकाय अप्काय तेउकाय और वनस्पतिकाय। चार इन्द्रियार्थ यानी इन्द्रियों से जाने वाले विषय स्पृष्ट होकर यानी इन्द्रियों द्वारा छूए जाने पर जाने जाते हैं यथा - श्रोत्रेन्द्रिय का विषय, घ्राणेन्द्रिय का विषय, जिह्वा इन्द्रिय का विषय और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ।

चार कारणों से जीव और पुद्गल लोक के बाहर जाने में समर्थ नहीं हो सकते हैं यथा - १. गति का अभाव होने से, २. गति में उपकारक धर्मास्तिकाय का अभाव होने से, ३. रूक्षता के कारण यानी लोक के अन्त में पुद्गल इतने रूक्ष हो जाते हैं कि वे फिर आगे जाने में समर्थ नहीं होते हैं और ४. लोक की मर्यादा होने से जीव और पुद्गल अलोक में नहीं जा सकते हैं, जैसे कि सूर्यमण्डल ।

विवेचन - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय का एक शरीर अत्यंत सूक्ष्म होने से आंखों द्वारा देखा नहीं जा सकता है। पृथ्वी, अप, तेज और साधारण वनस्पति के अनेक शरीरों के साथ मिलने से दिखाई देते हैं। कहीं कहीं **'णो सुपस्सं'** के स्थान पर **'णो सुपस्संति'** पाठ है जिसका अर्थ है - आंख से सुखपूर्वक नहीं दिखाई देता है अर्थात् आंख से प्रत्यक्ष दृश्य नहीं है परन्तु अनुमान आदि प्रमाणों से दृश्य है इस प्रकार समझना चाहिये। पांचों ही सूक्ष्म काय के जीवों के एक अथवा अनेक शरीर भी अदृश्य हैं। यहाँ वनस्पति शब्द से साधारण वनस्पति का ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक वनस्पति का एक शरीर तो दिखाई देता है।

चक्षु इन्द्रिय पदार्थ के पास जाकर उसे ग्रहण नहीं करती किन्तु दूर से ही ग्रहण करती है । इसलिए चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी है और शेष चार इन्द्रियां प्राप्यकारी हैं।

चतुर्विध ज्ञात एवं न्याय

चउव्विहे णाए पण्णत्ते तंजहा - आहरणे, आहरण तद्देसे, आहरण तद्दोसे, उवण्णासोवणए । आहरणे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - अवाए, उवाए, ठवणाकम्मे, पडुप्पण्णविणासी । आहरण तद्देसे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - अणुसिट्ठी, उवालंभे, पुच्छा, णिस्सावयणे । आहरण तद्दोसे चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - अधम्मजुत्ते, पडिलोमे, अत्तोवणीए, दुरुवणीए । उवण्णासोवणए चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - तव्वत्थुए, तदण्णवत्थुए, पडिणिभे, हेऊ । हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - जावए, थावए, वंसए, लूसए । अहवा हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - पच्चक्खे, अणुमाणे, ओवम्मे, आगमे । अहवा हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा - अत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, अत्थित्तं णत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं णत्थि सो हेऊ॥ १८२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णाए** - ज्ञात-दृष्टान्त, **आहरणे** - आहरण-अप्रसिद्ध अर्थ की प्रतीति कराना, **आहरणतद्देसे** - आहरण तद्देश, **आहरण तद्दोसे** - आहरण तद्दोष, **उवण्णासोवणए** - उपन्यासोपनय, **अवाए** - अपाय, **उवाए** - उपाय, **ठवणाकम्मे** - स्थापना कर्म, **पडुप्पण्णविणासी** - प्रत्युत्पन्न विनाशी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुसिट्ठी - अनुशास्ति, **उवालंभे** - उपालंभ, **पुच्छा** - पृच्छा, **णिस्सावयणे** - निश्रावचन, **अधम्मजुत्ते**- अधर्मयुक्त, **पडिलोमे** - प्रतिलोम, **अत्तोवणीए** - आत्मोपनीत, **दुरुवणीए** - दुरुपनीत, **तव्वत्थुए** - तद्वस्तु, **तदण्णवत्थुए** - तदन्यवस्तु, **पडिणिभे** - प्रतिनिभ, **जावए** - यापक, **थावए** - स्थापक, **वंसए**- व्यंसक, **लूसए** - लूषक, **पच्चक्खे** - प्रत्यक्ष, **अणुमाणे** - अनुमान, **ओवम्मे** - औपम्य-उपमान, **अत्थित्तं** - अस्तित्व, **णत्थित्तं** - नास्तित्व।

भावार्थ - चार प्रकार का ज्ञात यानी दृष्टान्त कहा गया है यथा - आहरण यानी अप्रसिद्ध अर्थ की प्रतीति कराना, जैसे पाप दुःखरूप है ब्रह्मदत्त के समान । आहरण तद्देश यानी एकदेशीय दृष्टान्त देना, यथा चन्द्रवत् मुख । आहरणतद्दोष यानी दोषयुक्त दृष्टान्त देना । जैसे यह कहना कि 'ईश्वर ने इस जगत् को बनाया है घटपटादिवत् (घड़ा और कपडे के समान)।' यह सदोष दृष्टान्त है क्योंकि जगत् शाश्वत है, इसको किसी ने नहीं बनाया है । उपन्यासोपनय यानी अपना इष्ट अर्थ सिद्ध करने के लिए वादी जो अनुमान दे उसका खण्डन करने के लिए प्रत्यनुमान देना । जैसे किसी ने कहा कि 'आत्मा कर्मों का कर्त्ता नहीं है,' अरूपी होने से, आकाश के समान । इसका उत्तर देना कि - यदि आत्मा आकाश के समान है तो वह सुख दुःख का भोगने वाला भी नहीं होगा आकाशवत् । आहरण चार प्रकार का कहा गया है यथा - अपाय यानी अनर्थ, उपाय, स्थापना कर्म और प्रत्युत्पन्नविनाशी ।

आहरणतद्देश चार प्रकार का कहा गया है यथा - अनुशास्ति यानी सद्गुणों की प्रशंसा करना । उपालम्भ यानी किसी अपराध के लिए उलाहना देना, जैसे कि सती चन्दनबाला ने मृगावती को उलाहना दिया था । पृच्छा यानी प्रश्न पूछना, जैसे कि कोणिक राजा आदि ने भगवान् से प्रश्न पूछे थे। निश्रा वचन यानी किसी एक को लक्षित करके सब शिष्यों को शिक्षा देना । आहरणतद्दोष यानी दोष युक्त दृष्टान्त चार प्रकार का कहा गया है यथा - अधर्मयुक्त यानी जिस दृष्टान्त को सुनने से अधर्मबुद्धि पैदा हो । प्रतिलोम यानी जैसे के प्रति वैसा करना, यथा - शठ के प्रति शठता करना । आत्मोपनीत यानी ऐसा वचन कहना जिससे स्वयं ही दण्ड का भागी होवे । दुरुपनीत यानी ऐसा वचन कहना जिसका अभिप्राय बुरा हो । उपन्यासोपनय चार प्रकार का कहा गया है यथा - तद्वस्तु यानी जैसी वस्तु है वैसा ही दृष्टान्त देना । तदन्यवस्तु यानी उससे दूसरा दृष्टान्त देना। प्रतिनिभ यानी उसके समान वस्तु का कथन करना, जैसे किसी तापस ने कहा कि 'यदि कोई मुझे न सुनी हुई बात सुनावे तो मैं लाख रूपये का सुवर्ण कटोरा इनाम दूँ ।' तापस की बात सुन कर एक सिद्धपुत्र ने कहा कि 'मेरे पिताजी ने तुम्हारे पिता के पास एक लाख रूपये की धरोहर रखी थी । यदि यह बात तुमने कभी पहले सुनी है तब तो मुझे मेरी धरोहर दे दो और यदि नहीं सुनी है तो लाख रूपये का सुवर्ण कटोरा दे दो । यह सुन कर तापस को वह सुवर्ण कटोरा देना पड़ा । हेतु यानी कारण का कथन करना, जैसे किसी ने साधु से पूछा कि यह तपस्या आदि कठिन क्रिया क्यों करते हो ? साधु ने जवाब दिया कि ' कठिन क्रिया किये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता है । हेतु चार प्रकार का कहा गया है यथा - यापक हेतु यानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा हेतु देना जिससे प्रतिवादी सरलता से समझ न सके और समय व्यतीत हो जाय । स्थापक हेतु यानी अपने मन को स्थापित करने के लिए जो हेतु दिया जाय । व्यंसक यानी ऐसा हेतु देना जिसको सुन कर लोग चक्कर में पड़ जाय, यथा - शकटत्तितरी । लूषक यानी धूर्त्त पुरुष के द्वारा दिये गये हेतु का खण्डन करने के लिए वैसा ही हेतु देना। अथवा हेतु चार प्रकार का कहा गया है यथा - प्रत्यक्ष अनुमान, औपम्य यानी उपमान और आगम । अथवा हेतु चार प्रकार का कहा गया है यथा - अस्तित्वास्तित्व हेतु जैसे कि यहाँ पर धूंआ है इसलिए अग्नि भी है । अस्तित्व नास्तित्व हेतु, जैसे कि यहाँ अग्नि है इसलिए यहाँ शीतलता नहीं है । नास्तित्व अस्तित्व हेतु, जैसे कि वहाँ अग्नि नहीं है इसलिए वहाँ शीतलता है । नास्तित्वनास्तित्व हेतु, जैसे कि यहाँ शीशम का वृक्ष नहीं है इसलिए यहाँ वृक्षपना भी नहीं है अथवा यहाँ अग्नि नहीं है इसलिए धूंआ भी नहीं है । इसमें स्वभाव, व्याप्य, कार्य कारण आदि सब हेतुओं का समावेश हो जाता है ।

विवेचन - टीका में इन सब का विस्तृत अर्थ और उदाहरण दिये हैं । विस्तार देखने की रुचि वालों को वहाँ देखना चाहिए ।

संख्यान, अंधकार व प्रकाश के कारण

चउव्विहे संखाणे पण्णत्ते तंजहा - पडिकम्मं, ववहारे, रज्जू, रासी । अहोलोए णं चत्तारि अंधगारं करेंति तंजहा - णरगा, णेरइया, पावाइं कम्माइं, असुभा पोग्गला। तिरिय लोए णं चत्तारि उज्जोअं करेंति तंजहा - चंदा, सूरा, मणि, जोई । उड्ढलोए णं चत्तारि उज्जोअं करेंति तंजहा - देवा, देवीओ, विमाणा, आभरणा॥ १८३ ॥

।। चउट्ठाणस्स तइओ उद्देसो समत्तो ।।

कठिन शब्दार्थ - संखाणे - संख्या, **पडिकम्मे** - परिकर्म, **ववहारो** - व्यवहार, **रज्जू** - रज्जु गणित, **अंधगारं** - अंधकार, **उज्जोअं** - उद्योत, **जोई** - ज्योति, **आभरणा** - आभरण।

भावार्थ - चार प्रकार की संख्या कही गई है यथा - परिकर्म यानी जोड़ आदि, मिश्रक व्यवहार आदि, रज्जु गणित यानी क्षेत्र गणित और राशि अर्थात् त्रैराशिक पञ्चराशिक आदि । अधोलोक में चार पदार्थ अन्धकार करते हैं यथा - नरक, नारकी जीव, पापकर्म और अशुभ पुद्गल । तिर्च्छालोक में चार पदार्थ उद्योत करते हैं यथा - चन्द्र, सूर्य, मणि और ज्योति यानी अग्नि । ऊर्ध्वलोक में चार पदार्थ उद्योत करते हैं यथा - देव, देवियाँ, विमान और आभरण (आभूषण)।

विवेचन - 'संख्यायते गण्यतेऽनेनेति संख्यानं गणितमित्यर्थः'' - जिसके द्वारा गणना की जाए उसे संख्या गणित कहा जाता है चार प्रकार की संख्या कही है ।

१. परिकर्म - जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि पद्धतियों को परिकर्म कहते हैं।

२. व्यवहार - दर्जन, नाप, तोल आदि से वस्तुओं का हिसाब लगाना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. रज्जु - इंच, फुट, गज, मीटर आदि ।

४. राशि - त्रैराशिक, पंचराशिक आदि।

अधोलोक ऊर्ध्वलोक और तिर्च्छा लोक में चार-चार पदार्थ अंधकार तथा प्रकाश करने वाले कहे गये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पापकर्म, अशुभ पुद्गल अंधकार करने वाले हैं और पुण्य कर्म और शुभ पुद्गल उद्योत करने वाले हैं।

।। चौथे स्थान का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

चौथे स्थान का चौथा उद्देशक

चार प्रसर्पक

चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता तंजहा - अणुप्पण्णाणं भोगाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए। पुव्वुप्पण्णाणं भोगाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए। अणुप्पण्णाणं सोक्खाणं उप्पाइत्ता एगे पसप्पए। पुव्वुप्पण्णाणं सोक्खाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए।

नैरयिक आदि के आहार

णेरइयाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - इंगालोवमे, मुम्मुरोवमे, सीयले, हिमसीयले । तिरिक्खजोणियाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - कंकोवमे, बिलोवमे, पाणमंसोवमे, पुत्तमंसोवमे । मणुस्साणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - असणे, पाणे, खाइमे, साइमे । देवाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - वण्णमंते, गंधमंते, रसमंते, फासमंते ।

जाति आशीविष

चत्तारि जाइआसीविसा पण्णत्ता तंजहा - विच्छुय जाइआसीविसे, मंडुक्क जाइ आसीविसे, उरग जाइ आसीविसे, मणुस्स जाइ आसीविसे । विच्छुय जाइ आसीविसस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ? पभू णं विच्छुय जाइ आसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए, विसए से विसट्टत्ताए णो चेव णं संपत्तीए करिंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा । मंडुक्क जाइ

आसीविसस्स पुच्छा । पभू णं मंडुक्कजाइ आसीविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणयं विसट्टमाणिं सेसं तं चेव जाव करिस्संति वा । उरगजाइ आसीविसस्स पुच्छा । पभूणं उरगजाइ आसीविसे जंबूद्दीवप्पमाणमित्तं बोंदिं विसेणं सेसं तं चेव जाव करेस्संति वा । मणुस्सजाइ आसीविसस्स पुच्छा । पभूणं मणुस्सजाइ आसीविसे समयखेत्तप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणयं विसट्टमाणिं करेत्तए, विसए से विसट्टत्ताए णो चेव णं जाव करिस्संति वा॥ १८४॥

कठिन शब्दार्थ - **पसप्पगा** - प्रसर्पक, **अणुप्पण्णाणं** - अनुत्पन्न-अप्राप्त, **उप्पाएत्ता** - प्राप्त करने का उद्यम करने वाला, **पुव्वुप्पण्णाणं** - पूर्व उत्पन्न-प्राप्त, **सोक्खाणं** - सुख के लिए, **अविप्पओगेणं**- अविप्रयोग-रक्षा के लिए उद्यम करने वाला, **इंगालोवमे** - अग्नि सरीखा, **मुम्मुरोवमे** - मुर्मुर-भोभर सरीखा, **कंकोवमे** - कंकोपम, **बिलोवमे** - बिलोपम, **पाणमंसोवमे** - मातङ्गमांसोपम, **जाइ आसीविसा**- जाति आशीविष, **मंडुक** - मेंढक, **उरग** - सर्प, **विच्छुय** - बिच्छू, **विसपरिणयं** - विष परिणत, **विसट्टमाणिं** - फैले हुए, **बोंदिं** - शरीर को, **समयखेत्तप्पमाणमेत्तं** - समय क्षेत्र परिमाण।

भावार्थ - चार प्रकार के प्रसर्पक कहे गये हैं यथा - अनुत्पन्न यानी अप्राप्त भोगों को प्राप्त करने का उदयम करने वाला, यह एक प्रसर्पक है। पूर्व उत्पन्न यानी प्राप्त भोगों के अविप्रयोग यानी रक्षा के लिए उदयम करने वाला, एक प्रसर्पक है। अनुत्पन्न यानी अप्राप्त सुख के लिए उदयम करने वाला, एक प्रसर्पक है । पहले से प्राप्त हुए सुख की रक्षा के लिए प्रयत्न करने वाला, एक प्रसर्पक है ।

नारकी के जीवों का चार प्रकार का आहार कहा गया है यथा - अग्नि सरीखा, मुर्मुर यानी अग्निकण - भोभर सरीखा, शीतल और बर्फ के समान शीतल। तिर्यञ्चों का आहार चार प्रकार का कहा गया है यथा - कंकोपम - जैसे कंक पक्षी को मुश्किल से हजम होने वाला आहार भी सुभक्ष होता है और सुख से हजम हो जाता है । इसी प्रकार तिर्यञ्च का सुभिक्ष और सुखकारी परिणाम वाला आहार कंकोपम आहार है । बिलोपम - जो आहार बिल की तरह गले में रस का स्वाद दिये बिना ही शीघ्र ही उतर जाता है वह बिलोपम आहार है । पाण यानी मातङ्गमांसोपम - जैसे अस्पृश्य होने से चाण्डाल का मांस घृणा के कारण बड़ी मुश्किल से खाया जाता है वैसे ही जो आहार मुश्किल से खाया जा सके वह मातङ्ग मांसोपम आहार है । पुत्रमांसोपम, जैसे स्नेह होने से पुत्र का मांस बहुत ही कठिनाई के साथ खाया जाता है । इसी प्रकार जो आहार बहुत ही मुश्किल से खाया जाय वह पुत्रमांसोपम आहार है । मनुष्य का आहार चार प्रकार का कहा गया है यथा - अशन यानी दाल रोटी भात आदि आहार, पान यानी पानी आदि पेय पदार्थ । खादिम यानी फल मेवा आदि, स्वादिम यानी पान, सुपारी, इलायची आदि। देवों का आहार चार प्रकार का कहा गया है यथा - शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श वाला आहार होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार प्रकार के जाति आशीविष कहे गये हैं यथा - वृश्चिक यानी विच्छू जाति आशीविष, मेंढक जाति आशीविष, उरग यानी सर्प जाति आशीविष और मनुष्य जाति आशीविष । हे भगवन्! विच्छू के जाति आशीविष का विषय कितना कहा गया है ? भगवान् उत्तर फरमाते हैं कि अर्द्धभरत-प्रमाण मात्र यानी २६३ योजन से कुछ अधिक फैले हुए शरीर को विच्छू जाति का आशीविष अपने विष से विषपरिणत करने में समर्थ है। इतना उसके विष का विषय है। किन्तु इस प्रकार का शरीर प्राप्त करके आज तक इतना विष किसी ने किया नहीं और न करते हैं तथा आगामी काल में भी कोई नहीं करेगा । मेंढक जाति के आशीविष का कितना विषय है? मेंढक जाति का आशीविष सम्पूर्ण भरत क्षेत्र प्रमाण फैले हुए शरीर को अपने विष से विषपरिणत करने में समर्थ है। किन्तु आज तक ऐसा किसी ने न तो किया है, न करता है और न करेगा। उरग जाति आशीविष का कितना विषय है ? उरग जाति आशीविष जम्बूद्वीप प्रमाण शरीर को अपने विष से विषपरिणत कर सकता है किन्तु ऐसा कभी किसी ने न तो किया है, न करता है और न करेगा। मनुष्य जाति आशीविष का कितना विषय है? मनुष्य जाति आशीविष समय क्षेत्र प्रमाण यानी अढाई द्वीप प्रमाण फैले हुए शरीर को विष से विषपरिणत करने में समर्थ है। इतना उसके विष का विषय है किन्तु कभी किसी ने न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

विवेचन - प्रसर्पक - जो भोगादि सुखों के लिए उदयम करते हैं उन्हें प्रसर्पक कहते हैं । प्रसर्पक चार प्रकार के कहे गये हैं। संसारी प्राणी सुखों के भोग की प्राप्ति के लिये और प्राप्त सुखों की रक्षा के लिये दिन रात प्रयत्नशील रहते हैं। भोगों का मुख्य साधन धन है। धन के लोभी मनुष्यों की स्थिति बताते हुए टीकाकार कहते हैं-

धावेइ रोहणं तरइ, सागरं भमइ गिरि निगुंजेसु।
मारेइ बंधव पि हु पुरिसो जो होज्ज (इ) धणलुद्धो॥
अडइ बहुं वहइ भरं, सहइ छुहं पावमायरइ धिट्ठो।
कुल सील जाइ पच्चयट्ठिइं च लोभहुओ चयइ॥

- जो मनुष्य धन का लोभी होता है वह वनों में घूमता है, पर्वतों पर चढ़ता है, समुद्र यात्रा करता है पर्वत की गुफाओं में भटकता है और भाई को भी मार डालता है। लोभ के वशीभूत हो कर सर्वत्र भटकता है भार को ढोता है, भूख प्यास को सहन करता है। पापाचरण करने में संकोच नहीं करता है लोभ में आसक्त और धृष्ट-निर्लज्ज बना हुआ कुल, शील-सदाचार और जाति की मर्यादा को भी छोड़ देता है।

सुखोपभोग में आसक्त जीव कर्म बांध कर नरकादि दुर्गतियों में उत्पन्न होता है अतः सूत्रकार नरक आदि चारों गतियों का आहार बताते हैं।

नैरयिक जीव चार प्रकार का आहार करते हैं - १. अल्प काल के लिये दाहक होने से अंगारों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समान आहार २. दीर्घ काल के लिये दाहक होने से भोभर के समान आहार ३. शीत वेदना का उत्पादक होने से शीत आहार और ४. अत्यंत शीत वेदना कारक होने से हिम शीतल आहार। प्रथम दो प्रकार का आहार शीतयोनिक नैरयिकों का होता है और शेष दो प्रकार का आहार उष्णयोनिक नैरयिकों का होता है। तीसरी नरक तक उष्ण वेदना दायक अंगारोपम तथा भोमर तुल्य आहार होता है, चौथी, पांचवी नरकों में शीतयोनिकों के उष्णाहार एवं उष्णयोनिकों के शीताहार होता है तथा छठी, सातवीं नरकों में शीत आहार ही होता है।

तिर्यंच चार प्रकार का आहार करते हैं - १. कंकोपम - कंकपक्षी के आहार की तरह सुभक्ष्य एवं सुपाच्य आहार २. बिलोपम - बिल की तरह गले में बिना स्वाद के शीघ्र उतरने वाला आहार ३. पाणमांसोपम - चांडाल के मांस की तरह घृणित आहार ४. पुत्र मांसोपम - पुत्र के मांस की तरह खाने में अत्यंत कठिन आहार।

मनुष्य का आहार चार प्रकार का होता है - १. अशन २. पान ३. खादिम और ४. स्वादिम।

देव शुभ वर्ण, शुभ गंध, शुभ रस और शुभ स्पर्श वाले पदार्थों का आहार करते हैं।

आशी शब्द का अर्थ है दाढ़, जिसकी दाढाओं में विष रहता है उसे आशीविष कहते हैं। आशीविष के दो भेद कहे हैं - १. जाति आशीविष - जिन प्राणियों में जन्म जात विष है वे जाति आशीविष कहलाते हैं और २. कर्म आशीविष - जिन प्राणियों में कर्मजन्य विष हो उन्हें कर्म आशीविष कहते हैं। जाति आशीविष मनुष्य और तिर्यंच में होता है जबकि कर्म आशीविष मनुष्य, तिर्यंच और देवों में होता है।

व्याधि, चिकित्सा, चिकित्सक, पुरुष और व्रण भेद

चउव्विहा वाही पण्णत्ता तंजहा - वाइए, पित्तिए, सिंभिए, सण्णिवाइए। चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता तंजहा - विज्जा, ओसहाइं, आउरे, परिचारए। चत्तारि तिगिच्छगा पण्णत्ता तंजहा - आयतिगिच्छगे णाममेगे णो परतिगिच्छगे, परतिगिच्छगे णाममेगे णो आयतिगिच्छगे, एगे आयतिगिच्छगे वि परतिगिच्छगे वि, एगे णो आयतिगिच्छगे णो परतिगिच्छगे।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - वणकरे णाममेगे णो वणपरिमासी, वणपरिमासी णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरे वि वणपरिमासी वि, एगे णो वणकरे णो वणपरिमासी। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - वणकरे णाममेगे णो वणसारक्खी, वणसारक्खी णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरे वि वणसारक्खी वि, एगे णो वणकरे णो वणसारक्खी। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - वणकरे णामगे णो वणसंरोही, वणसंरोही णाममेगे णो वणकरे एगे वणकरे वि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वणसंरोही वि, एगे णो वणकरे णो वणसंरोही । चत्तारि वणा पण्णत्ता तंजहा - अंतोसल्ले णाममेगे णो बाहिंसल्ले, बाहिंसल्ले णाममेगे णो अंतोसल्ले, एगे अंतोसल्ले वि बाहिंसल्ले वि, एगे णो अंतोसल्ले णो बाहिंसल्ले । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अंतोसल्ले णाममेगे णो बाहिंसल्ले चउब्भंगो । चत्तारि वणा पण्णत्ता तंजहा - अंतो दुट्ठे णाममेगे णो बाहिंदुट्ठे, बाहिंदुट्ठे णाममेगे णो अंतोदुट्ठे, एगे अंतोदुट्ठे वि बाहिंदुट्ठे वि, एगे णो अंतोदुट्ठे णो बाहिंदुट्ठे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अंतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिंदुट्ठे चउब्भंगो । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सेयंसे णाममेगे सेयंसे, पावंसे णाममेगे पावंसे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सेयंसे णाममेगे सेयंसे त्ति सालिसए, सेयंसे णाममेगे पावंसे त्ति सालिसए, पावंसे णाममेगे सेयंसे त्ति सालिसए, पावंसे णाममेगे पावंसे त्ति सालिसए । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सेयंसे णाममेगे सेयंसे त्ति मण्णइ, सेयंसे णाममेगे पावंसे त्ति मण्णइ, पावंसे णाममेगे सेयंसे त्ति मण्णइ पावंसे णाममगे पावंसे त्ति मण्णइ । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सेयंसे णाममेगे सेयंसे त्ति सालिसए मण्णइ, सेयंसे णाममेगे पावंसे त्ति सालिसए मण्णइ, पावंसे णाममेगे सेयंसे त्ति सालिसए मण्णइ, पावंसे णाममेगे पावंसेत्ति सालिसए मण्णइ ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आघवइत्ता णाममेगे णो परिभावइत्ता, परिभावइत्ता णाममेगे णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्ता वि परिभावइत्ता वि, एगे णो आघवइत्ता णो परिभावइत्ता । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आघवइत्ता णाममेगे णो उंछजीविसंपण्णे, उंछजीविसंपण्णे णाममेगे णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्ता वि उंछजीविसंपण्णे वि, एगे णो आघवइत्ता णो उंछजीविसंपण्णे । चउव्विहा रुक्खविगुव्वणा पण्णत्ता तंजहा - पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए॥ १८५॥

कठिन शब्दार्थ - **वाही** - व्याधि, **वाइए** - वातिक-वात सम्बन्धी, **पित्तिए** - पैत्तिक-पित्त सम्बन्धी, **सिंभिए** - श्लेष्मिक-कफ संबंधी, **सण्णिवाइए** - सान्निपातिक, **तिगिच्छा** - चिकित्सा, **विज्जा** - विद्या, **ओसहाइं** - औषधियाँ, **आउरे** - आतुर, **परिचारए** - परिचारक, **तिगिच्छगा** - चिकित्सक, **आयतिगिच्छगे** - आत्मचिकित्सक-अपनी चिकित्सा करने वाला, **परतिगिच्छगे** - परचिकित्सक-दूसरों की चिकित्सा करने वाला, **वणकरे** - व्रण-छेद करने वाला, **वणपरिमासी** - व्रण परिमर्शी-व्रण का स्पर्श करने वाला, **वणसारक्खी** - व्रण संरक्षी-व्रण की रक्षा करने वाला, **वणसंरोही** - व्रण को भरने वाला,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेयंसे- श्रेष्ठ, **पावंसे** - पापी, **आघवइत्ता** - प्ररूपक, **परिभावइत्ता** - प्रभावक, **उंछजीविसंपण्णे** - उञ्छ जीविका सम्पन्न-एषणा आदि समिति का गवेषक, **पवालत्ताए** - प्रवाल रूप से, **रुक्खविगुव्वणा**- वृक्ष विकुर्वणा।

भावार्थ - चार प्रकार की व्याधि कही गई है यथा - वातसम्बन्धी, पित्तसम्बन्धी, कफसम्बन्धी और सान्निपातिक । चार प्रकार की चिकित्सा कही गई है यथा - विद्या, औषधि, आतुर यानी रोगी का वैद्य के प्रति विश्वास और परिचारक यानी रोगी की अच्छी तरह सेवा करना । चार प्रकार के चिकित्सक यानी इलाज करने वाले कहे गये हैं यथा - कोई वैद्य अपनी ही चिकित्सा करता है किन्तु दूसरों की चिकित्सा नहीं करता है । कोई एक वैद्य दूसरों की चिकित्सा करता है किन्तु अपनी चिकित्सा नहीं करता है । कोई एक वैद्य अपनी चिकित्सा भी करता है और दूसरों की चिकित्सा भी करता है । कोई एक वैद्य न तो अपनी चिकित्सा करता है और न दूसरों की चिकित्सा करता है ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक अपने शरीर का खून निकालने के लिए व्रण यानी छेद करता है किन्तु उस व्रण का स्पर्श नहीं करता है । कोई एक व्रण का स्पर्श करता है किन्तु स्वयं व्रण नहीं करता है । कोई एक स्वयं व्रण करता है और उसका स्पर्श भी करता है । कोई एक न तो स्वयं व्रण करता है और न उसका स्पर्श करता है । इसी प्रकार भाव व्रण यानी अतिचार सम्बन्धी चार भांगे होते हैं । यथा - कोई अतिचार सेवन करता है किन्तु उसकी आलोचना कर लेने से तथा उसका बारबार स्मरण न करने से पापबन्ध नहीं करता है कोई स्वयं तो अतिचार सेवन नहीं करता है किन्तु दूसरे के द्वारा अतिचार लगा कर लाये हुए आहार को भोग कर पापबन्ध करता है । कोई स्वयं अतिचार का सेवन भी करता है और उस सम्बन्धी पापबन्ध भी करता है । कोई न तो अतिचार का सेवन करता है और न उस सम्बन्धी पाप का बन्ध ही करता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा- कोई एक पुरुष स्वयं व्रण करता है किन्तु उसके ऊपर पट्टी आदि बांधकर उसकी रक्षा नहीं करता है । कोई एक पुरुष दूसरे के द्वारा किये हुए व्रण पर पट्टी आदि बांध कर उसकी रक्षा करता है किन्तु स्वयं व्रण नहीं करता है । कोई एक पुरुष स्वयं व्रण करता है और उसकी रक्षा भी करता है । कोई एक पुरुष न तो स्वयं व्रण करता है और न उसकी रक्षा करता है । इसी प्रकार अतिचारों की अपेक्षा भी चौभङ्गी होती है । यथा - कोई एक स्वयं अतिचार सेवन करता है और नियाणा करके उसकी रक्षा करता है । कोई एक पूर्वकृत नियाणा की रक्षा करता है किन्तु अब नवीन अतिचारों का सेवन नहीं करता है । कोई एक अतिचारों का सेवन भी करता है और नियाणा करके उनकी रक्षा भी करता है । कोई एक न तो अतिचारों का सेवन करता है और न नियाणा आदि करके उनकी रक्षा करता है ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष स्वयं व्रण करता है किन्तु औषधि आदि से उस व्रण को भरता नहीं है । कोई एक पुरुष दूसरों के द्वारा किये हुए व्रण को भरता है किन्तु स्वयं व्रण नहीं करता है । कोई एक पुरुष स्वयं व्रण करता है और उसको औषधि आदि द्वारा भरता भी है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक पुरुष न तो व्रण करता है और न उसे भरता है । इसी प्रकार अतिचार सम्बन्धी चौभङ्गी होती है। यथा- कोई एक साधु अतिचार का सेवन करता है किन्तु प्रायश्चित्त लेकर उसकी शुद्धि नहीं करता है। कोई एक साधु पूर्वकृत अतिचारों की शुद्धि करता है और नवीन अतिचारों का सेवन नहीं करता है। कोई अतिचारों का सेवन भी करता है और प्रायश्चित्त द्वारा उसकी शुद्धि भी करता है । कोई एक न तो अतिचारों का सेवन करता है और न उनकी शुद्धि करता है । चार प्रकार के व्रण यानी घाव कहे गये हैं यथा - किसी एक व्रण में अन्दर शल्य होता है किन्तु बाहर शल्य नहीं होता है । किसी एक व्रण में बाहर शल्य होता है किन्तु अन्दर शल्य नहीं होता है । किसी व्रण में अन्दर भी शल्य होता है और बाहर भी शल्य होता है । किसी में न तो अन्दर शल्य होता है और न बाहर शल्य होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु गुरु के सामने आलोचना न करने से अन्दर शल्य वाला होता है किन्तु बाहर शल्य वाला नहीं है । इस तरह चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के घाव कहे गये हैं यथा - कोई एक घाव अन्तर्दुष्ट यानी अन्दर बहुत दुःख देने वाला होता है किन्तु बाहर दुःख देने वाला नहीं होता है। कोई एक घाव बाहर दुःख देने वाला होता है किन्तु अन्दर दुःख देने वाला नहीं होता है । कोई एक अन्दर भी दुःख देने वाला होता है और बाहर भी दुःख देने वाला होता है । कोई एक न तो अन्दर दुःख देने वाला होता है और न बाहर दुःख देने वाला होता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष अन्दर दुष्ट होता है किन्तु बाहर दुष्ट नहीं होता है । इस तरह चौभङ्गी कह देनी चाहिए।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से श्रेष्ठ होता है और भाव से भी श्रेष्ठ होता है । कोई एक पुरुष द्रव्य से श्रेष्ठ होता है किन्तु भाव से पापी होता है । कोई एक पुरुष द्रव्य से पापी होता है किन्तु भाव से श्रेष्ठ होता है । कोई एक पुरुष द्रव्य से पापी होता है और भाव से भी पापी होता है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष स्वयं भाव से श्रेष्ठ है और द्रव्य से भी दूसरे श्रेष्ठ पुरुष के समान है । कोई एक पुरुष भाव से स्वयं श्रेष्ठ है किन्तु द्रव्य से पापी के समान प्रतीत होता है । कोई एक पुरुष स्वयं भाव से पापी है किन्तु द्रव्य से श्रेष्ठ के समान प्रतीत होता है । कोई एक पुरुष स्वयं भाव से पापी है और द्रव्य से भी पापी के समान प्रतीत होता है । अथवा कोई एक पुरुष गृहस्थवास में श्रेष्ठ था और दीक्षा लेने के बाद भी श्रेष्ठ रहा । कोई पहले श्रेष्ठ था किन्तु पीछे पापी बन गया । कोई पहले पापी था किन्तु पीछे श्रेष्ठ बन गया । कोई पहले भी पापी था और पीछे भी पापी ही बना रहा । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष स्वयं श्रेष्ठ है और लोग भी उसे श्रेष्ठ मानते हैं । कोई एक पुरुष स्वयं श्रेष्ठ है किन्तु लोग उसे पापी मानते हैं । कोई एक पुरुष स्वयं पापी है किन्तु लोग उसे श्रेष्ठ मानते हैं । कोई एक पुरुष स्वयं पापी है और लोग भी उसे पापी मानते हैं । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष स्वयं श्रेष्ठ है और लोगों के द्वारा भी वह श्रेष्ठ के समान माना जाता है । कोई एक पुरुष स्वयं श्रेष्ठ है किन्तु लोगों द्वारा वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पापी के समान माना जाता है । कोई एक पुरुष स्वयं पापी है किन्तु लोगों द्वारा वह श्रेष्ठ के समान माना जाता है । कोई एक पुरुष स्वयं पापी है किन्तु लोगों के द्वारा वह श्रेष्ठ के समान माना जाता है । कोई एक पुरुष स्वयं पापी है और लोगों के द्वारा भी वह पापी ही माना जाता है ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक साधु सिद्धान्त का प्ररूपक है किन्तु क्रिया शुद्ध नहीं होने से जिनशासन का प्रभावक नहीं है। कोई एक जिनशासन का प्रभावक है किन्तु सिद्धान्त का प्ररूपक नहीं है । कोई एक सिद्धान्त का प्ररूपक भी है और प्रभावक भी है । कोई एक न तो सिद्धान्त का प्ररूपक है और न प्रभावक है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष सिद्धान्त का प्ररूपक है किन्तु एषणा आदि समिति का गवेषक नहीं है । कोई एक एषणा आदि समिति का गवेषक है किन्तु सिद्धान्त का प्ररूपक नहीं है । कोई एक पुरुष सिद्धान्त का प्ररूपक भी है और एषणा आदि समिति का गवेषक भी है । कोई एक पुरुष न तो सिद्धान्त का प्ररूपक है और न एषणा आदि समिति का गवेषक है ।

चार प्रकार की वृक्ष विकुर्वणा कही गई है यथा - प्रवाल यानी नये अङ्कुर रूप से, पत्ते रूप से, फूल रूप से और फलरूप से ।

विवेचन - चार प्रकार की व्याधि (रोग) कही गयी है - १. वात की व्याधि-वायु से उत्पन्न रोग २. पित्त की व्याधि ३. कफ की व्याधि और ४. सन्निपातज व्याधि। रोग को समूल नष्ट करना अथवा उपशान्त करना चिकित्सा है। चिकित्सा के चार अंग है - १. वैद्य २. औषध ३. रोगी और ४. परिचारक। द्रव्य रोग की तरह मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और अशुभयोग ये भाव रोग हैं। इनसे कर्म रूपी बीमारी उत्पन्न होती है और बढ़ती है। ज्ञानियों ने मोह रूप भाव बीमारी को दूर करने के उपाय इस प्रकार बताये हैं -

निव्विगइ निब्बलोमे तव उद्धट्ठाणमेव उब्भामे।
वेयावच्चाहिंडण, मंडलि कप्पट्ठियाहरणं॥

- १. निर्विकृति - विगय का त्याग करे २. चने आदि का अरस निरस निर्बल आहार करे ३. आयंबिल आदि तप करे ४. ऊणोदरी करे ५. कायोत्सर्ग करे ६. भिक्षाचर्या करे ७. वैयावृत्य करे ८. नवकल्पी विहार करे ९. सूत्रार्थ की मंडली में प्रवेश करे-शास्त्रों का अध्ययन, अध्यापन करे, यह मोह रोग की चिकित्सा है।

वादियों के समोसरण

चत्तारि वाइसमोसरणा पण्णत्ता तंजहा - किरियावाई, अकिरियावाई, अण्णाणियावाई, वेणइयावाई । णेरइया णं चत्तारि वाइसमोसरणा पण्णत्ता तंजहा - किरियावाई जाव वेणइयावाई । एवमसुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं॥ १८६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ – **वाइसमोसरणा** – वादियों के समवसरण, **किरियावाई** – क्रियावादी, **अकिरियावाई** – अक्रियावादी, **अण्णाणियावाई** – अज्ञानवादी, **वेणइयावाई** – विनयवादी।

भावार्थ – चार प्रकार के वादियों के समवसरण कहे गये हैं यथा – क्रियावादी, अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी । क्रियावादी के १८०, अक्रियावादी के ८४, अज्ञानवादी के ६७ और विनयवादी के ३२, ये कुल मिला कर ३६३ पाखण्डियों के मत हैं । नैरयिकों में चार वादी समवसरण कहे गये हैं यथा – क्रियावादी यावत् विनयवादी । विकलेन्द्रिय यानी एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय को छोड़ कर असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक यावत् वैमानिक देवों तक इसी तरह चार वादी-समवसरण होते हैं ।

विवेचन – आगमों में **"समोसरणं"** शब्द का प्रयोग आता है जिसका अर्थ है समवसरण अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् का, गणधरों का, आचार्यों का एवं सामान्य साधुओं का पदार्पण (पधारना) होता है किन्तु यहाँ पर यह अर्थ नहीं है। यहाँ पर तो अन्य तीर्थिक (अन्य मतावलम्बी) का समूह अतः वादी समवसरण का अर्थ है ३६३ पाखण्डी मत का समुदाय।

वादी के चार भेद – १. क्रिया वादी २. अक्रिया वादी ३. विनय वादी ४. अज्ञान वादी।

१. क्रिया वादी – इसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएं हैं। यथा –

१. कर्त्ता के बिना क्रिया संभव नहीं है। इसलिए क्रिया के कर्त्ता रूप से आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले क्रियावादी हैं।

२. क्रिया ही प्रधान है और ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार क्रिया को प्रधान मानने वाले क्रियावादी हैं।

३. जीव अजीव आदि पदार्थों के अस्तित्व को एकान्त रूप से मानने वाले क्रियावादी हैं। क्रियावादी के १८० भेद हैं –

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन नव पदार्थों के स्व और पर से १८ भेद हुए। इन अठारह के नित्य, अनित्य रूप से ३६ भेद हुए। इन में से प्रत्येक काल, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा की अपेक्षा पाँच पाँच भेद करने से १८० भेद हुए। जैसे जीव, स्व रूप से काल की अपेक्षा नित्य है। जीव स्वरूप से काल की अपेक्षा अनित्य है। जीव पररूप से काल की अपेक्षा नित्य है। जीव पर रूप से काल की अपेक्षा अनित्य है। इस प्रकार काल की अपेक्षा चार भेद हैं। इसी प्रकार नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा की अपेक्षा जीव के चार चार भेद होते हैं। इस तरह जीव आदि नव तत्त्वों के प्रत्येक के बीस बीस भेद होते हैं। इस प्रकार कुल १८० भेद होते हैं।

२. अक्रियावादी – अक्रियावादी की भी अनेक व्याख्याएं हैं। यथा –

१. किसी भी अनवस्थित पदार्थ में क्रिया नहीं होती है। यदि पदार्थ में क्रिया होगी तो वह अनवस्थित न होगा। इस प्रकार पदार्थों को अनवस्थित मान कर उसमें क्रिया का अभाव मानने वाले अक्रियावादी कहलाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. क्रिया की क्या जरूरत है? केवल चित्त की पवित्रता होनी चाहिए। इस प्रकार ज्ञान ही से मोक्ष की मान्यता वाले अक्रियावादी कहलाते हैं।

३. जीवादि के अस्तित्व को न मानने वाले अक्रियावादी कहलाते हैं। अक्रियावादी के ८४ भेद होते हैं। यथा -

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों के स्व और पर के भेद से १४ भेद होते हैं। काल, यदृच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन छहों की अपेक्षा १४ भेदों का विचार करने से ८४ भेद होते हैं। जैसे जीव स्वतः काल से नहीं है। जीव परतः काल से नहीं है। इस प्रकार काल की अपेक्षा जीव के दो भेद होते हैं। काल की तरह यदृच्छा, नियति आदि की अपेक्षा भी जीव के दो दो भेद होते हैं। इस प्रकार जीव के १२ भेद होते हैं। जीव की तरह शेष तत्त्वों के भी बारह बारह भेद होते हैं। इस तरह कुल ८४ भेद होते हैं।

३. अज्ञानवादी - जीवादि अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने वाला कोई नहीं है। न उनके जानने से कुछ सिद्धि ही होती है। इसके अतिरिक्त समान अपराध में ज्ञानी को अधिक दोष माना है और अज्ञानी को कम। इसलिए अज्ञान ही श्रेय रूप है। ऐसा मानने वाले अज्ञानवादी हैं।

अज्ञानवादी के ६७ भेद होते हैं। यथा -

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नव तत्त्वों के सद्, असद्, सदसद्, अवक्तव्य, सदवक्तव्य, असदवक्तव्य, सदसदवक्तव्य इन सात भांगों से ६३ भेद होते हैं और उत्पत्ति के सद्, असद् और अवक्तव्य की अपेक्षा से चार भंग हुए। इस प्रकार ६७ भेद अज्ञान वादी के होते हैं। जैसे जीव सद् है यह कौन जानता है? और इसके जानने का क्या प्रयोजन है?

४. विनयवादी - स्वर्ग, अपवर्ग आदि के कल्याण की प्राप्ति विनय से ही होती है। इसलिए विनय ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार विनय को प्रधान रूप से मानने वाले विनयवादी कहलाते हैं।

विनयवादी के ३२ भेद होते हैं -

देव, राजा, यति, ज्ञाति, स्थविर, अधम, माता और पिता इन आठों का मन, वचन, काया और दान, इन चार प्रकारों से विनय होता है। इस प्रकार आठ को चार से गुणा करने से ३२ भेद होते हैं। ये चारों वादी मिथ्या दृष्टि हैं।

क्रियावादी जीवादि पदार्थों के अस्तित्व को ही मानते हैं। इस प्रकार एकान्त अस्तित्व को मानने से इनके मत में पररूप की अपेक्षा से नास्तित्व नहीं माना जाता है। पररूप की अपेक्षा से वस्तु में नास्तित्व न मानने से वस्तु में स्वरूप की तरह पररूप का भी अस्तित्व रहने से एक ही वस्तु सर्वरूप हो जायगी। जो कि प्रत्यक्ष बाधित है। इस प्रकार क्रियावादियों का मत मिथ्यात्व पूर्ण है।

अक्रियावादी जीवादि पदार्थ को नहीं मानते हैं। इस प्रकार असद्भूत अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। इसलिए वे भी मिथ्या दृष्टि हैं। एकान्त रूप से जीव के अस्तित्व का प्रतिषेध करने से उनके मत में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निषेध कर्त्ता का भी अभाव हो जाता है। निषेध कर्त्ता के अभाव से सभी का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

अज्ञानवादी अज्ञान को ही श्रेय मानते हैं। इसलिए वे भी मिथ्या दृष्टि हैं और उनका कथन स्ववचन बाधित है। क्योंकि "अज्ञान श्रेय है" यह बात भी वे बिना ज्ञान के कैसे जान सकते हैं और बिना ज्ञान के वे अपने मत का समर्थन भी कैसे कर सकते हैं ? इस प्रकार अज्ञान की श्रेयता बताते हुए उन्हें ज्ञान का आश्रय लेना ही पड़ता है।

केवल विनय से ही स्वर्ग, मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले विनयवादी मिथ्या दृष्टि हैं। क्योंकि ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष की प्राप्ति होती है। केवल ज्ञान या केवल क्रिया से नहीं। ज्ञान को छोड़कर एकान्त रूप से केवल क्रिया के एक अङ्ग का आश्रय लेने से वे सत्यमार्ग से दूर हैं।

मेघ और पुरुष, माता-पिता, राजा

चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्ता वि वासित्ता वि, एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता । चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - गज्जित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्ता वि विज्जुयाइत्ता वि, एगे णो गज्जित्ता णो विज्जुयाइत्ता । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - गज्जित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता । चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - वासित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो वासित्ता, एगे वासित्ता वि विज्जुयाइत्ता वि, एगे णो वासित्ता णो विज्जुयाइत्ता । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - वासित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता । चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - कालवासी णाममेगे णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे णो कालवासी, एगे कालवासी वि अकालवासी वि, एगे णो कालवासी णो अकालवासी । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - कालवासी णाममेगे णो अकालवासी । चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासी वि अखेत्तवासी वि, एगे णो खेत्तवासी णो अखेत्तवासी । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा-खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी । चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - जणइत्ता णाममेगे णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे णो जणइत्ता, एगे जणइत्ता वि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिम्मवइत्ता वि, एगे णो जणइत्ता णो णिम्मवइत्ता । एवामेव चत्तारि अम्मापियरो पण्णत्ता तंजहा - जणइत्ता णाममेगे णो णिम्मवइत्ता । चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - देसवासी णाममेगे णो सव्ववासी, सव्ववासी णाममेगे णो देसवासी, एगे देसवासी वि सव्ववासी वि, एगे णो देसवासी णो सव्ववासी । एवामेव चत्तारि रायाणो पण्णत्ता तंजहा - देसाहिवई णाममेगे णो सव्वाहिवई, सव्वाहिवई णाममेगे णो देसाहिवई, एगे देसाहिवई वि सव्वाहिवई वि । एगे णो देसाहिवई णो सव्वाहिवई॥ १८७॥

कठिन शब्दार्थ - मेहा - मेघ, **गज्जित्ता** - गर्जिता-गर्जना करने वाला, **वासित्ता** - वर्षिता-बरसने वाला, **विज्जुयाइत्ता** - विद्युयिता-बिजली करने वाला, **कालवासी** - कालवर्षी-काल में बरसने वाला, **अकालवासी**- अकालवर्षी-अकाल में बरसने वाला, **खेत्तवासी** - क्षेत्रवर्षी-क्षेत्र में बरसने वाला, **अखेत्तवासी** - अक्षेत्र वर्षी-अक्षेत्र में बरसने वाला, **जणइत्ता** - उत्पन्न करने वाला, **णिम्मवइत्ता** - निपजाने वाला, **देसाहिवई** - देशाधिपति-एक देश का स्वामी, **सव्वाहिवई** - सर्वाधिपति-सर्व देश का अधिपति।

भावार्थ - चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं यथा - कोई एक मेघ गर्जता है किन्तु बरसता नहीं है । कोई एक मेघ बरसता है किन्तु गर्जता नहीं है । कोई एक मेघ गर्जता भी है और बरसता भी है । कोई एक मेघ न तो गर्जता है और न बरसता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष कहता है कि 'मैं अमुक कार्य करूँगा' किन्तु वह कार्य करता नहीं है । एक पुरुष कहता नहीं है किन्तु करता है । एक पुरुष कहता भी है और करता भी है । एक न तो कहता है और न करता है । चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं यथा - कोई एक मेघ गर्जता है किन्तु बिजली नहीं करता है। कोई एक मेघ बिजली करता है किन्तु गर्जता नहीं है । कोई एक मेघ गर्जता भी है और बिजली भी करता है । कोई एक मेघ न तो गर्जता है और न बिजली करता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष कहता है किन्तु आडम्बर नहीं करता है । इस प्रकार चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं यथा - कोई एक मेघ बरसता है किन्तु बिजली नहीं करता है। कोई एक मेघ बिजली करता है किन्तु बरसता नहीं है । कोई एक मेघ बरसता भी है और बिजली भी करता है । कोई एक मेघ न तो बरसता है और न बिजली करता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष कार्य करता है किन्तु आडम्बर नहीं करता है । इस प्रकार चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं यथा - कोई एक मेघ यथासमय बरसता है किन्तु अकाल में नहीं बरसता है । कोई एक मेघ अकाल में बरसता है किन्तु समय पर नहीं बरसता है। कोई एक मेघ समय पर भी बरसता है और अकाल में भी बरसता है । कोई एक मेघ न तो काल में बरसता है और न अकाल में बरसता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा अवसर दान देता हैं किन्तु बिना अवसर दान नहीं देता है । इसी तरह चौभङ्गी कह देनी चाहिए । चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं यथा - कोई एक मेघ क्षेत्र में बरसता है किन्तु अक्षेत्र में नहीं बरसता है। कोई एक मेघ अक्षेत्र में बरसता है किन्तु क्षेत्र में नहीं बरसता है । कोई एक मेघ क्षेत्र में भी बरसता है और अक्षेत्र में भी बरसता है । कोई एक मेघ न तो क्षेत्र में बरसता है और न अक्षेत्र में बरसता है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक पुरुष पात्र को दान देता है । किन्तु अपात्र को दान नहीं देता है । कोई एक पुरुष अपात्र को दान देता है किन्तु पात्र को दान नहीं देता है । कोई एक पुरुष महान् उदारता के कारण अथवा प्रवचन की प्रभावना के लिए पात्र और अपात्र सभी को दान देता है । कोई एक पुरुष न तो पात्र को दान देता है और न अपात्र को दान देता है अर्थात् दान देने में प्रवृत्ति ही नहीं करता है । चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं । यथा- कोई एक मेघ पहले बरस कर धान को उत्पन्न करता है किन्तु पीछे बरस कर धान को निपजाता नहीं है । कोई एक मेघ धान को निपजाता है किन्तु उपजाता नहीं है । कोई एक मेघ उपजाता भी है और निपजाता भी है । कोई एक मेघ न तो उपजाता है और न निपजाता है । इसी तरह चार प्रकार के माता-पिता कहे गये हैं। यथा - कोई माता पिता पुत्र को जन्म देते हैं किन्तु उसका पालन पोषण नहीं करते हैं । कितनेक पालन पोषण करते हैं किन्तु जन्म नहीं देते हैं । कोई जन्म भी देते हैं और पालन पोषण भी करते हैं । कोई न तो जन्म देते हैं और न पालन पोषण करते हैं । इसी प्रकार गुरु के विषय में भी समझना चाहिए । यथा- कोई गुरु शिष्य को दीक्षा देते हैं किन्तु पढ़ाते नहीं है । कोई पढ़ाते हैं किन्तु दीक्षा नहीं देते हैं । कोई दीक्षा भी देते हैं और पढ़ाते भी हैं । कोई न तो दीक्षा देते हैं और न पढ़ाते हैं । चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं । यथा - कोई एक मेघ एक देश में बरसता है किन्तु सब जगह नहीं बरसता है । कोई एक मेघ सब जगह बरसता है किन्तु एक जगह नहीं बरसता है । कोई एक मेघ एक जगह में भी बरसता है और सब जगह भी बरसता है कोई एक मेघ न तो एक जगह बरसता है और न सब जगह बरसता है । इसी तरह चार प्रकार के राजा कहे गये हैं । यथा - कोई राजा एक देश का स्वामी है किन्तु सब देश का स्वामी नहीं है । कोई एक राजा सब देश का स्वामी है किन्तु एक देश यानी पल्ली आदि का स्वामी नहीं है । कोई एक राजा एक देश का स्वामी भी है और सब देश का स्वामी भी है । कोई एक राजा न तो एक देश का स्वामी है और न सब देश का स्वामी है राज्य से च्युत ।

विवेचन - मेघ चार - १. कोई मेघ गर्जते हैं पर बरसते नहीं। २. कोई मेघ गर्जते नहीं हैं पर बरसते हैं। ३. कोई मेघ गर्जते भी हैं और बरसते भी हैं। ४. कोई मेघ न गर्जते हैं और न बरसते हैं।

मेघ की उपमा से पुरुष के चार प्रकार -

१. कोई पुरुष दान, ज्ञान, व्याख्यान और अनुष्ठान आदि की मात्र बातें करते हैं पर करते कुछ भी नहीं।

२. कोई पुरुष उक्त कार्यों के लिए अपनी बड़ाई तो नहीं करते पर कार्य करने वाले होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. कोई पुरुष उक्त कार्यों के विषय में कहते हैं और कार्य भी करते हैं।

४. कोई पुरुष उक्त कार्यों के लिए न डींग हांकते हैं और न कुछ करते ही हैं।

अन्य प्रकार से मेघ के चार भेद -

१. कोई मेघ क्षेत्र में बरसता है, अक्षेत्र में नहीं बरसता है।

२. कोई मेघ क्षेत्र में नहीं बरसता, अक्षेत्र में बरसता है।

३. कोई मेघ क्षेत्र और अक्षेत्र दोनों में बरसता है।

४. कोई मेघ क्षेत्र और अक्षेत्र दोनों में ही नहीं बरसता।

मेघ की उपमा से चार दानी पुरुष -

१. कोई पुरुष पात्र को दान देते हैं, पर कुपात्र को नहीं देते।

२. कोई पुरुष पात्र को तो दान नहीं देते, पर कुपात्र को देते हैं।

३. कोई पुरुष पात्र और कुपात्र दोनों को दान देते हैं।

४. कोई पुरुष पात्र और कुपात्र दोनों को ही दान नहीं देते हैं।

चार प्रकार के मेघ

चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा - पुक्खलसंवट्टए, पज्जुण्णे, जीमूए, जिम्हे । पुक्खलसंवट्टए णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससहस्साइं भावेइ । पज्जुण्णे णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससयाइं भावेइ । जीमूए णं महामेहे एगेणं वासेणं दस वासाइं भावेइ। जिम्हे णं महामेहे बहूहिं वासेहिं एगं वासं भावेइ वा ण वा भावेइ॥ १८८॥

कठिन शब्दार्थ - पुक्खल संवट्टे - पुष्कल संवर्तक, **पज्जुण्णे** - प्रद्युम्न, **जीमूए** - जीमूत, **जिम्हे**- जिह्म, **भावेइ** - सरस बनाता है, **महामेहे** - महामेघ।

भावार्थ - चार प्रकार के मेघ कहे गये हैं । यथा - पुष्कल संवर्तक, प्रद्युम्न, जीमूत और जिह्म । पुष्कल संवर्तक महामेघ एक बार बरसने से दस हजार वर्षों तक पृथ्वी को सरस बना देता है । प्रद्युम्न महामेघ एक बार बरसने से एक हजार वर्ष तक पृथ्वी को सरस बना देता है । जीमूत महामेघ एक बार बरसने से दस वर्ष तक पृथ्वी को सरस बना देता है । जिह्म महामेघ बहुत बार बरसने से एक वर्ष तक पृथ्वी को सरस बनाता है अथवा नहीं भी बनाता है ।

विवेचन - मेघ के अन्य चार प्रकार - १. पुष्कल संवर्तक २. प्रद्युम्न ३. जीमूत ४. जिह्म।

१. पुष्कल संवर्तक - जो एक बार बरस कर दस हजार वर्ष के लिए पृथ्वी को स्निग्ध कर देता है।

२. प्रद्युम्न - जो एक बार बरस कर एक हजार वर्ष के लिए पृथ्वी को उपजाऊ बना देता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. जीमूत – जो एक बार बरस कर दस वर्ष के लिए पृथ्वी को उपजाऊ बना देता है।

४. जिह्म – जो मेघ कई बार बरसने पर भी पृथ्वी को एक वर्ष के लिए भी नियम पूर्वक उपजाऊ नहीं बनाता। अर्थात् बनाता भी है या नहीं भी बनाता है।

इसी तरह पुरुष भी चार प्रकार के हैं। एक पुरुष एक ही बार उपदेश देकर सुनने वाले के दुर्गणों को हमेशा के लिए छुड़ा देता है वह पहले मेघ के समान हैं। उससे उत्तरोत्तर कम प्रभाव वाले वक्ता दूसरे और तीसरे मेघ सरीखे हैं। बार बार उपदेश देने पर भी जिनका असर नियमपूर्वक न हो अर्थात् कभी हो और कभी न हो। वह चौथे मेघ के समान हैं।

दान के लिए भी यही बात है। एक ही बार दान देकर हमेशा के लिए याचक के दारिद्र्य को दूर करने वाला दाता प्रथम मेघ सदृश है। उससे कम शक्ति वाले दूसरे और तीसरे मेघ के समान हैं। किन्तु जिसके अनेक बार दान देने पर भी थोड़े काल के लिए भी अर्थी (याचक) की आवश्यकताएं नियमपूर्वक पूरी न हो ऐसा दानी जिह्म मेघ के समान हैं।

करण्डक और आचार्य

चत्तारि करंडगा पण्णत्ता तंजहा – सोवाग करंडए, वेसिया करंडए, गाहावइ करंडए, राय करंडए । एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा – सोवाग करंडगसमाणे, वेसिया करंडग समाणे, गाहावइ करंडग समाणे, राय करंडग समाणे।

शाल तरु और आचार्य

चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा– साले णाममेगे साल परियाए, साले णाममेगे एरंडपरियाए, एरडे णाममेगे साल परियाए, एरंडे णाममेगे एरंड परियाए। एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा – साले णाममेगे साल परियाए, साले णाममेगे एरंडपरियाए,एरंडे णाममेगे सालपरियाए, एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए। चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तंजहा – साले णाममेगे सालपरिवारे, साले णाममेगे एरंड परिवारे, एरंडे णाममेगे सालपरिवारे, एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे । एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा – साले णाममेगे साल परिवारे, साले णाममेगे एरंडपरिवारे, एरंडे णाममेगे सालपरिवारे, एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे ।

सालदुममज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया ।
इय सुंदर आयरिए, सुंदर सीसे मुणेयव्वे ॥ १ ॥
एरंडमज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया ।
इय सुन्दर आयरिए, मंगुल सीसे मुणेयव्वे ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साल दुममज्झयारे, एरंडे णाम होइ दुमराया ।
इय मंगुल आयरिए, सुंदर सीसे मुणेयव्वे ॥ ३ ॥
एरंडमज्झयारे, एरंडे णाम होइ दुमराया ।
इय मंगुल आयरिए, मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥ ४ ॥ १८९॥

कठिन शब्दार्थ - **सोवाग करंडए** - श्वपाक (चाण्डाल) का करंडिया, **वेसिया करंडए** - वेश्या का करंडिया, **गाहावइ करंडए** - गाथापति का करंड़िया, **रायकरंडए** - राजा का करंडिया, **साले णामं** - साल नाम का, **साल परियाए** - साल पर्याय वाला, **एरंडपरियाए** - एरण्ड पर्याय (धर्म) वाला, **सालदुममज्झेयारे**- साल वृक्षों में, **सुंदर सीसे** - गुणसंपन्न शिष्य, **मुणेयव्वे** - जानना चाहिये, **मंगुलसीसे**- असुंदर-निर्गुण शिष्य परिवार।

भावार्थ - चार प्रकार के करंडिए कहे गये हैं । यथा - चाण्डाल का करंडिया, वेश्या का करंडिया गाथापति का करंडिया और राजा का करंडिया । इसी तरह चार प्रकार के आचार्य कहे गये हैं। यथा - चाण्डाल के करंडिए समान यानी जैसे - चाण्डाल का करंडिया कचरे से भरा हुआ होने के कारण असार होता है उसी तरह जो सूत्रार्थ से रहित और विशिष्ट क्रिया से रहित आचार्य होता है वह चाण्डाल के करंडिए समान है । जैसे वेश्या का करंडिया लाख के गहनों से भरा होता है उसी तरह जो आचार्य थोड़ा सा ज्ञान पढ़ कर वाणी की चतुराई से भोले लोगों को भ्रम में डालता है वह वेश्या के करंडिए समान है । जैसे गाथापति का करंडिया सोने और रत्नों के गहनों से भरा होता है उसी तरह जो आचार्य स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त का जानकार और संयम क्रिया से युक्त होता है वह गाथापति के करंडिए समान है । जैसे राजा का करंडिया बहुमूल्य आभूषण और रत्नों से भरा हुआ होता है उसी तरह जो आचार्य के समस्त गुणों से युक्त होता है, तीर्थङ्कर नहीं किन्तु तीर्थङ्कर के समान होता है वह राजा के करंडिए समान है ।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं यथा - कोई एक वृक्ष साल नाम का है और साल पर्याय वाला है अर्थात् सघन छाया आदि साल वृक्ष के गुणों से युक्त है । कोई एक वृक्ष साल नाम का है किन्तु एरण्ड धर्म वाला है अर्थात् सघन छाया आदि गुणों से युक्त नहीं है । कोई एक वृक्ष एरण्ड नाम का है किन्तु सघन छाया आदि साल वृक्ष के धर्मों से युक्त है । कोई एक वृक्ष एरण्ड नाम का है और एरण्ड वृक्ष के धर्मों से युक्त है । इसी तरह चार प्रकार के आचार्य कहे गये हैं यथा - कोई एक आचार्य साल वृक्ष की तरह उच्च कुल वाला होता है और ज्ञान क्रिया आदि गुणों से युक्त होता है। कोई एक आचार्य साल वृक्ष की तरह उच्च कुल वाला होता है किन्तु ज्ञान आदि क्रियाओं से हीन होता है। कोई एक आचार्य एरण्ड वृक्ष की तरह हीन कुल वाला होता है किन्तु ज्ञान क्रिया आदि गुणों से युक्त होता है, कोई एक आचार्य एरण्ड वृक्ष की तरह हीन कुल वाला होता है और ज्ञान क्रिया आदि गुणों से भी रहित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं । यथा - कोई एक वृक्ष साल नाम का होता है और साल वृक्षों का ही उसका परिवार है यानी वह साल वृक्षों से ही घिरा हुआ है । कोई एक वृक्ष साल नाम का है किन्तु एरण्डवृक्षों का उसका परिवार है यानी वह एरण्ड वृक्षों से घिरा हुआ है । कोई एक वृक्ष एरण्ड नाम का है किन्तु वह साल वृक्षों के परिवार वाला है । कोई एक वृक्ष एरण्ड नाम का है और वह एरण्ड वृक्षों के परिवार वाला है । इसी तरह चार प्रकार के आचार्य कहे गये हैं । यथा - कोई एक आचार्य ज्ञान क्रिया आदि गुणों से युक्त होता है और ज्ञान क्रिया आदि गुणों वाले शिष्यों से युक्त होता है यथा- सुधर्मास्वामी एवं उनका जम्बूस्वामी आदि शिष्य परिवार। कोई एक आचार्य स्वयं ज्ञान क्रिया आदि गुणों से युक्त होता है किन्तु निर्गुण शिष्यों के परिवार से युक्त होता है श्री गर्गाचार्य तथा उनके शिष्य । कोई एक आचार्य स्वयं ज्ञान क्रिया आदि गुणों से रहित होता है किन्तु गुणवान् शिष्यों के परिवार से युक्त होता है यथा-अङ्गर मर्दनाचार्य एवं उनके शिष्य। कोई एक आचार्य स्वयं ज्ञान क्रिया आदि गुणों से रहित होता है और निर्गुण शिष्यों के परिवार से युक्त होता है यथा - गोशालक या निह्नव आदि। अब यह चौभङ्गी चार गाथाओं द्वारा बताई जाती है -

जैसे साल वृक्षों में साल वृक्ष उनका राजा हो इसी तरह आचार्य सुन्दर हो यानी ज्ञान क्रिया आदि गुण सम्पन्न हो और शिष्य परिवार भी गुण सम्पन्न हो । यह प्रथम भङ्ग जानना चाहिए ॥ १ ॥

जैसे एरण्ड वृक्षों में साल वृक्ष उनका राजा हो इसी तरह आचार्य सुन्दर हो यानी ज्ञानादि गुण सम्पन्न हो किन्तु शिष्य परिवार असुन्दर यानी निर्गुण हो । यह दूसरा भङ्ग जानना चाहिए ॥ २ ॥

जैसे साल वृक्षों में एरण्ड वृक्ष उनका राजा हो इसी तरह आचार्य ज्ञानादि गुण रहित हो किन्तु शिष्य परिवार ज्ञानादि गुण सम्पन्न हो । यह तीसरा भङ्ग जानना चाहिए ॥ ३ ॥

जैसे एरण्ड वृक्षों में एरण्ड वृक्ष ही उनका राजा हो, इसी तरह निर्गुण आचार्य हो और निर्गुण ही शिष्य परिवार हो । यह चौथा भङ्ग जानना चाहिए ॥ ४ ॥

विवेचन - करंडक अर्थात् वस्त्र और आभरण (आभूषण) रखने का करडिया (पेटी)। प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार के करंडकों की उपमा से चारित्र, क्रिया और संयम संपन्नता की दृष्टि से चार प्रकार के आचार्य बताए हैं। इसके बाद के सूत्रों में शाल और एरण्ड वृक्षों की उपमा से संयम साधना और शिष्य वर्ग की दृष्टि से चार प्रकार के आचार्यों का विश्लेषण किया गया है।

मत्स्य वृत्ति समान भिक्षुवृत्ति

चत्तारि मच्छा पण्णत्ता तंजहा - अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी । एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता तंजहा - अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोले के समान साधक

चत्तारि गोला पण्णत्ता तंजहा - महुसित्थगोले, जउगोले, दारुगोले, मट्टियागोले। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - महुसित्थगोल समाणे, जउगोल समाणे, दारुगोल समाणे, मट्टियागोल समाणे । चत्तारि गोला पण्णत्ता तंजहा - अयगोले, तउगोले, तंबगोले, सीसगोले । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - अयगोल समाणे, तउगोल समाणे, तंबगोल समाणे, सीसगोल समाणे । चत्तारि गोला पण्णत्ता तंजहा - हिरण्णगोले, सुवण्णगोले, रयणगोले, वयरगोले । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - हिरण्णगोल समाणे, सुवण्णगोल समाणे, रयणगोल समाणे, वयरगोल समाणे ।

पंत्र एवं चटाई तुल्य पुरुष

चत्तारि पत्ता पण्णत्ता तंजहा - असिपत्ते, करपत्ते, खुरपत्ते, कलंबचीरियापत्ते । एवामेव चत्तारि पुरिसंजाया पण्णत्ता तंजहा - असिपत्तसमाणे, करपत्तसमाणे, खुरपत्तसमाणे, कलंबचीरियापत्तसमाणे । चत्तारि कडा पण्णत्ता तंजहा - सुंबकडे, विदलकडे, चम्मकडे, कंबलकडे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - सुंबकडसमाणे, विदलकडसमाणे, चम्मकडसमाणे, कंबलकडसमाणे ॥ १९० ॥

कठिन शब्दार्थ - मच्छा - मच्छ, **अणुसोयचारी** - अनुस्रोतचारी, **पडिसोयचारी** - प्रतिस्रोत चारी, **अंतचारी** - अन्तश्चारी-पानी के अंत में बहने वाला, **मज्झचारी** - मध्यचारी-पानी के बीच में बहने वाला, **भिक्खागा** - भिक्षाक-भिक्षा से निर्वाह करने वाले, **महुसित्थगोले** - मोम का गोला, **जउगोले** - लाख का गोला, **दारुगोले** - लकड़ी का गोला, **मट्टिया गोले** - मिट्टी का गोला, **अयगोले** - लोहे का गोला, **तउगोले** - कथीर का गोला, **तंबगोले** - ताम्बे का गोला, , **सीसगोले** - सीसे का गोला, **रयणगोले** - रत्नों का गोला, **वयरगोले** - वज्र रत्न का गोला, **पत्ता** - पत्र-शस्त्र, **असिपत्ते** - असिपत्र-तलवार, **करपत्ते** - करपत्र-करवत, **खुरपत्ते** - क्षुरपत्र-उस्तरा, **कलंबचीरियापत्ते** - कदम्ब चीरिका पत्र-कदम्ब चीरिका नामक शस्त्र, **सुंबकडे** - शुंबकट-शुंब नामक तृण विशेष से बनी हुई चटाई, **विदलकडे** - बांस की बनी चटाई, **चम्मकडे** - चमडे से बनाई हुई चटाई, **कंबलकडे** - कम्बल कट-ऊन से बनी चटाई (कम्बल)।

भावार्थ - चार प्रकार के मच्छ कहे गये हैं । यथा - अनुस्रोतचारी यानी पानी के प्रवाह की तरफ बहने वाला, प्रतिस्रोतचारी यानी पानी के प्रवाह के सामने बहने वाला, अन्तश्चारी यानी पानी के अन्त में बहने वाला और मध्यचारी यानी पानी के बीच में बहने वाला । इसी तरह चार प्रकार के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षाक यानी भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु कहे गये हैं । यथा - अनुस्रोतचारी यानी उपाश्रय से निकल कर अनुक्रम से भिक्षा करने वाला, प्रतिस्रोतचारी यानी उल्टे क्रम से भिक्षा करता हुआ उपाश्रय में आने वाला, अन्तश्चारी यानी उपाश्रय के अन्तिम घरों से भिक्षा लेने वाला और मध्यचारी यानी गांव के बीच के घरों से भिक्षा लेने वाला ।

चार प्रकार के गोले कहे गये हैं। यथा - मोम का गोला, जो धूप लगने से ही पिघल जाता है, लाख का गोला, जो अग्नि के ताप से पिघल जाता है, लकड़ी का गोला, जो अग्नि में डालने से जल जाता है और मिट्टी का गोला, अग्नि में तपने पर जो पक कर दृढ़ बन जाता है। ये चारों गोले क्रम से मृदु, कठिन, कठिनतर और कठिनतम होते हैं। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - मोम के गोले के समान, लाख के गोले के समान, लकड़ी के गोले के समान और मिट्टी के गोले के समान। जैसे मुनि का उपदेश सुन कर किसी को वैराग्य उत्पन्न हुआ। बाजार में जाने पर लोगों के वचन सुन कर उसका वैराग्य उतर गया, वह मोम के गोले के समान है। कुटुम्बी जनों के वचनों को सुन कर जिसका वैराग्य उतर गया वह लाख के गोले के समान है। जो लोगों के तथा कुटुम्बीजनों के वचनों से न पिघले किन्तु स्त्री के वचनों को सुन कर पिघल जाय वह लकड़ी के गोले के समान है। जो उपरोक्त सब के वचनों को सुन कर पिघले नहीं किन्तु वैराग्य में और अधिक दृढ़ बनता जाय वह मिट्टी के गोले के समान है। चार प्रकार के गोले कहे गये हैं। यथा-लोह का गोला, कथीर का गोला, ताम्बे का गोला और सीसे का गोला। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा-लोहे के गोले के समान, कथीर के गोले के समान, ताम्बे के गोले के समान और सीसे के गोले के समान। ये गोले जैसे क्रमशः अधिकाधिक भारी होते हैं उसी तरह जो पुरुष कर्मों से भारी होते हैं, वे क्रमशः इनके समान कहे जाते हैं। चार प्रकार के गोले कहे गये हैं। यथा-चांदी का गोला, सोने का गोला, रत्नों का गोला और वज्ररत्न का गोला। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा-चांदी के गोले के समान, सोने के गोले के समान, रत्नों के गोले के समान, वज्ररत्नों के गोले के समान। जैसे चांदी आदि के गोले उत्तरोत्तर अधिकाधिक कीमत वाले होते हैं उसी तरह जो पुरुष गुणों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक होते हैं उनको क्रमशः इन गोलों की उपमा दी जाती है। चार प्रकार के पत्र यानी शस्त्र कहे गये हैं। यथा-असिपत्र यानी तलवार, करपत्र यानी करवत, क्षुरपत्र यानी उस्तरा, कदम्बचीरिका नामक शस्त्र। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा-असिपत्र समान यानी गुरु का उपदेश सुन कर शीघ्र ही सांसारिक बन्धनों का छेदन कर दीक्षित होने वाला पुरुष। करपत्र समान यानी जैसे करवत धीरे धीरे लकड़ी को काटता है उसी तरह जो पुरुष धीरे धीरे सांसारिक बन्धनों को काटता है। क्षुरपत्र समान यानी जैसे उस्तरा केशों को काटता है उसी तरह जो पुरुष सांसारिक बन्धनों का सर्वथा छेदन नहीं कर सकता किन्तु देशविरतिपना धारण करता है वह क्षुरपत्र समान है। कदम्बचीरिकापत्र समान यानी जो मनोरथ मात्र से ही स्नेह का छेदन करता है किन्तु काया से त्याग प्रत्याख्यान नहीं कर सकता ऐसा अविरतसम्यग् दृष्टि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार प्रकार के कट यानी चटाई की तरह बुने हुए पदार्थ कहे गये हैं । यथा - सुंब नामक तृण विशेष से बनी हुई चटाई, बांस के टुकड़ों से बनी हुई चटाई, चमड़े से गूंथ कर बनाई हुई, ऊन से बनी हुई चटाई (कम्बल)। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - सुंबकट के समान, विदलकट के समान, चर्म कट के समान और कम्बल कट के समान । गुरु आदि में स्नेह की अपेक्षा ये चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार की मच्छ (मत्स्य) गति के माध्यम से साधुओं की गोचरी विधि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् बारह प्रकार के गोलों के माध्यम से साधकों की संयम निष्ठा का परिचय दिया गया है। चार प्रकार के पत्र और चार प्रकार की चटाइयों का स्वरूप बताते हुए साधक की मोह छेदन की शक्ति और स्नेह बंधन की दृढ़ता का विवेचन किया गया है।

चतुर्विध पशु, पक्षी और क्षुद्रप्राणी

चउव्विहा चउप्पया पण्णत्ता तंजहा - एगखुरा, दुखुरा, गंडीपया, सणप्पया । चउव्विहा पक्खी पण्णत्ता तंजहा - चम्मपक्खी, लोमपक्खी, समुग्गपक्खी, विययपक्खी । चउव्विहा खुड्डपाणा पण्णत्ता तंजहा - बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया॥ १९१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **चउप्पया** - चतुष्पद, **एगखुरा** - एक खुर वाले, **दुखुरा** - दो खुर वाले, **गंडीपया** - गण्डीपद, **सणप्पया** - सनखपद, **चम्मपक्खी** - चर्मपक्षी, **लोमपक्खी** - रोम पक्षी, **समुग्गपक्खी** - समुद्गक पक्षी, **विययपक्खी** - वितत पक्षी, **खुड्डपाणा** - क्षुद्र प्राणी ।

भावार्थ - चार प्रकार के चतुष्पद यानी स्थलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय कहे गये हैं । यथा - एक खुर वाले घोड़ा आदि, दो खुर वाले गाय, भैंस, ऊंट आदि, गण्डीपद यानी जिनका पैर सुनार की एरण सरीखा चपटा हो जैसे हाथी, गेंडा आदि, सनखपद यानी जिनके पैर में नख हो जैसे सिंह, बिल्ली, कुत्ता आदि । चार प्रकार के पक्षी कहे गये हैं । यथा - चर्मपक्षी यानी चमड़े की पांख वाले, जैसे चिमगादड़, चामचेड आदि। रोमपक्षी यानी रोम की पांख वाले जैसे हंस आदि। समुद्गक पक्षी यानी पेटी की तरह जिनकी पांखें हमेशा बन्द रहती हैं, विततपक्षी यानी जिनकी पांखें हमेशा खुली रहती हैं । समुद्गक पक्षी और विततपक्षी ये दोनों तरह के पक्षी ढाई द्वीप के बाहर होते हैं । चार प्रकार के क्षुद्रप्राणी कहे गये हैं । यथा - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय ।

विवेचन - चतुष्पद तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के चार भेद - १. एक खुर २. द्विखुर ३. गण्डी पद ४. सनख पद ।

१. एक खुर - जिसके पैर में एक खुर हो। वह एक खुर चतुष्पद है। जैसे घोड़ा, गदहा आदि।

२. द्विखुर - जिसके पैर में दो खुर हो। वह द्विखुर चतुष्पद है। जैसे - गाय, भैंस, ऊंट आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. गण्डीपद - सुनार की ऐरण के समान चपटे पैर वाले चतुष्पद गण्डीपद कहलाते हैं। जैसे हाथी, गेण्डा आदि।

४. सनख पद - जिनके पैरों में नख हों, वे सनख चतुष्पद कहलाते हैं। जैसे सिंह, चीता, कुत्ता, बिल्ली आदि।

पक्षी चार - १. चर्म पक्षी २. रोम पक्षी ३. समुद्गक पक्षी ४. वितत पक्षी।

१. चर्म पक्षी - चर्ममय पंख वाले पक्षी चर्मपक्षी कहलाते हैं। जैसे चिमगादड़ आदि।

२. रोमपक्षी - रोम मय पंख वाले पक्षी रोम पक्षी कहलाते हैं। जैसे हंस आदि।

३. समुद्गक पक्षी - डब्बे की तरह बन्द पंख वाले पक्षी समुद्गक पक्षी कहलाते हैं।

४. विततपक्षी - फैले हुए पंख वाले पक्षी विततपक्षी कहलाते हैं। समुद्गकपक्षी और विततपक्षी ये दोनों जाति के पक्षी अढ़ाई द्वीप के बाहर ही होते हैं। अर्थात् अढ़ाई द्वीप में तो दो ही प्रकार के पक्षी होते हैं और अढ़ाई द्वीप के बाहर चारों प्रकार के पक्षी होते हैं।

क्षुद्र प्राणी - क्षुद्र शब्द का अर्थ तुच्छ होता है किन्तु यहाँ पर क्षुद्र शब्द का अर्थ यह नहीं है। किन्तु जो दूसरे भव में मोक्ष जाने की योग्यता वाले नहीं है ऐसे प्राणियों को यहाँ क्षुद्र कहा है। क्षुद्र प्राणी चार प्रकार के कहे हैं - १. **बेइन्द्रिय** - दो इन्द्रियों वाले लट, गिण्डोला, सीप, शंख आदि। **२. तेइन्द्रिय** - तीन इन्द्रियों वाले, जूं, लीख आदि। **३. चउरिन्द्रिय** - चार इन्द्रियों वाले - मक्खी, मच्छर आदि और **४. सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय** - असंज्ञी-मन रहित तिर्यंच पंचेन्द्रिय। जैसे बरसाती मेंढक आदि। जिस प्रकार पृथ्वी, पानी और वनस्पति तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उस भव का आयुष पूरा करके अगले भव में संज्ञी मनुष्य बन कर मोक्ष जा सकते हैं। किन्तु बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय उस भव का आयुष पूरा करके दूसरे भव में मोक्ष नहीं जा सकते हैं।

पक्षियों जैसे भिक्षुक

चत्तारि पक्खी पण्णत्ता तंजहा - णिवइत्ता णाममेगे णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे णो णिवइत्ता, एगे णिवइत्ता वि परिवइत्ता वि, एगे णो णिवइत्ता णो परिवइत्ता । एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता तंजहा - णिवइत्ता णाममेगे णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे णो णिवइत्ता, एगे णिवइत्ता वि परिवइत्ता वि, एगे णो णिवइत्ता णो परिवइत्ता ।

सबलता दुर्बलता

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - णिक्कट्टे णाममेगे णिक्कट्टे, णिक्कट्टे णाममेगे अणिक्कट्टे, अणिक्कट्टे णाममेगे णिक्कट्टे, अणिक्कट्टे णाममेगे अणिक्कट्टे। चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - णिक्कट्टे णाममेगे णिक्कट्टप्पा, णिक्कट्टे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - बुहे णाममेगे बुहे, बुहे णाममेगे अबुहे, अबुहे णाममेगे बुहे, अबुहे णाममेगे अबुहे । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - बुहे णाममेगे बुहहियए, बुहे णाममेगे अबुहहियए अबुहे णाममेगे बुहहियए, अबुहे णाममेगे अबुहहियए ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए, पराणुकंपए णाममेगे णो आयाणुकंपए एगे आयाणुकंपए वि पराणुकंपए वि, एगे णो आयाणुकंपए णो पराणुकंपए॥ १९२ ॥

कठिन शब्दार्थ - णिवइत्ता - निपतिता-गिरने वाला, **परिवइत्ता** - परिव्रजिता-उड़ सकने वाला,, **णिक्कट्ठे** - निकृष्ट-दुर्बल, **अणिक्कट्ठे** - अनिकृष्ट-दुर्बल नहीं, **णिक्कट्ठप्पा** - निकृष्ट (अर्थात् जिसने कषायों को मन्द कर दिया है) आत्मा वाला-अर्थात् विशुद्ध आत्मा वाला, **अणिक्कट्ठप्पा** - अविशुद्ध आत्मा वाला, **बुहे** - बुद्ध-पण्डित, **अबुहे** - अबुद्ध-अपण्डित, **बुहहियए** - बुद्ध हृदय-विवेक युक्त हृदय वाला, **अबुहहियए** - अबुद्ध हृदय-विवेक रहित हृदय वाला, **आयाणुकंपए** - आत्मानुकंपक-अपनी अनुकम्पा करने वाला, **पराणुकंपए** - परानुकम्पक-दूसरे की अनुकम्पा करने वाला ।

भावार्थ - चार प्रकार के पक्षी कहे गये हैं। यथा - कोई एक पक्षी अपने घोंसले से बाहर निकल सकता है किन्तु उड़ नहीं सकता। कोई एक पक्षी उड़ सकता है किन्तु डरपोक होने से अपने घोंसले से बाहर नहीं निकलता है। कोई एक पक्षी अपने घोंसले से निकल भी सकता है और उड़ भी सकता है । कोई एक पक्षी न तो निकल सकता है और न उड़ सकता है । इसी तरह चार प्रकार के भिक्षुक कहे गये हैं। यथा - कोई एक भिक्षुक भिक्षा लेने को जाने में समर्थ है किन्तु परिभ्रमण करने में समर्थ नहीं है। कोई एक भिक्षुक परिभ्रमण करने में समर्थ है किन्तु सूत्रार्थ में लगा हुआ होने के कारण भिक्षा के लिए जा नहीं सकता है । कोई एक भिक्षुक भिक्षा के लिए जाने में समर्थ भी है और परिभ्रमण भी कर सकता है। कोई एक भिक्षुक भिक्षा के लिए जा भी नहीं सकता है और परिभ्रमण भी नहीं कर सकता है। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक साधु तप करने से शरीर से दुर्बल है और कषाय न होने से भाव से भी दुर्बल है। कोई एक साधु तप करने से शरीर से तो दुर्बल है किन्तु कषायों का क्षयोपशम न होने से भाव से दुर्बल नहीं है। कोई एक साधु शरीर से दुर्बल नहीं है किन्तु कषायों का क्षयोपशम होने से भाव से दुर्बल है। कोई एक साधु शरीर से भी दुर्बल नहीं है और भाव से भी दुर्बल नहीं है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक साधु तपस्या से दुर्बल शरीर वाला है और कषाय का क्षय करने से विशुद्ध आत्मा वाला है। कोई एक साधु तप से दुर्बल शरीर वाला है किन्तु भाव से अविशुद्ध आत्मा वाला है। कोई एक साधु दुर्बल शरीर वाला नहीं है किन्तु विशुद्ध आत्मा वाला है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक साधु दुर्बल शरीर वाला भी नहीं है और विशुद्ध आत्मा वाला भी नहीं है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक साधु बुद्ध यानी सत्क्रिया करने से पण्डित है और विवेक युक्त मन रखने से पण्डित है। कोई एक साधु सत्क्रिया करने से पण्डित है किन्तु विवेक रहित होने से अपण्डित है। कोई एक साधु सत्क्रिया रहित होने से अपण्डित है किन्तु विवेक युक्त होने से पण्डित है। कोई एक साधु सत्क्रिया रहित होने से अपण्डित है और विवेक रहित होने से भी अपण्डित है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं । यथा - कोई एक साधु पण्डित है और विवेक युक्त हृदय वाला है । कोई एक साधु पण्डित है किन्तु विवेक रहित हृदय वाला है । कोई एक साधु अपण्डित है किन्तु विवेक युक्त हृदय वाला है । कोई एक साधु अपण्डित है और विवेक रहित हृदय वाला है ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। यथा - कोई एक पुरुष अपनी ही अनुकम्पा करता है किन्तु दूसरों की अनुकम्पा नहीं करता ऐसे तीन पुरुष होते हैं - प्रत्येक बुद्ध, जिनकल्पी और दूसरों की रक्षा न करने वाला निर्दयी पुरुष । ये तीनों अपने ही हित में तत्पर रहते हैं, दूसरों का हित नहीं करते हैं। कोई एक पुरुष दूसरों की अनुकम्पा करता है किन्तु अपनी अनुकम्पा नहीं करता है ऐसे पुरुष या तो तीर्थङ्कर होते हैं या अपनी परवाह नहीं रखने वाला मेतार्य मुनि की तरह परम दयालु पुरुष होता है । कोई एक पुरुष अपनी भी अनुकम्पा करता है और दूसरों की भी अनुकम्पा करता है । ऐसा पुरुष स्थविरकल्पी साधु होता है । क्योंकि स्थविरकल्पी साधु अपनी और दूसरे की दोनों की अनुकम्पा करता है । कोई एक पुरुष अपनी भी अनुकम्पा नहीं करता हैं और दूसरों की भी अनुकम्पा नहीं करता है । ऐसा पुरुष काल शौकरिक कसाई आदि की तरह अतिशय पापी होता है ।

विवेचन - एक पुरुष अपनी ही अनुकम्पा करता है किन्तु दूसरों की अनुकम्पा नहीं करता ऐसे तीन पुरुष कहे हैं - प्रत्येक बुद्ध, जिनकल्पी और दूसरों की रक्षा नहीं करने वाला निर्दयी पुरुष। प्रत्येक-बुद्ध और जिनकल्पी साधु दूसरे की अनुकम्पा नहीं करते अर्थात् दूसरे का हित नहीं करते किन्तु अपने ही हित में प्रवृत्त रहते हैं इसलिए वे प्रथम भंग के स्वामी कहे गये हैं। उनकी तरह जो दूसरे जीव की अनुकम्पा नहीं करता है वह पुरुष यदि जिनकल्पी और प्रत्येक बुद्ध नहीं है तो उसे प्रथम भंग का तीसरा स्वामी निर्दयी समझना चाहिये। 'दूसरे प्राणी की अनुकम्पा करना पाप है ऐसा समझ कर जो मरते हुए प्राणी की रक्षा नहीं करता है वह दयाहीन पुरुष है। उसे इस प्रथम भंग के तीसरे स्वामी निर्दयी पुरुष की श्रेणी में समझना चाहिए।

इस चौभंगी में कहा गया है कि स्थविर कल्पी साधु उभयानुकम्पी है। वह अपनी और दूसरे दोनों की अनुकम्पा करता है। अतः मरते प्राणी की प्राण रक्षा करना स्थविर कल्पी साधु का धार्मिक कर्त्तव्य सिद्ध होता है। जो स्थविर कल्पी साधु कहला कर दूसरे जीव की रक्षा नहीं करता वह अपने कर्त्तव्य से पतित होता है। वह साधु नहीं है किन्तु वह निर्दयी है। वह प्रथम भंग के तीसरे स्वामी निर्दयी पुरुष की श्रेणी में आता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवास-भेद

चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - दिव्वे, आसुरे, रक्खसे, माणुस्से । चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ, देवे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ, असुरे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ, असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ । चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ, देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ, रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ । चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छइ, देवे णाममेगे मणुस्सीहिं सद्धिं संवासं गच्छइ, मणुस्से णाममेगे देवीहिं सद्धिं संवासं गच्छइ, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीहिं सद्धिं संवासं गच्छइ । चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - असुरे णाममेगे-असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ, असुरे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ, रक्खसे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ । चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ, असुरे णाममेगे माणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ, मणुस्से णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छइ, मणुस्से णाममेगे माणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ । चउव्विहे संवासे पण्णत्ते तंजहा - रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ, रक्खसे णाममेगे माणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ, मणुस्से णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छइ, मणुस्से णाभमेगे माणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छइ ।

कठिन शब्दार्थ - संवासे - संवास-संभोग (मैथुन) **दिव्वे** - ज्योतिषी वैमानिक देवता संबंधी, **आसुरे** - असुर यानी वाणव्यन्तर और भवनपति सम्बन्धी, **रक्खसे** - राक्षस यानी राक्षस जाति के व्यन्तर सम्बन्धी, **माणुस्से** - मनुष्य संबंधी, **सद्धिं**- साथ

भावार्थ - चार प्रकार का संवास यानी संभोग- मैथुन कहा गया है । यथा - वैमानिक देवता सम्बन्धी, असुर यानी भवनपति सम्बन्धी, राक्षस यानी व्यन्तर सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी । चार प्रकार का संवास कहा गया है यथा - कोई एक देव देवी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक देव असुरी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक असुर देवी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक असुर असुरी के साथ सम्भोग करता है । चार प्रकार का सम्भोग कहा गया है । यथा - कोई एक देव देवी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक देव राक्षसी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक राक्षस देवी के साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्भोग करता है । कोई एक राक्षस राक्षसी के साथ सम्भोग करता है । चार प्रकार का सम्भोग कहा गया है यथा - कोई एक देव देवी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक देव मनुष्य स्त्री के साथ सम्भोग करता है । कोई एक मनुष्य देवी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक मनुष्य मनुष्य स्त्री के साथ सम्भोग करता है । चार प्रकार का सम्भोग कहा गया है । यथा - कोई एक असुर असुरी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक असुर राक्षसी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक राक्षस असुरी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक राक्षस राक्षसी के साथ सम्भोग करता है । चार प्रकार का सम्भोग कहा गया है । यथा - कोई एक असुर असुरी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक असुर मनुष्य स्त्री के साथ सम्भोग करता है । कोई एक मनुष्य असुरी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक मनुष्य मनुष्य स्त्री के साथ सम्भोग करता है । चार प्रकार का सम्भोग कहा गया है । यथा - कोई एक राक्षस राक्षसी के साथ सम्मोग करता है । कोई एक राक्षस मनुष्य स्त्री के साथ सम्भोग करता हैं । कोई एक मनुष्य राक्षसी के साथ सम्भोग करता है । कोई एक मनुष्य मनुष्य स्त्री के साथ सम्भोग करता है ।

विवेचन - स्त्री के साथ संवसन-शयन करना संवास कहलाता है। देव पद से वैमानिक देवों का, असुर शब्द से भवनपतियों का और राक्षस शब्द से सभी वाणव्यंतर देवों का ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार देवियों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

चार प्रकार का अपध्वंश

चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते तंजहा - आसुरे, आभिओगे, सम्मोहे, देव किब्बिसे। चउहिं ठाणेहिं जीवा आसुरत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - कोहसीलयाए, पाहुडसीलयाए, संसत्ततवोकम्मेणं, णिमित्ताजीवयाए । चउहिं ठाणेहिं जीवा आभिओगत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - अत्तुक्कोसेणं, परपरिवाएणं, भूइकम्मेणं, कोउयकरणेणं । चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहयाए कम्मं पगरेंति तंजहा - उम्मग्गदेसणाए, मग्गंतराएणं, कामासंसपओगेणं, भिज्जा णियाणकरणेणं। चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - अरिहंताणं अवण्णं वयमाणे, अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे, आयरियउवज्झायाणं अवण्णं वयमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वयमाणे॥ १९४॥

कठिन शब्दार्थ - अवद्धंसे - अपध्वंस-चारित्र या चारित्र के फल का विनाश, **आसुरे** - आसुरी, **आभिओगे** - आभियोगिकी, **सम्मोहे** - सम्मोही, **देवकिब्बिसे** - देव किल्विषिकी, **कोहसीलयाए**- क्रोधी स्वभाव होने से, **पाहुडसीलयाए** - कलह करने से, **संसत्ततवोकम्मेणं** - आहार, शय्या आदि की प्राप्ति के लिए तप करने से, **णिमित्ताजीवयाए** - ज्योतिष आदि निमित्त बता कर आजीविका करने से, **अत्तुक्कोसेणं** - गुणों का अभिमान करने से, **परपरिवाएणं** - परपरिवाद-निन्दा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने से, **भूइकम्मेणं-** भूति कर्म करने से, **कोउयकरणेणं** - कौतुक करने से, **उम्मग्गदेसणाए** - उन्मार्गदेशना-विपरीत मार्ग का उपदेश देने से, **मग्गंतराएणं** - मोक्ष मार्ग की ओर प्रवृत्ति करते हुए जीव को अन्तराय देने से, **कामासंसपओगेणं** - कामभोगों की अभिलाषा करने से, **भिज्जाणियाणकरणेणं** - ऋद्धि का निदान करने से, **अवण्णं** - अवर्णवाद, **अरिहंतपण्णत्तस्स** - अरिहंत प्ररूपित।

भावार्थ - चार प्रकार का अपध्वंस यानी चारित्र का विनाश या चारित्र के फल का विनाश कहा गया है । यथा - आसुरी भावना, आभियोगिकी भावना, सम्मोही भावना, किल्विषिकी भावना । क्रोधी स्वभाव होने से, कलह करने से, आहार, शय्या आदि की प्राप्ति के लिए तप करने से और ज्योतिष आदि निमित्त बता कर आजीविका करने से, इन चार कारणों से जीव असुर देवों में उत्पन्न होने का कर्मबन्ध करते हैं । अपने गुणों का अभिमान करने से, परपरिवाद से यानी दूसरों की निन्दा करने से, भूतिकर्म यानी मंत्र तंत्र गण्डा ताबीज करने से और कौतुककरण यानी सौभाग्य आदि के निमित्त स्नान आदि कराने से, इन चार कारणों से जीव आभियोग्य यानी सेवक देवों में उत्पन्न होने का कर्मबन्ध करते हैं । जिनमार्ग से विपरीत मार्ग का उपदेश देने से, मोक्षमार्ग की ओर प्रवृत्ति करते हुए जीव को अन्तराय देने से, कामभोगों की अभिलाषा करने से, चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का नियाणा करने से इन चार कारणों से जीव सम्मोही यानी मूढ देवों में उत्पन्न होने का कर्मबन्ध करते हैं । अरिहन्त भगवान् के अवर्णवाद बोलने से, अरिहन्त प्ररूपित धर्म का अवर्णवाद बोलने से, आचार्य महाराज और उपाध्यायजी का अवर्णवाद बोलने से इन चार कारणों से जीव किल्विषी देवों में उत्पन्न होने का कर्म बन्ध करते हैं ।

विवेचन - उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ वें अध्ययन की गाथा २६१ में चार प्रकार की भावना इस प्रकार बतायी गयी है - १. कन्दर्प भावना २. आभियोगिकी भावना ३. किल्विषिकी भावना ४. आसुरी भावना।

१. कन्दर्प भावना - कन्दर्प करना अर्थात् अट्टहास करना, जोर से बातचीत करना, काम कथा करना, काम का उपदेश देना और उसकी प्रशंसा करना, कौत्कुच्य करना (शरीर और वचन से दूसरे को हंसाने की चेष्टा करना) विस्मयोत्पादक शील स्वभाव रखना, हास्य तथा विविध विकथाओं से दूसरों को विस्मित करना कन्दर्प भावना है।

२. आभियोगिकी भावना - सुख, मधुरादि रस और उपकरण आदि की ऋद्धि के लिए वशीकरणादि मंत्र अथवा यंत्र तंत्र (गंडा, ताबीज) करना, रक्षा के लिए भस्म, मिट्टी अथवा सूत्र से वसति आदि का परिवेष्टन रूप भूति कर्म करना आभियोगिकी भावना है।

३. किल्विषिकी भावना - ज्ञान, केवलज्ञानी पुरुष, धर्माचार्य संघ और साधुओं का अवर्णवाद बोलना तथा माया करना किल्विषिकी भावना है।

४. आसुरी भावना - निरंतर क्रोध में भरे रहना, पुष्ट कारण के बिना भूत, भविष्यत और वर्तमान कालीन निमित्त बताना आसुरी भावना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन चार भावनाओं से जीव उस उस प्रकार के देवों में उत्पन्न कराने वाले कर्म बांधता है।

अरिहंत भगवान्, अरिहंत प्ररूपित धर्म, आचार्य महाराज और उपाध्यायजी महाराज का अवर्णवाद बोलने वाला और उनमें अविद्यमान दोष बतलाने वाला किल्विषी देवों में उत्पन्न होता है।

प्रव्रज्या-भेद

चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - इहलोग पडिबद्धा, परलोग पडिबद्धा, उभओ लोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा । चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - पुरओ पडिबद्धा, मग्गओ पडिबद्धा, दुहओ पडिबद्धा, अप्पडिबद्धा । चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - ओवाय पव्वज्जा, अक्खाय पव्वज्जा, संगार पव्वज्जा, विहगगइ पव्वज्जा । चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, मोयावइत्ता, परिपूयावइत्ता । चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - णडखइया, भडखइया, सीहखइया, सीयालखइया । चउव्विहा किसी पण्णत्ता तंजहा - वाविया, परिवाविया, णिंदिया, परिणिंदिया । एवामेव चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता - वाविया, परिवाविया, णिंदिया, परिणिंदिया । चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा - धण्णपुंजियसमाणा, धण्णविरल्लियसमाणा, धण्ण विक्खित्तसमाणा, धण्णसंकट्टियसमाणा॥ १९५॥

कठिन शब्दार्थ - **पव्वज्जा** - प्रव्रज्या-दीक्षा, **पडिबद्धा** - प्रतिबद्धा, **अपडिबद्धा** - अप्रतिबद्धा, **पुरओ** - पुरतः, **मग्गओ** - मार्गतः, **दुहओ** - द्विधा, **ओवाय** - अवपात, **अक्खाय** - आख्यात, **विहगगइ** - विहग गति, **संगार** - संगार-संकेत, **तुयावइत्ता** - पीडा उत्पन्न करके, **पुयावइत्ता** - दूसरे स्थान पर ले जा कर, **मोयावइत्ता** - पराधीनता से छुड़ा कर, **परिपूयावइत्ता** - भोजन आदि का लालच बता कर, **णडखइया** - नटखादिता, **भडखइया** - भट खादिता, **सीह खइया** - सिंह खादिता, **सीयालखइया**- श्रृगाल खादिता, **किसी** - कृषि-खेती, **वाविया** - वापिता-एक बार बोने से उग जाय, **परिवाविया** - परिवापिता-उखाड़ कर दूसरी जगह बोने से उगे, **णिंदिया** - निदाता, **परिणिंदिया** - परिनिदाता, **धण्णपुंजियसमाणा** - धान्य पुंजित समाना, **धण्णविरल्लियसमाणा** - धान्य विरेल्लितसमाना, **धण्णविक्खित्तसमाणा** - धान्य विक्षिप्त समाना, **धण्णसंकट्टियसमाणा** - धान्य संकर्षित समाना।

भावार्थ - चार प्रकार की प्रव्रज्या-दीक्षा कही गई है । यथा - इहलोकप्रतिबद्धा यानी इस लोक में अपना पेट भरने के लिए जो प्रव्रज्या ली जाय । परलोक प्रतिबद्धा यानी दूसरे जन्म में भोगादि की प्राप्ति के लिए ली जाने वाली प्रव्रज्या, उभय लोक प्रतिबद्धा यानी उपरोक्त दोनों के लिए ली जाने वाली प्रव्रज्या अप्रतिबद्ध यानी विशिष्ट सामायिक चारित्र वालों की प्रव्रज्या जो केवल मोक्ष के लिए होती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है । चार प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है । यथा - पुरत:प्रतिबद्धा यानी दीक्षा लेकर शिष्य, आहार आदि में स्नेह भाव रखना। मार्गतः प्रतिबद्धा यानी दीक्षा लेकर कुटुम्ब आदि में स्नेहभाव रखना, द्विधाप्रतिबद्धा यानी दीक्षा लेकर शिष्य, आहारादि में तथा कुटुम्ब आदि दोनों में स्नेहभाव रखना । अप्रतिबद्धा यानी किसी में स्नेह भाव न रखते हुए केवल मोक्ष का लक्ष्य रखना । चार प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है । यथा - अवपात प्रव्रज्या यानी गुरु महाराज की सेवा करने के लिए दीक्षा लेना, आख्यात प्रव्रज्या यानी किसी के कहने से दीक्षा लेना, जैसे कि आर्यरक्षित स्वामी के कहने से उनके भाई फल्गुरक्षित ने दीक्षा ले ली थी । संगार यानी संकेत प्रव्रज्या पूर्व संकेत के अनुसार दीक्षा लेना, जैसे कि ◆ मेतार्य स्वामी ने ली थी । यदि तू दीक्षा ले तो मैं भी दीक्षा लूँ, इस प्रकार का संकेत करके दीक्षा लेना । विहगगति प्रव्रज्या यानी जैसे परिवार आदि से हीन होने पर अकेला पक्षी देशान्तर में चला जाता है । उसी तरह जो पुरुष परिवारादि से रहित हो जाने पर परदेश में जाकर दीक्षा ग्रहण करे ।

चार प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है । यथा - पीड़ा उत्पन्न करके जो दीक्षा दी जाय, जैसे कि सागरचन्द्र ने मुनिचन्द्र के पुत्र को दीक्षा दी थी। दूसरे स्थान पर ले जाकर दीक्षा देना, जैसे कि आर्यरक्षित को दी गई थी अथवा दोषों की शुद्धि करके दीक्षा देना । दासपना आदि की पराधीनता से छुड़ा कर दीक्षा देना, जैसे कि - एक साधु ने तैल के लिए दासी बनी हुई अपनी बहिन को दासपने से छुड़ा कर दीक्षा दी थी । भोजन घी आदि का लालच बता कर जो दीक्षा दी जाय, जैसे कि - सुहस्ती स्वामी ने एक भिखारी को दीक्षा दी थी । चार प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है । यथा - नटखादिता यानी दीक्षा धारण करके नट की तरह वैराग्य रहित कथा करके भिक्षा ग्रहण करना । भटखादिता यानी सुभट की तरह बल दिखला कर भिक्षा ग्रहण करना । सिंहखादिता यानी सिंह की तरह पराक्रम बतलाकर भिक्षा ग्रहण करना । शृंगाल खादिता यानी स्याल की तरह दीनता प्रकट करके भिक्षा ग्रहण करना ।

चार प्रकार की कृषि-खेती कही गई है । यथा - एक वक्त बोने से जो उग जाय, जैसे गेहूँ, चना आदि । जो उखाड़ कर दूसरी जगह बोने से उगे, जैसे शालिधान्य । निदाता यानी जिसमें से एक बार विजातीय तृण उखाड़ कर फेंक देने से उगे, परिनिदाता यानी बारबार विजातीय तृण उखाड़ कर फेंकने से उगे । इसी तरह चार प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है । यथा - वापित यानी जिसमें एक ही वक्त दीक्षित किया जाय जैसे, सामायिक चारित्र, परिवापित यानी जिसमें अधिक बार दीक्षित किया जाय, जैसे छेदोपस्थापनीय चारित्र, निदाता यानी जिसमें एक वक्त आलोचना देकर शुद्ध किया जाय,

---

◆ मेतार्य स्वामी का जीव और उनके पूर्व भव के मित्र का जीव ये दोनों जब देवलोक में थे तब उन्होंने आपस में ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि - अपन दोनों में से जो पहले चवे उसको दूसरा जाकर प्रतिबोध देवे । मेतार्यस्वामी का जीव पहले चव कर मनुष्य गति में आया। तब उनके मित्र देव ने आकर उन्हें प्रतिबोध दिया था। इससे उन्होंने संसार छोड़ कर दीक्षा ले ली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिनिदाता यानी जिसमें बार बार आलोचना की जाय । चार प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है । यथा - धान्यपुञ्जिकृत समाना यानी साफ किये हुए धान्य के ढेर के समान अतिचारों से रहित प्रव्रज्या, धान्यविरेल्लितसमाना यानी खलिहान में फैले हुए धान्य के समान प्रव्रज्या जो थोड़ा सा प्रयत्न करने से शुद्ध हो जाय, धान्यविक्षिप्त समाना यानी खलिहान में बैलों के पैरों नीचे फैले हुए धान्य के समान प्रव्रज्या जो प्रयत्न करने से कुछ समय बाद शुद्ध होवे, धान्यसंकर्षित समाना यानी खेत में से काट कर खलिहान में लाये हुए धान्य के समान प्रव्रज्या जो बहुत प्रयत्न करने पर बहुत समय में शुद्ध होवे ।

विवेचन - **'पुयावइत्ता'** के स्थान पर कहीं **'वुयावइत्ता'** ऐसा पाठ है । उसका अर्थ यह है कि- उसके साथ सम्भाषण करके दीक्षा देना, जैसे कि - गौतमस्वामी ने उस किसान को दीक्षा दी थी ।

संज्ञा-विवेचन

चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा । चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जइ, तंजहा - ओमकोट्ठयाए, छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मईए, तयट्ठोवओगेणं । चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जइ तंजहा - हीणसत्तयाए, भयवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मईए, तयट्ठोवओगेणं । चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णा समुप्पज्जइ, तंजहा - चित्तमंससोणिययाए, मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मईए, तयट्ठोवओगेणं । चउहिं ठाणेहिं परिग्गहसण्णा समुप्पज्जइ, तंजहा - अविमुत्तयाए लोहवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मईए तयट्ठोवओगेणं । चउव्विहा कामा पण्णत्ता तंजहा - सिंगारा, कलुणा, बीभच्छा, रोद्दा। सिंगारा कामा देवाणं, कलुणा कामा मणुयाणं, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाणं, रोद्दा कामा णेरइयाणं॥ १९६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सण्णाओ** - संज्ञाएं, **आहारसण्णा** - आहार संज्ञा, **भयसण्णा** - भयसंज्ञा, **मेहुणसण्णा** - मैथुन संज्ञा, **परिग्गहसण्णा** - परिग्रह संज्ञा, **ओमकोट्ठयाए** - पेट के खाली होने से, **छुहावेयणिज्जस्स** - क्षुधा वेदनीय, **कम्मस्स** - कर्म के, **उदएणं** - उदय से, **मईए** - मति से, **तयट्ठोवओगेणं** - निरन्तर स्मरण करने से, **हीणसत्तयाए** - हीन सत्त्व-शक्तिहीन होने से, **चित्तमंससोणिययाए** - शरीर में रक्तमांस के अधिक बढने से, **अविमुत्तयाए** - परिग्रह का त्याग न करने से, **कामा**- शब्दादि काम, **सिंगारा**- श्रृंगार, **कलुणा** - करुण, **बीभच्छा** - बीभत्स, **रोद्दा** - रौद्र।

भावार्थ - संज्ञाएं चार प्रकार की कही गई हैं । यथा - आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा । चार कारणों से आहार संज्ञा उत्पन्न होती है । यथा - पेट के खाली होने से, क्षुधावेदनीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म के उदय से, मति से यानी आहार कथा सुनने और आहार को देखने से तथा निरन्तर आहार का स्मरण करने से । इन उपरोक्त चार कारणों से जीव के आहार संज्ञा उत्पन्न होती है । सत्त्व अर्थात् शक्तिहीन होने से, भयमोहनीय कर्म के उदय से, भय की बात सुनने से तथा भयानक वस्तुओं के देखने आदि से और निरन्तर भय का चिन्तन करने से इन चार कारणों से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है । शरीर में मांस लोही आदि के खूब बढ़ने से, वेद मोहनीय कर्म के उदय से, मति से यानी मैथुन सम्बन्धी बातचीत के सुनने से, सदा मैथुन की बात सोचते रहने से इन चार कारणों से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है। परिग्रह का त्याग न करने से, लोभ मोहनीय कर्म के उदय होने से, मति से यानी परिग्रह सम्बन्धी बातचीत सुनने से और परिग्रह को देखने से सदा परिग्रह का विचार करते रहने से, इन चार कारणों से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है । चार प्रकार के शब्दादि काम कहे गये हैं । यथा - श्रृंङ्गार, करुण, बीभत्स और रौद्र । देवों के काम अत्यन्त मनोज्ञ होने के कारण 'श्रृंङ्गार' रूप है । मनुष्यों के काम शोक कराने वाले और तुच्छ होने से 'करुण' रूप हैं। तिर्यञ्चों के काम घृणित होने से 'बीभत्स' रूप हैं । नारकी जीवों के काम अत्यन्त अनिष्ट और क्रोधोत्पादक होने से 'रौद्र' हैं ।

विवेचन - संज्ञा की व्याख्या और भेद - चेतना - ज्ञान का, असातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से पैदा होने वाले विकार से युक्त होना संज्ञा है। संज्ञा के चार भेद हैं - १. आहार संज्ञा २. भय संज्ञा ३. मैथुन संज्ञा ४. परिग्रह संज्ञा।

१. आहार संज्ञा - तैजस शरीर नाम कर्म और क्षुधा वेदनीय के उदय से कवलादि आहार के लिए आहार योग्य पुद्गलों को ग्रहण करने की जीव की अभिलाषा को आहार संज्ञा कहते हैं।

२. भय संज्ञा - भय मोहनीय के उदय से होने वाला जीव का त्रासरूप परिणाम भय संज्ञा है। भय से उद्भ्रांत जीव के नेत्र और मुख में विकार, रोमाञ्च, कम्पन आदि क्रियाएं होती है।

३. मैथुन संज्ञा - वेद मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली मैथुन की इच्छा मैथुन संज्ञा है।

४. परिग्रह संज्ञा - लोभ मोहनीय के उदय से उत्पन्न होने वाली सचित्त आदि द्रव्यों को ग्रहण रूप आत्मा की अभिलाषा अर्थात् तृष्णा को परिग्रह संज्ञा कहते हैं।

(१) आहार संज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है -

१. पेट के खाली होने से।

२. क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से।

३. आहार कथा सुनने और आहार के देखने से।

४. निरन्तर आहार का स्मरण करने से।

इन चार बोलों से जीव के आहार संज्ञा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(२) भय संज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है -

१. सत्त्व अर्थात् शक्ति हीन होने से।

२. भय मोहनीय कर्म के उदय से।

३. भय की बात सुनने, भयानक वस्तुओं के देखने आदि से।

४. इह लोक आदि भय के कारणों को याद करने से।

इन चार बोलों से जीव को भय संज्ञा उत्पन्न होती है।

(३) मैथुन संज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है -

१. शरीर के खूब हृष्टपुष्ट होने से।

२. वेद मोहनीय कर्म के उदय से।

३. काम कथा श्रवण आदि से।

४. सदा मैथुन की बात सोचते रहने से।

इन चार बोलों से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।

(४) परिग्रह संज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है -

१. परिग्रह की वृत्ति होने से।

२. लोभ मोहनीय कर्म के उदय होने से।

३. सचित्त, अचित्त और मिश्र परिग्रह की बात सुनने और देखने से।

४. सदा परिग्रह का विचार करते रहने से।

इन चार बोलों से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है।

चार गति में चार संज्ञाओं का अल्प बहुत्व - सब से थोड़े नैरयिक मैथुन संज्ञा वाले होते हैं। आहार संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं। परिग्रह संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा है और भय संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं।

तिर्यंच गति में सब से थोड़े परिग्रह संज्ञा वाले हैं। मैथुन संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं। भय संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं और आहार संज्ञा वाले उनसे भी संख्यात गुणा हैं।

मनुष्यों में सब से थोड़े भय संज्ञा वाले हैं। आहार संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं। परिग्रह संज्ञा वाले उन से संख्यात गुणा हैं। मैथुन संज्ञा वाले उनसे भी संख्यात गुणा हैं।

देवताओं में सब से थोड़े आहार संज्ञा वाले हैं। भय संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं। मैथुन संज्ञा वाले उनसे संख्यात गुणा हैं और परिग्रह संज्ञा वाले उनसे भी संख्यात गुणा हैं।

उत्तान और गंभीर

चत्तारि उदगा पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए, उत्ताणे णाममेगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गंभीरोदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए, गंभीरे णाममेगे उत्ताण हियए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए । चत्तारि उदगा पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी । चत्तारि उदही पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही, उत्ताणे णाममेगे, गंभीरोदही, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदही, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदही । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा- उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए । चत्तारि उदही पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी ॥ १९७ ॥

कठिन शब्दार्थ - उत्ताणे - उत्तान तल (तुच्छ), **गंभीरे** - गम्भीर, **उत्ताणोभासी** - तल (पीन्दा) दिखाई देने वाला, **गंभीरोभासी** - गम्भीर दिखाई देने वाला, **उदही** - उदधि-समुद्र, **उत्ताणहियए** - उत्तान हृदय-तुच्छ हृदय वाला, **गंभीरहियए** - गंभीर हृदय-गम्भीर हृदय वाला।

भावार्थ - चार प्रकार के जल कहे गये हैं यथा - कोई एक जल उत्तान यानी तुच्छ है और तुच्छ दिखाई देता है अर्थात् थोड़ा पानी होने से जिसका तल दिखाई देता है। कोई एक जल तुच्छ है किन्तु गम्भीर दिखाई देता है। कोई एक जल गम्भीर है किन्तु तुच्छ दिखाई देता है। कोई एक पानी गम्भीर है और गम्भीर ही दिखाई देता है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा-कोई एक पुरुष दीनता आदि के कारण तुच्छ है और तुच्छ हृदय वाला है। कोई एक पुरुष दीनता आदि के कारण तुच्छ है किन्तु गम्भीर हृदय वाला है। कोई एक पुरुष गम्भीर है किन्तु तुच्छ हृदय वाला है। कोई एक पुरुष गम्भीर है और उत्तान हृदय यानी तुच्छ हृदय वाला है। चार प्रकार के जल कहे गये हैं यथा-कोई एक जल तुच्छ है और तुच्छ ही दिखाई देता है। कोई एक जल तुच्छ है किन्तु गम्भीर दिखाई देता है। कोई एक जल गम्भीर है किन्तु तुच्छ दिखई देता है। कोई एक जल गम्भीर है और गम्भीर ही दिखाई देता है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष तुच्छ है और तुच्छ ही दिखाई देता है। कोई एक पुरुष तुच्छ है किन्तु गम्भीर दिखाई देता है। कोई एक पुरुष गम्भीर है किन्तु तुच्छ दिखाई देता है। कोई एक पुरुष गम्भीर है और गम्भीर ही दिखाई देता है। चार प्रकार के समुद्र कहे गये हैं यथा - कोई एक समुद्र तुच्छ है और तुच्छ पानी वाला है। कोई एक समुद्र गम्भीर है किन्तु तुच्छ पानी वाला है। कोई एक समुद्र गम्भीर है और गम्भीर पानी वाला है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष तुच्छ है और तुच्छ हृदय वाला है। कोई एक पुरुष तुच्छ है किन्तु गम्भीर हृदय वाला है। कोई एक पुरुष गम्भीर है किन्तु तुच्छ हृदय वाला है। कोई एक पुरुष गम्भीर है और गम्भीर हृदय वाला है। चार प्रकार के समुद्र कहे गये हैं यथा - कोई एक समुद्र तुच्छ है और तुच्छ दिखाई देता है । कोई एक समुद्र तुच्छ है किन्तु गम्भीर दिखाई देता है। कोई एक समुद्र गम्भीर है किन्तु तुच्छ दिखाई देता है। कोई एक समुद्र गम्भीर है और गम्भीर ही दिखाई देता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष तुच्छ है और तुच्छ ही दिखाई देता है। कोई एक पुरुष तुच्छ है किन्तु गम्भीर दिखाई देता है। कोई एक पुरुष गम्भीर है किन्तु तुच्छ दिखाई देता है। कोई एक पुरुष गम्भीर है और गम्भीर ही दिखाई देता है ।

तैराक भेद

चत्तारि तरगा पण्णत्ता तंजहा - समुद्दं तरामीतेगे समुद्दं तरइ, समुद्दं तरामीतेगे गोप्पयं तरइ, गोप्पयं तरामीतेगे समुद्दं तरइ, गोप्पयं तरामीतेगे गोप्पयं तरइ । चत्तारि तरगा पण्णत्ता तंजहा - समुद्दं तरित्ता णाममेगे समुद्दे विसीयइ, समुद्दं तरित्ता णाममेगे गोप्पए विसीयइ, गोप्पयं तरित्ता णाममेगे समुद्दे विसीयइ, गोप्पयं तरित्ता णाममेगे गोप्पए विसीयइ ।

कुम्भ और पुरुष

चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा - पुण्णे णाममगे पुण्णे, पुण्णे णाममेगे तुच्छे, तुच्छे णाममेगे पुण्णे, तुच्छे णाममेगे तुच्छे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पुण्णे णाममेगे पुण्णे, पुण्णे णाममेगे तुच्छे, तुच्छे णाममेगे पुण्णे, तुच्छे णाममेगे तुच्छे । चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा - पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी, पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी, तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी, तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी, पुण्णे णाममेगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुच्छोभासी, तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी, तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी । चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा – पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे, पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे, तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे, तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे, पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे, तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे, तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे । चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा – पुण्णे वि एगे पियट्ठे, पुण्णे वि एगे अवदले, तुच्छे वि एगे पियट्ठे, तुच्छे वि एगे अवदले । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – पुण्णे वि एगे पियट्ठे, पुण्णे वि एगे अवदले, तुच्छे वि एगे पियट्ठे, तुच्छे वि एगे अवदले । चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा – पुण्णे वि एगे विस्संदइ, पुण्णे वि एगे णो विस्संदइ, तुच्छे वि एगे विस्संदइ, तुच्छे वि एगे णो विस्संदइ । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – पुण्णे वि एगे विस्संदइ, पुण्णे वि एगे णो विस्संदइ, तुच्छे वि एगे विस्संदइ, तुच्छे वि एगे णो विस्संदइ । चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा – भिण्णे, जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई । एवामेव चउव्विहे चरित्ते पण्णत्ते तंजहा – भिण्णे, जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई ।

चत्तारि कुंभा पण्णत्ता तंजहा – महुकुंभे णाममेगे महुप्पिहाणे, महुकुंभे णाममेगे विसप्पिहाणे, विसकुंभे णाममेगे महुप्पिहाणे, विसकुंभे णाममेगे विसप्पिहाणे । एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा – महुकुंभे णाममेगे महुप्पिहाणे, महुकुंभे णाममेगे विसप्पिहाणे, विसकुंभे णाममेगे महुप्पिहाणे, विसकुंभे णाममेगे विसप्पिहाणे ।

हिययमपावमकलुसं, जीहा वि य महुरभासिणी णिच्चं ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से महुकुंभे महुप्पिहाणे ।। १ ।।
हिययमपावमकलुसं, जीहा वि य कडुयभासिणी णिच्चं ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से महुकुंभे विसप्पिहाणे ।। २ ।।
जं हिययं कलुसमयं, जीहा वि य महुरभासिणी णिच्चं ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से विसकुंभे महुप्पिहाणे ।। ३ ।।
जं हिययं कलुसमयं, जीहा वि य कडुयभासिणी णिच्चं ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जइ, से विसकुंभे विसप्पिहाणे ।। ४ ।। १९८ ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - तरगा - तिरने वाले, **गोप्पयं** - गोपद को, **विसीयइ** - खेदित हो जाता है, **कुंभा** - कुम्भ-घड़े, **पुण्णे** - पूर्ण, **पुण्णोभासी** - पूर्णावभासी-परिपूर्ण दिखाई देने वाला, **पुण्णरूवे** - सुंदर रूप (आकार) वाला, **पियट्ठे** - प्रियार्थ-प्रियकारी, **अवदले** - अप्रियकारी, **विस्संदइ** - पानी निकलता है, **भिण्णे** - भिन्न, **जज्जरिए** - जर्जरित, **परिस्साई** - परिस्रावी, **अपरिस्साई** - अपरिस्रावी, **महुकुंभे** - मधुकुम्भ, **महुप्पिहाणे** - मधु पिधान, **विसकुंभे** - विष कुम्भ, **विसप्पिहाणे** - विषपिधान-विष के ढक्कन वाला, **हिययं** - हृदय, **अपावं** - पाप रहित, **अकलुसं** - अकलुष-कलुषता रहित, **जीहा** - जिह्वा, **कडुयभासिणी** - कटुकभाषिणी-कड़वे वचन बोलने वाली।

भावार्थ - चार प्रकार के तिरने वाले पुरुष कहे गये हैं यथा - 'मैं समुद्र को तिरूँगा' ऐसा विचार करके कोई पुरुष समुद्र को तिरता है । 'मैं समुद्र को तिरूँगा' ऐसा विचार करके कोई पुरुष गोपद यानी गाय का पैर जितने पानी में डूबे उतने पानी वाले खड्डे को तिरता है । 'मैं गोपद को तिरूँगा' ऐसा विचार करके कोई पुरुष समुद्र को तिरता है । 'मैं गोपद को तिरूँगा' ऐसा विचार करके कोई पुरुष गोपद को तिरता है । चार प्रकार के तिरने वाले कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष समुद्र को तिर कर यानी समुद्र के समान बड़े कार्य को करके फिर किसी बड़े कार्य को करने में खेदित हो जाता है । कोई एक पुरुष समुद्र के समान बड़े कार्य को करके फिर किसी गोपद के समान छोटे कार्य में खेदित हो जाता है । कोई एक पुरुष गोपद के समान छोटे कार्य को करके फिर किसी समुद्र के समान बड़े कार्य में खेदित हो जाता है । कोई एक पुरुष गोपद के समान छोटा कार्य करके फिर किसी गोपद के समान छोटे कार्य में भी खेदित हो जाता है ।

चार प्रकार के कुम्भ यानी घड़े कहे गये हैं यथा - कोई एक कुम्भ पूर्ण यानी सम्पूर्ण अवयवों से युक्त एवं प्रमाणोपेत है और पूर्ण यानी मधु एवं घृत आदि से भरा हुआ है । कोई एक घड़ा पूर्ण अवयव वाला है किन्तु मधु आदि से भरा हुआ नहीं है । कोई एक घड़ा तुच्छ यानी अपूर्ण अवयव वाला है किन्तु मधु आदि से परिपूर्ण अर्थात् भरा हुआ है । कोई एक घड़ा तुच्छ यानी अपूर्ण अवयव वाला है और मधु आदि से भी भरा हुआ नहीं है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष जाति आदि गुणों से युक्त है और ज्ञानादि गुणों से भी युक्त है । कोई एक पुरुष जाति आदि गुणों से तो युक्त है किन्तु ज्ञानादि गुणों से युक्त नहीं है। कोई एक पुरुष जाति आदि गुणों से तो रहित है किन्तु ज्ञानादि गुणों से युक्त है । कोई एक पुरुष जाति आदि गुणों से रहित है और ज्ञानादि गुणों से भी रहित है । चार प्रकार के कुम्भ यानी घड़े कहे गये हैं यथा - कोई एक घड़ा पूर्ण अवयव वाला है अथवा दही आदि से परिपूर्ण है और पूर्ण ही दिखाई देता है । कोई एक घड़ा पूर्ण अवयव वाला है अथवा दही आदि से परिपूर्ण है किन्तु तुच्छ दिखाई देता है । कोई एक घड़ा तुच्छ यानी अपूर्ण अवयव वाला है किन्तु परिपूर्ण की तरह दिखाई देता है । कोई एक घड़ा अपूर्ण अवयव वाला है और तुच्छ दिखाई देता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष पूर्ण यानी धन से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा श्रुत आदि से परिपूर्ण है और पूर्ण ही दिखाई देता है । कोई एक पुरुष धन से अथवा श्रुत से परिपूर्ण है किन्तु अवसर के अनुकूल कार्य न करने से तुच्छ के समान दिखाई देता है । कोई एक पुरुष तुच्छ यानी धन से अथवा श्रुत आदि से रहित है किन्तु अवसर के अनुकूल प्रवृत्ति करने से परिपूर्ण के समान दिखाई देता है। कोई एक पुरुष तुच्छ यानी धन से अथवा श्रुत आदि से रहित है और तुच्छ ही दिखाई देता है । चार प्रकार के कुम्भ कहे गये हैं यथा - कोई एक घड़ा जल आदि से परिपूर्ण है और सुन्दर आकार वाला है । कोई एक घड़ा जल आदि से परिपूर्ण है किन्तु तुच्छ रूप यानी रूप से हीन है। कोई एक घड़ा जल आदि से रहित है किन्तु सुन्दर रूप वाला है । कोई एक घड़ा जल आदि से रहित है और रूप से भी हीन है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष पूर्ण यानी ज्ञान आदि से परिपूर्ण है और पूर्णरूप यानी रजोहरण आदि द्रव्य लिङ्ग से युक्त है । कोई एक पुरुष ज्ञान आदि से परिपूर्ण है किन्तु किसी कारणवश रजोहरण आदि द्रव्य लिङ्ग से रहित है । कोई पुरुष ज्ञान आदि से रहित है किन्तु पूर्णरूप यानी रजोहरण आदि द्रव्य लिङ्ग से युक्त है । कोई एक पुरुष ज्ञानादि से रहित है और रजोहरण आदि द्रव्य लिङ्ग से भी रहित है । चार प्रकार के कुम्भ कहे गये हैं यथा - कोई एक घड़ा अवयवादि से परिपूर्ण है और सोने का बना हुआ होने से प्रिय है । कोई एक घड़ा अवयवादि से परिपूर्ण है किन्तु मिट्टी आदि असार द्रव्य का बना हुआ है । कोई एक घड़ा अपूर्ण अवयव वाला है किन्तु सोने आदि का बना हुआ होने से प्रिय है । कोई एक घड़ा अपूर्ण अवयव वाला है और मिट्टी आदि असार द्रव्य का बना हुआ है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष धन से अथवा श्रुत आदि से परिपूर्ण है और प्रिय वचन बोलने से प्रियकारी है । कोई एक पुरुष धन से अथवा श्रुत आदि से परिपूर्ण है किन्तु प्रिय वचन न बोलने से अप्रियकारी है । कोई एक पुरुष तुच्छ यानी धन से अथवा श्रुत आदि से रहित है किन्तु प्रिय वचन बोलने से प्रियकारी है । कोई एक पुरुष धन से अथवा श्रुत आदि से रहित है और प्रिय वचन न बोलने से अप्रियकारी है । चार प्रकार के कुम्भ कहे गये हैं यथा - कोई एक घड़ा जल आदि से परिपूर्ण है और उसमें से पानी निकलता है । कोई एक घड़ा जल आदि से परिपूर्ण है किन्तु उसमें से जल नहीं निकलता है । कोई एक घड़ा थोड़े जल वाला है किन्तु उसमें से भी जल निकलता है । कोई एक घड़ा थोड़े जल वाला है किन्तु उसमें से पानी नहीं निकलता है । इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये है यथा - कोई एक पुरुष धन से और श्रुत आदि से युक्त है और धन तथा श्रुत दूसरों को देता है । कोई एक पुरुष धन से एवं श्रुतादि से युक्त है किन्तु धन, श्रुतादि दूसरों को नहीं देता है । कोई एक पुरुष थोड़ा धन एवं श्रुत वाला है किन्तु फिर भी धन श्रुतादि दूसरों को देता है। कोई एक पुरुष थोड़ा धन एवं श्रुत वाला है और उसमें से दूसरों को नहीं देता है। चार प्रकार के कुम्भ कहे गये हैं यथा - भिन्न यानी फूटा हुआ, जर्जरित यानी तेड़ आया हुआ, परिस्रावी अच्छी तरह से पका हुआ न होने से झरने वाला और अपरिस्रावी यानी न झरने वाला। इसी तरह चार प्रकार का चारित्र कहा गया है यथा - भिन्न यानी मूल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्त आने वाला जिसमें नई दीक्षा आवे । जर्जरित यानी जिसमें दीक्षा का छेद आवे परिस्रावी यानी सूक्ष्म अतिचार युक्त और अपरिस्रावी यानी निरतिचार।

चार प्रकार के कुम्भ कहे गये हैं यथा - कोई एक मधुकुंभ यानी शहद से भरा हुआ और मधुपिधान यानी मधु का ही ढक्कन वाला होता है। अर्थात् पूरा घड़ा नीचे से ऊपर तक शहद से भरा हुआ है। ऊपर तक भरा हुआ होने से उसे ऊपरी भाग को ढक्कन कह दिया है। कोई एक मधुकुम्भ यानी शहद से भरा हुआ किन्तु विषपिधान यानी विष के ढक्कन वाला होता है। तात्पर्य यह है कि घड़े की गर्दन तक तो शहद से भरा हुआ है परन्तु गर्दन की जगह ऊपर के हिस्से में जहर से भर दिया हो। ऐसा घड़ा मधुकुम्भ। कोई एक विषकुम्भ यानी विष से भरा हुआ किन्तु मधुपिधान यानी शहद के ढक्कन वाला होता है। कोई एक विषकुम्भ यानी विष से भरा हुआ और विषपिधान यानी विष ही का ढक्कन वाला होता है। इसी तरह चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष मधुकुम्भ और मधुपिधान के समान होता है । कोई एक पुरुष मधुकुम्भ और विषपिधान के समान होता है। कोई एक पुरुष विषकुम्भ और मधुपिधान के समान होता है। कोई एक पुरुष विषकुम्भ और विषपिधान के समान होता है। इन चारों पुरुषों का विशेष खुलासा चार गाथाओं द्वारा बतलाया जाता है-

जिस पुरुष का हृदय पापरहित और कलुषतारहित है तथा जिह्वा सदा मधुर वचन बोलने वाली है वह पुरुष मधुकुम्भ और मधुपिधान यानी शहद से भरे हुए और शहद के ढक्कन वाले घड़े के समान है ।।१॥

जिस पुरुष का हृदय पापरहित और कलुषता रहित है किन्तु जिह्वा सदा कड़वे वचन बोलने वाली है वह पुरुष मधुकुम्भ और विषपिधान यानी अन्दर शहद से भरे हुए और ऊपर विष के ढक्कन वाले घड़े के समान है ।।२॥

जिस पुरुष का हृदय पाप और कलुषता युक्त है और जिह्वा मधुर वचन बोलने वाली है वह पुरुष विषकुम्भ और मधुपिधान यानी अन्दर विष से भरे हुए और ऊपर शहद के ढक्कन वाले घड़े के समान है ।।३॥

जिस पुरुष का हृदय पाप और कलुषता युक्त है तथा जिह्वा कठोर एवं कड़वे वचन बोलने वाली है वह पुरुष विषकुम्भ विषपिधान यानी अन्दर विष भरे हुए और ऊपर भी विष के ढक्कन वाले घड़े के समान है ।।४॥

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तिरने वाले-तैराक के विषय में निरूपण किया गया है। संसार सागर से तिरने वाला भाव तैराक होता है। तैरने की शक्ति सब में एक जैसी नहीं होती है, इसी दृष्टि से सूत्रकार ने दो चौभंगियों द्वारा उसका दिग्दर्शन कराया है।

आगे के सूत्रों में सूत्रकार ने मानव को कुम्भ से उपमित किया है और कुम्भ की विभिन्न अवस्थाओं एवं वस्तु स्थितियों का चौभंगियों द्वारा दिग्दर्शन कराते हुए उसकी पुरुषों के साथ तुलना की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गयी है। उसमें से एक चौभंगी है - १. मधु कुम्भ मधु पिधान २. मधु कुम्भ विष पिधान ३. विष कुम्भ मधु पिधान ४. विष कुम्भ विष पिधान।

१. मधु कुम्भ मधु पिधान (ढक्कन) - एक कुंभ (घड़ा) मधु से भरा हुआ होता है। और मधु के ही ढक्कन वाला होता है।

२. मधु कुम्भ विष पिधान - एक कुम्भ मधु से भरा हुआ होता है और उस का ढक्कन विष का होता है।

३. विष कुम्भ मधु पिधान - एक कुम्भ विष से भरा हुआ होता है और उस का ढक्कन मधु का होता है।

४. विष कुम्भ विष पिधान - एक कुंभ विष से भरा हुआ होता है और उसका ढक्कन भी विष का ही होता है।

कुम्भ की उपमा से चार पुरुष -

१. किसी पुरुष का हृदय निष्पाप और अकलुष होता है। और वह मधुरभाषी भी होता है। वह पुरुष मधु कुम्भ मधु पिधान जैसा होता है।

२. किसी पुरुष का हृदय तो निष्पाप और अकलुष होता है परन्तु वह कटुभाषी होता है। वह मधु कुम्भ विष पिधान जैसा है।

३. किसी पुरुष का हृदय कलुषता पूर्ण है। परन्तु वह मधुरभाषी होता है। वह पुरुष विष कुम्भ मधु पिधान जैसा होता है।

४. किसी पुरुष का हृदय कलुषता पूर्ण है और वह कटुभाषी भी है। वह पुरुष विष कुम्भ विष पिधान जैसा है।

चतुर्विध उपसर्ग

चउव्विहा उवसग्गा पण्णत्ता तंजहा - दिव्वा, माणुस्सा, तिरिक्खजोणिया, आयसंचेयणिज्जा । दिव्वा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - हासा, पाओसा, वीमंसा, पुढोवेमाया । माणुस्सा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - हासा, पाओसा, वीमंसा, कुसीलपडिसेवणया । तिरिक्खजोणिया उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - भया, पाओसा, आहारहेउं, अवच्चलेणसारक्खणया । आयसंचेयणिज्जा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा - घट्टणया, पवडणया, थंभणया, लेसणया ॥१९९॥

कठिन शब्दार्थ - **उवसग्गा** - उपसर्ग, **आयसंचेयणिज्जा** - आत्मसंचेतनीय-अपने आप द्वारा उत्पन्न किये हुए, **हासा** - हास्य से, **पाओसा** - द्वेष से, **वीमंसा** - ईर्ष्या से, **पुढोवेमाया** - विविध प्रकार से, **कुसील पडिसेवणया** - कुशील सेवन से, **अवच्चलेण सारक्खणया** - अपने बच्चों की और स्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की रक्षा के लिये, **घट्टणया** - घट्टनता, **पवडणया** - प्रपतनता, **थंभणया** - स्तम्भनता, **लेसणया** - श्लेषणता ।

भावार्थ - चार प्रकार के उपसर्ग कहे गये हैं यथा - देवता सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी, तिर्यञ्च सम्बन्धी और अपने आप द्वारा उत्पन्न किये हुए उपसर्ग । देवता सम्बन्धी उपसर्ग चार प्रकार के कहे गये हैं यथा - हास्य से, द्वेष से, ईर्ष्या से और विविध प्रकार से देव उपसर्ग करते हैं । मनुष्य सम्बन्धी उपसर्ग चार प्रकार के कहे गये हैं यथा - हास्य से, प्रद्वेष से, ईर्ष्या से और कुशील सेवन से मनुष्य सम्बन्धी उपसर्ग होते हैं । तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग चार प्रकार के कहे गये हैं यथा - भय से, द्वेष से, आहार के लिए और अपने बच्चों की और स्थान की रक्षा के लिए तिर्यञ्च उपसर्ग देते हैं । आत्म संचेतनीय यानी अपने आप स्वयं उत्पन्न किये हुए उपसर्ग चार प्रकार के कहे गये हैं यथा - घट्टनता यानी आंख आदि में पड़ी हुई धूल को निकालने से होने वाली वेदना, प्रपतनता यानी चलते चलते गिर पड़ने से होने वाली वेदना, स्तम्भनता यानी अधिक देर तक बैठे रहने से पैर आदि के स्तम्भित होने से पैदा होने वाली वेदना और श्लेषणता यानी वादी (वात) वगैरह आ जाने से हाथ पैर आदि का ज्यों का त्यों रह जाना । इस प्रकार आत्मसंचेतनीय उपसर्ग होते हैं ।

विवेचन - धर्म से जो भ्रष्ट करते हैं ऐसे दुःख विशेष उपसर्ग कहलाते हैं। कर्त्ता के भेद से उपसर्ग चार प्रकार के कहे हैं - १. देव सम्बन्धी २. मनुष्य सम्बन्धी ३. तिर्यंच सम्बन्धी ४. आत्मसंवेदनीय।

देव चार प्रकार से उपसर्ग देते हैं - १. हास्य २. प्रद्वेष ३. परीक्षा ४. विमात्रा। विमात्रा का अर्थ है विविध मात्रा अर्थात् कुछ हास्य, कुछ प्रद्वेष कुछ परीक्षा के लिए उपसर्ग देना अथवा हास्य से प्रारम्भ कर द्वेष से उपसर्ग देना आदि।

मनुष्य सम्बन्धी उपसर्ग के भी चार प्रकार हैं - १. हास्य २. प्रद्वेष ३. परीक्षा ४. कुशील प्रति सेवना।

तिर्यंच चार बातों से उपसर्ग देते हैं - १. भय से २. प्रद्वेष से ३. आहार के लिये ४. संतान एवं अपने लिए रहने के स्थान की रक्षा के लिए ।

अपने ही कारण से होने वाला उपसर्ग आत्मसंवेदनीय है। इसके चार भेद हैं - १. घट्टन २. प्रपतन ३. स्तम्भन ४. श्लेषण ।

१. घट्टन - अपने ही अङ्ग यानी अंगुली आदि की रगड़ से होने वाला घट्टन उपसर्ग है। जैसे - आंखों में धूल पड़ गई। आँख को हाथ से रगड़ा। इससे आँख दुःखने लग गई।

२. प्रपतन - बिना यतना के चलते हुए गिर जाने से चोट आदि का लग जाना।

३. स्तम्भन - हाथ पैर आदि अवयवों का सुन्न हो जाना।

४. श्लेषण - अंगुली आदि अवयवों का आपस में चिपक जाना। वात, पित्त, कफ एवं सन्निपात (वात, पित्त, कफ का संयोग) से होने वाला उपसर्ग श्लेषण है। ये सभी आत्मसंवेदनीय उपसर्ग हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विध कर्म

चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते तंजहा - सुभे णाममेगे सुभे, सुभे णाममेगे असुभे, असुभे णाममेगे सुभे, असुभे णाममेगे असुभे । चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते तंजहा - सुभे णाममेगे सुभविवागे, सुभे णाममेगे असुभविवागे, असुभे णाममेगे सुभ विवागे, असुभ णाममेगे असुभविवागे । चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते तंजहा - पगडीकम्मे, ठिईकम्मे, अणुभावकम्मे, पएसकम्मे ।

चतुर्विध संघ चतुर्विध मति

चउव्विहे संघे पण्णत्ते तंजहा - समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ । चउव्विहा बुद्धी पण्णत्ता तंजहा - उप्पइया, वेणइया, कम्मिया, पारिणामिया । चउव्विहा मई पण्णत्ता तंजहा - उग्गहमई, ईहामई, अवायमई, धारणामई, अहवा चउव्विहा मई पण्णत्ता तंजहा - अरंजरोदग समाणा, वियरोदग समाणा, सरोदग समाणा, सागरोदग समाणा ।

चार प्रकार के संसारी जीव

चउव्विहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा । चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी, अजोगी । अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - इत्थिवेयगा, पुरिसवेयगा, णपुंसकवेयगा, अवेयगा । अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, ओहिदंसणी, केवलदंसणी। अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - संजया, असंजया, संजयासंजया, णोसंजयाणोअसंजया ॥ २०० ॥

कठिन शब्दार्थ - सुभे - शुभ रूप, **अशुभे** - अशुभ रूप, **सुभविवागे** - शुभ विपाक वाला, **असुभविवागे** - अशुभ विपाक वाला, **पगडीकम्मे** - प्रकति कर्म, **ठिईकम्मे** - स्थिति कर्म, **अणुभावकम्मे** - अनुभाव कर्म, **पएसकम्मे** - प्रदेश कर्म, **उप्पइया** - औत्पातिकी, **वेणइया** - वैनयिकी, **कम्मिया** - कार्मिकी, **पारिणामिया** - पारिणामिकी, **उग्गहमई** - अवग्रह मति, **अरंजरोदग** - अलंजर-घडे का पानी, **वियरोदक** - विदरोदक-नदी के किनारे के खड्डे में रहा हुआ जल, **सरोदग** - सरोवर का जल, **सागरोदग** - सागर का जल, **संजयासंजया** - संयतासंयति-देशविरति श्रावक, **णो संजयणोअसंजया** - नोसंयति नो असयंति-सिद्ध भगवान् ।

भावार्थ - चार प्रकार का कर्म कहा गया है यथा - कोई एक कर्म शुभ यानी पुण्यप्रकृति रूप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है और शुभानुबन्धी यानी भावों में भी शुभ रूप होता है, सुबाहुकुमार के समान । कोई एक कर्म वर्तमान में शुभ है किन्तु भावी में अशुभ रूप है, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के समान । कोई एक कर्म वर्तमान में अशुभ है किन्तु भावी में शुभानुबन्धी है, अकाम निर्जरा करने वाले पशुओं के समान । कोई एक कर्म वर्तमान में अशुभ है और भावी में भी अशुभानुबन्धी है, कालशौकरिक कसाई के समान । चार प्रकार का कर्म कहा गया है यथा – कोई एक कर्म बांधते समय शुभ है और शुभविपाक रूप है यानी शुभ रूप से ही उदय में आता है । कोई एक कर्म बांधते समय शुभ किन्तु संक्रमकरण करने से अशुभ रूप में उदय में आवे । कोई एक कर्म बांधते समय अशुभ किन्तु संक्रमकरण करने से शुभ रूप से उदय में आवे । कोई एक कर्म बांधते समय अशुभ और उदय आते समय भी अशुभ रूप से ही उदय में आवे । चार प्रकार का कर्म कहा गया है यथा – प्रकृति कर्म यानी कर्मों का स्वभाव । स्थितिकर्म यानी कर्मों की स्थिति, अनुभाव कर्म यानी कर्मों का रस और प्रदेश कर्म यानी कर्मपुद्गलों का दल ।

चार प्रकार का संघ कहा गया है यथा – श्रमण यानी साधु, श्रमणी यानी साध्वी, श्रावक और श्राविका।

चार प्रकार की बुद्धि कही गई है यथा – औत्पातिकी यानी बिना देखे और बिना सुने हुए पदार्थ को जान लेने वाली बुद्धि, वैनयिकी यानी विनय से उत्पन्न होने वाली, कार्मिकी यानी काम करते करते उत्पन्न होने वाली बुद्धि, पारिणामिकी यानी उम्र के बढ़ने से पैदा होने वाली बुद्धि पारिणामिकी कहलाती है । चार प्रकार की मति कही गई है यथा – अवग्रह यानी वस्तु को जानना । ईहा यानी अवग्रह जाने हुए पदार्थ में विशेष विचार करना। अवाय यानी पदार्थ का निश्चय करना, धारणा यानी दृढ़ निश्चय । अथवा चार प्रकार की मति कही गई है यथा – अलंजर यानी घड़े के पानी के समान, जो थोड़ा अर्थ ग्रहण कर सके । विदरोदक यानी नदी किनारे रहे हुए खड्डे के जल के समान, जो नये नये थोड़े अर्थों को ग्रहण कर सके । सरोवर के जल के समान, जो बहुत अर्थों को ग्रहण कर सके, समुद्र के जल के समान, अखूट बुद्धि ।

चार प्रकार के संसार समापन्नक यानी संसारी जीव कहे गये हैं यथा – नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। चार प्रकार के सब जीव कहे गये हैं यथा–मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी। अथवा चार प्रकार के सर्वजीव कहे गये हैं यथा–स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अवेदी यानी वेदरहित। अथवा चार प्रकार के सर्वजीव कहे गये हैं यथा–चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी। अथवा चार प्रकार के सर्वजीव कहे गये हैं यथा–संयति यानी सर्वविरति साधु, असंयति यानी अविरति, संयतासंयति यानी देशविरति श्रावक और नोसंयतिनोअसंयति यानी सिद्ध भगवान् ।

विवेचन – बन्ध की व्याख्या और उसके भेद – जैसे कोई व्यक्ति अपने शरीर पर तेल लगा कर धूलि में लेटे, तो धूलि उसके शरीर पर चिपक जाती है। उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग आदि से जीव के प्रदेशों में जब हल चल होती है तब जिस आकाश में आत्मा के प्रदेश हैं। वहीं के अनन्त-अनन्त कर्म योग्य पुद्गल परमाणु जीव के एक एक प्रदेश के साथ बंध जाते हैं। कर्म और

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

आत्मप्रदेश इस प्रकार मिल जाते हैं जैसे दूध और पानी तथा आग और लोह पिण्ड परस्पर एक हो कर मिल जाते हैं। आत्मा के साथ कर्मों का जो यह सम्बन्ध होता है, वही बन्ध कहलाता है। बंध के चार भेद है - १. प्रकृति बन्ध २. स्थिति बन्ध ३. अनुभाग बन्ध ४. प्रदेश बन्ध।

१. प्रकृति बन्ध - जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों में भिन्न-भिन्न स्वभावों का अर्थात् शक्तियों का पैदा होना प्रकृति बन्ध कहलाता है।

२. स्थिति बन्ध - जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों में अमुक काल तक अपने स्वभावों को त्याग न करते हुए जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को स्थिति बन्ध कहते हैं।

३. अनुभाग बन्ध - अनुभाग बन्ध को अनुभाव बन्ध और अनुभव बन्ध तथा रस बन्ध भी कहते हैं। जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों में से इसके तरतम भाव का अर्थात् फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना अनुभाग बन्ध कहलाता है।

४. प्रदेश बन्ध - जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्धों का सम्बन्ध होना प्रदेश बन्ध कहलाता है।

तीर्थ - सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र आदि गुण रत्नों को धारण करने वाले प्राणी समूह को तीर्थ कहते हैं। यह तीर्थ ज्ञान, दर्शन, चारित्र द्वारा संसार समुद्र से जीवों को तिराने वाला है। इसलिए इसे तीर्थ कहते हैं। तीर्थ के चार प्रकार है - १. साधु २. साध्वी ३. श्रावक ४. श्राविका।

१. साधु - पंच महाव्रतधारी, सर्व विरति को साधु कहते हैं। ये तपस्वी होने से श्रमण कहलाते हैं। शोभन, निदान रूप पाप से रहित चि । वाले होने से 'समन' कहलाते हैं। ये ही स्वजन परजन, शत्रु, मित्र, मान, अपमान आदि में समभाव रखने के कारण 'समण' हैं। इसी प्रकार साध्वी का स्वरूप है। श्रमणी और समणी इनके नामान्तर हैं।

२. श्रावक - देश विरति को श्रावक कहते हैं। सम्यग्दर्शन को प्राप्त किये हुए, प्रतिदिन प्रातः काल साधुओं के समीप प्रमाद रहित होकर श्रेष्ठ चारित्र का व्याख्यान सुनते हैं। वे श्रावक कहलाते हैं। अथवा - जैसा कि कहा है -

"अवाप्तदृष्टयादिविशुद्धसम्पत्, परं समाचारमनुप्रभातम्।
श्रृणोति यः साधु जनादतन्द्ररत्तं श्रावकं प्राहुरमी जिनेन्द्राः॥ १॥"
"श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिन्तनाद्धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम्।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवनादथापि तं श्रावक माहुरञ्जसा॥ २॥"
"श्रद्धालुतां श्राति श्रृणोति शासनं
दानं वपेदाशु तृणोति दर्शनं
कृन्तत्य पुण्यानि करोति सयमं
तं श्रावकं प्राहु रमी विचक्षणा॥ ३॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - जो जिनवाणी पर श्रद्धा करता है और श्रद्धापूर्वक जिनवाणी सुनता है, जो दान देता है जो समकिती है, पापों का त्याग करता है और देश विरति रूप संयम का पालन करता है उसको 'श्रावक' कहते हैं।

श्रावक शब्द में तीन अक्षर हैं। टीकाकारने श्रावक शब्द के एक एक अक्षर का अर्थ किया है। यथा-

श्रान्ति पचन्ति तत्त्वार्थश्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्राः,

तथा वपन्ति-गुणवत्सप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वाः,

तथा - किरन्ति-क्लिष्टकर्म्मरजो विक्षिपन्तीति कास्ततः कर्म्मधारये श्रावका इति भवति

अर्थ - "**श्रा**" अर्थात् सम्यग् दर्शन को धारण करने वाले एवं तत्त्वों पर श्रद्धा करने वाले।

"**व**" अर्थात् गुणवान्, धर्म क्षेत्रों में धनरूपी बीज को बोने वाले, दान देने वाले।

"**क**" अर्थात् क्लेशयुक्त, कर्म रज का निराकरण करने वाले जीव 'श्रावक' कहलाते हैं।

"श्राविका" का भी यही स्वरूप है।

श्रमण (समण, समन) की चार व्याख्याएं -

१. जिस प्रकार मुझे दुःख अप्रिय है। उसी प्रकार सभी जीवों को दुःख अप्रिय लगता है। यह समझ कर तीन करण, तीन योग से जो किसी जीव की हिंसा नहीं करता एवं जो सभी जीवों को आत्मवत् समझता है। वह समण कहलाता है।

२. जिसे संसार के सभी प्राणियों में न किसी पर राग है और न किसी पर द्वेष। इस प्रकार समान मन (मध्यस्थ भाव) वाला होने से साधु स-मन कहलाता है।

३. जो शुभ द्रव्य मन वाला है और भाव से भी जिसका मन कभी पापमय नहीं होता। जो स्वजन, परजन एवं मान अपमान में एक सी वृत्ति वाला है। वह श्रमण कहलाता है।

४. जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्ष, पंक्ति, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य एवं पवन के समान होता है वह श्रमण कहलाता है।

दृष्टान्तों के साथ दार्ष्टान्तिक इस तरह घटाया जाता है।

सर्प - जैसे चूहे आदि के बनाये हुए बिल में रहता है उसी प्रकार साधु भी गृहस्थ के बनाये हुए घर में वास करता है। वह स्वयं घर आदि नहीं बनाता, नहीं बनवाता और बनाने वाले का अनुमोदन भी नहीं करता है।

पर्वत - जैसे आंधी और बवंडर से कभी विचलित नहीं होता। उसी प्रकार साधु भी परीषह और उपसर्ग द्वारा विचलित नहीं होता हुआ संयम में स्थिर रहता है।

अग्नि - जैसे अग्नि तेजोमय है तथा कितना ही भक्ष्य पाने पर भी वह तृप्त नहीं होती। उसी प्रकार मुनि भी तप से तेजस्वी होता है एवं शास्त्र ज्ञान से कभी सन्तुष्ट नहीं होता। हमेशा विशेष शास्त्र ज्ञान सीखने की इच्छा रखता है।

सागर - जैसे गंभीर होता है। रत्नों के निधान से भरा होता है। एवं मर्यादा का त्याग करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला नहीं होता। उसी प्रकार मुनि भी स्वभाव से गंभीर होता है। ज्ञानादि रत्नों से पूर्ण होता है। एवं कैसे भी संकट में मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता।

आकाश – जैसे निराधार होता है उसी प्रकार साधु भी आलम्बन रहित होता है।

वृक्ष पंक्ति – जैसे सुख और दुःख में कभी विकृत नहीं होती। उसी प्रकार समता भाव वाला साधु भी सुख दुःख के कारण विकृत नहीं होता।

भ्रमर – जैसे फूलों से रस ग्रहण करने में अनियत वृत्ति वाला होता है। तथा स्वभावतः पुष्पित फूलों को कष्ट न पहुँचाता हुआ अपनी आत्मा को तृप्त कर लेता है। इसी प्रकार साधु भी गृहस्थों के यहां से आहार लेने में अनियत वृत्ति वाला होता है। गृहस्थों द्वारा अपने लिये बनाये हुए आहार में से, उन्हें असुविधा न हो इस प्रकार, थोड़ा थोड़ा आहार लेकर अपना निर्वाह करता है।

मृग – जैसे मृग वन में हिंसक प्राणियों से सदा शङ्कित एवं त्रस्त रहता है। उसी प्रकार साधु भी दोषों से शङ्कित रहता है।

पृथ्वी – जैसे सब कुछ सहने वाली है। उसी प्रकार साधु भी सब परीषह और उपसर्गों को सहने वाला होता है।

कमल – जैसे जल और पंक (कीचड़) में रहता हुआ भी उन से सर्वथा पृथक् रहता है। उसी प्रकार साधु संसार में रहता हुआ भी निर्लिप्त रहता है।

सूर्य – जैसे सब पदार्थों को समभाव से प्रकाशित करता है। उसी प्रकार साधु भी धर्मास्तिकायादि रूप लोक का समान रूप से ज्ञान द्वारा प्रकाशन करता है।

पवन – जैसे पवन अप्रतिबन्ध गति वाला होता है। उसी प्रकार साधु भी मोह ममता से दूर रहता हुआ अप्रतिबन्ध विहारी होता है।

बुद्धि के चार भेद – १. औत्पातिकी २. वैनयिकी ३. कार्मिकी ४. पारिणामिकी।

१. औत्पातिकी – नटपुत्र रोह की बुद्धि की तरह जो बुद्धि बिना देखे सुने और सोचे हुये पदार्थों को सहसा ग्रहण के कार्य को सिद्ध कर देती है। उसे औत्पातिकी बुद्धि कहते हैं।

२. वैनयिकी – नैमित्तिक सिद्ध पुत्र के शिष्यों की तरह गुरुओं की सेवा शुश्रूषा करने से प्राप्त होने वाली बुद्धि वैनयिकी है।

३. कार्मिकी – कर्म अर्थात् सतत अभ्यास और विचार से विस्तार को प्राप्त होने वाली बुद्धि कार्मिकी है। जैसे सुनार, किसान आदि कर्म करते करते अपने धन्धे में उत्तरोत्तर विशेष दक्ष हो जाते हैं।

४. पारिणामिकी – अति दीर्घ काल तक पूर्वापर पदार्थों के देखने आदि से उत्पन्न होने वाला आत्मा का धर्म परिणाम कहलाता है। उस परिणाम कारणक बुद्धि को पारिणामिकी कहते हैं। अर्थात् वयोवृद्ध व्यक्ति को बहुत काल तक संसार के अनुभव से प्राप्त होने वाली बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि कहलाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन चार बुद्धियों के हिन्दी में चार दोहे हैं, वे इस प्रकार हैं-

औत्पत्तिकी बुद्धि - उत्पत्तिया बुद्धि -

बिन देखी बिन सांभली, जो कोई पूछे बात।
उसका उत्तर तुरन्त दे, सो बुद्धि उत्पात॥ १॥

वैनयिकी - (विनयजा-विनिया) बुद्धि -

गुरुजनों का विनय करे, तीनों योगधर ध्यान।
बुद्धि विनयजा वह लहे, अन्तिम पद निर्वाण॥ २॥

कार्मिकी (कर्मजा-कम्मिया) बुद्धि -

जो करता जिस काम को, वह उसमें प्रवीण।
बुद्धि कर्मजा होती वह, विज्ञ जन तुम लो जान॥ ३॥

पारिणामिकी (परिणामिया) बुद्धि -

उम्र अनुभव ज्यों ज्यों बढे, त्यों-त्यों ज्ञान विस्तार।
बुद्धि परिणामी कहात वह, करत कार्य निस्तार॥ ४॥

मति ज्ञान के चार भेद - १. अवग्रह २. ईहा ३. अवाय ४. धारणा।

१. अवग्रह - इन्द्रिय और पदार्थों के योग्य स्थान में रहने पर सामान्य प्रतिभास रूप दर्शन के बाद होने वाले अवान्तर सत्ता सहित वस्तु के सर्व प्रथम ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। जैसे दूर से किसी चीज का ज्ञान होना।

२. ईहा - अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए विशेष की जिज्ञासा को ईहा कहते हैं। जैसे अवग्रह से किसी दूरस्थ चीज का ज्ञान होने पर संशय होता है कि यह दूरस्थ चीज मनुष्य है या स्थाणु (ठूंठ)? ईहा ज्ञानवान् व्यक्ति विशेष धर्म विषयक विचारणा द्वारा इस संशय को दूर करता है और यह जान लेता है कि यह मनुष्य होना चाहिए। यह ज्ञान दोनों पक्षों में रहने वाले संशय को दूर कर एक ओर झुकता है। परन्तु इतना कमजोर होता है कि ज्ञाता को इससे पूर्ण निश्चय नहीं होता है और उसको तद्विषयक निश्चयात्मक ज्ञान की आकांक्षा बनी ही रहती है।

३. अवाय - ईहा से जाने हुए पदार्थों में 'यह वही है, अन्य नहीं हैं' ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं। जैसे यह मनुष्य ही है ठूंठ नहीं है।

४. धारणा - अवाय से जाना हुआ पदार्थों का ज्ञान इतना दृढ़ हो जाय कि कालान्तर में भी उसका विस्मरण न हो तो उसे धारणा कहते हैं।

दर्शन के चार भेद - १. चक्षु दर्शन २. अचक्षु दर्शन ३. अवधि दर्शन ४. केवल दर्शन।

१. चक्षु दर्शन - चक्षु दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु (आंख) द्वारा जो पदार्थों के सामान्य धर्म को ग्रहण होता है। उसे चक्षु दर्शन कहते हैं।

२. अचक्षु दर्शन - अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु के सिवाय शेष,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रिय तथा मन से जो पदार्थों के सामान्य धर्म का प्रतिभास होता है। उसे अचक्षु दर्शन कहते हैं।

३. अवधि दर्शन - अवधि दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा को रूपी द्रव्य के सामान्य धर्म का जो बोध होता है। उसे अवधि दर्शन कहते हैं।

४. केवल दर्शन - केवल दर्शनावरणीय कर्म के क्षय होने पर आत्मा द्वारा संसार के सकल पदार्थों का जो सामान्य ज्ञान होता है। उसे केवल दर्शन कहते हैं।

मित्र और मुक्त की चौभंगी

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - मित्ते णाममेगे मित्ते, मित्ते णाममेगे अमित्ते, अमित्ते णाममेगे मित्ते, अमित्ते णाममेगे अमित्ते । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - मित्ते णाममेगे मित्तरूवे, मित्ते णाममेगे अमित्तरूवे, अमित्ते णाममेगे मित्तरूवे, अमित्ते णाममेगे अमित्तरूवे ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - मुत्ते णाममेगे मुत्ते, मुत्ते णाममेगे अमुत्ते, अमुत्ते णाममेगे मुत्ते, अमुत्ते णाममेगे अमुत्ते । चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - मुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे, मुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे, अमुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे, अमुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे॥ २०१॥

कठिन शब्दार्थ - मित्ते - मित्र, **अमित्ते** - अमित्र, **मित्तरूवे** - मित्र रूप, **अमित्तरूवे** - अमित्र रूप, **मुत्ते** - मुक्त, **मुत्तरूवे** - मुक्त रूप, **अमुत्ते** - अमुक्त ।

भावार्थ - चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक इस लोक में मित्र है और परलोक के लिए भी मित्र है, जैसे सद्गुरु । कोई एक इस लोक में तो मित्र है किन्तु परलोक के लिए अमित्र है, जैसे स्त्री आदि । कोई एक इस लोक के लिए तो अमित्र है किन्तु परलोक के लिए मित्र, जैसे प्रतिकूल स्त्री, जिसके कारण वैराग्य उत्पन्न हो । कोई एक इस लोक में भी अमित्र है और परलोक में भी अमित्र है । चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष आन्तरिक हृदय से मित्र है और बाहर भी मित्र सरीखा ही व्यवहार रखता है । कोई एक आन्तरिक हृदय से मित्र हैं किन्तु बाहर मित्र सरीखा व्यवहार नहीं रखता है । कोई एक भीतर से तो अमित्र है किन्तु बाहर मित्र सरीखा व्यवहार रखता है । कोई एक भीतर से भी अमित्र है और बाहर से भी अमित्र सरीखा ही व्यवहार रखता है ।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष द्रव्य से मुक्त है और भाव से भी मुक्त है, जैसे श्रेष्ठ साधु । कोई एक पुरुष द्रव्य से तो मुक्त है किन्तु भाव से अमुक्त है, जैसे मंगते भिखारी आदि। कोई एक पुरुष द्रव्य से तो अमुक्त है किन्तु भाव से मुक्त, जैसे भरत चक्रवर्ती । कोई एक पुरुष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य से अमुक्त और भाव से भी अमुक्त, जैसे गृहस्थ। चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - कोई एक पुरुष भाव से मुक्त है और मुक्तरूप है, जैसे श्रेष्ठ साधु । कोई एक पुरुष भाव से तो मुक्त है किन्तु बाहर मुक्त का वेश नहीं है, जैसे गृहस्थ अवस्था में रहे गुए भगवान् महावीर स्वामी । कोई एक पुरुष भाव से तो मुक्त नहीं है किन्तु बाहर मुक्त का वेश रखता है, जैसे धूर्त-कपटी साधु । कोई एक पुरुष भाव से अमुक्त है और बाहर भी अमुक्त का ही वेश रखता है, जैसे गृहस्थ ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की गति-आगति

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया चउगइया चउआगइया पण्णत्ता तंजहा - पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणा णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा । से चेव णं से पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए पंचिंदिय तिरिक्खजोणियत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा जाव देवत्ताए वा उवागच्छेज्जा । मणुस्सा चउगइया चउआगइया, एवं चेव मणुस्सा वि॥ २०२॥

कठिन शब्दार्थ - **चउगइया** - चार गति वाले, **चउ आगइया** - चार आगति वाले, **उववज्जमाणा**- उत्पन्न होता हुआ, **विप्पजहमाणे** - छोडता हुआ।

भावार्थ - पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि के जीव चार गति और चार आगति वाले कहे गये हैं यथा - पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होने वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव नैरयिकों में से अथवा तिर्यञ्चों में से अथवा मनुष्यों में से अथवा देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि को छोड़ता हुआ उस योनि से निकल कर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीव नैरयिक यावत् देवरूप से यानी नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों में उत्पन्न हो सकता है । मनुष्य में चार गति और चार आगति होती है जैसा तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय में कथन किया है वैसा ही मनुष्यों में भी कह देना चाहिए ।

बेइन्द्रिय जीवों संबंधी संयम-असंयम

बेइंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स चउव्विहे संजमे कज्जइ तंजहा - जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवइ, फासमयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, फासमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवइ। बेइंदिया णं जीवा समारभमाणस्स चउव्विहे असंजमे कज्जइ तंजहा- जिब्भामयाओ सोक्खाओ ववरोवित्ता भवइ, जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगित्ता भवइ, फासमयाओ सोक्खाओ ववरोवित्ता भवइ, फासमएणं दुक्खेणं संजोगित्ता भवइ ॥ २०३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **असमारभमाणस्स** - आरंभ न करने वाले का, **जिब्भामयाओ** - जिह्वामय-जिह्वा संबंधी, **सोक्खाओ** - सुख से, **अववरोवेत्ता** - वञ्चित नहीं करने वाला, **संजोगित्ता**- संयुक्त करने वाला।

भावार्थ - बेइन्द्रिय जीवों का आरम्भ यानी हिंसा न करने वाले पुरुष को चार प्रकार का संयम होता है यथा - वह पुरुष बेइन्द्रिय जीव को जिह्वा सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है और जिह्वा सम्बन्धी दुःख से युक्त नहीं करता है । स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है । स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख से संयुक्त नहीं करता है । बेइन्द्रिय जीवों का आरम्भ यानी हिंसा करने वाले पुरुष को चार प्रकार का असंयम होता है यथा - वह पुरुष बेइन्द्रिय जीव को जिह्वेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित करता है । जिह्वेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख से संयुक्त करता है । स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित करता है । स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख से संयुक्त करता है ।

विवेचन - जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय दो इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें बेइन्द्रिय कहते हैं। बेइन्द्रिय जीवों की रक्षा करना संयम है और उनकी हिंसा करना असंयम है। प्रस्तुत सूत्र में बेइन्द्रिय जीवों से सम्बन्धित संयम और असंयम का निरूपण किया गया है।

सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय जीवों की क्रियाएँ

सम्मदिट्ठियाणं णेरइयाणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाण किरिया । सम्मदिट्ठियाणं असुरकुमाराणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - एवं चेव एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं ।

गुणों के नाश और विकास के कारण, शरीरोत्पत्ति के कारण

चउहिं ठाणेहिं संते गुणे णासेज्जा तंजहा - कोहेणं, पडिणिवेसेणं, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं । चउहिं ठाणेहिं संते गुणे दीवेज्जा - अब्भासवत्तियं, परच्छंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कयपडिकइए इ वा । णेरइयाणं चउहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया तंजहा - कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं । एवं जाव वेमाणियाणं । णेरइयाणं चउहिं ठाणेहिं णिव्वत्तिए सरीरे पण्णत्ते तंजहा - कोहणिव्वत्तिए, जाव लोभणिव्वत्तिए, एवं जाव वेमाणियाणं॥ २०४॥

कठिन शब्दार्थ - **सम्मदिट्ठियाणं** - सम्यग् दृष्टि जीवों के, **आरंभिया** - आरम्भिकी, **परिग्गहिया**- पारिग्रहिकी, **मायावत्तिया** - माया प्रत्ययिकी, **अपच्चक्खाण किरिया** - अप्रत्याख्यानिकी, **पडिणिवेसेणं**- प्रतिनिवेश-असहनशीलता से, **अकयण्णुयाए** - अकृतज्ञता से, **मिच्छत्ताभिणिवेसेणं** - मिथ्यात्वाभिनिवेश से, **संते** - विद्यमान, **अब्भासवत्तियं** - गुणों का अभ्यास करना, **परच्छंदाणुवत्तियं** - परछंदानुवर्तिक-दूसरे के अभिप्राय के अनुसार प्रवृत्ति करने से, **कज्जहेउं** - कार्य हेतु, **कयपडकइए** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृतप्रतिकृतिक-उपकार को मानने से और उपकारी पुरुष के गुणों का वर्णन करने से, **दीवेज्जा** - विशेष दीप्त होते हैं, **सरीरुप्पत्ति** - शरीर की उत्पत्ति, **णिव्वत्तिए** - निर्वृत्ति ।

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि नैरयिक जीवों के चार क्रियाएं कही गई हैं यथा - आरम्भिकी पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यानिकी । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि असुरकुमार देवों के भी चार क्रियाएं कही गयी हैं । विकलेन्द्रिय यानी एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर वैमानिक देवों तक सभी जीवों में इसी तरह चार क्रियाएं पाई जाती हैं । क्रोध से, प्रतिनिवेश यानी असहनशीलता से, अकृतज्ञता यानी किये हुए उपकार को न मानने से और मिथ्यात्वाभिनिवेश यानी विपरीत ज्ञान के आग्रह से इन चार कारणों से विद्यमान गुणों का नाश हो जाता है । गुणों का अधिकाधिक अभ्यास करने से एवं गुणी पुरुष के पास रहने से, दूसरे के अभिप्राय अनुसार प्रवृत्ति करने से, कार्यहेतु यानी इच्छित कार्य के अनुकूल आचरण करने से, किये हुए उपकार को मानने से अथवा उपकारी पुरुष के गुणों का वर्णन करने से, इन चार कारणों से विद्यमान गुण विशेष दीप्त होते हैं । क्रोध से, मान से, माया से और लोभ से इन चार कारणों से नैरयिक जीवों के शरीर की उत्पत्ति होती है। इसी तरह वैमानिक देवों तक सब जीवों के शरीर की उत्पत्ति उपरोक्त चार कारणों से होती है । क्रोध मान, माया और लोभ इन चार कारणों से नैरयिक जीवों के शरीर की निर्वृत्ति यानी सम्पूर्णता होती है । इसी तरह वैमानिक देवों तक सब जीवों के शरीर की पूर्णता उपरोक्त चार कारणों से होती है ।

विवेचन - सम्यग्दृष्टि जीवों में मिथ्यात्व क्रिया का अभाव होने से चार क्रियाएं कही गयी हैं। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय जीवों के पांच क्रियाएं होती हैं क्योंकि वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। बेइन्द्रिय आदि में सास्वादन (पतनशील अवस्था में) सम्यक्त्व का अल्पत्व होने से यह विवक्षा की गई है। अत: विकलेन्द्रिय को छोड़ कर सोलह क्रिया सूत्र कहे हैं।

गुणलोप के चार स्थान - चार प्रकार से दूसरे के विद्यमान गुणों का लोप किया जाता है। जीव दूसरे के विद्यमान् गुणों का अपलाप करता है।

१. क्रोध से ।

२. दूसरे की पूजा प्रतिष्ठा न सहन कर सकने के कारण, ईर्ष्या से।

३. अकृतज्ञता से।

४. विपरीत ज्ञान से।

गुण प्रकाश के चार स्थान - चार प्रकार से दूसरे के विद्यमान गुण प्रकाशित किए जाते हैं।

१. अभ्यास अर्थात् आग्रह वश, अथवा वर्णन किए जाने वाले पुरुष के समीप में रहने से।

२. दूसरे के अभिप्राय के अनुकूल व्यवहार करके के लिए।

३. इष्ट कार्य के प्रति दूसरे को अनुकूल करने के लिए।

४. किये हुए गुण प्रकाश रूप उपकार व अन्य उपकार का बदला चुकाने के लिए।

क्रोध आदि कर्म बंधन के हेतु हैं और कर्म शरीर उत्पत्ति का कारण है अत: कारण में कार्य के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपचार से क्रोधादि शरीर की उत्पत्ति का निमित्त रूप से कथन किया जाता है। शरीर की बनावट की शुरूआत होना उत्पत्ति कहलाता है और शरीर बनकर पूर्ण हो जाना निर्वृत्ति कहलाता है।

धर्म द्वार, नरकादि आयुष्य बांधने के कारण

चत्तारि धम्मदारा पण्णत्ता तंजहा - खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे ।

चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - महारंभयाए, महापरिग्गहयाए, पंचेंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं । चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणियत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - माइल्लयाए, णियडिल्लयाए, अलियवयणेणं, कूडतुलकूडमाणेणं । चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्सत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - पगइभद्दयाए, पगइविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरियाए । चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए ।

चतुर्विध वाद्य, नाटक, गीत, मल्ल अलंकार, अभिनय आदि

चउव्विहे वज्जे पण्णत्ते तंजहा - तते, वितते, घणे, झूसिरे । चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते तंजहा - अंचिए, रिभिए, आरभडे, भिसोले (भसोले) । चउव्विहे गेये पण्णत्ते तंजहा - उक्खित्तए, पत्तए, मंदए, रोविंदए। चउव्विहे मल्ले पण्णत्ते तंजहा - गंथिमे, वेढिमे, पूरिमे, संघाइमे । चउव्विहे अलंकारे पण्णत्ते तंजहा - केसालंकारे, वत्थालंकारे, मल्लालंकारे, आभरणालंकारे । चउव्विहे अभिणए पण्णत्ते तंजहा - दिट्ठंतिए, पांडुसुए, सामंतोवणिए, लोगमज्झावसिए । सणंकुमार माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा चउवण्णा पण्णत्ता तंजहा - णीला, लोहिया, हालिद्दा, सुक्किला । महासुक्कसहस्सारेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ॥ २०५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **धम्मदारा** - धर्मद्वार, **पंचेंदियवहेणं** - पंचेन्द्रिय जीवों की घात से, **कुणिमाहारेणं** - मांसाहार से, **माइल्लयाए** - माया करने से, **णियडिल्लाए** - निकृति-ढोंग एवं गूढमाया करके दूसरों को ठगने की चेष्टा करने से, **अलियवयणेणं** - अलीक वचन-झूठ बोलने से, **कूडतुलकूडमाणेणं** - खोटा तोल खोटा माप करने से, **पगइभद्दयाए** - प्रकृति की भद्रता से, **पगइविणीययाए** - प्रकृति की विनीतता से, **साणुक्कोसयाए**- सानुक्रोश-दया और अनुकम्पा के परिणामों से, **अमच्छरियाए** - अमत्सर-ईर्ष्या न करने से, **संजमासंजमेण**- संयमासंयम-देशविरति का पालन करने से, **बालतवोकम्मेणं**- बाल तप करने से, **अकाम णिज्जराए** - अकाम निर्जरा करने से, **वज्जे** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वादय-वादिन्त्र, **झूसिरे** - शुषिर, **णट्टे** - नाट्य, **गेये** - गेय-गीत, **उक्खित्तए** - उत्क्षिप्त, **पत्तए** - पत्रक, **मंदए** - मंदक, **रोविंदए**- रोविंदक, **मल्ले** - मालाएं, **गंथिमे** - ग्रंथिम-गूंथी हुई, **वेढिमे** - वेष्टित, **पूरिमे** - पूरित, **संघाइमे** - संघातिम, **केसालंकारे**- केशालङ्कार, **अभिणए** - अभिनय, **दिट्ठंतिए**- दार्ष्टान्तिक, **पांडुसुए** - पाण्डुश्रुत, **सामंतोवणिए** - सामंतोपनिक, **लोगमज्झावसिए** - लोक मध्यावसित।

भावार्थ - चार धर्म द्वार कहे गये हैं यथा - क्षान्ति यानी क्षमा, मुक्ति यानी त्याग, आर्जवभाव यानी सरलता और मार्दवभाव यानी स्वभाव की कोमलता।

महारम्भ, महापरिग्रह, पञ्चेन्द्रिय जीवों की घात और मांसाहार, इन चार कारणों से जीव नरक में जाने योग्य कर्म बांधते हैं । माया कपटाई करने से, ढोंग एवं गूढमाया करके दूसरों को ठगने की चेष्टा करने से, झूठ बोलने से और खोटा तोल खोटा माप करने से इन चार कारणों से जीव तिर्यञ्च योनि में जाने योग्य कर्म बांधते हैं । प्रकृति की भद्रता यानी स्वभाव की सरलता से, प्रकृति की विनीतता से, सानुक्रोश यानी दया और अनुकम्पा के परिणामों से और मत्सर यानी ईर्षा डाह न करने से इन चार कारणों से जीव मनुष्य गति में जाने योग्य कर्म बांधते हैं। सराग संयम का पालन करने से, संयमासंयम यानी देशविरति, श्रावकपना पालन करने से, बाल तप यानी विवेक बिना अज्ञान पूर्वक कायाक्लेश आदि तप करने से और अकाम निर्जरा यानी अनिच्छापूर्वक पराधीनता आदि कारणों से कर्मों की निर्जरा करने से इन चार कारणों से जीव देवगति में जाने योग्य कर्म बांधते हैं ।

चार प्रकार के वादय - वादिन्त्र कहे गये हैं यथा - तत, वीणा आदि, वितत, पटह(ढोल) आदि, घन, कांस्य ताल आदि, शुषिर, बांसुरी आदि । चार प्रकार के नाट्य कहे गये हैं यथा - अञ्चित, रिभित, आरभट भिसोल (भसोल)। चार प्रकार के गेय यानी गीत कहे गये हैं यथा - उत्क्षिप्त, पत्रक, मंदक, रोविंदक । चार प्रकार की मालाएं कही गई हैं यथा - डोरे से गूंथी हुई, वेष्टित - मुकुट यानी फूलों को लपेट कर बनाया हुआ दड़ा आदि पूरित यानी सलाई में पिरोये हुए फूलों की माला, सङ्घातिम यानी फूल और फूल की नाल से परस्पर गूंथी हुई । चार प्रकार के अलङ्कार कहे गये हैं यथा - केशालङ्कार, वस्त्रालङ्कार, माल्यालङ्कार और आभरणालङ्कार । चार प्रकार के अभिनय कहे गये हैं यथा- दार्ष्टान्तिक, पाण्डुश्रुत, सामन्तोपनिक, लोकमध्यावसित । सनत्कुमार और माहेन्द्र यानी तीसरे और चौथे देवलोक में विमान नीले लाल पीले और सफेद इन चार वर्णों वाले होते हैं । महाशुक्र और सहस्रार यानी सातवें और आठवें देवलोक में देवों का भवधारणीय शरीर उत्कृष्ट चार रत्नि यानी हाथ के ऊंचे कहे गये हैं ।

विवेचन - चारित्र लक्षण धर्म के चार द्वार-उपाय कहे गये हैं। यथा - १. क्षमा २. निर्लोभता ३. सरलता और ४. मार्दवता।

नरक आयु बन्ध के चार कारण - १. महारम्भ २. महापरिग्रह ३. पंचेन्द्रिय वध ४. कुणिमाहार।

१. महारम्भ - बहुत प्राणियों की हिंसा हो, इस प्रकार तीव्र परिणामों से कषाय पूर्वक प्रवृत्ति करना महारम्भ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. **महा परिग्रह** – वस्तुओं पर अत्यन्त मूर्छा, महा परिग्रह है।

३. **पंचेन्द्रिय वध** – पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करना पंचेन्द्रिय वध है।

४. **कुणिमाहार** – कुणिम अर्थात् मांस का आहार करना।

इन चार कारणों से जीव नरकायु का बन्ध करता है।

तिर्यंच आयु बन्ध के चार कारण –

१. माया – अर्थात् कुटिल परिणामों वाला-जिसके मन में कुछ हो और बाहर कुछ हो। विषकुम्भ-पयोमुख की तरह ऊपर से मीठा हो, दिल से अनिष्ट चाहने वाला हो।

२. निकृति वाला – ढोंग करके दूसरों को ठगने की चेष्टा करने वाला।

३. झूठ बोलने वाला।

४. झूठे तोल झूठे माप वाला। अर्थात् खरीदने के लिए बड़े और बेचने के लिए छोटे तोल और माप रखने वाला जीव तिर्यंच गति योग्य कर्म बान्धता है।

मनुष्य आयु बन्ध के चार कारण –

१. भद्र प्रकृति वाला।

२. स्वभाव से विनीत।

३. दया और अनुकम्पा के परिणामों वाला।

४. मत्सर अर्थात् ईर्षा-डाह न करने वाला जीव मनुष्य आयु योग्य कर्म बाँधता है।

देव आयु बन्ध के चार कारण –

१. सराग संयम वाला।

२. देश विरति श्रावक।

३. अकाम निर्जरा अर्थात् अनिच्छा पूर्वक पराधीनता आदि कारणों से कर्मों की निर्जरा करने वाला।

४. बालभाव से अर्थात् विवेक के बिना अज्ञान पूर्वक काया क्लेश आदि तप करने वाला जीव देवायु के योग्य कर्म बाँधता है।

सनत्कुमार माहेन्द्र कल्प के विमान चार वर्ण वाले हैं। अन्य कल्पों के विमान के वर्ण इस प्रकार हैं-

सोहम्मे पंचवण्णा, एक्कगहाणी उ जा सहस्सारो।
दो दो तुल्ला कप्पा, तेण परं पुंडरीयाओ॥

– सौधर्म और ईशान देवलोक के विमान पांच वर्ण वाले हैं। तीसरे और चौथे देवलोक के विमान कृष्ण वर्ण के सिवाय चार वर्ण वाले, पांचवें और छठे देवलोक के विमान कृष्ण और नीलवर्ण के अलावा तीन वर्ण वाले, सातवें और आठवें देवलोक के विमान पीले और श्वेत (सफेद) वर्ण वाले और नववें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध के विमान एक श्वेत वर्ण वाले हैं।

चौथा स्थान होने से यहां चार वर्ण वाले विमानों का कथन किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो भव में धारण किया जाता है अथवा जो भव के लिये धारण किया जाता है वह भवधारणीय अर्थात् जो जन्म से मरण पर्यन्त रहता है वह भवधारणीय शरीर कहलाता है। बंधी हुई मुष्टि को रत्नि कहते हैं और खुली अंगुलियों वाली मुष्टि को 'अरत्नि' कहते हैं ऐसा अर्थ होने पर भी यहां सामान्य रूप से रत्नि का अर्थ हाथ किया है। शुक्र और सहस्रार कल्प के देव चार हाथ प्रमाण वाले कहे गये हैं। देवों के शरीर की ऊंचाई इस प्रकार होती है -

भवण १० वण ८ जोइस ५ सोहम्मीसाणे सत्त होंति रयणीओ।
एक्केक्कहाणि सेसे, दुदुगे य दुगे चउक्के य॥
गेविज्जेसुं दोण्णी, एक्का रयणी अणुत्तरेसु।

- दस भवनपति, आठ वाणव्यंतर, पांच ज्योतिषी और सौधर्म तथा ईशान कल्प के देवों का भवधारणीय शरीर सात हाथ का होता है। तीसरे चौथे देवलोक के देव छह हाथ, पांचवें छठे देवलोक के देव पांच हाथ, सातवें आठवें देवलोक के देव चार हाथ, नौवें से बारहवें देवलोक के देव तीन हाथ नवग्रैवेयक के देव दो हाथ और पांच अनुत्तर विमान के देवों का शरीर एक हाथ परिमाण होता है। उत्तरवैक्रिय शरीर तो उत्कृष्ट १ लाख योजन परिमाण हो सकता है। जघन्य से तो भवधारणीय शरीर उत्पत्तिकाल में अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण वाले होते हैं जब कि उत्तरवैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग परिमाण होती है।

चतुर्विध उदक गर्भ, मानुषी गर्भ

चत्तारि उदकगब्भा पण्णत्ता तंजहा - उस्सा, महिया, सीया, उसिणा । चत्तारि उदकगब्भा पण्णत्ता तंजहा - हेमगा, अब्भसंथडा, सीओसिणा, पंचरूविआ ।

माहे उ हेमगा गब्भा, फग्गुणे अब्भसंथडा ।
सीओसिणा उ चित्ते, वइसाहे पंच रूविआ ।।

चत्तारि माणुस्सीगब्भा पण्णत्ता तंजहा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए बिंबत्ताए।

अप्पं सुक्कं बहुं ओयं, इत्थी तत्थ पजायइ ।
अप्पं ओयं बहुं सुक्कं, पुरिसो तत्थ पजायइ ।।
दोण्हं पि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे णपुंसओ ।
इत्थीओयसमाओगे, बिंबं तत्थ पजायइ ।। २०६॥

कठिन शब्दार्थ - उदकगब्भा - पानी का गर्भ, **उस्सा** - ओस, **महिया** - महिका-धूंअर, **सीया**- शीत, **उसिणा** - उष्ण, **हेमगा** - हिमपात, **अब्भसंथडा** - बादलों से आकाश का ढक जाना, **पंचरूविआ**- पंच रूपक-गर्जारव, बिजली, जल, हवा और बादल इन पांचों का होना, **माहे** - माघ में, **फग्गुणे** - फाल्गुन में, **चित्ते** - चैत्र में, **वइसाहे** - वैशाख में, **माणुस्सीगब्भा** - स्त्री गर्भ, **बिंबत्ताए** - बिम्ब रूप,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुक्कं - शुक्र-पुरुष का वीर्य, **ओयं** - ओज, **पजायइ** - उत्पन्न होती है, **रत्तसुक्काणं** - स्त्री का रक्त और पुरुष का वीर्य ।

भावार्थ - चार प्रकार का पानी का गर्भ कहा गया है यथा - ओस, महिका यानी धूंअर, शीत और उष्ण । चार प्रकार का पानी का गर्भ कहा गया है यथा - हिमपात यानी बर्फ गिरना, बादलों से आकाश का ढक जाना, बहुत ठंड और बहुत गर्मी और पञ्चरूपक यानी गर्जारव, बिजली, जल, हवा और बादल इन पांचों का होना । यही बात आगे गाथा में कही गई है । गाथा मूल पाठ में दी हुई है जिसका अर्थ यह है -

माघ मास में हिमपात रूप गर्भ होता है । फाल्गुन मास में आकाश बादलों से ढका रहता है । चैत्र मास में शीतोष्ण और वैशाख मास में पञ्चरूपक गर्भ होता है ।

चार प्रकार का स्त्री गर्भ कहा गया है यथा - स्त्री रूप, पुरुष रूप, नपुंसकरूप और बिम्बरूप । यही बात दो गाथाओं में बतलाई गई है ।

पुरुष का वीर्य अल्प हो और स्त्री का ओज अधिक हो तो उस गर्भ में स्त्री उत्पन्न होती है । जब स्त्री का ओज अल्प और पुरुष का वीर्य अधिक हो तो उस गर्भ में पुरुष पैदा होता है । स्त्री का रक्त और पुरुष का वीर्य ये दोनों बराबर हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है । दो स्त्रियों के परस्पर कुचेष्टा करने से उस गर्भ में बिम्ब पैदा होता है ।

विवेचन - उदक गर्भ अर्थात् कालांतर में जल बरसने के हेतु। उदक गर्भ चार प्रकार के कहे हैं - ओस, धूंअर, शीत और उष्ण। जिस दिन ये उदक गर्भ उत्पन्न होते हैं तब से नाश नहीं होने पर उत्कृष्ट छह माह में वर्षा होती है। भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पांचवें उद्देशक में कहा गया है -

"उदगगब्भेणं भंते ! उदगगब्भेति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा।"

अर्थात् - उदग गर्भ का कालमान कम से कम एक समय और उत्कृष्ट छह मास होता है। इसके बाद तो गर्भस्थ जल अवश्य ही बरसने लग जाता है।

अन्यत्र ऐसा भी कहा है - १. पवन २. बादल ३. वृष्टि ४. बिजली ५. गर्जारव ६. शीत ७. उष्ण ८. किरण ९. परिवेष (कुंडालु) और १०. जल मत्स्य - ये दस भेद जल को उत्पन्न करने के हेतु हैं।

बिम्ब - एक मांस का पिण्ड होता है । इसमें हड्डी केश आदि नहीं होते हैं ।

चूला वस्तुएँ, काव्य, समुद्घात, सम्पदा

उप्पायपुव्वस्स णं चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता । चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते तंजहा - गज्जे पज्जे कत्थे गेये । णेरइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए । एवं वाउकाइयाणं वि । अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो इव अवितहवागरणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेव मणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया हुत्था । हेट्ठिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता तंजहा - सोहम्मे, ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे । मज्झिल्ला चत्तारि कप्पा पडिपुण्ण चंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता तंजहा - बंभलोए, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे । उवरिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता तंजहा - आणए, पाणए, आरणे, अच्चुए ।

चार समुद्र, आवर्त्त और कषाय

चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता तंजहा - लवणोदए, वारुणोदए, खीरोदए, घओदए । चत्तारि आवत्ता पण्णत्ता तंजहा - खरावत्ते, उण्णयावत्ते, गूढावत्ते, आमिसावत्ते । एवामेव चत्तारि कसाया पण्णत्ता तंजहा - खरावत्तसमाणे कोहे, उण्णयावत्त समाणे माणे, गूढावत्तसमाणा माया, आमिसावत्तसमाणे लोभे । खरावत्तसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ । उण्णयावत्तसमाणं माणं एवं चेव, गूढावत्तसमाणं मायं एवं चेव, आमिसावत्तसमाणं लोभं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जइ ॥ २०७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **उव्वायपुव्वस्स** - उत्पाद पूर्व की, **चूलियावत्थु** - चूलिका वस्तु, **कव्वे** - काव्य, **गज्जे** - गद्य, **पज्जे** - पद्य, **कत्थे** - कथ्य, **गेये** - गेय, **चोद्दसपुव्वीणं** - चौदह पूर्वों के धारक मुनियों की, **सव्वक्खरसण्णिवाईणं** - सर्वाक्षर सन्निपाती मुनियों की, **जिणसंकासाणं** - सर्वज्ञ के समान, **अवितहवागरणाणं**- यथातथ्य प्रश्नों का उत्तर देने वाले मुनियों की, **वाइसंपया** - वादियों की संपत्ति, **अद्धचंदसंठाणसंठिया** - अर्द्धचन्द्र के आकार वाले, **पडिपुण्ण** - प्रतिपूर्ण, **पत्तेयरसा** - प्रत्येक रस-भिन्न-भिन्न स्वाद वाले, **लवणोदए** - लवणोदक, **वारुणोदए** - वरुणोदक, **खीरोदए** - क्षीरोदक, **घओदए** - घृतोदक, **आवत्ता** - आवर्त्त, **खरावत्ते** - खरावर्त्त, **उण्णयावत्ते** - उन्नतावर्त्त, **गूढावत्ते** - गूढावर्त्त, **आमिसावत्ते** - आमिषावर्त्त।

भावार्थ - चौदह पूर्वों में से पहले उत्पादपूर्व की चार चूलिका वस्तु यानी अध्ययन कहे गये हैं । चार प्रकार के काव्य-ग्रन्थ कहे गये हैं यथा - गद्य यानी जो छन्दोबद्ध न हो, जैसे आचाराङ्ग सूत्र का शस्त्रपरिज्ञा नामक पहला अध्ययन । पद्य यानी छन्दोबद्ध हो, जैसे आचाराङ्ग सूत्र का आठवां विमोक्ष अध्ययन । कथ्य यानी कथा युक्त, जैसे ज्ञातासूत्र के अध्ययन । गेय यानी गाने योग्य, जैसे उत्तराध्ययन सूत्र का आठवां कापिलीय अध्ययन नैरयिक जीवों के चार समुद्घात कहे गये हैं यथा - वेदना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात । इसी तरह वायुकायिक जीवों के भी उपरोक्त चार समुद्घात होते हैं । अरिहन्त भगवान् अरिष्टनेमिनाथ के उत्कृष्ट चार सौ चौदह पूर्वधारी मुनि थे । वे चौदह पूर्वों के धारक सब अक्षरों के संयोगों को जानने वाले जिन यानी सर्वज्ञ न होते हुए भी सर्वज्ञ के समान थे । वे सर्वज्ञ के समान यथातथ्य वचन बोलने वाले और प्रश्नों का ठीक उत्तर देने वाले होते हैं । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के उत्कृष्ट चार सौ वादियों की संपत्ति थी। देव मनुष्य और असुरों की सभा में उन वादियों को कोई जीत नहीं सकता था ।

सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र ये नीचे के चार देवलोक अर्द्ध चन्द्र के आकार वाले हैं । ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार ये बीच के चार देवलोक पूर्ण चन्द्रमा के आकार वाले कहे गये हैं । आणत, प्राणत, आरण और अच्युत । ये ऊपर के चार देवलोक अर्द्ध चन्द्राकार हैं । चार समुद्र प्रत्येक रस यानी भिन्न भिन्न स्वाद के जल वाले हैं यथा - लवण समुद्र, इसका जल लवण-नमक के समान खारा है । वरुणोदक, इसका जल मदिरा जैसा है । क्षीरोदक, इसका जल दूध जैसा है। घृतोदक, इसका जल घी जैसा है । इन चारों समुद्रों के जल का स्वरूप जल सरिखा ही है किन्तु उस जल का स्वाद क्रमशः खारा, वारुणी नामक मदिरा जैसा कुछ मीठा, दूध और घी जैसा होता है। चार प्रकार के आवर्त्त यानी पानी का चक्कर कहे गये हैं यथा - खरावर्त्त यानी कठोर आवर्त्त, उन्नतावर्त्त, गूढावर्त्त और आमिषावर्त्त यानी मांस के लिए शिकारी लोग जो घेरा डाल कर बैठते हैं उसके समान आवर्त्त । इसी तरह चार प्रकार के कषाय कहे गये हैं यथा - खरावर्त्त के समान क्रोध है । उन्नतावर्त्त के समान मान है । गूढावर्त्त के समान माया है । आमिषावर्त्त के समान लोभ है । खरावर्त्त के समान क्रोध करने वाला जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है। उन्नतावर्त्त के समान मान करने वाला जीव तथा गूढावर्त्त समान माया करने वाला जीव और आमिषावर्त्त समान लोभ करने वाला जीव यदि काल करे तो नैरयिकों में उत्पन्न होता है ।

विवेचन - चौदह पूर्वों में उत्पाद नाम का प्रथम पूर्व है। जिसकी चार चूलिका वस्तु यानी अध्ययन विशेष कहे गये हैं। उत्पाद पूर्व का एक अंग काव्य है अतः आगे के सूत्र में काव्य का वर्णन किया गया है।

समुद्घात शब्द का अर्थ है - वेदना आदि के साथ तन्मय हो कर मूल शरीर को छोड़े बिना प्रबलता से आत्म-प्रदेशों को शरीर अवगाहना से बाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मों का क्षय करना समुद्घात कहलाता है। अथवा कालान्तर में उदय में आने वाले कर्म पुद्गलों को उदीरणा द्वारा उदय में लाकर उनकी प्रबलता पूर्वक निर्जरा करना समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद हैं - १. वेदनीय २. कषाय ३. मारणांतिक ४. वैक्रिय ५. तैजस् ६. आहारक और ७. केवली। यहां नैरयिक जीवों में और वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात कहे गये हैं - १. वेदना २. कषाय ३. मारणान्तिक और ४. वैक्रिय। समुद्घात का विशेष वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के ३६ वें पद में किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् अरिष्टनेमिनाथ के उत्कृष्ट चार सौ चौदह पूर्वधारी मुनि थे। यह चौदह पूर्वधारी मुनियों की उत्कृष्ट संख्या है। क्योंकि इनके चार सौ से अधिक चौदह पूर्वधारी मुनि कभी नहीं हुए थे।

चार तारे, पुद्गलों का चय आदि, चतुष्प्रदेशी पुद्गल

अणुराहा णक्खत्ते चउ त्तारे पण्णत्ते। पुव्वासाढे एवं चेव । उत्तरासाढे एवं चेव । जीवाणं चउट्ठाण णिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा । णेरइए णिव्वत्तिए, तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिए मणुस्सणिव्वत्तिए देवणिव्वत्तिए। एवं उवचिणिंसु वा, उवचिणंति वा, उवचिणिस्संति वा । एवं चिय उवचिय बंध उदीर वेय तह णिज्जरे चेव । चउपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता चउपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता । चउसमय ट्ठिइया पोग्गला अणंता, चउगुणकाला पोग्गला अणंता जाव चउगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ २०८॥

॥ चउत्थो उद्देसो समत्तो । चउठाणं चउत्थं अज्झयणं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुराहा णक्खत्ते** - अनुराधा नक्षत्र, **चउ त्तारे** - चार तारों वाला, **चउट्ठाण** - चार स्थानों में, **णिव्वत्तिए** - निवर्तित-उत्पन्न होने योग्य, **पावकम्मत्ताए** - पाप कर्म रूप से, **चिय** - चय, **उवचिय** - उपचय, **उदीर** - उदीरणा, **वेय** - वेदन, **णिज्जरे** - निर्जरा, **चउपएसिया** - चार प्रदेशी, **चउपएसोगाढा** - चतुः प्रदेशावगाढ।

भावार्थ - अनुराधा नक्षत्र चार तारों वाला कहा गया है। इसी तरह पूर्वाषाढा नक्षत्र और उत्तराषाढा नक्षत्र भी चार चार तारों वाले कहे गये हैं। जीवों ने चार स्थानों में उत्पन्न होने योग्य कर्मपुद्गलों को पापकर्म रूप से सञ्चय किया है, सञ्चय करते हैं और सञ्चय करेंगे। यथा-नैरयिक निवर्तित यानी नरक में उत्पन्न होने योग्य, तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होने योग्य, मनुष्य गति में उत्पन्न योग्य और देवगति में उत्पन्न योग्य। इसी प्रकार बारबार उपचय किया है बारबार उपचय करते हैं और उपचय करेंगे। जिस तरह चय और उपचय का कथन किया है उसी तरह बन्ध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा इनका भी तीन काल आश्री कथन कर देना चाहिए। चार प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। चतुः प्रदेशावगाढ यानी चार प्रदेशों को अवगाहन कर रहने वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। चार समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं, चारगुण काला यावत् चार गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं।

॥ चौथा उद्देशक समाप्त ॥

॥ चौथा स्थान चौथा अध्ययन समाप्त॥

॥ श्री स्थानांग सूत्र भाग-१ सम्पूर्ण॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं
जो उवमिज्जइ सयं,तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org